प्रभुपाद

श्रीहरिदास गोस्वामी

प्रभुपाद

श्रीहरिदास गोस्वामी

[प्रेरक जीवनी प्रसंगोंका आकलन]

जय शचिनन्दन जय गौरहरि ।
विष्णुप्रिया-प्राणनाथ नदियाबिहारी ॥

आर्यावर्त्त प्रकाशन गृह
६५-ए, चितरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता-१२

प्रकाशन तिथि :

गौरपूर्णिमा गौराब्द ४७८
विक्रम संवत् २०२०
शकाब्द १८८५
बंगाब्द १३७०
ईस्वी सन् १९६४

प्रकाशक

रामनिवास ढंढारिया
आर्यावर्त्त प्रकाशन गृह
कलकत्ता-१२ (फोन ३४-७३२२)

न्योछावर
[illegible] नये पैसे
रु.६=५०

प्राप्ति स्थान

- श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी
  बूढ़ा शिव टोला,
  नवद्वीप
- राजवैद्य पं० लक्ष्मीनारायणजी
  पुराना शहर,
  वृन्दावन
- आर्यावर्त्त प्रकाशन-गृह
  ९५-ए, चितरञ्जन एवेन्यू,
  कलकत्ता-१२
- गोपाल ग्रंथालय
  १८७, दादी सेठ अग्यारी लेन,
  बम्बई-२
- राधा ग्रन्थ कुटीर,
  मेन रोड, गांधी नगर,
  दिल्ली-३१

मुद्रक

राधा प्रेस,
मेन रोड, गान्धीनगर,
दिल्ली-३१

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या

विषय		पृष्ठ संख्या

प्रकाशकीय निवेदन

•

यह आत्म-कथा क्यों और कैसे लिखी गयी, यहाँ इसपर थोड़ा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। गोलोकगत पूज्यपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी प्रभु वैष्णवोचित दीनताके नाते स्व-सम्बन्धित प्रचारके बिलकुल ही पक्षपाती नहीं थे। फिर भी भक्तोंके आग्रहकी अवहेलनासे होनेवाले दुःखसे उन्हें बचानेके लिए समय समयपर श्रीगोस्वामीजी को अपने अनुभव और आत्मजीवन सम्बन्धी जानकारीको प्रकट करनेके लिए बाध्य होना पड़ता था। उन्हीं घटनाओंके वर्णनका सहज आकलन ही उनकी आत्म-कथाका कलेवर बन गया।

अर्थाभावमें कष्टमय और कठिन सांसारिक जीवन यापन करते हुए, सरकारी नौकरीके कठिन परिश्रमके उपरान्त भी अध्यवसायपूर्वक जैसी साधना उन्होंने की, वह उनके दृढ़ संकल्पकी परिचायक है। किसी पाठशालामें विद्याभ्यास किये बिना जितने ग्रन्थ उन्होंने लिखे, उनसे उनकी अपूर्व प्रतिभाका पता लगता है। उन्होंने अपनी आत्म-कथामें अपनी साधनापर कोई प्रकाश नहीं डाला। शायद वे उसको जन-साधारणके सामने प्रकट करनेमें संकोचका अनुभव करते थे। उनकी "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकाके दसवें वर्ष तक प्रकाशित अङ्कोंमें उनके डाक-विभागमें अक्टूबर

सन् १६०६ ईस्वी (बङ्गाब्द १३१३) में नागपुर बदली होने तकका वृत्तान्त मिलता है। इसके बाद उसको जबलपुर, भोपाल, अजमेर और कलकत्ताके धर्मतल्ला एवं बीडन स्ट्रीटके डाक-विभागमें भी अनेक वर्षों तक काम करना पड़ा। उनकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीने अपने स्मरणसे यह बताया कि वे नागपुरमें लगभग २ वर्ष, जबलपुरमें लगभग ५ वर्ष, भोपालमें लगभग ३ वर्ष, अजमेरमें लगभग ४ बर्ष, कलकत्ता धर्मतल्लामें लगभग १ वर्ष और कलकत्ता बीडन स्ट्रीटमें लगभग १ वर्ष रहे थे।

सन् १६०५ ईस्वीके आरम्भ कालमें ३ महीनेकी छुट्टी लेकर वे मोतीहारीमें कनिष्ठ भ्राता गुरुदासके पास जाकर रहे। तब उन्हें सर्वप्रथम शिशिरबाबूके "अमिय निमाइ चरित" का कुछ अंश पढ़नेका अवसर मिला था। वहाँ उन्होंने लिखा है कि "उस समय उन्हें उसमें कोई विशेष आनन्दका अनुभव नहीं हुआ, लेकिन बादमें दूसरी बार जब उसे पढ़ा तब जो अनुभूति हुई, उसका वृत्तान्त पीछे लिखेंगे।" इसीके बाद द्विज बलरामदास ठाकुरकी जीवनीका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है कि "इनके सम्बन्धमें बहुत-सी प्राचीन अप्रकाशित सामग्री संग्रहीत हुई है जो सारी बातें यथास्थान मेरी धर्मजीवन कथामें व्यक्त होंगी।" दु:ख है कि यह सारा वृत्तान्त कहीं नहीं मिला।

इस पुस्तक में जितने वर्णन हैं अधिकतर "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकाके आधार पर हैं। कोई-कोई अंश उनकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीसे जानकर दिया गया है। कुछ यात्रा सम्बन्धी विवरण साथ रहनेवाले भक्तों द्वारा लिखा गया जैसा "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकामें प्रकाशित हुआ वह लिया गया है। कहीं-कहींपर किसी-किसी बातका पुन: उल्लेख था वह बहुत आवश्यकीय न प्रतीत होनेसे नहीं दिया गया है। कहीं-कहीं संवत्सरके अङ्कोंमें प्रूफ संशोधनकी भूलके कारण मुद्रणमें गलती हो गयी उसको जहाँ तक बन पड़ा सुधारा गया है। कौन अंश किसका लिखा है, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१—आत्मकथाका अंश प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीका स्वलिखित उनकी अपनी शैलीमें है।

२—बन्धु-वियोगका प्रकरण उनकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीसे जानकारी प्राप्त करके लिखा गया है।

३—"बसन्त साधुके साथ महतसमागम" का अंश भी श्रीगोस्वामीजीका स्वलिखित है। उसमें उद्धृत बसन्त साधुके पत्रोंका अनुवाद बसन्त साधुकी शैलीमें है। उस प्रसङ्गमें सर्वप्रथम संक्षिप्त परिचयका विवरण श्रीगौरपद घोष द्वारा लिखित "नित्य वसन्त माधुरी" पुस्तकके आधार पर लिखा गया है।

४—उसके बाद "श्रीगौर विष्णुप्रियाकी युगल सेवा प्रकाश" और "पूर्व बङ्गालमें गौर धर्म प्रचार" का प्रसङ्ग है। उसमें पहली यात्राका वर्णन श्रीगोस्वामीजीका स्वलिखित है, परन्तु उसमें वर्णित वासण्डा (वरीसाल) के उत्सवका विवरण वहाँके जमींदार भक्तवर श्रीकिरणकुमार रायने लिखकर भेजा था जो वैसा ही उनकी शैलीमें है। दूसरी यात्राका विवरण श्रीअमृतलाल दत्तका लिखा हुआ है। तीसरी यात्राका वर्णन श्रीमहेन्द्रलाल बसुका लिखा है।

५—गौर-मण्डल-दर्शनके प्रकरणमें श्रीपाट श्रीखण्ड और श्रीपाट कण्टकनगरी यात्राका वर्णन श्रीगोस्वामीजी द्वारा लिखित है।

६—श्रीपाट एकचक्रा दर्शनमें श्रीनित्यानन्द प्रभुके जन्म-स्थानकी यात्राका वर्णन भी श्रीगोस्वामीजीका अपना लिखा है।

उन स्थानोंके भावोंसे प्रभावित होकर उनकी कन्याने वहाँ ही जो पद-रचनाकी उनका भी कहीं-कहीं समावेश है।

७—इसके उपरान्त श्रीवंशीदास बाबाजीसे इष्ट गोष्ठीका विवरण है। श्रीगोस्वामीजी प्रायः प्रतिदिन उनके पास आया जाया करते थे और प्रतिदिनकी बात अपनी डायरीमें नोट कर लिया करते थे, उनमेंसे बहुत-सी बातोंका वर्णन उन्होंने अलग-अलग तिथियाँ देकर किया था। लेकिन यहाँपर जिस क्रमसे इस गोष्ठीका विवरण दिया गया है वह विषयवार सङ्कलित कर दिया गया है, लेकिन शैली श्रीगोस्वामीजी की ज्यों-की-त्यों है।

८—उनकी मन्दार पर्वतकी यात्राका वर्णन उनकी डायरी पर देखकर उसके आधारपर तैयार किया गया है।

९—मन्दार यात्राके बाद श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-प्रवास भ्रमणका प्रकरण है जो गोस्वामीजीकी श्रीडाकौरजीकी यात्राके समयका वर्णन है। यह श्रीअमृतलालदत्त द्वारा लिखा गया है।

१०—महाराष्ट्रके सन्त श्रीविष्णुदिगम्बरजीका मिलन प्रसङ्ग किसका लिखा हुआ है, पता नहीं। यह "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकाके अंग्रेजी संस्करणसे लिया गया है।

११—उसके बाद ग्रन्थ प्रणयन और उनकी वैष्णव साहित्य-सेवाका-प्रकरण है। इसमेंका वर्णन उनके विविध ग्रन्थोंमें उल्लिखित विज्ञापन, उत्सर्गपत्र आदिके आधारपर है।

१२—श्रीविष्णुप्रिया चरित प्रकट होनेका रहस्य बसन्त साधुकी मान्यता और घटना-चक्रके तर्क सम्मत आधारपर कल्पित है जिसमें हमारा पूर्ण विश्वास है। सब लोग उसे उसी प्रकारसे मानें अथवा उसमें विश्वास करें—ऐसा हमारा आग्रह नहीं है।

१३—समाज सेवाके प्रकरणका वर्णन कुछ "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकासे और कुछ उनकी कन्यासे जानकारी प्राप्त करके किया गया है।

१४—श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीका प्रकरण उनसे स्वयंसे जानकारी प्राप्त करके लिखा गया है।

१५—उपसंहारका प्रकरण कुछ तो "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" पत्रिकामें प्रकाशित समचारोंसे लिया गया है और कुछ उनकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीसे जानकारी प्राप्त करके दिया गया है।

१६—वंशावलीकी तालिका द्विज बलरामदास ठाकुरकी जीवनी पुस्तकसे ली गयी है और श्रीगोस्वामीजीकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीसे जानकारी प्राप्तकर उस तालिकामें अब तकका विवरण दे दिया गया है।

श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी गणना तत्कालीन वैष्णव आचार्य विद्याभूषण श्रीरसिकमोहन शर्मा जैसे महानुभावोंने ऋषि तुल्य की है जिन ऋषियोंके आर्ष ग्रन्थोंमें आस्तिक जगतके लोग अविश्वास नहीं किया करते हैं। हमको पूर्ण आशा है कि भावुक भक्त श्रीहरिदासजी गोस्वामीके चरित्रको पढ़कर प्रभावित होंगे और उससे लाभान्वित होंगे।

प्रमाद और असावधानीसे प्रूफकी बहुतसी भूलें रह गई हैं जिसके लिए पाठकोंसे क्षमा याचना करते हुए प्रार्थना है कि वे उन भूलोंको पढ़नेके पूर्व शुद्ध करलें। शुद्धिपत्र ग्रन्थके अन्तमें दिया गया है।

कलकत्ता } —रामनिवास ढंढारिया

श्रीहरिदासस्तोत्रम्

यो भूमानन्दरूपो जनहृदि रमते विष्णुरेकोऽद्वितीयः
यो गौणोनिर्गुणश्चापि सततसेव्यः कर्मणा चितशुद्धयै:
श्रीशो नारायणो यो यमभयदमनः पालको विश्ववन्द्यः
गोपीभर्त्ता स कृष्णोऽवतुहि जगति नः पीतवासा स्मितास्यः

श्रीमन्नाथ महाभाग चकितस्तोमि त्वां मुदा ।
भक्तानां रंजनेनैव यतस्त्वं रमसे हृदि ॥१॥

गौरविष्णुप्रियाभक्तः गौरकान्तिर्महायशा ।
निर्दोषो धीरगम्भीरः कृती यतिः सुधीः प्रियः ॥२॥

भक्तहितव्रतामोदी धार्मिको विदुषां वरः ।
निःस्वार्थ भक्तपूज्यश्च पुत्रदारैः सुसेवितः ॥३॥

आर्त्तवन्धो कृपासिन्धो सदा ते दर्शनेप्सया ।
धृतिर्नक्षीयते साधो जराग्रस्तस्य दुर्मतेः ॥४॥

पण्डिताः खलु वङ्गे ये महद्भिश्चेत् सुघोषिताः ।
लभन्ते च निजाभीष्टं तत्र नास्ति विचित्रता ॥५॥

श्रीकृष्णविमुखे क्रूरे दीने मूढ़े निराश्रये ।
दृष्टिश्चेदापतेद्धीमन् तत्रास्ति ते स्वतन्त्रता ॥६॥

आश्रयो नास्ति मे नाथ अतस्त्वां शरणं गतः ।
विनाश्रयं न जीवन्ति पण्डिता वनिता यतः ॥७॥

दीर्घायुष्यमवाप्नोहि रोगमुक्तं कलेवरम् ।
व्रजलीलारसं भुंक्ष्व प्रार्थये श्रीहरिं सदा ॥८॥

श्रीरामतारण मुखोपाध्याय
वि,एल वेदान्ततीर्थस्य
राजशाही ।



प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी

* श्रीश्रीगुरुवे नमः *

श्रीश्रीहरिदास प्रभोरष्टकः ।

(बङ्गला भाषामें)

श्री श्रीगुरु पूर्णिमाके उपलक्ष्यमें परमाराध्यपादाचार्य ॐ श्री

श्रीमद्गुरु विष्णुपादपद्म श्री श्रील श्रीश्रीयुक्त

१००८ श्रीमत् प्रभुपाद

हरिदास गोस्वामी प्रभुका

श्रीश्रीचरणारविन्द

वन्दना गीताष्टक

ॐ नमो हरिदासाय।

ॐ एइ प्रणवेते जाँहार प्रकाश।
वृन्दावन माझे जाँर स्वरूप विकाश ।।
सेइ वनमाली, करुणाय गलि, गुरु रूपे अवतार।
अति अनुपम, अनर्पित प्रेम, करिवारे परचार ।।
हे दयाल गुरु मोर प्रभु हरिदास।
चरणारविन्द वन्दे एइ दासभास ।।

[२]

नरे नरोत्तम तुमि ओहे विश्वावास।
माभैः रवेते जीवे दितेछ आश्वास ।।
राङ्गा शतदल, चरण युगल, आहा किवा शोभा पाय।
भक्त हृदयेर, जत अन्धकार, नाशे निशाकरप्राय ।।
ओ मोर अभीष्ट देव प्रभु हरिदास।
श्रीपाद पदुम वन्दि दन्ते करि घास ।।

[३]

मोहिया मोहेर महा प्रबल प्रकाश।
मदमत्त मोर मनकरी करि वश॥
प्रभु प्रिशाजीर पदारविन्देर, दिया प्रेमरजगन्ध।
सर्बदोषनाशि, कृपांकुशे कशि, चरण निगड़े बाँध॥
गुरु विष्णु पाद मोर प्रभू हरिदास।
वन्दिव पदारविन्द एइ मोर आश॥

[४]

हरिया शिष्येर जत मानसिक क्लेश।
अपरूप रूपे दिह आनन्द अशेष॥
हेम मान हर, श्रीअङ्ग सुन्दर, बालारुण जिनि वास।
ए रूपे आमारि, मन प्राण हरि, करि लह निज दास॥
ओ मोर करुणासिन्धु प्रभु हरिदास।
वृन्दारक वन्द्य पदे प्रणमे ए दास॥

[५]

रिपुकुल हेन महा वरुण आवास।
कुम्भज ऋषिर न्याय करह विनाश॥
अमल कमल, नयन युगल, मकरन्द अश्रुधारा।
भकत जनेर, भव ताप हर, विष्णुपादोद्भव पारा॥
जीवनेर ध्रुवतारा प्रभु हरिदास।
ओ पद सरोज वन्दि एइ अभिलाष॥

[६]

दासेरे करिया दया ओहे हृदयेश।
सुदुर्लभ नाम मन्त्र कैले उपदेश॥
मधुर मधुर, वदन सुन्दर, ताहे सुमधुर भाष।
जाहे अनिवार, गौर गोपालेर, कथामृत सुप्रकाश॥
प्राणकोटि प्रिय मोर प्रभु हरिदास।
वराभयप्रद पदे प्रणत ए दास॥

[७]

सारात्सार गौरकृष्ण प्रीति सुधारस।
पियाइते जगत् जीवे हये दयावश।।
श्रीगौराङ्ग महा-भारतादि आर, प्रियाजी चरित सार।
पद हेन मत, कत शत शत, करिले गो परचार।।
कोटी मातृ स्नेह स्निग्ध प्रभु हरिदास।
वन्दिवे चरण गुरु हृदे हओ प्रकाश।।

[८]

यबे जार हृदासने हओ गो प्रकाश।
कैतव असुर तार तैखने हय नाश।।
द्विज बलराम, वंश अनुपाम, ताहार मुकुटमणि।
अभिन्न श्रीगौर, गोविन्द सुन्दर, भावमय तनुखानि।।
जय सद्गुरु श्रील प्रभु हरिदास।
चरणे शरण माँगे विष्णुप्रिया दास।।

श्रीश्रीगुरु गौरांग चरण कृपाप्रार्थी,
दीन— कृष्णचन्द्र दास
कुञ्जमोहन दास
व्रजरमण दास
व्रजमोहन दास

श्रीश्रीगुरुपूर्णिमा ३य श्रावण
श्रीगोपाल मठ,
पो० लक्ष्मीपुर जिला कछार
सन् १३४७ बङ्गाब्द

वन्दना

श्रीलविष्णुप्रिया यस्य व्यतिभातेऽन्तरेऽन्तरे ।
तस्य श्रीहरिदासस्य प्रसादमभिकामये ॥
श्रीकृष्णेकृष्णचैतन्ये जगच्चैतन्यकारिणि ।
तद्भक्ते तदभक्तेच दण्डवत् प्रणतिर्मम ॥

नित्यानन्दाद्वैत चैतन्यरूपे
चेतोनेत्रं न्यस्तमास्ते हि येषाम् ।
तेषां विष्वक् प्रेमपूर्णान्तराणां
वन्देनित्यं श्रीलपादारविन्दम् ॥

श्रीवैष्णवदासानुदास
कविराज शरच्चन्द्र गुप्त
हेतमपुर-राजवाटी ।

* श्रीश्रीविष्णुप्रिया वल्लभाय नमः *

वंश-परिचय

मेरे परमाराध्य पितृपुरुषोंका आदि निवास-स्थान श्रीहट्ट जिलेके पञ्च खण्ड ग्राममें ढाका दक्षिण के समीप था। हमारे पूर्वपुरुष महाप्रभुके श्रीहट्टवासी पितृपुरुषोंके जाति-कुटुम्बी थे। हम पाश्चात्य वैदिक श्रेणी के ब्राह्मण हैं। श्री चैतन्य-भागवतमें जिस तैर्थिक विप्रकी कथा आती है, वे सत्यभानु उपाध्याय ही हमारे वंशके आदि पुरुष थे। इस तैर्थिक विप्रके प्रति नवद्वीपमें बाल गौराङ्ग प्रभुने जो कृपाकी थी, उस कथाको सभी गौर-भक्त जानते हैं, उसकी पुनरुक्ति यहाँ आवश्यक नहीं है। बालगौराङ्ग जब तीन वर्षके शिशु थे उस समय बाल्य-लीलामें कौतुकवश उन्होंने सर्व प्रथम हमारे पूर्व पुरुष भाग्यवान तैर्थिक विप्र श्रीसत्यभानु उपाध्याय पर अनिर्वचनीय कृपाकी थी, उसीका यह प्रभाव है कि आज तक हमारे हृदयमें गौराङ्ग-प्रेमकी अभिनव तरङ्गें उठा करती हैं। वे हमारी ग्यारहवीं पीढ़ीके पहले पुरुष थे। उसी कृपा-वैभवके बलसे हम लोग गौर-धनसे धनी होकर परमानन्द पूर्वक गौर-गुण गान करते हुए जीवनको सार्थक करते हैं। श्रीसत्यभानु उपाध्याय श्रीगौराङ्ग प्रभुके आदि भक्त थे। हमारे गौराङ्ग सुन्दर उसी पूर्व सम्बन्धको मानते हैं और आज भी निभाते हैं। उन तैर्थिक विप्रके प्रति जो उनकी अपार करुणा और अयाचित कृपावृष्टि हुई, उसी सम्बन्धसे उन्हीं विप्रवंशीय इस जीवाधम पाखण्डी कुलाङ्गार लेखकके प्रति भी हमारे भक्त-वत्सल श्रीगौरचंद्रकी इतनी कृपावृष्टि हुई है—इतनी करुणा प्रवाहित हुई है। ये ही निताई चाँद हमारे कुलके देवता हैं! ये ही गोरा चाँद हमारे परम देव हैं। उनका गुण न गावें तो लोग हमको नमकहराम कहेंगे। छिः छिः। क्या ऐसा कर्म भी किया जाता है? जो कृतज्ञता स्वीकार नहीं करता है उसके सिर सहस्रों वज्राघात पड़ें!

अकृतज्ञ दुराचार नराधम शिरे।
पड़ूक सहस्र वज्र गम्भीर गर्जने।।
शतखण्ड करे देक् से पाप शरीरे।
मरुक् से महापापी हा गौराङ्ग बले।।

यह मेरे हृदयकी बात है। हमारे पवित्र वंशमें भगवान न करें कि ऐसे कुलाङ्गारका जन्म हो।

"गाओरे गौराङ्ग गुण गाओ।
गेये देख केमन जुड़ाओ ॥"

महाजन कवि क्या व्यर्थ ही यह बात लिख गये हैं ? एक बार गौर-गुण गान करके देखो तो ! एक बार गौर कथा कहकर, गौर नाम लेकर तो देखो ! गौर भक्तोंका सङ्ग एक बार करके तो देखो तुम्हारा मन कैसा हो जाता है—हृदय कैसा हो जाता है ?

महाजन कवि क्या लिख नहीं गये हैं कि—

"जेवा नाहिं बूझे केह, सुनिते सुनिते सेह,
कि अद्भुत चैतन्य-चरित।
कृष्णे उपजिवे प्रीति, जानिवे रसेर रीति,
सुनिलेइ बड़ हय हित ॥" (चै.च.)

गौरदासके सङ्गके बिना, श्रीगौराङ्ग प्रभुके दासानुदासके सङ्गके बिना श्रीगौराङ्ग-लीला-रङ्ग तथा उनका तत्त्व कोई समझ नहीं सकता। इसीलिए पूज्यपाद कविराज गोस्वामीने लिखा है—

कहिबार कथा नय, कहिले केह ना बूझय,
ऐछे चित्र चैतन्येर रङ्ग।
सेइ से बूझिते पारे, चैतन्येर कृपाजारे,
हय यदि ताँर दासानुदास संग ॥

[श्री चैतन्यकी लीला ऐसी विचित्र है कि वह कही नहीं जा सकती, और कहनेपर भी कोई उसको समझ नहीं पाता। केवल जिसके ऊपर श्रीचैतन्यकी कृपा होती है, अथवा किसीको यदि उनके दासानुदासका संग प्राप्त होता है वही उसे समझ पाता है।]

मेरी इस आत्म-कहानीसे गौर-लीला कथामृत-समुद्रका मन्थन होगा। प्रसङ्ग प्राप्त होनेपर मैं गौर-गुण-गान किये बिना न रह सकूंगा। गौर मेरे जीवन-मरणके साथी हैं। गौर-कथा मेरे प्राणोंकी आत्म-कहानी है मेरी आत्मा की, मेरे मनकी आत्म-कहानी है। मेरी आत्म-कहानीका अर्थ ही है मेरे परमात्माकी आत्म-कहानी। मेरा कर्म,

मेरा धर्म, मेरा जीवन, मेरा साधन, मेरा संसार, मेरी नौकरी, मेरी चातुरी, मेरा छल, मेरा बल, मेरा पाप, मेरा पुण्य, मेरी प्रीति, मेरा विद्वेष, मेरा क्रोध, मेरी करुणा, मेरा प्रिय, मेरा अप्रिय, मेरा भ्रम, मेरा सत्य, मेरा जीवन, मेरा मरण—सभी गौर-सम्बन्धसे जड़ित हैं, गौर-भाव-सम्बन्धसे ग्रथित हैं, गौर-भक्ति-सम्बन्ध युक्त हैं। मेरा—

शीतेर ओड़ना गौर
गीरिषेर वा।
वरिषार छत्र गौर
दरियार ना॥

[श्रीगौराङ्ग जाड़ेके ओढ़ना हैं, ग्रीष्मकी वायु हैं, वर्षाके छत्र हैं, दरिया की नाव हैं। सारांश यह है कि श्रीगौराङ्गके शरणमें हमें शरदी, गर्मी, वर्षा और दरिया किसी का भय नहीं है।]

अपने गौराङ्ग नागरको हम निःसङ्कोच कह सकते हैं—

बंधू! तोमार गरबे, गरबिनी आमि,
रूपसी तोमार रूपे।
हेन मने करि, ओ दूहि चरण,
सदा लइया राखि बुके॥
अन्येर आछे, अनेक जना,
आमार केवलइ तुमि।
पराण हइते, शत-शत गुणे,
प्रियतम करि मानि॥
नयनेर अञ्जन, अङ्गेर भूषण॥
तुमि से कालिया चान्दा।
ज्ञानदास कय, तोमार पीरिति
अन्तरे अन्तरे बान्धा॥

[हे बन्धु! मैं तुम्हारे गर्वसे गर्विणी हूँ, और तुम्हारे ही रूपसे रूपवती। ऐसा मन करता है कि तुम्हारे दोनों चरणोंको सदा हृदयसे लगाये रक्खूँ। औरोंके तो बहुतसे अपने हैं पर मेरे तो केवल तुम्हीं हो। मैं तुमको अपने प्राणोंसे शत-शत गुणा अधिक प्रियतम मानती हूँ। तुम्हीं मेरे नयनोंके अञ्जन और अङ्गोंके आभूषण हो। ज्ञानदास कहते हैं कि तुम्हारी प्रीति मेरे हृदयके अन्तरालमें बँधी हुई है।]

आत्म-कथा कहते-कहते प्रसङ्ग वश गौर-कथाकी रस-तरङ्गें हृदयमें उछलने

लगीं, इनके घात-प्रतिघातसे स्वभावतः सर्वत्र प्रेम-प्रस्रवण ही होगा। इस प्रस्रवणसे प्रेम-निर्झरिणी उत्पन्न होगी और इस प्रेम-निर्झरिणीकी निर्मल वेगवती धारामें विश्व- ब्रह्माण्ड प्लावित हो जायगा। विश्व-निवासी जीवोंके सन्तप्त हृदय गौर-कथा-निर्झरिणीके शीतल जलको पान कर शीतल एवं धन्य-धन्य हो जाँयगे।

हम गौरभक्त वैष्णव हैं। निम्ब-बैंगन, कटु-बैंगन और तिक्त व्यञ्जनके रसा-स्वादनके हम चिरकालसे अभ्यस्त हैं। हम नित्यही यह प्रसाद पाते हैं। प्रिय पाठक-पाठिकावृन्द ! मेरी आत्मकथामें भी इस प्रकारके तिक्त रसका आस्वादन प्राप्त होगा, कृपया इससे आप लोग आतङ्कित न हों। इसको भूलें न कि तिक्तरससे पित्तनाश होता है, वायुकी निवृत्ति होती है, शरीर स्वस्थ्य होता है; और शायद तभी वह भोजनोपयोगी भी होता है।

हमारे पूर्वपुरुष तैंथिकविप्र श्रीसत्यभानु उपाध्यायकी कथा मैं कह रहा था। बाल गौराङ्ग प्रभुके आदेशसे उन्होंने अपने तीर्थ भ्रमणकी इच्छा त्यागकर, संसारी बनकर श्रीधाम नवद्वीपमें वास किया। उनके तीन पुत्र हुए—ज्येष्ठ पुत्र बलराम, मँझले जनार्दन और कनिष्ट पुत्र मुरारी थे। ज्येष्ठ पुत्र बलराम ही सुप्रसिद्ध पदकर्ता द्विज बलरामदास ठाकुर थे। वे चौंसठ महन्तोंमें एक महन्त थे, ब्रजकी सुमन्दिरा सखी थे। गौड़ीय वैष्णव-जगतके वे सुप्रसिद्ध पदकर्ता महात्मा थे। वे श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुके मन्त्र शिष्य थे। कृष्णनगरके निकट श्रीपाट दोगाछिया ग्राममें, उन्होंने श्रीक्षेत्रसे लाकर एक अपूर्व बाल-गोपालकी श्रीमूर्तिकी प्रतिष्ठाकी थी। बलरामदास ठाकुर मार्गशीर्ष मासकी कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको गोलोकवासी हुए थे। इस पुण्य तिथिमें प्रति वर्ष श्रीपाट दोगाछिया ग्राममें महोत्सव होता है। यह सारी प्राचीन कहानी मत्प्रणीत "द्विज बलरामदासेर जीवनी ओ पदावली" (बंगला भाषाके) ग्रन्थमें विस्तारपूर्वक लिखी गयी है। जिसकी इच्छा हो उस ग्रन्थका अवलोकन करे।

दोगाछिया ग्राम अति प्राचीन ग्राम है। इस ग्रामके जमीदार श्रीतिनकौड़ी हालदार बड़े ही अतिथि-सेवा-परायण व्यक्ति थे। विभिन्न देशों के साधु-संन्यासी आकर उनके निजी वास-स्थानकी सुवृहत् अट्टालिकापर प्रतिष्ठित अतिथिशालामें निवास करते थे। उनके पोष्य-पुत्र श्रीनाथ हालदारके समयसे उनकी जमीदारीकी हालत बिगड़ती गयी। श्रीनाथ हालदारके ७ पुत्र दासत्व शृङ्खलामें आबद्ध हो गये। वह सुवृहत् अट्टालिका अब मिट्टीमें मिल गयी।

इस ग्राममें बहुतसे लोग रहते थे। बहुतेरे गुणी लोग भी थे। हमारे परम पूजनीय पितृदेव श्रीपाद सीतानाथ गोस्वामी प्रभु श्रीमद्भागवतके अद्वितीय विद्वान् थे। श्रीरुक्मिणी कान्त गोस्वामी प्रभु सङ्गीत विद्याविशारद तथा अद्वितीय कथावाचक थे। श्रीकेदारनाथ गोस्वामी अत्युत्तम मृदङ्ग बजाते थे। श्रीयदुनाथ

गोस्वामी सङ्गीत और सितारवादनमें सिद्धहस्त थे। श्रीनीलमाधव भट्टाचार्य बृहस्पतिके तुल्य सर्वशास्त्र-निष्णात थे। श्रीविश्वेश्वर भट्टाचार्य श्रेष्ठ वैद्य थे। श्रीक्षेत्रनाथ भट्टाचार्य सुप्रसिद्ध ज्योतिषी थे। श्रीरामचन्द्र तरफदार और उनके चार पुत्र कलकत्ताके चावलके प्रधान आढ़तिया थे। उनके विशाल पक्के मकान और पोखरेका ध्वंसावशेष आज भी दृष्टिगोचर होता है। भागलपुरके राजा श्रीशिवचन्द्र वन्द्योपाध्यायका मकान दोगाछियामें था। उनके मकानपर श्रीदुर्गाजीका उत्सव होता था। उनके पक्के मकानका ध्वंसावशेष आज भी वर्तमान है। ग्राममें रहने वाले चमार लोग अंग्रेजी बैंड बाजा बजानेमें बड़े पटु थे। उन चमारोंके वंशमें हरिचन्द्र चमारका नाम कलकत्ता तक प्रसिद्ध था। गाँवमें नाटक मण्डली थी, माइनर स्कूल था, डाकखाना आज भी है। ऐसा सोनेका दोगाछिया ग्राम देश-व्यापी मलेरिया राक्षसीके प्रकोपसे आज श्मशान भूमिमें परिणत हो गया है।

मेरे मामाका घर मेरे ही गाँवमें था। मेरे मातामह श्रीरामगोपाल भट्टाचार्य ब्राह्मण-पण्डित थे। वे अति सुन्दर, गौर वर्णके, एक सज्जन पुरुष थे। मेरी मातामही हिरण्मयी देवी श्यामवर्णा थीं। मेरे मामा और मेरी माँ दोनोंको ही पिताका रङ्ग-रूप प्राप्त था। मेरे मामा श्रीधर भट्टाचार्य कथावाचक थे। उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। उस समय मेरी अवस्था ७-८ वर्षकी थी। मेरे मामाके पुत्र श्रीमान पञ्चानन भट्टाचार्य इस समय कृष्णनगर कालेजिएट स्कूलके एक लब्धप्रतिष्ठ शिक्षक हैं।

मेरी पूज्यनीय माताका नाम था अम्बिका देवी। वे रूपमें, गुणमें साक्षात लक्ष्मी-स्वरूपिणी थी। वे सुलक्षणा और प्रभाव-सम्पन्न नारी थीं। गाँवके सब लोग उनका सम्मान करते थे और भय खाते थे। मेरे पितृदेवकी बड़ी इच्छा थी कि अपने दो पुत्रोंमें कमसे कम एकको भी संस्कृत पढ़ावें, और भक्ति-शास्त्रकी स्वयं शिक्षा दें। परन्तु मेरी पूज्यनीया माताजी इसका विरोध करती थीं, क्योंकि मेरे पितृदेव संस्कृत और भक्ति-शास्त्रमें पण्डित होकर भी बड़े दरिद्र थे। इस विषयको लेकर मेरे माता-पिताके बीच प्रायः विवाद हो जाया करता था। यह बात आज भी मुझे खूब याद है। अन्तमें माताजीका विचार ही प्रबल सिद्ध हुआ। हम दोनों भाई अँग्रेजी पाठशाला में प्रविष्ट हो गये।

मेरे ज्येष्ठ भ्राताका नाम था श्रीपाद अच्युतानन्द गोस्वामी प्रभु। गौर-आना-गोसाईं शान्तिपुर-नाथ श्रीअद्वैताचार्यके तथा उनके ज्येष्ठ पुत्रके नामके साथ मेरे पूज्यपाद पितृदेव और ज्येष्ठ भ्राताके नामका एक आश्चर्यजनक मेल था। यह बड़े ही रहस्यकी बात थी। मेरे पूज्यपाद पितामहका नाम था गौरहरि; यह भी बड़ी मजेदार बात है। इन सब बातोंका स्मरण होनेपर हमारे शुष्क हृदयमें

समय-समयपर गौर-प्रेमकी मन्दाकिनी उफन उठती है। ऊसर हृदय सरस हो जाता है। मनमें न जाने कितनी भावतरंगें उठती हैं। हमारे वंशके साथ एक विशेष प्रकारका गौर-सम्बन्ध था तथा है, इस विषयमें मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है।

मेरी एक बाल-विधवा बुग्रा थीं जिनका नाम था सरस्वती देवी। वे विधवा होनेके बाद भाईके परिवारमें ही रहती थीं। वे लिखना-पढ़ना नहीं जानती थीं, पर विदुषी स्त्री थीं। वे श्रुतिधरी थीं। मुग्धबोध व्याकरण तथा ग्रमर-कोषका ग्रधिकांश उनको कण्ठस्थ था। हमारे दोगाछियाके घरपर ही पाठशाला थी। श्रीपाद घनश्याम गोस्वामी प्रभु हमारे चचेरे पितामह दादा थे। वे उस समय न्याय शास्त्रके सर्वश्रेष्ठ ग्रध्यापक पण्डित माने जाते थे। उनकी पक्की पाठशालामें बहुतसे छात्र थे। कलकत्तेके हाथी बागानके प्रसिद्ध काली कविराज तथा रानाघाटके निकट रघुनाथपुरके सुप्रसिद्ध ईश्वर कविराज श्रीसार्वभौम गोस्वामी प्रभुकी पाठशालाके छात्र थे।

मेरी बुग्रा जैसी विदुषी थीं, वैसी ही भक्तिमती थीं। पाठशालाके छात्रोंका पाठ सुनते सुनते उनको मुग्धबोध व्याकरण तथा ग्रमर-कोष कंठस्थ हो गया था। ठाकुरकी पूजा, सन्ध्या-वन्दन, स्तवन-स्तुति सब हम लोगोंने बाल्यकालसे बुग्राके पास ही सीखा था। वे एक विशिष्ट कलाविद थीं। चर्खा कातनेके कामसे लेकर राजमजदूर तकका काम वे ग्रत्यन्त सुन्दरतापूर्वक करती थीं। उनके हाथका एक ग्रत्यन्त सुन्दर कसीदा काढ़ा हुग्रा पुराना कन्था ग्रबतक मैंने यत्नपूर्वक बचा रक्खा है। यदि श्रीमन्महाप्रभु कृपा करके कभी कन्था-कोपीनधारी ग्रकिञ्चन वैष्णव होनेका सौभाग्य मुझको प्रदान करेंगे, तो वही कन्था मेरा सहारा बन जायगा। मेरी बुग्रा भोजन बनानेमें भी प्रवीण थीं। उनके हाथका तिक्त व्यञ्जन, केलेके फूलका घण्ट ग्रौर मूलीके ग्रम्बलका स्वाद ग्रब भी मैं नहीं भूलता।

मेरे पितृदेवके एक भानजे थे, उनका नाम था नीलमाधव भट्टाचार्य वृहस्पति। वे सर्व शास्त्रोंमें परम पण्डित थे, इसी कारण उनकी उपाधि थी वृहस्पति। वे मामाके घर प्रतिपालित होकर उन्हींके यहाँ दोगाछियामें रहते थे। उनको ही हम बड़ा भाई या ग्रभिभावक समझते थे। वे भी हमें ग्रपने सहोदर भाईसे बढ़कर स्नेह करते थे। वे मेरे पूज्य पिताजीसे केवल दो-एक वर्ष छोटे थे, परन्तु वे ग्रपने मामाको गुरुजनके समान ही भक्ति ग्रौर सम्मान प्रदान करते थे। ७० वर्षकी ग्रवस्थामें वे श्रीधाम नवद्वीप में २१ फरवरी १८९७ ई० को परलोक बासी हुए। उनके पीछे उनके दो पुत्र ग्रौर एक विधवा कन्या थी।

पितृदेव

•

हमारे पूज्यपाद पितृदेवका जन्म किस वर्ष हुआ था, यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता, पर उनका गोलोकवास मार्ग-शीर्ष कृष्णा एकादशी तदनुसार अँग्रेजी ता० १७ नवम्बर १८८६ ई० को हुआ था। उस समय हमारे पितृदेवकी आयु अनुमानतः ६५ वर्षकी थी। मेरी अवस्था उस समय २०-२१ वर्षकी थी। डाकघरमें उस समय मैं (शिक्षा नवीस) सरकारी तारका काम सीखता था और केवल १०) महीना पाता था।

पितृदेव राणाघाटमें रहते थे, वे सुप्रसिद्ध भागवत-कथा-वाचक थे और राणाघाटके प्रसिद्ध जमींदार पाल चौधुरी लोगोंके घरके सभा-पण्डित थे। मेरी पूजनीया मातृदेवी दोगाछियाके मकानपर रहती थीं। उनके ऊपर ही मेरे दोनों भाइयोंकी शिक्षाका भार था।

मेरी दयामयी पितामही देवी जब विधवा हुई उस समय मेरे पूज्यपाद पितृदेव नाबालिग थे। मेरे पिताजी स्वनामधन्य महापुरुष थे। वे बहुत दिनों तक राणा-घाटमें रहकर पर्याप्त मान-सम्मानके साथ जीवन-यात्रा चलाते रहे। हमारे घरमें घड़े कलशी, थाली, गिलास, दरी-गलीचा, चौकी, आसन, छाता, कपड़ा आदि किसी वस्तुकी कमी न थी, क्योंकि मेरे पितृदेव ब्राह्मण पण्डित थे। उनकी उपाधि थी तर्क पञ्चानन, परन्तु वे तर्क कभी नहीं करते थे। कर्म-काण्डके काममें सर्वत्र ही वे निमन्त्रित होते थे। ब्राह्मण पण्डितको विदाई तथा भागवत-पाठमें प्राप्त उपरोक्त सभी वस्तुओंसे हमारा घर सदा पूर्ण रहता था। राणाघाटसे बैलगाड़ी या बँहगीपर कार्तिक, माघ और बैशाखमें दो तीन वार मेरे पितृदेव नाना प्रकारकी वस्तुएँ तथा मिठाई आदि दोगाछियामें भेजते थे। राणाघाटसे दोगाछिया ८ कोस है। गाँवके सब लोगोंको काफी मात्रामें मिष्टान्न बाँटनेपर भी घरमें काफी बच रहता था। हम लोग मिठाईके लिए कभी कङ्गाल न थे, रुपयेके लिए अवश्य अभाव अनुभव करते थे। अब ३-४ सौ रुपये महीना पाकर भी हम उस मिठाईका शतांश भी आँखोंसे नहीं देख पाते।

राणाघाटमें मेरे पूज्य पिताजी अकेले रहते थे। वे स्वयंपाकी और शाकाहारी थे, बहुत सात्त्विकता पूर्वक जीवन बिताते थे, शरीरमें तेल नहीं लगाते और न कुर्ता पहनते थे। अपने कपड़े धोबीसे धुलानेका उनका अभ्यास न था, तथापि उनके कपड़े सदा साफ सुथरे रहते थे। उनके पहने कपड़ोंमें एक सुन्दर उज्वलरंग होता था। उससे उनके शरीरकी सुगन्ध निकलती थी। वह तड़के नदीमें स्नान करते थे, घरके सब काम-काज स्वयं ही करते थे तथा अपने हाथों गौकी सेवा करते थे। पक्षियोंको पढ़ानेका उन्हें बड़ा शौक था। मैना, तोता, सारिका आदि ३-४ पक्षी उन्होंने पाल रखे थे। स्वयं ही उनको आहारादि देते थे। उनके देहान्तके बाद उनके पाले और पढ़ाये एक मैना पक्षीको बराबर मैंने अपने साथ रक्खा। अनेक स्थानोंमें भ्रमण करके २० वर्षकी अवस्थामें उस पक्षीने भूपालमें देह त्याग किया। उसके मृत देहको (होशंगाबाद) नर्मदा नदीमें विसर्जन करके मैंने उसकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्तकी थी। वह मैना "राधा कृष्ण राधा कृष्ण कृष्ण कृष्ण राम राम", की बड़ी ही मधुर बोली बोलती थी। मेरे पिताजीके कण्ठ स्वरका हू-ब-हू अनुकरण करती थी।

मेरे पूज्य पिताजी सालमें बीच-बीचमें एक-दो बार अपने घर दोगाछियामें आते थे। द्विज बलरामदास ठाकुरके मृत्यु-दिवसके उत्सवमें जब वे आते थे, तो राणाघाटसे उनके साथ उनके छात्र तथा और लोग आते थे। उन दिनों यह महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न होता, बहुतसे भक्तोंका समागम, बड़ी भीड़ इकट्ठी होती। २४-२५ मन चावल राँधा जाता। इस महोत्सवको मूली महोत्सव कहते थे, क्योंकि इसमें जो प्रसाद बितरण किया जाता था उसमें मूलीके अम्ल-रसकी प्रधानता रहती थी यह प्रसाद इतना सुस्वादु सुन्दर होता था कि बहुतसे लोग इसीके लोभसे महोत्सवमें आते थे। अगहनमें कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको यह महोत्सव होता था। शास्त्रमें चतुर्थी तिथिमें मूली खानेका निषेध है, "धनहानिश्च मूलके"। इसी कारण जान पड़ता है कि श्रीपाट दोगाछिया गाँवमें गोस्वामी प्रभुओंके वंशमें सब दरिद्री होते हैं। यह विशाल वंश अब ध्वंसकी ओर गिरता जा रहा है।

जन्म वृत्तान्त

सन् १८६७ ई० के अक्टूबर मासकी दूसरी तारीखको, शकाब्द १७८६, बङ्गाब्द १२७४ कार्तिक मासकी १३ वीं तारीख मङ्गलवार भ्रातृद्वितीयाके दूसरे दिन तृतीया तिथिमें, अनुराधा नक्षत्रमें, ४० दण्ड, ४ पल, ६२ विपल, ३० अनुपल कालमें नदिया जिलेके कृष्णनगरके अन्तर्गत दोगाछिया ग्राममें मेरा जन्म हुआ। गत कार्तिक मासमें मैंने साठवें वर्षमें पदार्पण किया है, अतएव मैं यथार्थ ही षष्ठीका दास हूँ।

मेरी जन्म-पत्रिका साढ़े सात हाथ लम्बी है। उसमें बहुतसी बातें लिखी हुई हैं। एक प्रसिद्ध ज्योतिषीने वर्ष-गणनाका फल जो लिखा था, उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ—

"आपके ५६ वें वर्षके प्रारम्भसे भाग्याधिपति शुभ भावमें आते हैं; अतएव बहुत दिनोंकी कोई उच्च अभिलाषा सफल होगी। यश, सम्मान और आपके योगायोगमें वृद्धि होगी। विशेषत, आप धर्म प्रचारक गुरूके रूपमें बहुत लोगोंके आराध्य बनेंगे। आपके धर्म स्थानका फल यह है कि अन्तिम जीवनमें आप अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त करेंगे।"

मेरा अन्न-प्राशनका नाम था नृहरिदास। पुकारनेका नाम था हरिदास, और राशिनाम था नीलमणि। मेरे नामके पूर्वका 'नृ' या 'नर' शब्द कब और कैसे उड़ गया, यह मैं नहीं जानता। इसका मर्म यही जान पड़ता है कि यह ठाकुर नरहरिका दास होने योग्य नहीं है। जन्म-पत्रिकाके अनुसार मेरी राशि वृश्चिक लग्न मिथुन गण देव तथा वर्ण विप्र है। १२७२ सालके आश्विन मासकी बड़ी वर्षाके दो वर्ष बाद जो कार्तिक मासमें एक और बड़ वर्षा हुई, उसी वर्षाके समय मेरा जन्म हुआ। मुझे सूतिका गृहसे हटाकर घरमें लानेपर मेरी प्राण-रक्षा हुई।

अपने जन्मके सम्बन्धमें अपनी माता, नानी, बुआ, बड़ी बहिन आदिके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, वही लिख रहा हूँ।

मैं अपनी माताकी नवम् गर्भ-जात यमज-सन्तानमें एक हूँ। मेरे साथ एक बहिन भी माताके गर्भसे उत्पन्न हुई थी। वह पहले भूमिष्ठ हुई, उसके बाद मेरा जन्म हुआ। वह बहिन मेरी पाँचवीं बहिन थी। वह स्वभावतः नव प्रसूता हृष्ट-पुष्ट शिशु बालिकाके समान भूमिष्ठ होकर केवल १६ दिन तक जीवित रही। मैं क्षीणकाय, आकारमें अपनी यमज बहिनका आधा था। जीवनकी आशासे रहित मृत-वत्सके समान माताके गर्भसे भूमिष्ठ हुआ था। उस समय जिन-जिनने मुझको देखा, सबने एक स्वरसे कहा कि इसके जीनेकी कोई आशा नहीं। मेरी वृद्धा नानीने जन्म-कालसे ही सूतिका गृहमें जाकर सब प्रकारसे मेरे लालन-पालनका भार उठा लिया था। जन्मके समय मेरी माता अचेतनावस्थामें थीं। जिस समय उनको होश हुआ और उन्होंने सुना कि उनको एक और पुत्र-रत्न पैदा हुआ है तो उनके आनन्दकी सीमा न रही। वे उठ बैठीं, मुझे गोदमें लेकर अनिमेष नेत्रोंसे मेरे मुखकी ओर देखकर आनन्दाश्रु बहाने लगीं। मेरे ज्येष्ठ सहोदरकी पाँच वर्षकी आयुमें अकाल मृत्युके बाद उनके गर्भसे एक एक करके तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं। वंशकी रक्षाके निमित्त परिवारमें स्वभावतः एक पुत्र सन्तानके लिए तीव्र ललक थी। इस पृष्ठ-भूमिमें पुत्र-रत्नको इस अवस्थामें देखकर हित-मितके साथ सभी लोग विशेष उत्कण्ठित और चिन्तित हुए।

सुना है कि मेरे भूमिष्ठ होनेके बाद कुछ समय तक मेरे कण्ठसे कोई ध्वनि किसीने नहीं सुनी। 'बालानां रोदनं बलम्'—परन्तु यह बल भी मुझमें नहीं था। माताके स्तनका दूध पीनेकी शक्ति और सामर्थ्य भी मुझमें नहीं थी। मुझको गो-दुग्ध रूईके द्वारा बूंद-बूंद कर-कर पान कराया जाता था। मुझे याद है एक बार बूआने मुझसे कहा था कि, "तुम्हारे हाथ पैर खूब लम्बे थे, नाक खूब चपटी थी, काले काले केश थे, चेहरा एक सुन्दर मिट्टीकी पुतलीके समान था, परन्तु शरीरमें नाम मात्रको भी माँस न था—केवल अस्थि-पंजर मात्र था—एक-एक करके हड्डी गिनी जा सकती थी।" सरसोंका तेल लेपन कर-कर पत्थरकी चौकी पर धूपमें मुझको सुलाकर मेरी नानी मेरी देखभाल करती रहती थी कि कहीं गीध या चील्ह मुझको अपनी चोंचमें पकड़कर उठा न ले जाँय, अथवा कौआ चोंच मारकर मेरी अंग-हानि न करे, इस भयसे सदा सब लोग सशङ्कित रहते थे। किसी प्रकारका भोजन मेरे पेटमें पचता न था। जो कुछ बूंद-बूंद गो-दूध मेरे पेटमें जाता, वह ठीक उसी आकारमें मेरे गुह्य द्वारसे बाहर निकल जाता था। मेरी माता देवी जब स्वस्थ हुई तब मैंने स्तनपान करना सीखा, लेकिन उसको भी पचानेकी शक्ति मुझमें न थी। ऐसी अवस्थामें सभीने मेरे जीनेकी आशा त्याग दी थी, परन्तु गौर भगवानकी कृपासे मेरे जीवनकी रक्षा हुई।

मैं जब तीन महीनेका हो गया, उस समय भी मुझको देखकर लोगों को सद्य-

प्रसूत होनेका भ्रम होता था। रोना तथा आँखें खोलना तक मैं तीन महीने पश्चात ही सीख पाया।

मेरे पूज्यपाद पितृदेवने कार्त्तिक मासके व्रत-नियममें रत होकर उन दिनों राणाघाटके जमीदार पालचौधरीके घरपर भागवत-पाठका व्रत लिया था। वे पाठ बन्द करके पुत्रका मुख देखनेके लिए घर आये। परन्तु पुत्र-रत्नकी अवस्था देखकर उन्होंने समझ लिया कि उसके जीवनकी आशा बहुत कम है।

मेरी वृद्धा नानीने जब मेरे लालन-पालनका सारा भार ग्रहण किया उस समय उन्होंने एक स्वप्न देखा—"यह पुत्र दीर्घजीवी होगा और इसके द्वारा जगत में अनेक शुभ कार्य सम्पन्न होंगे। वह तीन महीने तक पृथ्वीपर न रहने पाये।" इस कारण मेरी नानी, माता, बहिन तथा अन्यान्य आत्मीय स्त्रियाँ दिन-रात सदैव मुझको गोदमें लिए रहती थीं। स्वप्नादिष्ट वाणीको सफल बनानेकी चेष्टामें सबने मिलकर इस कठिन कार्यका सम्पादन किया।

मैं जब ६ महीनेका शिशु हो गया, तब कुछ देखने लायक जान पड़ता था। परन्तु जन्मकालसे शेषपर्यन्त मैंने अजीर्ण रोग भोगा है और सबको इसके कारण कष्ट दिया है। जब मैं एक वर्षका हुआ तो मेरे गाँवके प्रसिद्ध कविराज श्रीविश्वेश्वर भट्टाचार्य, जो मेरे मातृवंशके थे, मेरी चिकित्सा करने लगे। परन्तु कुछ विशेष लाभ न हुआ, अतएव तत्कालीन गोआड़ी-कृष्णनगरके सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉक्टर कालीचरण लाहिड़ी महाशय मेरी चिकित्साके लिए नियुक्त किये गये। काली बाबू बहुत दूरदर्शी चिकित्सक थे, वे बड़े दयावान थे। वे जानते थे कि मेरे पिता दरिद्र ब्राह्मण पण्डित हैं। घोड़ागाड़ी करके गोआड़ीसे देखनेके लिए आना और औषधि आदि लाना उनके लिए साध्य नहीं है—यह भी वे जानते थे। अतएव उनके ही परामर्शसे गोआड़ीमें बासा ठीक करके बीच-बीचमें मेरी मातृदेवी मुझको लेकर वहाँ रहा करती थीं। वर्षमें ४-५ महीने इस प्रकारका प्रबन्ध करना पड़ा था, तब कहीं मेरे जीवनकी रक्षा हो सकी।

मेरे मामाने डॉक्टर काली बाबूको एक दूध देने वाली गाय दी थी। मेरी चिकित्सामें सुविधाके लिए ही ऐसी व्यवस्था हुई थी। दोगाछियाकी अञ्जना नदीकी बड़ी-बड़ी रोहू मछली बीच-बीचमें डॉक्टर बाबूके घर गोआड़ीमें भेजी जाती थीं। जब जो अच्छी वस्तु गाँवमें तैयार होती, वह पहले डॉक्टर बाबूके घर जाती। यह सब मेरी सुनी हुई बातें हैं।

मैं जन्मसे ही सदा रोगी रहा करता था। अजीर्ण और पेटका दर्द तो मेरे लिये नित्य-सहचर थे ही। ज्वर भी होता था दो वार चढ़ने वाला, बातश्लेष्म और विषम ज्वर कोई भी रोग बाकी नहीं बचा। सात-आठ वर्षकी अवस्था तक इन सब रोगोंके कारण मैं प्रायः शैयाग्रस्त रहा था किसी दिन भी नीरोग नहीं रहा। वर्षमें दो तीन वार ऐसे अवसर आजाते थे कि ४०-४२ दिन उपवासके बाद मुझे पथ्यादि मिला करते

थे। मुझे याद है कि बहुत पुराना पतला चावल चवन्नी, अठन्नी और रुपयाके द्वारा कांटेसे तौलकर मुझको पथ्य दिया जाता था। मैं बैठे-बैठे, एक-दो करके गिन गिनकर भातके दानोंका पथ्य लेता। मैं खाता या न खाता, पर भातका दर्शन करके ही मेरे मनमें आनन्द होता था। मेरे कारण घरके सभी लोग परेशान रहते थे, विशेषत: मेरी मातृदेवीको सर्वापेक्षा अधिक संताप था। परन्तु वे बड़ी सावधान रहती थीं, कभी कुपथ्य नहीं देती थीं। मेरी बूढ़ी नानी स्नेहकी अधिकताके कारण कभी-कभी कुछ मिठाई या फल मुझको चुपकेसे दे दिया करतीं, इसके कारण मेरी माँके साथ उनकी कलह हो जाया करती थी। यह कलह मैंने अपने कानोंसे सुनी थी, और वे बातें आज भी मुझे याद हैं।

जब मेरी अवस्था ८-९ वर्षकी हुई, उस समय मुझे मूत्रकृच्छ रोग हो गया। मैं इस प्रकार अनेक गुणों (रोगों)से भरा पड़ा था। इस रोगमें मेरी अस्त्र-चिकित्साकी गई थी। गोआड़ी-कृष्णनगरके तात्कालिक सुप्रसिद्ध डाक्टर तारापद बाबूने सरकारी अस्पतालमें मेरी अस्त्र-चिकित्सा की। बिना क्लोरोफार्मके यह अस्त्र-चिकित्सा की गई, ऐसे थे ताराचन्द बाबू डाक्टर या डकैत।

तत्पश्चात् सर्वग्रासी देशव्यापी मलेरिया ज्वरने* हमारे गाँवको उजाड़ दिया।

---

*देशव्यापी सर्वग्रासी राक्षसी मलेरियाकी ताण्डवलीलाका दृश्य मुझे आज भी खूब याद है। हमारी 'स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि' श्रीपाट दोगाछिया ग्रामकी उसने जो दुर्दशाकी थी, उसको याद करके आज भी मेरी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं, जीवनमें उसे मैं भूल नहीं सकता। अंग्रेजी पढ़ कर जब मैं पहले मुङ्गेरमें नौकरी करता था, उस समय मेरी अवस्था केवल २०–२२ वर्ष थी। उस समय स्वर्गीय स्वनामधन्य गरिफानिवासी अमृतलालराय द्वारा सम्पादित अंग्रेजी 'Hope' और 'Hindu Magazine' नामक पत्रिकामें मैं अंग्रेजीमें लेख लिखा करता था। अपने ग्रामकी अवस्थाका वर्णन करते हुए इस मलेरियाके बारेमें मैंने चालीस वर्ष पूर्व जो कुछ लिखा था उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत करता हूँ।

"Dogachia, a pretty little village only one mile south from Krishnaghar, the principal station of the Dist. of Nadia, has of late been well-nigh depopulated by a fearful number of deaths caused by malarial fever every year, which has been systematically ravaging the village since last ten or twelve years. Whenever I had to go home, hollow cheeks, sunken eyes and wasted limbs always presented a very bad and pitiful spectacle to me and I could not but shed tears for them. I must emphatically attribute the cause of this most pitiful condition of the villages to the utter want of pure and good drinking water.

There is a canal by name Anjona in the village and the water of which has long become stagnant, there being no way for its egress and ingress and in consequence numerous weeds and other water-vegitables have grown up in it and make its water all the more noisome.

जब पहले पहल मलेरियाने हमारे गाँवमें पर्दापण किया, तब मैं दस वर्ष का था यह आजसे पचास वर्ष पूर्वकी बात है। उस समय गाँवमें बहुत लोग थे। घर-घर इस सर्व-ग्रासी राक्षसी मलेरियाके उत्पात और उपद्रवसे गाँवके लोग व्याकुल हो उठे। हमारे घरोंमें हावर्डके कुनैनकी शीशियाँ और डी० गुप्तके बोतल इतने अधिक थे कि उनकी गणना नहीं हो सकती थी। यह मुझे खूब याद है कि कुनैन तोलकर खानेकी सुविधा या सुयोग न होनेके कारण कभी-कभी हम शीशीसे हाथमें डालकर कुनैन खाते थे। साल-साल भर खुजली और दादसे हम परेशान रहते थे। इस प्रकार ग्रामीण जीवनके १२-१४ वर्ष व्यतीत हो गये। इसी कारण मैं बाल्य कालमें अपेक्षित शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। इसमें मेरा अपना दोष था ही नहीं, यह नहीं कह सकता।

Of late I had been to the village for a month. One cannot but shed tears when he happens to see broken health, worn out constitution, sunken eyes, hollow cheeks of young men and women and children every where owing to disastrous malarial fever, which is in full swing throughout the year. The poor villagers consider their life a burden and their occupation a troublesome drudgery. The village abounds in jungles and tigers have taken their abode in the heart of the village, and the villagers live in constant fear for their lives. Village population is dwindling away and it looks like a desert.

"Hope" 9th January, 1892.

शैशवकी कथा

•

मेरे जन्मके दो वर्ष बाद मेरा एक कनिष्ट भ्राता उत्पन्न हुआ। उसका नाम था गुरुदास। वह बड़ा दुष्ट था और बलिष्ट भी असाधारण था। मैं सदाका रोगी था, अतएव दुर्बल, शान्त और शिष्ट भी था। मेरा छोटा भाई मुझको पकड़ कर मारता, और मैं ढाड़ मारकर रोता था।

एक दिन दोनों भाई घरके प्राङ्गणमें खेल रहे थे। माताजीके द्वारा आंगनमें यत्नपूर्वक लगाये हुऐ एक कटहलके पौधेको मेरे छोटे भाई गुरुदासने पैरसे कुचल दिया और दुष्टतावश माताजीसे मेरा ही नाम लगा दिया। इस पर माताजी बहुत क्रुद्ध हुई और मुझको बुरा भला कहने लगीं। इसको लेकर घरके सब लोग मुझ पर बहुत बिगड़े। मैं बड़ा ही दुलारा लड़का था। किसी ने कभी भी मुझको कुछ कहा न था। इस प्रथम अकारण ताड़ना और डाँट-फटकारसे मेरे मनमें बड़ा ही दुःख और मान हुआ। मैं क्रोध और मानसे रो पड़ा तथा मनही मन सङ्कल्प किया कि इसका बदला लेना ही चाहिए। मैं इस प्रकार छिप जाँऊँगा कि सब लोग खोजते-खोजते हैरान हो जाँयगे। सब लोग रोवेंगे, मा भी रोवेगी और मैं तमाशा देखूँगा।

मेरा जो सङ्कल्प होता था सदा वैसाही कार्य करता था। उस दिन सन्ध्या काल मैं अपने मकानके शयन-गृहमें एक बड़े मिट्टीके कुण्डे के भीतर प्रवेश करके छिप रहा। किसीको कुछ पता न चला। धीरे धीरे चार घण्टे रात बीत गयी। मेरी खोज शामसे ही होने लगी। घरमें हाहाकार मच गया। मुहल्ले मुहल्लेमें लोग मुझे खोजनेके लिए निकल पड़े। घरमें कोई बड़ा आदमी नहीं था। मैं चोरके समान उस मिट्टीके कुण्डेके भीतर बैठकर चुपचाप मजा ले रहा था। उस समय वर्षाका मौसम था। नदी-नाले आदि जलसे भरे थे। गाँव-टोले सब जलाकीर्ण थे। मेरे नील माधव वृहस्पति दादा (बड़े भाई), मेरे मामा श्रीधर भट्टाचार्य तथा पड़ोसी लोग उस जलमें घुसकर मेरा पता लगाने लगे। माताजी, बुआजी, बहिन—सभी व्याकुल होकर रो रहीं थीं। जो लौटकर आता वह रोते-रोते कहता—"लड़का नहीं मिला"। परन्तु घरमें आकर कोई नहीं देखता था। सब लोग बाहर ही मुझे ढूढ़ते थे। तब मैं उस दुर्गन्धमय मिट्टीके कुण्डेसे बाहर निकल कर घरके भीतर तख्ते पर सोकर चुप-

चाप अकेला रोने लगा। माताजीके गम्भीर आर्त्तनाद, बुआजी और बहिनोंके करुण क्रन्दन एवं आत्मीय स्वजनोंके दुःखपूर्ण हाहाकारसे मेरा बाल हृदय व्याकुल हो उठा। मैं सबको देखता था और मुझको कोई नहीं देख पा रहा था क्योंकि घरके भीतर उस समय कोई आ नहीं रहा था। दुःखसे, क्षोभसे और पश्चाताप से मैं फुफकार मारकर रोने लगा। उस नीरव क्रन्दनकी ध्वनि को कौन सुनता? इस प्रकार बहुत समय बीत गया। घरमें लोगोंकी भीड़ लग गयी। घरका आँगन रोने-पीटने और हाय-हायसे भर गया। गाँव के वन-जंगल, गड्ढे आदि सब छान डाले गये। परन्तु किसीको कहीं मेरा पता न मिला। रात जब डेढ़ पहर बीत गयी तो मेरी बड़ी बहिन पार्वती देवी किसी कार्यवश घरमें प्रविष्ट हुई और मुझको उस अवस्थामें देखकर गोदमें लेकर एक बारगी आँगनमें लेआयी। उनके मुँहसे कोई बात नहीं निकल रही थी। मुझको गोदमें लेकर केवल रोने लगी। उसी समय मेरी मातृ-देवी उन्मादिनीके समान बिखरे वेशमें झटपट आई। उन्होंने दीदीकी गोदसे खींचकर मुझको अपनी गोदमें ले लिया तथा आङ्गनके बीचमें बैठकर फूट फूट कर-रोने लगीं। मेरा मुँह और कोई न देख सका। स्नेहवती माताके अञ्चलमें मुँह छिपाकर मैं भी रोने लगा। चारों ओर तब शोर होने लगा कि "लड़का मिल गया है।" तब गाँवके सब लोग आ एकत्रित हो गये। मेरा छोटा भाई गुरुदास उस समय पाँच वर्षका धृष्ट बालक था। वह महान अपराधीके समान माता देवीके पीछे खड़ा था। माताजी बड़े लाड़-प्यारसे मेरे शरीर पर हाथ फेर रहीं थीं। पुत्रके मुख-चुम्बनके लिए कितनी ही चेष्टा की, परन्तु कर नहीं पाईं। इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिए बहुतसे लोग एकत्र हो गये। जितनेही अधिक लोग एकत्र होते जाते, उतनीही मेरी लाज बढ़ती जाती। अन्तमें मेरी दयामयी माता अपने दुलारे पुत्र-रत्नकी ऐसी दुर्वस्था और विपद् देखकर उपस्थित लोगोंको हटाकर आँगनके एक एकान्त स्थानमें मुझको ले जा कर अकेली बैठ गईं। मैं दीर्घ साँस लेकर रह गया। मुख उठाकर माताके मुँहकी ओर देखा। तब स्नेहमयी माँके जानमें जान आयी।

इसके बाद आँगनमें प्रसादके लूटकी धूम मच गयी। आत्मीय-स्वजन लोगोंमें से बहुतोंने बहुत मनौती कर रक्खी थी। सबने प्रसाद लुटाया। मुझे याद है उस रात हमारे आँगन में सन्देश-बताशों की लूट मची थी और लोग ठेला-ठेली करते थे। मेरी मातृदेवीने गृह देवता श्रीबाल गोपाल देवको आधा मन दूध का पायसान्न भोग देने की मनौती की थी। दूसरे दिन ठाकुरजीको भोगलगाकर विशेष रूपसे ब्राह्मण भोजन कराया गया।

मुझे याद है, उस रात्रिको मेरे हाथ और मुँह में सन्देश समाता नहीं था। खूब भूख लगी थी। भर पेट सन्देश खानेके बाद मेरे मुख-मण्डल पर हसीकी रेखा दिखलाई दी। उस समय सबको प्रेमपूर्वक मेरा मुख चुम्बन करके दुलार प्रदर्शित

करने का सुयोग मिला था। मेरे नील माधव दादा और मामाने मुझको गोदमें लेकर आनन्दसे नृत्य किया था और मैंने लज्जासे मुख नीचा कर लिया था।

यह समाचार पितृदेवके पास रानाघाट पहुँचा। वह अपने वंशधर पुत्र-रत्न सुरक्षित देखनेके लिए सब काम छोड़कर एक बार घर आये थे। मुझको अकारण भर्त्सना और ताड़ना करनेके लिए घरके सब लोगोंको उन्होंने फटकारा था। विशेष करके मातृदेवीके प्रति वह इससे कुछ रुष्ट हुए थे।

मेरी यह अपूर्व बाल्यकालकी लीला मेरी बड़ी बहिन दुर्गादेवी अबभी सबके सामने विस्तृत कहानीके रूपमें सुनाकर बड़ा आनन्द पाती हैं। वह अभी जीवित हैं, मुझसे सोलह वर्ष बड़ी हैं। वह हमारे ही साथ रहती हैं, तथा अपने परम प्रिय भाई हरिको प्राणके समान मानती हैं।

मुझे याद है कि मेरे शरीर पर अनेक आभूषण थे। हाथमें बलय, पैरमें पाजेब, गलेमें सोनेसे बँधा वाघ नख, और सिर पर घने काले केश-पाश के बँधे जूटसे चौड़े ललाट पर स्वर्णालङ्कार झूल रहा था। क्षीण कटि प्रदेश में कमर पट्टी थी। मेरा रङ्ग कच्ची हल्दीके समान था। मुँह गोल, सुडौल और सुन्दर था। वंशी के समान नाक थी। सब लोग कहते थे कि ऐसा सुन्दर,बालक किसीको नहीं हुआ। मेरे पितृदेवका एक ग्वाला शिष्य था। उसका नामथा केनाराम। वह हमारे घर काम करता था। मुझको गोदमें और पीठपर लेकर उसने बड़ा बनाया, जैसे निमाई चाँदको श्रीईशानने बनाया था। केनाराम का रंग अत्यन्त काला था। वह मुझको जब गोदमें लेता था तो लोग कहते थे—"बड़ा सुन्दर दिखता है। बलि-हारी ! अहा जैसे श्याम घनके क्रोड़में विद्युत् खेल रही हो। मानों चम्पाके फूल पर भ्रमर बैठे हैं।" यह सब बातें मेरी स्नेहमयी माँको अच्छी नहीं लगती थीं। वे कहती थीं—"दुष्ट लोग मेरे सोने के चाँद को नजर लगाते हैं।" सब लोग कहते हैं कि वस्तुत मैं रूपवान् था। परन्तु दुःखकी बात है कि मेरी बाल्यावस्थाका कोई चित्र नहीं है।

मैं जन्मसे ही सदा रोगी रहा। इस कारण मेरा लिखना पढ़ना ठीक नहीं हुआ। यह बात मेरे माता-पिता कहते थे। परन्तु मेरा विश्वास है कि मेरे अपने ही दोषसे मेरा लिखना-पढ़ना नहीं हुआ। यह सब बातें मैं यथास्थान प्रकट करूँगा।

विद्याभ्यास

•

मेरी बाल्यशिक्षाका भार साक्षात बृहस्पति तुल्य मेरे फुफेरे भाई श्रीनील-माधव बृहस्पति भट्टाचार्यके ऊपर पड़ा। उन्होंने मेरे हाथमें खड़िया देतेही मुझको मुग्धबोध व्याकरण कंठस्थ कराना आरम्भ कर दिया। परन्तु मेरी मातृदेवीकी इच्छासे मेरा संस्कृतका अध्ययन बन्द होगया। फिर गाँवकी अंग्रेजी पाठशालामें उन्होंने मुझे प्रविष्ट करा दिया।

दोगाछिया ग्राममें एक गवर्नमेंट-सहायता-प्राप्त बंगला-अंग्रेजी माध्यमिक विद्यालय था, जहाँ कृष्णनगर चाँदसड़कके श्रीचन्द्रकान्त बसु हेडमास्टर थे और स्थानीय यज्ञेश्वर बसु तथा काली भैरव भट्टाचार्य दो पंडित थे। मेरा प्रथम विद्याभ्यास उसी माइनर स्कूलमें प्रारम्भ हुआ। उस समय मेरी अवस्था केवल ७-८ वर्ष की थी। मुझे याद है, एक दिन पाठ याद न रहनेके कारण पण्डित काली-भैरव भट्टाचार्यने मेरा कान जोरसे ऐंठ दिया था। इससे मेरा गोरा कान लाल हो गया, कुछ दर्द भी हुआ। मैंने घर आने पर छल-छलाती आँखोंसे अपनी मातासे यह बात कहदी। पण्डितजी मेरी माताके पितृवंशके एक आत्मीय जन थे। मेरी स्नेहमई माँने उस दिन उनके साथ खूब झगड़ा किया था, यह मुझे याद है। तबसे पण्डितजीने फिर मुझसे कुछ नहीं कहा।

मेरे पिताजी संस्कृत साहित्यके अद्वितीय पण्डित थे, वे व्याकरणके एक प्रसिद्ध विद्वान थे। परन्तु गणित शास्त्र वे कुछ भी नहीं जानते थे। उन्होंने विद्यालयमें कभी नहीं पढ़ा। छः वर्षकी अवस्था तक उन्होंने कुछ नहीं पढ़ा। मुग्धबोध व्याकरणसे उनकी पढ़ाई शुरू हुई थी। वहींसे उनकी जो कुछ विद्या हो सकी हुई। वह पौने-सवाई लिखना भी नहीं जानते थे। ।) के स्थान में चार आना भाषामें लिखते थे। यहाँ तक कि रुपये पैसे गिननेमें भी उनसे भूल होती थी। मुझे याद है जब मैं स्कूलमें पढ़ता था, उस समय राणाघाटके निवास स्थानमें भागवतकी कथा होती थी। कथा समाप्त होनेके दिन सीधा, रुपया, अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी, पैसा आदि

अनेक वस्तुएँ भेंटमें आती थीं। पिताजी स्वयं एक बार गिनकर हम लोगोंके हाथमें उसे देते थे। वे जितना गिनकर देते उससे प्राय: अधिक ही पाया जाता था। चोरी करनेकी खूब सुविधा थी। हम लोग चुरा भी लेते थे।

पिताका मैं अनुरूप पुत्र था। गणित शास्त्रमें मेरी कभी रुचि न हुई। पिताके गुण प्राय: पुत्रमें आते हैं। दोगाछिया मिडिल स्कूलसे १३-१४ वर्षकी अवस्थामें जब मैंने माइनर परीक्षा दी थी, उस समय मैं गणितमें ही असफल रहा था। मैं जुबली उत्सवके साल प्रवेशिका परीक्षामें भी गणितमें ही असफल रहा था। इस वर्ष अधिकांश छात्र पास हो गये थे। मैं गणितमें ऐसा पण्डित था कि प्रवेशिका परीक्षामें मुझे गणितमें शून्य नम्बर मिला था। हमारे दोगाछिया माइनर स्कूलके हेडमास्टर साहबने एक आदमीके द्वारा मेरी माताजीके पास शिकायतकी थी कि तुम्हारा पुत्र Mathematics (गणित) कुछ नहीं जानता, और न जाननेकी चेष्टा ही करता है। मुझे याद है मेरी स्नेहमयी माता देवीने यह बात सुनकर मुझको धमकाते हुए कहा था—"तुम्हारे हेड मास्टरने कहला भेजा है कि तू माथामाटी (गणित) नहीं करता है। तू माथामाटी कर, नहीं तो तेरा नाम स्कूलसे कट जायगा।" अपनी पूज्यनीया मातृदेवीके आदेशसे मैंने अपना माथा एकदम माटी कर दिया, पर गणित न सीख सका। यह बड़े दु:खकी बात थी। मैं प्रवेशिका परीक्षा Test Examination के गणितमें कैसे उत्तीर्ण हुआ था, यह सुनकर पाठक खूब हँसेंगे। वह बड़ी मनोरंजक बात है। मेरे राणाघाट स्कूलके सहपाठी बाल्यकालके मित्र श्रीयुत नगेन्द्रनाथ स्वर्णकार (एम.ए.—जो इस समय कलकत्ता सिटी कालेजके अध्यापक हैं) गणितके मर्मज्ञ हैं। परीक्षामें गणितके प्रश्न पत्रोंमें खूब कठिन और अधिक नम्बर वाले दो तीन प्रश्नोंको करके मेरे उपर्युक्त मित्रने राणाघाट स्कूल के Compound अहातेके दीवालके एक निर्दिष्ट गर्त्तमें मेरे लिए छिपाकर रख दिया था। मैंने पेशाब करनेके बहाने क्लासके बाहर आकर यथा समय उस उत्तरके कागजको चुपकेसे ले लिया, और नकल करके गणितके Test (टेस्ट) में पास हो गया। तब मैं प्रवेशिका परीक्षाके लिये भेजा गया। परन्तु सुचतुर हेडमास्टर माखनलाल दत्तने उस समय मुझसे कहा था—"हरिदास। यह तुम्हारी जुआचोरी है, यह मैंने समझ लिया है। परन्तु जाओ, तुम गणितमें पास नहीं होगे।" महापुरुष की बात सही उतर गयी। मैं फेल हो गया।

स्कूल-कालेजमें पढ़े बिना विद्या प्राप्त नहीं होती—यह धारणा भ्रमपूर्ण है। मेरी शिक्षा स्कूल-कालेजसे नहीं हुई। बङ्गला और अंग्रेजी साहित्यमें बाल्यकालसे ही मेरा विशेष अनुराग था। माइनर परीक्षामें फेल होकर मैंने जब राणाघाट अंग्रेजी स्कूलमें तृतीय श्रेणीमें पढ़ना शुरू किया, उस समय मैंने उपलब्ध बङ्गला साहित्यकी प्राय: सभी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। राणाघाटकी पाठशालाके पुस्तकालयमें तथा सर्वसाधारण

पुस्तकालयमें जितनी बङ्गलाकी पुस्तकें थीं, मैंने सभी पढ़ डाली थीं। कादम्बरी, सीता-बनवास, रासेलास, वेताल-पच्चीसी प्रारम्भ करके माइकेल मधुसूदन, बङ्किमचन्द्र, रमेशचन्द्र, दीनबन्धु, अक्षय दत्त, अक्षय सरकार, काली प्रसन्न घोष आदि साहित्य सारथियोंकी सारी पुस्तकें मैंने पढ़ली थीं। अंग्रेजी पुस्तकें भी मैं पढ़ता था, परन्तु कठिन ग्रन्थ मैं नहीं समझ पाता था। गणित शास्त्रको मैं सदासे ही बाघ समझता था, अब भी मैं वैसा ही समझता हूँ।

मैंने १५-१६ वर्षकी अवस्थासे ही कविता लिखनेका अभ्यास किया था। मेरे राणाघाट स्कूलके सहपाठी श्री नगेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय (जो इस समय कलकत्तेमें पोर्ट कमिश्नर आफिसके बड़े बाबू हैं) बङ्गला पद्य लिखकर तात्कालिक छोटी-मोटी मासिक पत्रिकामें प्रकाशित कराते थे। यह देखकर मुझे बड़ा ही लोभ होता था! यह लोभ ही मेरी कविता लिखनेकी चेष्टाका मूल मन्त्र था। मैं स्वाभाविक कवि नहीं हूँ।

मेरी लिखी प्रथम कविता मेरी पुरानी कापीमें आजभी यत्नपूर्वक सुरक्षित है। मेरी जन्मभूमि दोगाछिया एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित है। उस छोटी नदीका नाम है अञ्जना। इसकी अवस्था पहले खूब अच्छी थी। आजसे छियालिस वर्ष पहले इस अञ्जनाकी दुर्वस्था देखकर मैंने जो पहली कविता लिखी थी, उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है:—

(१)

अञ्जने ! तोमाय आमि बड़ भालबासि।
जुड़ाते हृदय ज्वाला तोर तीरे आसि ॥
जुड़ाय ना ज्वाला मोर, देखे दुर्वस्था तोर,
ज्वालार ऊपरे ज्वाला पाइ ओलो नदि !
तोर दुःखे फाटे नदि ! अभागार हृदि ॥
गिआछे तोमार हाय, नवीन नधर काय,
झुकायेछ तरङ्गिनि ! हेयेछ मलिना।
विषण्ण वदना सदा विषादित मना ॥
विषम वेदना कत, यातना वा कत शत,
सतत धरिछ हृदे असंख्य अगण्य।
तुमि नदि ! भाग्यवती भवे तुमि धन्य ॥

(२)

आगे आगे तोर तीरे, फुटित लो थरे थरे,
पद्मपुष्प मनोरम कुमुद निकर।
फुटित कतइ ओलो पुष्प मनोहर ॥

पवन हिल्लोल बले, तोर ओ निर्म्मल जले,
हेले दुले नाचित लो प्रफुल्ल नलिनी ।
भासित मधुप कत तोर नीरे धनि !
चन्द्रमा गगने बसि, हासिया मधुर हासि,
मुख देखे तोर नीरे कतइ हासित ।
हासि देखे तोर जल आनन्दे नाचित ॥
तोर नीरे ओलो धनि, भासित हीरक मणि,
भासित फुटन्त फूल नक्षत्र निकर ।
कतइ झरित आहा सुधामाखा कर ॥

(३)

सेइ तारा सेइ चाँद एखनओ गगने ।
तुमिओ त आछ नदि ! एखनओ भुवने ॥
सेइरूपे केन नदि ! भासेना लो निति निति,
नाचाये तोमार जल हासाये तोमाय ।
गियाछे सुखेर दिन सुख गेछे हाय !

(४)

दुइ पाशे कत तरु नत करि माथा ।
तोर सने ओलो धनि कइत लो कथा ॥
नवीन लतिका कत, करिया मु'खानि नत,
शुनित दुःखेर वार्त्ता तोर तरङ्गिनि ।
कोथा गेछे तरुलता बल ओलो धनि ॥
कतशत बिहङ्गम, गाइत लो मनोरम,
सुमधुर गीत,—कोथा से विहङ्गदल ?
केन तोर हृदे ज्वले विषम अनल ?

(५)

तीरस्थ श्रीवन छिल, सुरम्य कानन ।
मनोरम अट्टालिका अति सुशोभन ॥
कि दशा हयेछे हाय ! देखे हृदि फेटे जाय,
गियाछे कोथाय आहा ! से कान्ति ताहार !
नन्दन कानन नय तुलने जाहार !
वृक्ष सब पड़ि गेछे, अट्टालिका भेङ्गे गेछे,
सुन्दर कुसुमवन गियाछे कोथाय ?
कुसुम कानन एबे काँटावन हाय !
सुरम्य हर्म्मेर परे, अतीव हरष भरे,

बसे नदि ! राजागरा गाइत लो गान ।
उठित लो तोर हृदे श्रानन्द तूफान ।।

हे श्रञ्जने ! तुमको मैं बहुत प्यार करता हूँ । मैं श्रपने हृदयका ताप मिटानेके लिये तुम्हारे तीर पर श्राता हूँ । परन्तु हे नदी ! तुम्हारी दुर्वस्था देखकर मेरे हृदयका सन्ताप मिटता नहीं, बल्कि वह बढ़ता ही जाता है । हे नदी ! तुम्हारे दुःखसे इस श्रभागेका कलेजा फटा जा रहा है । हाय ! तुम्हारा वह रमणीक सौन्दर्य नष्ट हो गया । हे तरङ्गिनी तुम सूख गई हो, मलिन हो रही हो, तुम्हारा मन सदा विषण्ण श्रौर दुःखित रहता है । कितनी विषम वेदनाएँ, शत-शत यातनाएँ, श्रसंख्य-श्रगण्य दुःख तुम हृदयमें धारण करती हो । हे नदी ! तुम इस पृथ्वी पर भाग्यवती हो, धन्य हो ! ...१

पूर्वकालमें तुम्हारे तीरपर स्थान स्थानपर मनोरम कमलके फूल तथा कुमुदके पुष्प खिला करते थे । पवनके हिलोरसे तुम्हारे निर्मल जलमें प्रफुल्लित नलिनी हिलती डोलती श्रौर नाचती थी श्रौर तुम्हारे तीर पर बहुतसे भ्रमर मँडराते रहते थे । चन्द्रमा श्राकाशमें बैठा मधुर मुस्कानसे तुम्हारे जलमें श्रपना मुँह देखकर बहुतहँसता रहता था । उसकी हँसी देखकर तुम्हारा जल श्रानन्दसे नाच उठता था । श्ररी ! तू धन्य है तेरे जलमें हीरा-मणिकी शोभा दीखती थी । ताराश्रोंके समूह फूले हुए फूलोंके समान लगते थे, श्रौर उनकी सुधामयी किरणें पड़ती हुई कैसी शोभती थीं ? ...२

परन्तु श्राज भी वही तारा श्रौर वही चाँद श्राकाशमें हैं, श्रौर हे नदी ! तुम भी पृथ्वी पर हो । परन्तु हे नदी ! वे न तो उस प्रकार तरङ्गे नचा पाते हैं श्रौर न तुम्हें हँसा पाते हैं । हाय ! सुखके दिन चले गये, सुख चला गया । ...३

हे धन्या ? कितने वृक्ष सिर झुकाकर दोनों किनारे खड़े होकर तुमसे बातें करते थे । हे तरंगिणी ! कितनी नवीन लताएँ, श्रपना मुँह नत करके तुम्हारे दुःखकी बातें सुनती थीं । हे सुन्दरी ! बतला, वे तरु लताएँ कहाँ चली गयीं ? सैकड़ों पक्षी सुमधुर मनोरम गीत गाते थे, वे पक्षीगण श्रब कहाँ गये ? तुम्हारे हृदयमें विषम श्रग्नि क्यों जल रही है ? तुम्हारे तीर पर श्रीवन थे, सुरम्य कानन था, श्रत्यन्त सुशोभित मनोरम

अट्टालिकाएँ थीं हाय ! आज कैसी दशा होगई है ! देखतेही कलेजा फट जाता है। अहा उनकी वह कान्ति कहाँ चली गयी ? जिसकी तुलना नन्दन वन नहीं कर सकता था। सारे वृक्ष गिर गये, अट्टालिकाएँ ध्वस्त हो गयीं। वह सुन्दर कुसुम वन कहाँ चला गया ? हाय ! वह कुसुम-कानन कण्टक-वन बन गया। हे नदी ! पहले राजा लोग तुम्हारे तीर पर सुरम्य महलोंमें बैठकर अत्यन्त आनन्दित हो गीत गाया करते थे, जिसको सुनकर तुम्हारे हृदयमें आनन्दका तूफान उठा करता था।"...५

उस बाल्य जीवनकी रची हुई अनेकों कविताएँ दो कापियोंमें भरी सुरक्षित रक्खी हुई हैं। वे कविताएँ सब भावोद्दीपक हैं, तथा युगोपयोगी हैं। उनमेंसे 'हिमालय' शीर्षक वीर-रसकी एक बड़ी कविताका अन्तिम खण्ड नीचे उद्धृत किया जाता है [इस कविता की रचना का स्थान राणाघाट है, और तारीख २६ कार्त्तिक बंगाब्द १२९३ साल है, उस समय मैं स्कूल का छात्र था]

(१९)

ताइ बलि हिमालय ! याबे ना कलङ्कमय,
जावे ना दासत्व भार कठिन निगड़।
जावे ना जावे ना आर, बहिवे दासत्व भार,
अधम भारतवासी भीरु कुलाङ्गार ॥
दु'नयने धारा ब'बे, तबू ओ अधीन रबे,
अधीनता महाविष ख्यात चराचर।
विषे विषे हवे तव हृदि जर जर ॥

(२०)

ना पार देखिते यदि, फाटे यदि तव हृदि,
अभागिनी भारतेर नयनेर नीरे।
यदि दुःख पाओ मने, अत्याचारी प्रपीड़ने,
देखिते ए भारतेर जत कुलाङ्गारे ॥
इच्छा यदि कर चित्ते, घुचाइते कोन मते,
भीषण कठोर गुरु कलङ्केर भार।
भाङ्गिया निजेर देह कर चुरमार ॥

(२१)

विस्तारि विशाल वक्ष, लइया योजन लक्ष,
पड़' गिया भारतेर बक्षेर ऊपर।
घूचे जा'क् एके बारे, दासत्व कलङ्क ओरे,

चांपा पड़ि म'रि जाक् जत कुलाङ्गार ॥
जुड़ाक् हृदय ज्वाला, अधीनता-दुःख माला,
घुचे जाक् भारतेर यन्त्रणा बिस्तर।
सोनार भारत पुड़े ह'क छारखार॥

इसी कारण कहता हूँ कि हे हिमालय ! यह कठिन दासत्वकी कलङ्कमयी बेड़ी दूर न होगी। भीरु, कुलाङ्गार, अधम भारतवासी दासत्वके भारको वहन करते रहेंगे। दोनों नेत्रोंसे आँसूओंकी धार बहेगी, तो भी यह अधीन रहेगा। संसारमें प्रसिद्ध है कि अधीनता महाविष है। हे हिमालय ! इस विषसे तुम्हारा हृदय जर्जर हो जायगा ...१९

यदि तुम देख नहीं सकते हो, यदि तुम्हारा हृदय अभागिनी भारत माताकी आखोंके आँसू देखकर फटा जा रहा है, यदि अत्याचारसे प्रपीड़ित कुलाङ्गार भारत-वासियोंको देखकर तुम्हारा हृदय दुःखी हो रहा है, और यदि इस भीषण, गुरुतर कठोर कलङ्कके भारको किसी प्रकार दूर करना चाहते हो तो अपने शरीरको तोड़कर चूरचूर कर डालो। ...२०

अपने वक्षःस्थलको लाख योजन तक फैलाकर भारतके वक्षःस्थलपर पड़ जाओ जिससे एक वारगी इसका सारा दासत्वका कलङ्क दूर हो जाय, सारे कुलाङ्गार दबकर मर जाँय, तुम्हारे हृदयका सन्ताप दूर हो जाय, पराधीनताके सारे दुःख दूर हो जाँय, भारतकी सारी यन्त्रणाएँ मिट जाँय और यह सोनेका भारत जलकर भस्म हो जाय।" २१

इस प्रकारकी स्वदेशानुरागपूर्ण वीर रसकी कविता बाल्यकालसे ही जो लिख सकता है, वह कैसे फिर दूसरेकी दासत्वकी श्रृङ्खलामें बंध गया—इस प्रश्नकी मीमांसा पाठकगण ही करें। देश-प्रसिद्ध स्वराष्ट्र कर्मी, वरिशालके श्रीमान शरत्कुमार घोष आजकल जिस प्रकार गौरानुगत होकर गौराङ्ग धर्मका प्रचार कर रहे हैं. और गौर नामसे स्वयं रोकर अश्रुप्रवाहमें जगत को डुबा रहे हैं, देशमें प्रकृत गौर-राज्य स्थापनकी चेष्टा कर रहे हैं, नगर-नगर, ग्राम-ग्राममें गौर गोष्ठी स्थापित करनेके उद्देश्यसे दीनभावसे स्त्री सहित बाहर निकले हैं, यह देखकर प्रतीत होता है कि श्रीगौराङ्गकी कृपा-बलसे सब कुछ संभव है, असाध्य भी सिद्ध हो जाता है। जय गौर !

राणाघाट हाईस्कूलमें वहाँके जमीदार स्वर्गीय श्रीसुरेन्द्रनाथ पाल चौधरी महाशयकी कृपासे हम दोनों भाइयोंके निःशुल्क पढ़नेका सौभाग्य और सुयोग प्राप्त हुआ था। क्योंकि मेरे पितृदेवकी अवस्था अच्छी न थी। मेरा छोटा भाई गुरुदास

मुझसे केवल दो वर्ष छोटा था। वह बचपनसे ही बलवान और धृष्ट था। पढ़ना-लिखना दोनों भाइयोंका एक साथ होता था। राणाघाट स्कूलमें हम दोनों एक साथ एकही कक्षामें पढ़ते थे। गुरुदासकी भी-पढ़ाई प्रवेशिका तक हुई, उसने परीक्षा न दी, और मैं परीक्षा देकर फेल हो गया। परन्तु गुरुदासको पहली नौकरी अफीमके महकमे में २०) मासिक वेतन की मिली थी, और मुझे १०) मासिक वेतनकी डाक विभाग में। गुरुदास अफीमके बड़े आफिसमें हेड क्लर्क तक हो गया था। ३८वर्षकी उम्रमें उसका वेतन १५०) मासिक हो गया था, और कुछ कमीशन भी मिल जाता था। इसी उम्रमें दैव दुर्विपाकसे गयाके अस्पतालमें उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। ये सारी दुःखकी बातें आगे यथा समय लिखूँगा।

मेरी एक सबसे छोटी बहिन थी, उसका नाम महितोष कुमारी था। वह ८-९ वर्षकी अवस्थामें ही मर गयी। वह बड़ी सुन्दरी थी। उसकी अकाल मृत्युसे मेरी माताजी शोकसे बहुत ही व्याकुल हो गयीं। मेरी पाँच बहिनोंमें सबसे ज्येष्ठा दुर्गा देवी मेरी अपेक्षा १६-१७ वर्ष बड़ी थीं, वह इस समय श्रीधाममें मेरे साथ रहती हैं। मध्यमा पार्वती देवी इस समय गौरधाम गत हैं। उनके बाद हेमाङ्गिनी देवी विधवा हैं। कनिष्ठा भगिनी जगतमोहिनी देवी सधवा हैं। इनके ही पुत्र-रत्न मेरे भानजे श्रीमान आशुतोष भट्टाचार्य एम. ए. लखनऊ कालेजमें अंग्रेजीके प्रोफेसर हैं।

दोगाछिया छोड़कर राणाघाटमें वास करने परभी मलेरिया ज्वरके प्रकोपसे मुझे परित्राण न मिला। ३-४ वर्ष वहाँके अंग्रेजी स्कूलमें पढ़ा, परन्तु एक दिन भी शरीर स्वस्थ न रहा। वर्षमें छः महीनेसे अधिक मैं ज्वर ग्रस्त रहता था। खुजली और दादसे मुक्त मेरा शरीर कभी नहीं रह पाता था। स्थानीय बड़े डाक्टर बाबू दीनानाथ बसु कुनैनके बड़े पक्षपाती थे। मुझे खूब याद है कि वह एक दिनमें रोगीको ८०-९० ग्रेन कुनैन देते थे और जितनी इच्छा हो उतना दूध पीनेको देते थे। इस प्रकार अपरिमित कुनैनके विषसे मेरा शरीर बाल्यकालसे ही जर्जर हो गया था। उस दिन मेरी ६० वर्षकी अवस्थामें कलकत्ताके प्रसिद्ध होमियोपैथ चिकित्सक डा० खगेन्द्रलाल सेनने मेरी स्वास्थ्य-परीक्षा करके बतलाया कि मेरे शरीरकी वर्तमान व्याधि उसी अपरिमित कुनैनके विषका फल है। इस प्रकारके शरीरसे क्या लिखना-पढ़ना संभव हो सकता है? केवल मुझको दोष देनेसे कैसे काम चलेगा? मैं आजन्म रोगी जो था।

परिणय

•

१८८७ई० में मैंने रानाघाट हाईस्कूलसे प्रवेशिका परीक्षा दी। उस समय मेरी अवस्था २०-२१ वर्षकी थी। उसी वर्ष मेरा शुभ विवाह शान्तिपुरके दरिद्र ब्राह्मण पण्डित ग्रहपति भट्टाचार्यकी पाँचवीं कन्या दश वर्षीया श्रीमती लीलावती देवीके साथ हुआ। अपने विवाहके पूर्व मुझे अपनी भावी गृहलक्ष्मीको एक बार एक रिश्तेदारीके उपलक्ष्यमें अपनी आँखों देखनेका सुयोग और सुविधा प्राप्त हुई थी। मेरी कनिष्ठा भगिनीकी ससुराल शान्तिपुरमें है। एक बार एक श्राद्धके उपलक्ष्यमें पूज्यपाद पिताजीकी आज्ञासे कुटुम्बकी रस्म पूरी करने मैं वहाँ गया था। उनका घर और मेरे भावी ससुरका घर एकमें मिला था। जाति सम्बन्ध अति निकटका था, परन्तु यह भोजी संयुक्त परिवार न था। इस कारण अपनी भावी गृहिणीको भली भाँति देखनेका सुयोग हाथ लगा था। मैंने खूब अच्छी तरहसे उनकी खेलकी सङ्गिनीके साथ घुड़दौड़ तक देखी थी। इसके लिए लोग मेरी बदनामी करते हैं कि मैंने पसन्द करके विवाह किया है, मैंने कोर्टशिपकी है, इत्यादि। परन्तु यह सारी बात मिथ्या हैं। दुष्ट लोगोंकी दुष्टताकी बात सुननेका प्रयोजन न होने पर भी अब भी बुढ़ापेमें मेरी वृद्ध गृहिणी तक यह बात कह डालती है। जो भी हो, मेरी गृहिणी कुरूप नहीं थी, परन्तु उनका वर्ण मेरे जैसा सुन्दर गौरवर्ण न था। एक प्रकारसे कह सकते हैं कि वह सुन्दर श्यामवर्णा थी। अति सुन्दर सुपुरुषके रूपमें मेरी ख्याति थी। अतएव मेरी गृहिणीका रंग मेरे जैसा गौर न होनेके कारण बहुत लोग मेरी पसन्दकी निन्दा किया करते हैं। इस प्रकारकी निन्दाकी मैं परवा नहीं करता। मैं स्वतन्त्र मिजाज का ठहरा।

नवयौवनके तरङ्गोंके उच्छ्वासमें मगन मैंने अपनी इस पसन्दकी हुई गृहिणीके सम्बन्धमें एक पद्य लिखा था। संकोचमें पड़कर चुप हो अपनी इस आत्मकहानीमें उसका कुछ अंश प्रकट न करनेसे प्रकृत सत्य कथाका अपलाप होता है। पद कुछ बड़ा है और सारी बातें सबके सुनने योग्य भी नहीं, अतएव जो विशेष

प्रयोजनीय हैं उतना ही अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है। विवाहके दो तीन वर्ष बाद रची गयी यह कविता अब भी मेरी कापीमें यत्नपूर्वक सुरक्षित है। वह अंश इस प्रकार है :—

बछर मध्ये मासेक खानिक बाड़ी एसे भाइ।
एइ रकमे दिन रात्रिर बड़ त्यक्त हइ॥
किइ वा करि से जे आमार बड़ आदरेर धन।
ए छार जीवन तार जन्य करते पारि पण॥
से जे आमार साँझेर तारा सदाइ मुखे हाँसि।
मुखखानि तार चाँदेर पारा चोखे चाँदेर हासि।
काल काल चुलगुलि अमल रूपेर राशि।
तारइ तरे दुखजीवने सदाइ सुखे भासि॥
केमन जे तार से हात दु'टि कि क'रेइ वा बलि।
पटल-चेरा चक्षु दु'टि आँका दिये तुलि॥
ठोंटेर आगाय सदाइ हासि नाके नोलक दोले।
बुकेर माझे केमन जे करे सुमुख दिये गेले॥
चूलगुलि सब खुले दिये सुमुखे आसे जबे।
कि रूप तार बल्बो कि आर अतुल ए मर भवे॥
दोषेर मध्ये देख्ते केवल एकटू खानि काल।
आमि किन्तु मने करि कालो जगत् आलो॥
सदाइ आसे आमार काछे रूपेर गरब तरे।
काल बल्लेइ विषम गोल बड़ अभिमान करे॥
सत्य सत्यइ काल नय से उज्जल श्याम रंग्।
आमार चोखे से बरणेर मरि कि सोणार ढंग्॥
पोड़ा लोके तबूओ बोले अमुकेर बऊ काल।
किइ वा करि कोथाय जाइ विषम नाजेहाल॥
घरे बाहिरे नानान कथा बड़इ झालापाला।
मेये मानुष कालो ह'ले बड़इ विषम ज्वाला॥
जाक् से कथा आमार कालो आमारइ हृदय हार।
पोड़ार मुखी पाड़ापड़सीर एत कि माथार भार॥
आमार ताके जे कालो बले तार सङ्गे आड़ि।
ए जनमे कखनओ आर जाब ना तार वाड़ी॥ इत्यादि।

"वर्षमें मैं केवल एक महीनेके लिए घर आता। इसके लिए मैं रात-दिन बड़ा आकुल रहता। मैं क्या करूँ? वह

मेरी बड़ी ग्रादरकी वस्तु है, मैं इस तुच्छ जीवनको उसपर न्यौछावर कर सकता हूँ। वह मेरे लिए संध्याकालीन ताराके समान है। उसके मुखपर सदा हँसी बनी रहती है। उसका मुँह चन्द्रमाके समान है ग्रौर नेत्रोंमें चन्द्रिकाकी छटा। उसके काले काले केशपाश ग्रमल रूपकी-सी राशि हैं। उस रूपके प्रभावसे इस दुःखमय जीवनमें भी मैं सदा ही सुखसे रहता हूँ। उसके उन दोनों हाथोंकी मैं किससे उपमा दूँ? परबल चीरनेसे उसमें जैसी सुन्दर ग्राँखसी बन जाती है वैसी ग्राँखें दोनों मानों तूलिकासे ग्राँकी हुई हों। ग्रोठों पर सदा मुस्कान रहती है ग्रौर नाकमें झूलनी डोलती है। उसका सुन्दर मुँह देखतेही हृदयमें एक विचित्र ग्रवस्था हो जाती है। जब बालोंको खोलकर सुन्दर मुख लिए ग्राती है, तो उसके रूपकी शोभाका क्या वर्णन करूँ? इस संसारमें उसकी तुलना नहीं। दोष केवल यही है कि देखनेमें वह कुछ श्यामवर्णा है। परन्तु मैं समझता हूँ कि श्याम वर्ण जगतका प्रकाश है। वह रूप गर्विता होकर सदा मेरे पास ग्राती है। श्यामा कहने पर बड़ी गड़बड़ी मचती है, वह रूठ जाती है। सचमुच वह काली नहीं है उसका उज्वल सलोना रंग है। मेरी ग्राँखोंमें तो वह सोनेसे भी बढ़कर है। तथापि मुँह जले लोग कहते हैं कि ग्रमुककी बहू काली है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, बड़ी विषम समस्या है। घर-बाहर नाना प्रकारकी बातें होती हैं। बड़ी चर्चा है। यदि स्त्री-जातिमें कोई साँवली हुई तो बड़ी विपद ग्रा गयी। चाहे जो हो मेरी साँवली तो मेरे हृदयका हार है। जलमुँही पड़ोसिनके सिर पर क्या बोझ पड़ गया? मेरे सामने जो उसको काली बताता है, उसके साथ मैं भिड़ जाता हूँ, ग्रौर मैं इरादा कर लेता हूँ कि उसके घर कभी न जाऊँगा।"

इसके पहले ग्रपने बाल्यकालकी रची हुई वीर-रसकी कविताका कुछ नमूना मैं दे चुका हूँ। यहाँ भरे यौवन-कालके मधुर रसकी कविताका कुछ नमूना दिया है शेष हास्य, करुण ग्रौर रौद्ररसकी कविताका परिचय भी क्रमशः प्रकाश्य होगा।

यौवन कालीन दुस्साहस और संकट परित्राण

•

इस प्रसङ्गमें एक घटनाका उल्लेख करना मैं भूल गया। शान्तिपुर रिश्तेदारी करके रानाघाट लौटनेके दिन रानाघाट-शान्तिपुरकी सड़क एक दम पानीसे डूब गयी थी। उस समय बर्षाका मौसिम था, भरा भादों था। बाढ़के आनेसे नदी-नाले, पथ-घाट, धानके खेत सब जलमग्न हो गये। घोड़ागाड़ीका चलना बन्द था। पैदल चल कर आने-जानेका मार्ग बीच-बीचमें टूट जानेसे टूटे हुए पुलके समान जल-स्रोतसे पूर्ण था। मेरे साथ एक आत्मीय कुटुम्बके आदमी थे। नाम था अक्षयकुमार भट्टाचार्य, और घर शान्तिपुरमें ही था। दोनों ही आदमी कच्छा बाँधकर परम आनन्दपूर्वक उस जल मग्न मार्गसे पैदल ही जा रहे थे। मेरे पास एक पोटली थी। उसमें रिश्तेदारीसे प्राप्त एक जोड़ा धोती, चादर और कुछ रुपये थे। मार्गके दोनों ओर विस्तीर्ण मैदान था, जो जलमग्न हो रहा था, मानों दोनों ओर अपार समुद्र फैला हो। मैदानके छोटे छोटे पेड़ एक बारगी जलमग्न हो रहे थे। बड़े बड़े बबूलके पेड़ आधे जलमें डूबे थे, वे किसी प्रकार सिर उठाए जलमें खड़े थे। शान्तिपुरसे रानाघाटके आधे रास्तेमें इस प्रकारकी टूटी सड़क पर एक बड़ा पुल पार करते समय अचानक पैर फिसल जानेसे मैं जलके प्रवाहमें पड़ गया और भयानक जल प्रवाह मुझे बहा ले चला। मेरे गलेकी चादर, हाथकी पोटली और सिरका छाता न जाने कहाँ चले गये। मैंने जलमें डूबकी खाते ही पासके एक अर्द्ध जलमग्न बबूलके पेड़की कण्टकमय डालको किसी प्रकार दोनों हाथोंसे पकड़ कर अपनी जान बचायी। ऊपर जब दृष्टि गयी तो देखा कि उसी वृक्षकी शाखा पर एक विचित्र सर्प आश्रय लिए हुए है। उस समय भयसे मेरे हृदयकी क्या दशा हुई, इसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं। तारके लकड़ीके खंभे और तार सब वर्षामें गिर गये थे, वहाँ उनकी मरम्मत करनेके लिए दो कुलियोंके साथ लाइन मैन काम करता था। उनके पास बड़े-बड़े बाँस थे। मेरी दुर्गति देखकर मेरे आत्मीय कुटुम्बी बहुत व्यग्रचित्त होकर उनसे अनुरोध करके एक लम्बे बाँसको, मैं जिस जल मग्न बबूलका आश्रय ले

रहा था, उस पेड़ से लगा दिया। मैंने उस बांसको पकड़कर धीरे धीरे जलके ऊपरसे किसी प्रकार रास्ते पर आकर जान बचायी। मेरे आत्मीयने उस दिन मेरा परम उपकार किया था, जिससे मेरी प्राण-रक्षा हुई भी। जीवनका एक बहुत बड़ा ग्रह मेरा कट गया। रानाघाटमें बासे पर आकर जब मैंने यह कहानी सुनायी तो मेरी स्नेहवती मातादेवी सुनकर रोने लगीं। पिताजी बोले कि गोपाल और गोविन्दने इसकी रक्षा की है। परन्तु दुष्ट लोगोंने कहा था कि मेरी भावी गृहिणीके उस श्याम रूपके उल्लासमें मेरा चित चञ्चल और मन अस्थिर हो गया होगा, इस कारण सोचते-सोचते रास्तेके जलमें गिर पड़ा था। उन दुष्ट लोगोंकी दुष्ट बुद्धि देखकर मुझको बड़ा क्रोध हुआ था। परन्तु मैंने उनके शरीरको हाथ नहीं लगाया, क्योंकि वे स्त्री जातिके लोग थे। उस समय मैंने समझा था कि स्त्रीकी बुद्धि प्रलयङ्करी होती है। अपनी तत्कालिक यौवन सुलभ वाचालताकी बात यहाँ ही समाप्त करता हूँ। ये सब बातें अब मेरे मुखसे शोभा नहीं देतीं। परन्तु मैं आत्मकहानी जो लिख रहा हूँ तो इससे जीवनकी सारी घटनाएँ मुझे लिखनी पड़ेंगी।

दिल्ली का लड्डू और पुनः विद्याध्ययन

●

जुबिलीके सालमें भी मैं प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण न हो सकूँगा, इसको मैं भली प्रकार जानता था। इसी कारण परीक्षा-फल निकलने के पहले ही चतुराईसे माता-पिताकी अनुमति लेकर रानाघाटसे कुछ दिनोंके लिए अपने छोटे बहनोई श्री यदुनाथ भट्टाचार्यके पास लालबाग मुर्शिदाबादमें चला गया। वे वहाँ मुनसफ़ी कचहरीमें नाज़िर थे। बहनोईके अन्नदास होनेका एक मात्र उद्देश्य था "दिल्लीका लड्डू जो खाता है वह भी पछताता है, जो नहीं खाता है वह भी पछताता है" इस कहावतके अनुसार 'दिल्लीके लड्डू' यानी नौकरीकी तलाशमें वहाँ गया था। अङ्कशास्त्रमें अपनी माताकी आज्ञासे 'माथामाटी' अब न करूँगा, अब फिर पढ़ने का काम नहीं करूँगा—यह निश्चय करके ही मैं घरसे बाहर निकला था। कई महीने आदर और गौरव पूर्वक जीजाजीके बासेमें रहकर नाना प्रकारकी चेष्टा करके भी उस "दिल्लीके लड्डू" का सन्धान प्राप्त न कर सका। मन बहुत व्याकुल होने लगा, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उसी समय मेरे जीजाजीकी बदलीका समाचार मिला। वहाँकी फौजदारी अदालतके सरिश्तेदार, उनके मित्र कालीप्रसन्न गुप्तकी सिफारिशसे उस समय लालबाग फौजदारी अदालतमें मुझको एक उम्मीदवारी पर नौकरीका जोगाड़ लगा। उस समय मौलवी मुहम्मद-उल-नबी साहब लालबाग महकमेके स्थानापन्न डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उस फौजदारी अदालतकी सील-मुहर युक्त बंगला भाषामें लिखी मेरी उम्मीदवारी नौकरीके परवानेकी नकल नीचे उद्धृत की जाती है—

जेहेतु इज्जतदार हरिदास गोस्वामीके अद्य तारिख हइते एइ आदालतेर उमेदारीर पदे बाहाल मकरर करिया एइ परोयाना जारी हइल, उक्त उमेदार एइ आदालत गृहे यथासमये प्रतिदिन उपस्थित हइया कार्य शिक्षा एवं हुकुम बरामत बे ओजोर आञ्जाम करिबे, इति—

लालबाग फौजदारी आदालत	(सहि) मुहम्मद-उल-नबि
तारीख ९ ई अगस्त १८८८खी०	साब् डिभिसनाल अफिसार।

हाकिमका यह उम्मीदवारीका हुकुमनामा मिलने पर मानो आकाशका चाँद मेरे हाथमें आ गया। मेरे जीजाजी बदलकर लालगोला चले गये, उसी घरमें कालीबाबू सरिश्तेदार रह गये, मैं उनके साथही रहने लगा। कालीबाबू अत्यन्त सज्जन, सदाशय और परोपकारी थे। वह अकेले थे, साथमें ब्राह्मण और नौकर भी था। उन्होंने मुझको अपने घर पर बड़े आदरसे बिना खर्चके रखा, और मुझको आशा दी कि शीघ्रही नौकरी मिल जायगी। कालीबाबू बहरामपुरके स्वनामधन्य बकील रायबहादुर बैकुण्ठनाथ सेनके भाई हाईकोर्टके प्रसिद्ध वकील हेमेन्द्रनाथ सेनके श्वशुर थे। उनके दामादकी सिफारिशसे मुझे कुछ दिनके लिए बहरामपुर निवासी सुप्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दीनबन्धु सान्याल महाशयके घर उनके अंग्रेजी ग्रंथोंके नकल करनेकी नौकरी मिली। वेतन था १०) मासिक। वह नौकरी मुझे अधिक दिन नहीं करनी पड़ी।

लालबागमें कालीबाबूके वासामें रहकर इसप्रकार "परायेका खाऊँ और जंगली भैंस भगाऊँ" की कहावत चरितार्थ करते हुए ४-५ महीने मैंने उम्मीदवारीकी नौकरी की। छः महीनेके बाद उसी अदालतमें १०) महीनेकी एक जगह खाली हुई। परन्तु 'बिल्ली के भाग्य से छींका नहीं टूटा'। एक दूसरे पुराने उम्मीदवार दीनानाथ सरकारने मेरे मुँहकी रोटी छीन ली। इससे दुःखी होकर मैंने लालबाग छोड़ दिया। उस समय दुर्गापूजाके दिन थे। मैं दुःख और अभिमानके वश होकर फिर घर नहीं लौटा। एकवारगी देश छोड़कर पश्चिममें भागलपुरमें अपने एक अन्य बहनोईके बासे पर जा पहुँचा। मुझे बहनोईका अन्नदास रहना ही होगा, यही विधाताका लेख था। पहले यह अन्नदासत्व प्रदान करके विधाताने मेरे अदृष्टमें परदासत्वकी सूचना मुझे दी।

उस बहनोईका नाम था पण्डित चन्द्रभूषण भट्टाचार्य। वह भागलपुरमें एक अंग्रेजी माध्यमिक बालिका विद्यालयके प्रधान शिक्षक थे। वहाँके सब लोग उनका सम्मान करते थे। सभी उनके सद्गुण और सद्व्यवहारसे मुग्ध थे। भागलपुरमें सब लोग उनको जानते थे और आदर करते थे। उनका वासा नया बाजारमें कलकत्तेके स्वनामधन्य प्यारेचरण सरकारके भ्राता रायबहादुर गोपालचन्द्र सरकारके मकानमें था। गोपालबाबू मेरे बहनोईके विशिष्ट मित्र थे। समीपमें ही जिला स्कूलके सुप्रसिद्ध हेडमास्टर तारापद घोषाल एम. ए. का बासा था। वह भी मेरे सर्वजनप्रिय बहनोईके मित्र थे।

यह पण्डितजीके साले जुबिली वर्षकी प्रवेशिका परीक्षामें फेल होकर मानसिक दुःखके वश हो नोंकरीके लिए घरसे बाहर हुए हैं, यह बात सुनकर सबको दुःख हुआ। सबने मिलकर परामर्श करके मुझको वहाँके नव स्थापित तेजनारायण जुबिली हाई स्कूलमें फिर भर्ती करा दिया। मैं बड़ी विपदमें पड़ गया। मैं "दिल्ली के लड्डू"

की खोज में था। जिस भयसे घर छोड़ा, अपने प्रिय रानाघाटके स्कूलके सब बाल्य-बन्धुओं को छोड़ा, घर जानेके लिए माता-पिताके अनुरोधकी उपेक्षा की, वही भय यहाँ आकर मेरे हृदयको फिर झंकृत कर उठा। जन्मजात गणितका भय मेरे मनमें प्रबल रूपसे जाग उठा। क्या करूँ कोई उपाय नहीं। किसीने मेरे मनके भावका यथार्थ मर्म नहीं समझा। दर्द बूझने वाला कोई मित्र वहाँ नहीं मिला। भागनेका भी मौका न मिला। इसलिए बाध्य होकर फिर गणितके भयसे भीत हृदय लेकर उस स्कूलमें मैं भर्ती हो गया। स्कूलके हैड मास्टर हरिप्रसन्न मुखोपाध्याय एम. ए., बी० एल. महाशय बड़े साधु प्रकृतिके मनुष्य थे। वह मेरे श्वशुरालय शान्तिपुरके निवासी थे। मेरे श्वशुरजीके साथ उनका विशेष परिचय था। उसी सूत्रसे वह मुझको यथेष्ट स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे। अंग्रेजी भाषा पर मेरा विशेष अधिकार था। बंङ्गला भाषामें रची मेरी कविता आदिको पढ़कर सभी लोग मेरी विशेष प्रशंसा करते थे। छात्र जीवनसे ही मैं सामाजिक अंग्रेजी पत्रोंमें निबन्ध आदि लिखने लगा। उन सारे निबन्धों की कतरण मेरी एक कापीमें संग्रहीत थी, आजभी वह कापी मेरे पास यत्नपूर्वक सुरक्षित है। जिला स्कूलके हेडमास्टर तारापद बाबू तत्कालीन शिक्षा-विभागके एक विशेष ख्यातनामा शिक्षक हैं। चार विषयोंमें एम. ए. पास थे। फारसी और संस्कृतके परम पण्डित थे। वे एक स्वाध्यायी योगी थे। दिन-रात अपनी लाइब्रेरीमें बैठकर लिखते-पढ़ते रहते थे। घरमें किसीके खूनी जखमी होने पर भी उनकी दृष्टि उधर नहीं जाती। वह मुझपर बड़ी स्नेह दृष्टि रखते थे। उनके पास सदा ही भागलपुरके बड़े बड़े उच्च श्रेणीके शिक्षित लोग आते थे, विभिन्न विषयमें वार्त्तालाप तथा वाद-विवाद होता था। मैं वहाँ रहकर सारी बातें ध्यान लगाकर सुनता, तथा उन वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध बड़े बड़े लोगोंके साथ साहस पूर्वक तर्क-वितर्कमें योगदान करता था। सभी मेरे मुँहकी ओर ताक कर आश्चर्य करते और पूछते कि, 'यह युवक कौन है?' उत्तर मिलता कि, 'पण्डितजीका साला'। पण्डितजी भी वहाँ समय समय पर उपस्थित रहते थे। अपने श्रेष्ठ रिश्तेदारकी प्रशंसा सुनकर मानो उनका हृदय फूल उठता, परन्तु मुझको इस परिचयसे बिल्कुल ही सुख नहीं होता था। मैं कहता था, "आप लोग नहीं जानते, मैं रानाघाटके सुप्रसिद्ध पण्डित सीतानाथ तर्कपञ्चानन का पुत्र हूँ।" पूज्यपाद पिताजी की उपाधि थी तर्कपञ्चानन, परन्तु उनको कभी मैंने तर्क करते नहीं देखा। यह मैं पहिले ही निवेदन कर चुकाहूँ।

उस प्रख्यात हेडमास्टर तारापद बाबूने पश्चात् मुझको एक सर्टिफिकेट दिया था, उसकी अविकल प्रतिलिपि नीचे दी जाती है:—

I have Known Babu Haridas Goswami from the time he was a student in the Entrance class, though not in the school under

my charge. Though compelled by circumstances he has not passed any University Examination, leaving school before he could matriculate, he has, within my knowledge, acquired such a faculty in expressing his thoughts in Engiish by dint of perseverence and private study as will do credit to any ordinary degree-holder of the Calcutta or any Indian University. His style of composition, I believe, has been the result of a close study of models of simple and chaste English, which, in spite of his years he has had the good sense to imitate. A young man of excellent parts, I have heard him discuss social questions with an impartiality and liberality of views and sentiments, which can only be expected from veteren and practised thinkers. I have never known any thing against his moral character, and this leads me to hope that as the scion of a family of Pandits remarkable through generation for their native virtues, intellectual and moral, his worth will receive an early recognition in any sphere of business to which he will be called and make him general favourite with his superiors and fellow workers. Thoughtful and intelligent as I have always found him to be, it is not likely, that he would commit himself to a course of conduct inconsistent with due respect and steadfast allegiance as well as dutifulness towards his superiors in any department of Public Service.

(Sd.) Tarapad Ghoshal M.A.
Head Master
Government Zila School, Bhagalpore.

Bhagalpore
The 20th October, 1892.

"अर्थात् बाबू हरिदास गोस्वामीको मैं तबसे जानता हूँ जब वह प्रवेशिका कक्षाके विद्यार्थी (एन्ट्रेन्स में पढ़ते) थे यद्यपि वह मेरे नीचेकी स्कूलके छात्र न थे। परिस्थितियोंके वश वह यूनिवर्सिटीकी परीक्षा पास न कर सके। यद्यपि मैट्रिक पास करनेके पहिले ही उन्होंने स्कूल छोड़ दिया था, तथापि मैं समझता हूँ कि अपने अध्यवसाय तथा स्वाध्यायके बल पर इन्होंने अंग्रेजीमें अपने भावोंको प्रकट करनेकी ऐसी क्षमता प्राप्तकी है, जिससे किसी भी विश्वविद्यालयके एक सामान्य ग्रेजुएटको प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सरल और मुहावरेदार अँग्रेजीके नमूनेका सुचारु रूपसे अध्ययन करनेके फलस्वरूप छोटी अवस्था होने पर भी शैलीके अनुकरण करनेकी अच्छी योग्यता के कारण उनकी रचनाकी अच्छी शैली बन गयी है। मैंने देखा है कि एक सुयोग्य नवयुवक होकर वे निष्पक्ष और उदार विचार तथा भावना रखकर सामाजिक प्रश्नोंकी ऐसी आलोचना करते हैं, जैसी सुदक्ष और परिपक्व विचारकके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता। उनमें चरित्र-गत किसी त्रुटिका आभास नहीं मिलता। इससे मुझको आशा होती है कि वंशानुक्रमसे उन सुप्रतिष्ठित पण्डितोंके परिवारके होनेके कारण, जो बौद्धिक तथा नैतिक गुणोंको लेकर प्रख्यात हो गए हैं, हरिदास गोस्वामी जिस किसी कार्यके लिए नियुक्त होंगे, उसीमें उनकी योग्यता आदर पावेगी तथा वे अपने

अफसरों और सहकर्मियोंका सौहार्द अर्जन करेंगे। मैंने उनको सदा विचारवान और बुद्धिमान पाया है। अतः ऐसा नहीं हो सकता कि वह जन-सेवाके किसी विभागमें नियुक्त होने पर अपने अफसरोंके प्रति कर्तव्यनिष्ठा, सुदृढ़ सहयोग तथा समुचित सम्मानकी दशामें किसी प्रकारकी शिथिलता आने देंगे।

(ह०) तारापद घोषाल एम० ए०
हेड मास्टर
गवर्नमेंट जिला स्कूल, भागलपुर

भागलपुर,
२० अक्टूबर १८९२ ई०

नया खुला हुआ तेजनारायण जुबली स्कूल मेरे वासेके पास ही था, नया टी० एन० जुबली कालेज उसी साल निर्मित हुआ था। हेड मास्टर हरि प्रसन्न बाबू उस कालेजके प्रथम प्रिन्सिपल हुए। मैं नये कालेजमें भी पढ़ा था। 'नायक' सम्पादक सुप्रसिद्ध साहित्यिक स्वर्गीय पाँचकौड़ी वन्द्योपाध्याय भागलपुरके ही निवासी थे, उस वर्ष उन्होंने बी० ए० पास किया था। मेरा उनके साथ बाल्यकालका परिचय था।

हरिप्रसन्न मुखोपाध्याय एम० ए०, बी० एल०, कालेजके प्रिन्सपल मुझको बहुत मानते थे। उनके दिये हुए सर्टिफिकेटकी नकल नीचे उद्धृत की जाती है :—

"Haridas Goswami of Dogachi, District Nadia, is known to me as a youth of great promise and intelligence. He was for nearly a year a student in the Entrance class of the institution, while the institution, was in the status of a High English School, and I was incharge of it as Head Master. In the school, he showed himself remarkable proficient in English and always deported himself well. I am sorry that he had to leave off his studies before he could appear at the entrance Examination. A series of articles, contributed by him to columns of correspondence in English journals and preserved in a collected form has been since presented to and gone through by me. I am glad to be able to say that the articles have been generally well executed. The indication they give that the writer, amidst the duties imposed on him by his employment, devotes himself, with assiduity, to literary culture, affords me great pleasure. I shall always be delighted to see him prospering in life. He bears to the best of my belief an unexceptionable moral character.

(Sd.) Hari Prasanna Mukerjee M. A.
Principal
T. N. Jubilee College
Bhagalpore.

Bhagalpore,
The 14th Sepember, 1892.

अर्थात् जिला नदियाके दोगाछी निवासी हरिदास गोस्वामी एक बड़े होनहार और प्रतिभाशाली युवक हैं। हमारी इस संस्थामें जिस समय यह संस्था हाई इंगलिश स्कूल तक थी और मैं इसका हेड मास्टर था वह करीब एक वर्ष एन्ट्रेंस क्लासके छात्र

रहे। उन्होंने अपनेको अँग्रेजीमें सुदक्ष विद्यार्थी सिद्ध किया और सदा अपने व्यवहारको अच्छा बनाए रक्खा। मुझे खेद है कि उनको एन्ट्रेंसकी परीक्षामें शामिल होनेके पहले ही अपनी पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। उनके द्वारा अँग्रेजी पत्रिकाओंके संवाद-स्तम्भमें एक लेख-माला प्रकाशित की गयी थी, वह मुझको मिली, और मैं उसे आद्योपान्त पढ़ गया। मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि लेख साधारणतः सुन्दरतापूर्वक लिखे गये हैं। इनसे यह ज्ञात होता है कि अपनी नौकरीके कर्त्तव्योंका पालन करते हुए भी उन्होंने लगनके साथ साहित्यिक संस्कृतिमें अपनेको आबद्ध किया है, इससे मुझको महान् आनन्द होता है। सदा जीवनमें उनको उन्नति करते देखकर मुझे प्रसन्नता होगी। मेरा विश्वास है कि वे सब प्रकारके सद्‌गुणोंसे युक्त हैं।

(ह०) हरिप्रसन्न मुकर्जी एम० ए०,
प्रिन्सपल,
टी० एन० जुबली कालेज,
भागलपुर।

भागलपुर,
१४, सितम्बर, १८९२।

यद्यपि मैं गणित शास्त्रसे अनभिज्ञ था, और विश्वविद्यालय-उपाधि-व्याधि-ग्रस्त युवक नहीं बन सका, तथापि मेरे पाण्डित्यका जो सुयश था, उसका अनुमान इन सार्टीफिकेटोंके पढ़नेसे सहज ही लगाया जा सकता है।

मेरे विद्यार्थी-जीवनमें लिखे एक अँग्रेजी लेखका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। यह लेख विलायतसे लौटे हुए गरिफाके सुप्रसिद्ध अँग्रेजी साहित्यिक, स्वनामधन्य अमृतलाल रायके द्वारा सम्पादित "Hope" नामक अँग्रेजी साप्ताहिक पत्रिकाके १८ जुलाई, १८८७ ई० के अंकमें प्रकाशित हुआ था। उस बड़े लेखका प्रारम्भिक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है।*

---

*The Village Sanitation and Water-Supply.

Much has been said of this all important subject, both by the press united *en masse*, and by the public assembled in meeting and conferences; but nothing has yet been practically done to improve the sanitary condition of the Bengal Villages. The insanitary condition of the Bengal Village is known to everybody and has been universally admitted to be principally due to the bad system of drainage and water supply in the muffusil Village. The subject involves the life and death of millions of men and concerns the vital interests of the muffusil public in general. It should, therefore, receive immediate attention of the Government and the people alike, who should no longer remain inactive in furthering this noble cause and in settling the question once for all. The Government, we are glad to see, is not

मेरे बाल्यकालके रचे अँग्रेजी लेख तथा बंगला कविताएँ मेरे आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव, शिष्य-प्रशिष्य तथा अनेक अनुयायीजनके लिए परम आदर की वस्तु हैं,

---

quite unmindful of its duties in this respect and it has already taken the matter in hand. We have, however, very little faith in conferences and meetings and no confidence whatever in public speeches and utterances, which generally end in nothing. We attach very little importance to the proceeding of the legal councils or to the utterances from the representative rulers, who ever they may be unless and until we see the matter a *fait accompli*. Up to this time sanitary conferences and meetings notwithstanding, nothing has been practically done to convince the people that practical steps are being taken to improve the sanitary condition of their villages, and to save their lives from untimely death. It is argued in some quarters, I mean in official quarter that the people themselves are chiefly to blame for the insanitary condition of their villages and they should come forward with necessary funds to assist the Government in improving the sanitary conditions of their villages. Some advocate additional taxation for the purpose. This sort of queer arguments I must say, are simply ridiculous, and their principles are most unkindly and ungenerous. Evidently these men have taken an *exparte* view of the question. The Government is bound to look after the welfare of its subjects and it should bear all the expences to keep them in good health. It is ridiculous to expect pecuniary assistance from ill-fed, ill-clad, half-starved villagers, who have scarcely the wherewithal to satisfy their hunger and to keep their body and soul together. The advocates of additional taxation should twice think before they utter a single word in advocating their cause and should do well to bear in mind that nearly three-fourths of the population of Bengal cannot afford procuring their meals two times a day and a large portion live by begging from door to door. Additional taxation, therefore means additional heavy burden on the people, who are already overburdened with taxations, under which they are groaning now and will have to groan for ever. The leading men, I mean the rich and wealthy men, can, of course, very well make the best use of their money in assisting the Government in furtherence of the noble cause. But they generally live in towns and therefore, have no idea of the sufferings, hardships and inconveniences of the poor villagers of the muffussil. The money they annually squander in *natches* and *tamashas*, and in feast and festivals, can best be utilized in allaying the distress of their fellow countrymen. But the question is, where is that mind? and where is the adviser? Rich men, with some honourable exceptions, are most *selfish*, and have no fellow-feeling at all in their heart, or else are unkind towards their fellow country men. They are ready to subscribe a large amount of sum to the Reception Committee Fund in honour of *Bara* or *Chhota Lat* and to give a Ball party at the expense of a considerable sum of

इसमें सन्देह नहीं है। इस वृद्धावस्थामें स्वयं मेरे लिये ये बहुत सुख-प्रद हैं। साधारण पाठकोंके लिये मैं आत्म-कथा नहीं लिख रहा हूँ।

---

money, in the hope of getting some titles—Raja or Rai Bahadur. Most selfish as these men generally are, it is but natural, that they should turn a deaf ear to the sufferings of their fellow-men. I pray, I entreat our wealthy men to shake off their lethargy at once and see things in their true light. It is time, that they should come forward with their purse in assisting the Government to allay the sufferings of their fellow-countrymen. They should no longer remain inactive to take up the matter in right earnest.

विद्याभ्यासमें विघ्न

•

मैं भागलपुरके टी० एन० जुबली कालेजमें पढ़ने लगा। सभी मुझसे प्रेम करते थे। मैं नहीं जानता कि मुझमें ऐसा कौन गुण था। बड़े बड़े शिक्षित लोगोंके साथ परिचय होने लगा। वे सब मुझको स्नेहकी दृष्टिसे देखने लगे। मेरे जन्मस्थान दोगाछियाके निवासी राजा शिवचन्द्र वन्द्योपाध्याय बहादुर उस समय भागलपुरके वकील और जमीदार थे। वे मुझको प्राण-तुल्य देखते थे। उनके बड़े भाई, गदाधर वन्द्योपाध्याय जजके सिरिश्तेदार और अंग्रेजीके प्रसिद्ध लेखक थे। गवर्नर, लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरके आने पर गदाधर बाबूके द्वारा लिखित अभिनन्दन-पत्र न होनेसे काम नहीं चलता था। वह मेरे अँग्रेजी लेखोंकी बड़ी प्रशंसा करते थे। सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय आई० सी० एस० के पिता निवारणचन्द्र मुखोपाध्याय एम० ए०, बी० एल० मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह रखते थे। सुयोग्य डाक्टर नकुलचन्द्र वन्द्योपाध्याय, सिविल सजन डा० निमाई चरण चट्टोपाध्याय छोटे भाईके समान मुझसे स्नेह करते थे। जिला स्कूलके सुप्रसिद्ध हेडमास्टर ताराचन्द घोषाल एम० ए० मुझको अपनी लाइब्रेरीसे अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़नेके लिए देते थे। टी० एन० जुबली कालेजके सेक्रेटरी बाबू लाड़िमोहन घोष मेरे ऊपर बड़ी दया करते थे। उनकी कन्या मृणालिनीको मेरे बहनोई बंगला पढ़ाते थे। अपने बहनोईकी अनुपस्थितिमें मैंने भी कुछ दिन मृणालिनीको पढ़ाया था। उस समय लड़कीकी उम्र ११-१२ वर्ष थी। यह मृणालिनी ही पाइकपाड़ाकी रानी मृणालिनी बनी। इस समय केशव सेनके कनिष्ठ पुत्र निर्मलचन्द्र सेनकी पत्नी हैं। उन्होंने विलायत जाकर अच्छा नाम कमाया है। भारतीय स्त्रियोंमें उन्होंने ही पहले हवाई जहाजमें चढ़ने का साहस किया था। वह आजकल विलायतमें रहती हैं। और एक ऊँचे दर्जेकी मेम साहिबा हैं। केशव सेन महारानी विक्टोरियाके Godson (धर्म-पुत्र) थे। इस सम्बन्धसे रानी मृणालिनी और उनके पतिका विलायतके अँग्रेज राजपुरुषोंमें अच्छा सम्मान था। अस्तु, मेरे भाग्यमें स्कूल-कालेजकी शिक्षा विधाताने लिखी ही नहीं थी, इसका अन्तिम प्रमाण भागलपुरमें मिल गया। इतनी सुविधा और सुयोगके होते हुए भी मेरी प्रवेशिका परीक्षाके मार्गमें

पुनः बड़ा विघ्न उत्पन्न हुआ। परीक्षाके समय दुःसाध्य सिरदर्द से पीड़ित होकर मैं चिकित्साके लिए राणाघाट चला गया। मुझे स्कूलकी परीक्षामें सदा ही भय लगा रहता था। श्रीभगवानने कौशल पूर्वक मुझे उस भयावह परीक्षाके दायित्वसे बचाया, परन्तु दया करके जो भयानक रोग उन्होंने मुझे दिया, उसका फल मैं आज पर्यन्त भोग रहा हूँ। इसको मैंने श्रीभगवानका दान समझ कर ही ग्रहण किया है।

राणाघाटमें आकर मैं कुछ दिनों तक अपने पूज्यपाद पिताजीकी पाठशालाके छात्र, घटकपाड़ाके प्रसिद्ध कविराज वेणीमाधव राय महाशयकी चिकित्सामें रहा। कविराजजीने सिर मुड़ाकर बकरीके दूधमें तेजपत्र घिसकर सिरमें लेप करनेकी व्यवस्था दी। दूसरी औषधियोंकी भी व्यवस्थाकी गयी। उस समय मेरा चेहरा बड़ा सुन्दर था। सिर पर घने घुँघराले केश और बीचमें सुन्दर माँग, मुँह पर उठी हुई सुन्दर नन्हीं नन्हीं मूँछें, और यत्र तत्र सुकोमल दाढ़ीके बाल थे। इस प्रकारके सुन्दर केशोंको मुँड़ाते समय मुझे बड़ा ही दुःख हुआ। परन्तु कविराज महाशयका आदेश अलंघनीय था। इच्छा हुई कि अपने शौककी दाढ़ी-मूँछ रखकर सिर मुंडन करवाऊँ। नाईको ऐसा ही आदेश देकर सिर मुण्डन कराने बैठा। परन्तु यह बात किसी प्रकार पिताजीके कानोंमें पहुँच गयी। उन्होंने नाईको कड़ा हुक्म दिया, और मेरी ओर रोषपूर्ण नेत्रोंसे देखते हुए बोले—"बेटा! तुम क्या मुसलमानके बच्चे हो?" मैंने चुपचाप सिर मुंडन करा लिया। इतने शौककी मूँछ-दाढ़ी और केशको तिलाञ्जलि देकर मुँडित हो गया, सिर एक बेलके समान हो गया। सिर पर औषधि लेपन करके दुःखित चित्तसे घर पर बैठकर केवल पुस्तकें पढ़ता था, घरसे बाहर नहीं निकलता था।

इस प्रकार कुछ दिन राणाघाटमें रहकर चिकित्सा कराने पर भी कुछ विशेष लाभ न हुआ। उसी समय नवद्वीपके प्रसिद्ध कथाकार दीनानाथ गोस्वामीकी कन्याके साथ मेरे छोटे भाई गुरुदासका शुभ विवाह निश्चित हो गया। पिताजीकी आर्थिक दशा उस समय अत्यन्त खराब थी। उन दिनों वैदिक समाजमें पुत्रके विवाहमें भी खर्च होता था। कन्याके पिता सम्भ्रान्त और सज्जन पुरुष थे, इसके अतिरिक्त वह मेरे मँझले बहनोईके बड़े भाई थे। पूर्व सम्बन्धको दृढ़ करनेके लिए ही यह सम्बन्ध स्थिर हुआ था। हम सब लोग इस विवाहके उपलक्ष्यमें अपने घर दोगाछिया आये। विवाहके दिन मेरा सिर दर्द इतना बढ़ा कि सब लोग मेरे कारण व्याकुल हो उठे। दोगाछियाके तत्कालीन प्रसिद्ध कविराज, मेरे मातृकुलके विश्वेश्वर भट्टाचार्यने मेरी चिकित्साका भार लिया। कुछ दिन उनकी चिकित्सा चलती रही। परन्तु कुछ विशेष फल न हुआ। इसके पहलेसे ही मेरे शरीरमें एक और व्याधिके लक्षण दीखने लगे। वह था अर्श। मैं जो अनेक ऐसे गुणोंकी खान हूँ, आजतक यह अर्श रोग मेरे शरीर पर अधिकार कर निष्कण्टक राज्य कर रहा है। 'निष्कण्टक' शब्द व्यवहार करनेका तात्पर्य है। मेरे अर्श रोगमें कोई ताप-सन्ताप नहीं होता, केवल बीच-बीचमें

रक्तस्राव होकर शरीरको दुर्बल कर देता है। ये सब रोग हमारे संगी साथी हैं। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, न जाने कितने रोगोंने इस शरीरको आश्रय स्थान बना लिया है और बना रहे हैं। मेरा कथन यह है—"सब रोगो ! आओ। सब एक साथ आओ। इस अनित्य देह-मन्दिर पर अधिकार करके यदि तुम्हें सुख मिलता है तो सुख भोगो। निर्विवाद पूर्वक दखल कर कर भोगो। परन्तु एक बात याद रक्खो, तुम्हारी सेवा करनेके लिए मेरे पास समय नहीं है। तुम अपनी सेवा अपने आप ही करना। तुम स्थान-च्युत न होना, अर्थात् देह मन्दिरसे अन्यत्र अनधिकार प्रवेश न करना। यदि मन-प्राणको तुम स्पर्श करोगे या स्पर्श करनेकी चेष्टा करोगे तो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। यह बात याद रखना !"

छोटे भाईके विवाहके बाद हम फिर राणाघाट आये। वहाँ भी मेरे सिरदर्दकी नाना प्रकारसे चिकित्सा होने लगी।

अब पढ़ने-लिखनेकी आशा या इच्छा मुझे तनिक भी नहीं रह गयी थी। पिताजीकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गयी थी। छोटे भाईके विवाहमें वे कुछ ऋण ग्रस्त भी हो गये थे। अब इस प्रकार मेरा घर पर बैठे रहना अच्छा न था। ऐसा सोचकर राणाघाट छोड़कर पुनः भागलपुर नौकरीकी खोजमें जानेका मैंने संकल्प किया। उस समय मेरे शरीरकी अवस्था नितान्त बुरी न थी। पूज्यपाद पिताजीने पूरी अनिच्छा होते हुए भी मुझको अर्थोपार्जनकी चेष्टा करनेके लिए विदेश जानेकी अनुमति दे दी। जुलाई सन् १८८८ ई० में मैंने भागलपुर नौकरी करनेके उद्देश्य से प्रस्थान किया। वहाँ जाकर मैंने पुनः बहनोईका अन्नदासत्व ग्रहण किया।

डाकघरमें अवैतनिक उम्मेदवारी

•

'दिल्लीके लड्डू'की खोजमें मैंने पुन: भागलपुरमें १८८८ ई० की जुलाईके अन्तमें अपने बहनोईका अन्नदासत्व स्वीकार किया । उस समय मेरी अवस्था केवल २२ वर्षकी थी । उस समय मेरे एक और चचेरे बहनोई भागलपुरके डाकघरमें नौकरी करते थे, वेतन था बीस रुपये मासिक, और नाम था उनका विधुभूषण भट्टाचार्य । वे प्राय: १५ वर्ष डाकघरकी नौकरी करके इस बीस रुपयेके पद पर पहुँचे थे । वे सपरिवार बिना भाड़ा दिये डाकघरके सरकारी मकानमें रहते थे । वे मेल-क्लर्क थे, दिन-रात काम करना पड़ता था, इसी कारण उनको सरकारी मकान मिला था । उनके साथ मेरी चाची भी उसी मकानमें रहती थी । मेरे इस बहनोईका वासा नया वाजारसे एक मीलसे अधिक दूर था । मैं बेकार अवस्थामें बीच-बीचमें प्राय: बड़े डाकघरमें जाकर बिधुबाबूके साथ नौकरीके सम्बन्धमें बातचीत और परामर्श करता था । न जाने क्यों लड़कपनसे ही मुझको डाकघरकी नौकरी बहुत अच्छी लगती थी, और पोष्टमाष्टरकी नौकरी मैं बहुत पसन्द करता था । मुझे याद है, जब मेरी अवस्था १२-१३ वर्षकी थी उस समय मेरे ग्राम दोगाछियामें पहले पहल एक नया डाकघर खुला था । नये पोष्ट-माष्टर हमारी ही जातिके ब्राह्मण थे । वे युवक थे और दस रुपया मासिक वेतन पाते थे । गाँवके सब लोग उनका बड़ा आदर करते थे, सभी ब्राह्मणोंके घर वे प्रतिदिन निमन्त्रित होते थे । कुछ दिनके बाद वे सपरिवार रहकर हमारे ग्राममें नौकरी करते रहे और सपत्नीक पोष्टआफिसके मकानमें रहते थे । वे ऊपरके अफसरोंसे दूर रहते थे, और उनकी प्रतिदिनकी डाँटफटकारसे मुक्त थे । उन्हें गाँवके लोगोंका प्रेमपूर्वक व्यवहार तथा सम्मान प्राप्त था । दासत्व जीवनकी यह सुख सुविधा, तथा कुछ स्वाधीनता देखकर मेरे मनमें इस प्रकारके 'दिल्लीका लड्डू' प्राप्त करनेका बड़ा लोभ होता था । भागलपुरके बड़े डाकघरके बड़े पोष्टमाष्टरकी यह दासत्व-सम्पद्की पराकाष्ठा देखकर मेरा वह वाल्यजीवनका लोभ पुनरुद्दीप्त हो गया, और मैंने बिधुबाबूसे कहा कि मैं डाकघरकी नौकरी करूँगा । भागलपुर जैसे स्थानमें, इतने बड़े-बड़े लोगोंकी सिफारिशकी सुविधा और संयोगके बल पर मुझको एक अच्छे 'दिल्लीका लड्डू' प्राप्त करनेकी संभावना

थी। परन्तु मेरे जैसे मूर्खके भाग्यमें डाकघरकी 'मोहर लगानेकी' नौकरीको ही मैंने अपने उपयुक्त समझा। मैं सदासे ही स्वतन्त्र व्यक्ति रहा, किसीकी कोई आज्ञा मानने वाला पात्र मैं कभी न था। मैंने अपनी इच्छासे डाकघरकी नौकरीमें प्रवेश किया।

एक दिन मैंने सुना कि भागलपुरके डाकघरमें एक सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब परिदर्शन करने आये हैं। उनका नाम था जे० एफ मक्लाफलिन (J.F.Mc.Laughlin) वे बूढ़े थे, परन्तु बड़े कड़े मिजाजके थे। उनके पास जानेका साहस किसीको नहीं होता था। उस समय वहाँ पोष्ट माष्टर थे एक बंगाली, नाम था अविनाशचन्द्र घोष, निवास था बारकपुर मनिरामपुरमें। उनका रङ्ग था काला स्याह। बड़े कड़े मिजाजके थे। जैसे सुपरिण्टेण्डेट, वैसे पोष्टमाष्टर! 'यादृशी शीतला देवी तादृशः खरवाहनः' इस प्रकारके दो दुर्दान्त अफसरोंके पास 'दिल्लीके लड्डू' की भीखके लिए मुझे हाथ फैलाना पड़ेगा। उनके साथ बातें करना जीवन-मरणके संधिस्थलमें गमन करनेके समान था। शुभ दिन देखकर अपने हाथसे अंग्रेजीमें एक आवेदन-पत्र लिखकर उसके निम्नभागमें अपने हस्ताक्षर करके तथा बिधुबाबूसे राय लेकर डरते-डरते एक आदमीके द्वारा वह दरख्वास्त डाकघरके भीतर भेज दिया। मन ही मन डरता हुआ अष्टमी-पूजा में बलिके लिए तैयार बकरेके समान साफ-सुथरा कपड़ा पहनकर डाकखानेके बरामदेमें मैं खड़ाहो गया*। कुछ देरके बादही मेरी पुकार हुई। एक आदमी दरवाजा खोलकर मुझको डाकघरके भीतर ले गया। मैं बिधुबाबूका आदमी हूँ, यह बात पोष्ट माष्टर नहीं जानते थे, यदि जानते होते तो बड़ा विरोध करते। क्योंकि बिधुबाबूके साथ उसकी बनती न थी। साहबने मेरी दरख्वास्तको पढ़कर मेरी ओर एक वार शुभदृष्टिपात किया, और बिना कुछ पूछे डाकघरमें काम सीखनेके लिए मुझे आदेश दिया। मैंने लम्बी साँस लेकर राहत पायी, डाकघरके बाहर आकर बिधुबाबूके घर जाकर मैंने उनको यह संवाद दिया। मेरे बहनोई चन्द्रभूषण भट्टाचार्यने सुना कि 'मेरे घरका भात खाकर जंगली भैंस हँकाने वाला' डाकघरमें उम्मीदवारीकी नौकरी पा गया।

---

*वृद्धावस्थामें सारी बातें याद नहीं आतीं। मैं लिखना भूल गया था कि बाल्यकालमें मैं बड़ा तोतला था, और बड़ा ही नाजुक था। मेरा छोटा भाई मुझसे भी अधिक तोतला था। मुझे याद है कि राणाघाट स्कूलमें मैं जब एन्ट्रैन्स क्लास में पढ़ता था, उस समय तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर रिवर्स टामसन (Sir Rivers Tompson) स्कूल परिदर्शन करने राणाघाट आये थे। अँग्रेजी कविता-पाठ करनेके लिए हेडमास्टरने मुझको चुना। परन्तु मेरे इस वाग्दोष के कारण मेरा नाम काट दिया। २०-२२ वर्ष तक मेरा यह रोग प्रबल रहा। इसके डरसे मैं किसी विशिष्ट व्यक्तिके साथ बात करनेका साहस नहीं करता। साहबके साथ बातें करनी पड़ेगी, मैं तोतला हूं, कैसे पहले बात करूँगा—इस भयसे मेरा मुँह सूख गया था। कैसे मेरा यह रोग चला गया, तथा कैसे मेरे नाजुक भाव धीरे धीरे दूर तो गये, यह मैं नहीं जानता। यदि दोनों रोग रह गये होते तो मेरी उन्नतिमें विशेष बाधा उपस्थित करते।

अवैतनिक उम्मेदवारीका जीवन-काल

•

डाकघरकी इस उम्मेदवारीके मौजकी कुछ बातें लिखे बिना मेरी यह आत्मकथा अधूरी रह जायगी। एक मीलसे अधिक रास्ता चलकर प्रतिदिन मुझको सवेरे एकबार ४ बजे नया बाजारसे बड़े डाकघर जाना पड़ता, १२ बजे बासे पर लौटकर पुन: दो बजे जाना पड़ता, सबके अन्तमें रातको ७-८ बजे तक सिरतोड़ परिश्रम करनेके बाद अर्द्ध मृत अवस्थामें बासे पर लौटता था। तीन बजे रातको उन दिनों लूपलाइनकी मेल आती थी। पहली डिलीवरी सवेरे ५ बजे होती थी। इसलिए रातको ३॥ या ४ बजे क्लर्कोंकी हाजिरी होती थी। इस प्रकार बहनोईके घर भात खाकर बिना वेतन डाकघरकी भैंस हँकाना मेरा नित्यका काम था। लगभग दो मास इस प्रकार उम्मेदवारी करके मेरी नौकरी हुई १५ दिनके लिए १५ रु० मासिक वेतन पर भागलपुरके बड़े डाकघरमें। काम था हिन्दी चिट्ठीके ऊपर डाकघरका नाम अंग्रेजीमें लाल स्याहीसे लिखना, तथा चिट्ठियाँ छाँटकरके डाकके थैलेमें बन्द करना। मैं हिन्दी नहीं जानता था, अनेक प्रकारके लोगोंकी लिपि पढ़ना मेरे लिए एक दम असंभव काम था। पोष्ट माष्टर साहबको यह बात कहने पर वह गर्म स्वरमें बोले—"काम नहीं कर सकते हो तो नौकरी छोड़ दो।" वे मेरे ऊपर भी बहुत नाराज थे, क्योंकि मैं बिधुबाबूका आत्मीय था। नौकरीके लिए पोष्ट माष्टर साहबका अपना भी एक उम्मीदवार था। उसकी नौकरीके लिए वे बहुत परेशान थे। इसकारणसे भी मेरे ऊपर उनकी नेक नजर न थी। जो हो, मैं सिर ठोककर डाकघरमें काम करने लगा उस समय बालानाथदास नामक एक हिन्दुस्तानी निचले दर्जेके क्लर्क थे। उनके पैर पकड़ कर विनती करने मैंने कहा—"भाई, तुम मेरी हिन्दी चिट्ठियोंके ऊपर लिखित डाकघरका नाम अंग्रेजीमें लिख दो, 'खत पहुँचे जिला मुङ्गेर डाकखाना खरगपुर'—मैं पढ़ नहीं पाता हूँ, क्या करूँ? मैं तुम्हारे दूसरे कार्य कर दूँगा।" बालानाथदास बोले—'तुम बंगाली लोग बड़े चालाक हो। तनख्वाह लोगे तुम, और काम करेंगे हम—ऐसा नहीं हो सकता है।" मैं और क्या बोलता? चिट्ठीका गट्ठा सामने लेकर बैठा हूँ, प्राण-पनसे चेष्टा कर रहा हूँ। कायस्थी हिन्दी पढ़ना बड़ा कठिन कार्य है। जो इसको लिखते हैं, वही बोलतेहैं कि, "कौन ससुरा लिखा है?" मेरी इस दुरवस्था

पर विधुबाबूकी नजर पड़ी। वह मेरे पास आकर बोले कि बालानाथको मैंने कह दिया है, वह तुम्हारा यह कार्य कर देगा, परन्तु उसको इन १५ दिनोंमें दो रुपये देने पड़ेंगे। मैं आखिरकार राजी हो गया। बालानाथ दास तब हँसते-हँसते आकर मेरा काम कर देता। मेरा प्राण बचा। यहाँ यह भी कह देना चाहता हूँ कि इसके १५ वर्ष बाद जब मैं भागलपुरमें पोष्टमाष्टर होकर आया तो बालानाथ दासको उसी १५ रुपये महीने पर नौकरी करते देखकर पहलेकी उस बातको मैंने उनको याद करा दिया। यह सुनकर वे बहुत लज्जित हुए और मुझसे बोले—"यह सब किस्मतकी बात है।"

१५ दिनकी वह अस्थायी नौकरी समाप्त होने पर "पुनर्मुषिको भव"। फिर वही "घरका खाना और जंगली भैंस हँकाना,"—फिर वही "खत पहुँचे" की खोज। इस प्रथम नौकरीमें मैंने पाया था ७॥ रु०—इसमें बालानाथ दासको देना पड़ा २ रु०—शेष रहा ५॥ रु०। "पहली नौकरीका फल भगवानके भोगमें लगाना पड़ता है", —मेरी बहिनने कहा। पिताजीको ठाकुरजीको भोग लगाने के लिए ५ रु० मैंने भेज दिये। उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर पत्रमें लिखा कि, "ये पाँच रुपये मेरे लिए पाँच मोहर हैं।"

उसके लगभग एक महीनेके बाद एक महीनेके लिए भागलपुरके बड़े डाकघरकी खजान्चीगीरीका काम करनेका आदेश प्राप्त हुआ। परन्तु वेतन था केवल १५ रुपये मासिक। यह बड़ा ही उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य था। परन्तु जान पड़ता था, पोष्ट-माष्टर साहबने मुझको परेशान करनेके लिए ही यह काम मुझको करनेका आदेश दिया था। मैं यह सोच कर घबरा गया। विधुबाबू स्वयं यह नौकरी करते थे। पोष्ट-माष्टर साहबने लिखित आदेश दिया कि विधुबाबू खजान्चीका कार्य मुझको देकर रजिष्ट्रीका काम करें। उन्होंने विधुबाबूको बुलाकर चेतावनी दे दी कि वह मेरे पास आकर मुझे किसी प्रकारकी सहायता न करें। हाकिमके इस प्रकारके निष्ठुर, कठोर आदेशको सुनकर मेरी आत्मा सूख गयी। एक तो मैं हिसाब किताबमें जय गणेश था, उसके ऊपर यह रुपया-पैसा, टिकट आदिके हिसाबकी जबाबदेही! क्या करें, क्या न करें—सोचकर व्याकुल होने लगा। विधुबाबूने साहस दिलाकर कहा—"तुम काम करो, ठीक ठीक लेन-देन करना। शामके वक्त जब पोष्ट-माष्टर टहलनेके लिए बाहर जायगा, तो मैं तुम्हारा हिसाब ठीक कर दूँगा। मैं उस अत्यन्त जवाब देहीकी नौकरी पर बहाल हुआ। बहुत सावधानीसे कार्य करने लगा। पोष्टमाष्टर साहब आठ बजे घूमकर आते, तब हिसाब देखते थे। सब ठीक-ठाक पाते थे। एक दिन ३ रुपये हिसाबमें अधिक हुए। विधुबाबूके परामर्शसे उसे मैंने पाकटमें रख लिया। दूसरे दिन ३ रुपये हिसाबमें कम हुआ तो मैंने दे दिया। उसके बाद और कोई विशेष गड़बड़ी न हुई। किसी प्रकार सिर तोड़ परिश्रम करके मैंने एक महीने

यह नौकरी की। इससे मेरा सुयश हुआ और साथ साथ पोष्ट-माष्टर साहबका क्रोध भी मेरे ऊपर बढ़ गया।

भागलपुरके निकट मीरजान हाट नामका एक ब्रांच आफिस था, वहाँ मैं इसके पहले दो दिनके लिए काम करने गया था। मुझको वहाँसे बुलाकर पोष्टमाष्टरने यह खजाञ्चीका काम दिया था, और उनका आदमी जो उम्मीदवार था, उसको वहाँ भेजा था। उनका नाम था नरेन्द्र नाथ बसु। मुझको अयोग्य बनाकर डाकघरसे भगानेके लिए इस प्रकारकी व्यवस्था हुई थी।

"जाको राखे साइयाँ, मार न सकिहै कोय।"

खड़गपुर (मुंगेर) पोष्ट-आफिसमें

●

इसके कुछ दिन बाद मुझको अस्थायी रूपमें कुछ समयके लिए मुङ्गेर जिलाके वरियारपुर स्टेशन (ई० आई० आर० रेलवे) के समीप खड़गपुरमें ब्रांच पोष्टमाष्टरका काम करनेका आदेश प्राप्त हुआ। १८८८ ई० की मईका महीना बीत रहा था, वेतन वही १५ रुपये महीना। अर्थात् आठ आना प्रतिदिनकी मजदूरी। खड़गपुर खूब स्वास्थ्यप्रद स्थान है। दरभङ्गा महाराजकी जमीदारी है। वहाँ उनका एक सर्किल आफिस है, उस समय उसके मैनेजर पूर्णचन्द्र बसु थे। उनका वेतन पाँच सौ रुपया मासिक था। परन्तु उनके साथ मेरी घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी। पञ्चशत और पञ्चदश वेतन में मूलतः पञ्चका मेल था, परन्तु अन्ततः शत और दशका अन्तर होने पर भी पूर्णचन्द्रके मनमें विकार न था। पूर्णबाबूकी अवस्था थी पचासके ऊपर, मेरी थी बीसके ऊपर। ऊपर दोनों थे परन्तु अन्तर था बीस और पचासका। उससे पूर्णचन्द्रका कुछ बनता बिगड़ता न था। बीस-पचासमें वह कातर न थे। मैं था उस गांवके पोष्टल डिपार्टमेण्टका हेड, पूर्णबाबू थे जमीदारीके हेड। हेड-हेड में मेल होनेके कारण ही इतनी घनिष्ठता पैदा हो गयी थी, और इसीसे मित्रताका जन्म हुआ था। पूर्णबाबू बड़े ही निश्छल आदमी थे, वह दिल खोलकर अपने मनकी मुझसे कहा करते थे और मेरा पूरा सम्मान भी करते थे। मैनेजर साहबको इस प्रकार खातिर करते देखकर वहाँ सभी लोग मेरी खातिर करते थे। मैं खड़गपुरमें एक विशिष्ट माननीय पुरुष था। क्षेत्रबाबू थे हेड क्लर्क, और भी दो एक बंगाली क्लर्क वहाँ थे।

वहाँ डाकघरमें मेरा एक चपरासी था। नाम था उसका दर्शनलाल। वह जातिका था नाई एवं बड़ा ही धूर्त और चतुर था। एक खपरेके आठ घरके मकानमें डाकघर था। उसके सामने विस्तृत मैदान था। वहां सप्ताहमें दो बार हाट लगता था। दूरदूरसे स्त्री-पुरुष वहाँ बाजारमें खरीदने-बेचने आते थे, और डाकमें चिट्ठी-पत्री भी डालते थे। दर्शनलाल डाकघरके बरामदेमें बैठकर लिफाफा, पोस्टकार्ड, टिकट आदि बेचता था, और बीच बीचमें भीतर आकर डाकघरका काम भी करता था। दूरदूरके गाँवोंसे अपढ़ पुरुष-स्त्री जब लेटरबक्समें चिट्ठी डालने आते तो चतुर नाई दर्शनलाल उनसे कहता—

"देखो यह डाक देवता है। इनकी मूर्ति है। रंगलाल है, आँख भीतर में है, इनके गोड़ लागो और कुछ दक्षिणा दो, तब तुम्हारी चिट्ठी ठीक ठीक पहुँच जायगी।"

सरल हृदय निरक्षर ग्रामीण नर-नारी इस बात पर विश्वास करके लेटर बक्सको दण्डवत् प्रणाम करते और चिट्ठीके साथ दो-एक पैसा दक्षिणा डालकर चले जाते थे। दर्शनलाल बक्स खोलकर उसे अपने जेबमें रखता। मैं इसके विषयमें कुछ भी नहीं जानता था। एक दिन हाटके दिन दर्शनलाल काम पर नहीं आया; मुझे ही अपने हाथों सब काम करना पड़ा। लेटरबक्स खोलकर मैंने देखा कि उसके भीतर ८-१० आने का ढेबुआ (ढेबुआ=एक आना) तथा कुछ फल-मूल है। देखकर मैं अवाक हो गया! इस अयाचित अर्थका कुछ भी अर्थ समझमें न आया। दूसरे दिन दर्शनलालके आने पर मैंने उससे पूछा कि क्या बात है? उसने ठीक ठीक सारी बातें बता दीं, तथा विशेष रूपसे अनुरोध किया कि उसकी इस क्षुद्र आयमें कोई बाधा न आये। मैं उस समय नया हाकिम था 'नूतन काके विष्टा खाइते शिखियाछे'—मिजाज़ बड़ा कड़ा था। मैंने उसको इस प्रकार गैरकानूनी कार्य करनेसे रोका। वह बहुत म्रियमाण-सा हो गया, उस समय कुछ भी न बोला। तबसे दर्शनलाल सावधान तो हो गया, परन्तु मुझसे छिपाकर हाटमें जाकर दूसरे प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगा। मेरी उसके पीछे पड़कर C.I.D का कार्य करनेकी इच्छा न हुई। डाकघरके बाहर वह क्या करता है, यह देखना मेरा काम न था। यह इन्स्पेक्टरका काम था। यही मनमें सोचकर मैंने उसको और कुछ नहीं कहा।

खड़गपुरका प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर था। वहाँ दोनों ओर सुरम्य पर्वत श्रेणी विराजती थी, जो ३२ मील लम्बी फैली हुई थी। बड़े बड़े अंग्रेज उस पहाड़ पर शिकार खेलने जाते थे। उनके रहनेकी सुविधाके लिए महाराजा दरभङ्गाने इस पर्वत श्रेणीकी तलहटीमें एक बड़ा डाक बंगला तैयार कराया था। उसका नाम था "फूल बेड़िया कुटी"। वहाँका कृत्रिम सरोवर देखने योग्य है। इसके तीन ओर पहाड़ हैं और एक ओर दरभंगा महाराजका विपुल अर्थ-व्ययसे निर्मित एक विशाल बाँध है। उस सरोवरके दूसरी ओर पहाड़के ऊपरी भागमें एक मनोहर गर्मजलका स्रोत है। वहाँसे सदा ही मुङ्गेरके सीताकुण्डके समान उष्णजल बहता रहता है। दरभङ्गाके वर्तमान महाराजा रामेश्वर सिंह बहादुरने यहाँ एक सुरम्य चहबच्चा निर्माण कर दिया है। उसका नाम 'रामेश्वरकुण्ड' रक्खा गया है। देश-देशके लोग उस गर्म जलके सोतेको देखने जाते हैं। पर्वतके जंगलमें नाना प्रकारके वृक्ष हैं, जिनमें शाल, शिशप, पलास और आबनूस प्रधान वृक्ष हैं। स्थान स्थान पर घने बाँसके वन हैं। इस वनमें हिंस्र जीवोंका निवास है। इसीलिए शिकार करने अंग्रेज लोग यहाँ आते हैं।

उस खड़गपुरमें मैं लगभग एक वर्ष पोष्टमाष्टर रहा। उस पूर्व स्मृतिकी अनेक बातें याद आती हैं, वह सारी बातें लिखनेसे एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जायगा और कितना लिखूं ? लोग कहते हैं कि मैं कलम सिद्ध हूं। लोगोंकी बातोंमें भूलनेसे मेरा कार्य सिद्ध न होगा। अतएव वह सारी बातें पेटमें लेकर ही मरूँगा।

इस समय मैं अकेला था। अपने हाथ भोजन बनाया करता था। एक वेला भोजन बना कर दोनों बेला खाता था। स्वपाक बड़ा मधुर होता है। परम आनन्दसे था। एक दिन यह आनन्द निरानन्दमें परिणत हो गया। रातको सिद्ध अन्न परोसते समय देखा कि उसमें एक गोबरौला मरा पड़ा है। रातको भोजन नहीं हुआ। उसके दूसरे दिनसे रातमें भोजनकी व्यवस्था न करके जलपानका प्रबन्ध किया। किसी दिन चूड़ा-मूड़ी, किसी दिन दही-चूड़ा इस प्रकार पेट-पूजा करता।

पूर्णबाबू मैनेजरके यहाँसे बहुत-सी अंग्रेजी तथा बङ्गलाकी पुस्तकें पढ़नेका मुझे सुयोग तथा सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अंग्रेजी पुस्तक Tod's Rajasthan मैने पहले यहाँ पढ़ी थी। उसके फलस्वरूप एक कविता प्रणीत हुई। उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ। मैं कवि नहीं हूँ। फिर भी कविता प्रणयन करता हूँ, यह मेरा दुःसाहस मात्र है। मैं सदा ही दुःसाहसी पुरुष रहा।

राजपूत नारीका अग्नि प्रवेश

(१)

स्पर्शिया गगन तल
ज्वलिछे विषमानल,
उठिछे गगने धूम घन घनाकार।
बसुन्धरा टलमल
चारिदिके कोलाहल
दाँड़ाइया राजपूत कातारे कातार॥
सारि सारि दाँड़ाइया
अटल-निर्भय हिया
राजपूत नारी यतः प्रसून आकार॥

"आकाशको स्पर्श करती हुई विषम अग्नि जल रही है, अत्यन्त घने आकारमें धुआँ आकाशमें उठ रहा है। पृथ्वी कम्पायमान है। चारों ओर कोलाहल हो रहा है। राजपूत पंक्ति बाँधकर खड़े हैं, प्रसूनके आकारमें राजपूत स्त्रियाँ निर्भय और अटल होकर पंक्तिबांधे खड़ी हैं॥१॥

(२)

परिधान शुभ्रवास
एलाईया केशपाश
दाँड़ाइया हासिमुखे रमणी निकर।
शरीर चन्दन मय
मुखे शब्द 'जय जय'

शुभ्र वस्त्र पहने हुए केश पास विखरे हुए राजपूत रमणियाँ झुण्डकी झुण्ड मुस्कराती हुई खड़ी हैं। शरीर चन्दनमय हैं, मुखसे 'जयजय' शब्द निकल रहा है, वे पवित्रता की मानो

मूर्तिमती पवित्रता सारल्य आधार ॥
सुपवित्र अङ्गज्योति
विमल सतीत्व भाति
विकाशिछे चारु अङ्गे दिव्य मनोहर ॥

मूर्तियाँ हैं, सरलता उनका आधार है, अङ्गोंसे सुपवित्र ज्योति निकल रही है, उनके सुन्दर अङ्गोंसे दिव्य, मनोहर सतीत्व की विमल छटा छिटक रही है ॥२॥

(३)

चारुकण्ठे अबलार
कम-कुसुमेर हार
चारु अङ्ग विभूषित विविध रतने ।
दिव्य ज्योति मनोहर
हृदय विमुग्धकर
विकाशिछे सदा हासि प्रफुल्ल आनने ॥
पतिप्राणा वीर नारी
चलियाछे सारि सारि
पशिते ज्वलन्तानले गजेन्द्र गमने ॥

उन अबलाओंके चारु कण्ठमें पुष्पोंके हार सुशोभित हैं, सुन्दर अंग विविध रत्नोंसे विभूषित हैं। उनकी दिव्य मनोहर ज्योति हृदयको विमुग्ध करती है। उनके प्रफुल्ल आनन पर सदा हँसीकी छटा विकसित हो रही है। वे पतिप्राणा वीर-नारी पंक्ति बांधे गजेन्द्रके समान मन्द मन्द चालसे जलती हुई अग्निकी ज्वालामें प्रवेश करने चली जा रही हैं ॥३॥

(४)

अटल निर्भय काय
मुखे शब्द "आय आय"
पशिगे ज्वलन्तानले सहचरीगण ।
जीवन यौवन धन
पतिपदे समर्पण
करिगे स्वजनि आय छूटे, बाँधि मन ।
कि साध जीवने आर
बिना पति अबलार
आय सबे चितानले सँपिगे जीवन ॥

उनका शरीर अटल और निर्भय है। मुखसे शब्द निकल रहे हैं "सखियो! आओ, आओ, जलती हुई अग्निमें प्रवेश करें। हे सजनी! शीघ्र आओ, अपने जीवन और यौवन धनको पतिके चरणोंमें, मनको बाँधकर अर्थात् एकाग्र चित्तसे समर्पण करें। पतिके बिना अबलाओंके जीवनमें अब कौन साध रह गया है? आओ, सब मिलकर जलती चिताकी अग्निमें अपने जीवनको सौंप दें" ॥४॥

(५)

समुद्र कल्लोल मत
विधर्मी यवन जत
ऐ देख सहचरी घिरेछे नगरी ।

"सखियो! देखो, समुद्रकी तरंगोंके समान विधर्मी यवनोंने नगरको घेर लिया है, अब बिलम्ब करनेका

बिलम्बे नाहिक काज
पशिबे अनल माझ
आय सब सहचरि आय सारि सारि ॥
देखूक जगत आज
देखूक यवनराज
वीरवाला वीराङ्गना राजपूत नारी ॥

अवसर नहीं है। सखियो ! आओ, सबकी सब मिलकर अग्निमें प्रवेश करें। वीर-वाला, वीराङ्गना राजपूत नारियोंको आज जगत देखे, और यवन राजा भी देखें" ॥५॥

(६)

पुष्पवृष्टि चारिधारे
सज्जित कुसुम हारे
एके एके वाहिरिला राजपूत नारी।
एक शत दुइ शत
अगणित कत शत
स्वर्गीय प्रतिमा सम चले सारि सारि॥
प्रफुल्ल वदन चय
मुखे शब्द 'जय जय'
धन्य सती पुण्यवति ! धन्य वीर नारी॥

चारों ओरसे पुष्पवृष्टि हो रही हैं। कुसुमकी मालाओंसे सज्जित होकर एक एक करके राजपूत नारियाँ निकल पड़ीं। एक सौ, दो सौ, अनगिनत सैकड़ों स्वर्गीय प्रतिमाके समान झुण्डकी झुण्ड चल पड़ीं। उनके मुखमंडल खिले हैं, मुखसे 'जयजय' शब्द हो रहा है। धन्य ! सती, पुण्यवती, वीर नारी तू धन्य है ! धन्य है ! ॥६॥

(७)

एके एके वीर नारी
पड़िल अनल 'परि
गर्जिल अनल कुण्ड भीम आस्फालने।
स्पर्शिया गगन तल
ज्वलिल बिषमानल
छाइल गगने धूम घन आवरणे ॥
स्वर्ग हते देवगण
करिलेक आवाहन
वीरेन्द्र-रमणीगणे उल्लासित मने ॥

एक एक करके वीर नारियाँ अग्निमें जा गिरीं। भयंकर रव करता हुआ वह अनल कुण्ड गर्ज उठा। गगन-तलको स्पर्श करता हुआ विषमानल जल उठा। घने धूमका आवरण आकाशमें छा गया। स्वर्गसे देवताओंने उल्लसित चित्तसे उन वीरेन्द्र-रमणियोंका आवाहन किया।" ॥७॥

खड़गपुरका जीवन काल

•

खड़गपुरमें रहते समय डाकघरकी अज्ञता सम्बन्धी एक और रहस्यमूलक घटना है, उसका उल्लेख किए विना यहाँकी बात अधूरी रह जायगी। एक दिन डाकघरके इन्स्पेक्टर आये। वैसाखके महीनेमें हाटका दिन था। डाकघरके सामने मैदानमें एक आमका पेड़ था। उसकी छायामें कम्बल बिछाकर अपने आदमियोंके साथ कागज-पत्र लेकर आफिस लगाकर वे बैठे थे। बाजारमें आये हुए गाँवके लोग उनको घेर कर तमाशा देख रहे थे। उनका चपरासी बीच बीचमें आँखें लाल करके अपने हाकिमके रोबकी रक्षा करनेके लिए उन भोले-भाले ग्रामीणोंको धमका कर भगा देता था। भयसे वे लोग पीछे हट जाते थे। तथापि भेड़का झुण्ड हटता न देख-कर वह चपरासी बीच-बीचमें हाथमें लाठी लेकर उनको डराता धमकाता था। सहृदय हिन्दुस्तानी इन्सपेक्टर साहब उसको मना करते थे। परन्तु वह चपरासी सुनता न था। उसी समय एक बूढ़ी स्त्री हाथमें एक डाककी चिट्ठी लेकर वहाँ आयी और बोली—"डाकखानाका अपसरको पाछ मेरा कुछ अर्जी है"। चपरासी तो अग्निशर्मा हो उठा, उस बुढ़ियाको भगाने ही वाला था। परन्तु इन्स्पेक्टर साहबके कानोंमें वह बात पड़ते ही उन्होंने हुक्म दिया—"बुढ़ियाको सामने ले आओ"। हाकिमका हुक्म तामील हुआ। बुढ़िया आयी, और उसने एक चिट्ठी इन्स्पेक्टर साहबके हाथमें देकर कहा—"हमारा लड़का कलकत्तामें नौकरी करता हय। हम बहुत मुश्किलसे एक चिट्ठी लिखाया, मगर एक बात लिखानेको भूल गया, आप डाकखानाको अपसर हय, ए चिट्ठी आपना हातसे कलकत्तामें मेरा बेटाको तकसिफ कीजियेगा, अउर उसको जबानी बोल दिजिएगा, हमारा घरमें एक काली गाय बिआया हय। दोनों बखत तीन चार सेर दूध होता हय। जेतना जल्दी हय मेरा बेटाको घर आना चाहिए। दूध खानेको आदमी मेरा घरमें और कोई नहीं हय।"

ग्राम्यभावापन्न सरलचित्त बुढ़ियाका विश्वास था कि डाकघरका अफसर स्वयं डाककी चिट्ठी लेकर उसके पुत्रको कलकत्तामें जाकर वितरण करेगा। चिट्ठीमें जो बात लिखाना भूल गयी थी, बुढ़िया उसको सरल मन और सरल विश्वाससे

डाकघरके अफसरको बतलाकर पुत्रके नामकी चिट्ठी उनके हाथमें देकर निश्चिन्त होकर परम आनन्दपूर्वक वहाँसे चली गयी।

इन्स्पेक्टर साहब हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। वह तत्काल डाकघरमें आये, और मुझको यह बात कह सुनायी। यह भी कहा कि डाकघरके सम्बन्धमें इस प्रकारका अज्ञान गाँवके लोगोंमें कम नहीं है। उन्होंने इस प्रसंगमें एक अति सुन्दर हास्योद्दीपक बात मुझको सुनायी, वह भी जैसी मैंने सुनी वैसी वर्णन करता हूँ।

दरभंगा जिलेके किस डाकघरमें यह घटना घटी थी, उसका नाम मुझे याद नहीं। एक बुढ़ियाके बगीचेमें कटहलके पेड़में नया फल लगा था। आषाढ़का महीना था। उस पेड़का पहला एक पक्का कटहल अपने विदेशवासी पुत्रके लिए उसने बड़े ही यत्नपूर्वक रक्खा। कैसे विदेशमें अपने पुत्रके पास वह सौगात भेजी जाय—यह सोचते-सोचते वह बुढ़िया गाँवके डाकघर गयी। डाकबाबूसे परामर्श करनेके लिए उसने पूछा—"डाकबाबू! हमारे लड़काको पेड़का एक कटहल डाकमें भेज देना चाहिए, खर्चा क्या पड़ेगा?" डाकबाबू रसिक और चतुर-चूड़ामणि थे। वह गम्भीर भावसे बोले—"डाकमें भेजनेसे कटहल खराब हो जायगा, सड़ जायगा। तारमें भेजनेसे ठीक होगा। जल्दी पहुँच जायगा। और जबाबी तार देनेसे पहुँचनेका खबर भी आ जायगा।" बुढ़िया सम्बल रहित न थी। उसका कटहल जायगा, और तारसे उसकी प्राप्तिका सम्वाद भी आ जायगा—यह जानकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। उसने पूछा—"कितना खर्चा पड़ेगा?" रसिक डाकबाबूने उत्तर दिया—"दो रुपया जाने आनेका दोतरफा खर्चा पड़ेगा? पुत्र स्नेह वत्सला, सरल हृदया बुढ़िया यह बात सुनकर, घर जाकर तत्काल पक्का कटहल और दो रुपये लेकर फिर डाकघरमें आयी और डाकबाबूके पास उसे रखकर रसीद माँगी। चतुर डाकबाबूने एक कागज पर कुछ लिखकर बुढ़ियाके हाथमें देकर उसे बिदा किया। तब उन्होंने तारबाबूको बुलाकर हँसते हँसते कहा—"आज कटहल और मिठाई सबको खिलाओ जी। दो रुपयेकी मिठाई लाओ और कटहल सबको बाँटो।" डाकबाबूका हुक्म तुरन्त तामील हुआ। उस दिन डाकघरमें कटहल और मिठाईका महोत्सव हुआ। सब लोगोंने मिलकर हँसते हँसते पोष्ट माष्टरको शत शत धन्यवाद देते हुए भर पेट मिठाई और कटहल खाया। सुरसिक और सुचतुर डाकबाबूने तार-पिउनको सचेत करते हुए हुक्म दिया कि, "रात को जाकर तुम कटहलकी भुनड़ी बुढ़ियाके द्वार पर मजेके साथ रख आना।" यथासमय यह हुक्म ठीक ठीक तामील हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल बुढ़ियाने घरका द्वार खोलकर जो देखा तो सिरसे पैर तक वह दुःख और क्रोधसे जल उठी। वह अविलम्ब डाकघरकी ओर चल पड़ी। डाकबाबूको देखते ही बुढ़ियाने क्रोधसे काँपते हुए गाली देकर कहा—"छौंड़ा पूतियाको बेटा! हमारे लड़काको कटहल भेजा नहीं हय। तुम सब खाके भुनड़ी हमारा दुआर पर फेंका है। दो हमरा कटहल

और दो रुपया।" डाकबाबूने गंभीर भावसे बुढ़ियाको जलके समान शान्त कर दिया—"बुढ़िया ! तुमको कुछ भी समझ नहीं है। कटहल तुम्हारा लड़काको पास पहुँच गया है। तुम्हारा लड़का कटहल खाकर उसका भुँनड़ी तुमको देखनेके वास्ते भेज दिया है, जिसके वास्ते तुमने जवाबी तार दिया था।" उस युगका आदमी, एक तो बुढ़िया, दूसरे अज्ञानान्धकारसे आवृत, बुढ़ियाका हृदय चतुर डाकबाबूकी बात पर विश्वास किए बिना नहीं रह सकता था। उस समय उसने शान्त भाव धारण किया तथा अप्रतिभ होकर कहा—"हम बूढ़ा आदमी है, यह सब क्या जाने बाबूजी, कसूर माफ करो।" इतना कहकर बुढ़िया सन्देह-रहित होकर अपने घर लौट गयी। पश्चात् उसका पुत्र देश लौटकर आया और बुढ़िया माताको कटहल न पहुँचने की सूचना दी, तब क्या हुआ—यह खबर इन्स्पेक्टर साहब को न थी।

कलकत्तेमें शिक्षा नवीस

•

खड़गपुर (मुङ्गेर) में अस्थायी पोस्टमास्टरके पद पर काम करते समय मुझे १७ जन, १८८९ ई० को वेतन भोगी स्थायी शिक्षा-नवीस (Paid Probationer) के पद पर काम करनेका परवाना मिला। उस समय इस पदका मासिक वेतन केवल १० रुपये था। इस समय उस पदका वेतन ४५-५० रुपये हो गया है। साधारणत: डाकघरकी नौकरीमें बाबू लोगोंका ३०-४० रुपया वेतन पेन्शन पानेके समय हो पाता था। तबसे आजके समयमें कितना अन्तर हो गया है ?

डाकघरके शिक्षा नवीसका कार्य पाकर मुझे टेलिग्राफ तारका काम सीखनेके लिए कलकत्ता जाना पड़ा। उन दिनों १२ नं० ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीटमें टेलिग्राफ ट्रेनिंग क्लास लगता था। वहाँ छः महीने तक तारका काम सीखकर परीक्षामें पास होने पर डाकघरमें १५ रु० मासिक वेतन पर तारबाबू का काम मिलता था। मुझे इसी उद्देश्यसे कलकत्ता शहरमें छः महीने रहना पड़ा। इन छः महीनोंकी स्मृतिकी सारी बातें विस्तारपूर्वक लिखने पर एक छोटी पुस्तिका तैयार हो जायगी। इसलिए अत्यन्त संक्षेपमें सारी बातें फिर दूँगा।

वृद्ध माता-पिताको प्रतिमास मुझे मासिक सहायता करनी पड़ती थी। अन्तिम अवस्थामें पूज्यपाद पितृदेवकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। मैं दस रुपये वेतनकी नौकरी करके प्रतिमास कलकत्तासे एक वार राणाघाट माता-पिताके श्रीचरणोंका दर्शन करने जाया करता था और सात रुपये मासिक उनको घर-खर्चके लिए दे आता था। शेष तीन रुपयेमें अपना कलकत्तेका खर्च निभाया करता था। पूज्यपाद पिताजीके विशिष्ट अनुरोधसे राणाघाट घटक-पाड़ाके निवासी, रेलीब्रादर्सके तत्कालीन प्रसिद्ध दलाल बेचाराम घटक महाशय मुझको दिनमें अपने बासा पर एक समय भोजन देते थे, और दोगाछिया निवासी आहिरी-टोलाके प्रसिद्ध चावलके व्यवसायी श्रीवीरेश्वर तरफदार महाशय अपनी गद्दीसे रातमें अपने ग्रामवासी इस दरिद्र ब्राह्मणको एक बेला अन्नदान करते थे। उनके ही हाटखोलाके बासामें मैं रातको सोता था। बेचाराम घटकके बासामें १० बजेके पहले भोजन पानेमें विशेष असुविधा थी, क्योंकि

उनके बासाके सब लोग व्यवसायी थे। वे लोग दोपहरके बाद भोजन करते थे। मुझको सरकारी कामसे साढ़े दस बजे जाना पड़ता था अतएव रसोइया ब्राह्मणको किसी प्रकार मेरे लिए किसी उपकरणके बिना ही अधपका चावल उसी समय तैयार करना पड़ता था। मैंने अपने आत्मीय स्वजनोंके परामर्शसे उस पाचक ब्राह्मणको एक रुपया दक्षिणा और एक नवीन वस्त्र खरीद करके दिया, फिर भी साधारण आलू-भात यथा समय न पा सका। उधर वीरेश्वर तरफदारकी चावलकी गद्दीमें रातको एक बजेसे पहले कभी अन्न नहीं मिलता था। वहाँ गद्दीमें एक जगह ५०-६० आदमी रातको भोजन करते थे। इसके बाद उतनी रात गये दूसरी जगह सोने जाना पड़ता था। "भोजनं यत्र तत्र शयनं हट्टमन्दिरे"— कलकत्तामें मेरे भाग्यमें यही बदा था। साधारण दो-एक पैसेका जलपान अवश्य करता था। उस समय मैं युवा अवस्थामें था, पेटकी ज्वाला दुर्दमनीय होती थी। किसी प्रकारसे कुछ अंशमें क्षुधाकी निवृत्ति मात्र होती थी। हाटखोलासे मेरा तार सीखनेका आफिस लगभग ढाई मील दूर था। इतनी दूर मैं द्रुतगतिसे पैदल जाता था। इस प्रकार अत्यन्त कष्टपूर्वक शरीरसे कष्ट भोगकर डाकघरकी यह पहली नौकरी बजाकर अपने वृद्ध माता-पिताको आर्थिक सहायता करनी पड़ती थी। मुझे याद है, जब मैं कलकत्तेसे घर आता था, इसमेंसे ही कुछ न कुछ साधारण गृहस्थीकी वस्तु खरीदकर साथ ले जाता था? बालटी, सँड़सी-चिमटा, हाँड़ी तथा कभी कभी माताजीके लिए एक वस्त्र। जो कुछ मैं ले जाता, मेरे माता-पिता बड़े प्रेमसे अपने इस अयोग्य पुत्रके स्वोपार्जित धनसे खरीदी उन क्षुद्र गृहोपयोगी साधारण वस्तुओंको लेकर सबको दिखलाकर आनन्दित होते थे। उन सब बातोंको याद करनेसे मनमें अब बड़ा दुःख होता है। जब मैं अर्थोपार्जन करनेमें समर्थ हुआ, तो वे लोग स्वधाम चले गये। उनके दारिद्रय दुःखको दूर करनेका सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मेरा यह दुःख मरने पर भी नहीं जायगा।

पितृ-वियोग

•

छः महीने कलकत्ता शहरमें इस प्रकार बास करके मैंने डाकघरमें तारका काम सीखा। मेरा छोटा भाई गुरुदास इसी समय रुष्ट होकर राणाघाटसे कहीं भाग गया। इस कारणसे वृद्ध पिताजी बहुत दुःखी हुए, मातृदेवी व्याकुल होकर रोती रहीं। इसके साथ ही इसी समय पिताजीकी मानसिक उद्विग्नताका एक और कारण राणाघाटमें उपस्थित हुआ। घटक पाड़ाके एक दुष्ट चरित्र व्यक्तिने उनको फौज-दारीकी अदालतमें गवाह बना दिया। वे लोग जिस समय अपने मोहल्लेमें गाली-गलौज, मार-पीट कर रहे थे, उसी समय उसी मार्गसे पिताजी हाथमें श्रीमद्भागवतकी पुस्तक लिए पालचौधरीके घर पाठ करने जा रहे थे। इसी कारण उनको गवाह बना दिया। पिताजीने अपने जीवनमें कभी किसी अदालतमें गवाही नहीं दी थी। वे नितान्त धर्मभीरु ब्राह्मण पंडित थे। तत्कालीन राणाघाटके जमीदार सुरेन्द्रनाथ-पालचौधरीके परामर्शसे वे अदालतके समनके डरसे घरसे बाहर नहीं निकलते थे। इस अवस्थामें उनके मानसिक दुःखकी सीमा नहीं थी। एक तो कनिष्ठ पुत्रके वियोगका सन्ताप, दूसरे इस प्रकार अदालतमें साक्षी देनेका महाभय—इन दोनों प्रकारकी यन्त्रणाओंसे वे परम व्यथित हुए। उसी समय मैंने एक दिन शनिवारको कलकत्तेसे राणाघाट जाकर उनका दर्शन किया। १७ नवम्बर १८८६ ई० को सायंकालकी ट्रेनसे मैं राणाघाट पहुँचा। रविवारको रहकर सोमवारको एकादशीके दिन प्रातःकाल फिर कलकत्ता चला गया। सोमवारको प्रातःकाल पूज्य पिताजीको प्रणाम करके जब विदा हुआ, तब उन्होंने गुरुदासके लिए आँखोंमें आँसू भरकर स्नेहपूर्वक मेरा मस्तक सूंघकर आशीर्वाद दिया, और कहा—'गुरुदासका पता लगाना'। उस समय उनका शरीर स्वस्थ था, परन्तु वह विकट चिन्ताग्रस्त थे। उनके उदास मुँहको देखकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हुआ। मैंने रोते-रोते उनकी अन्तिम चरण-धूलि लेकर कलकत्ताके लिए प्रस्थान किया।

यथा समय कलकत्ता जाकर टेलिग्राफ ट्रेनिंगकी अन्तिम परीक्षा दे रहा था। अचानक करीब ३ बजे दिनमें एक जरूरी तार राणाघाटसे आया—

"Your father is in point of death come immediately" अर्थात् तुम्हारे पिता मरणासन्न हैं, शीघ्र आओ। मेरी अन्तिम परीक्षा कुछ बाकी थी। शिक्षक महाशयको टेलिग्राम दिखाने पर उन्होंने तुरन्त छुट्टी दे दी। हाथमें एक पैसा भी न था। बासा बहुत दूर था, वहाँ जाने पर उस दिन संध्याकी गाड़ीसे राणाघाट जाना नहीं होता। बन्धु बान्धवोंसे रुपया कर्ज लेकर तत्काल सियालदह स्टेशन आकर किसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक राणाघाटकी गाड़ी पकड़ी। साढ़े छः बजे राणाघाट स्टेशन पर पहुँचकर देखा कि मेरे मित्र केदारेश्वर घटक आदि २-३ आदमी वहाँ उपस्थित हैं। मुझसे उन्होंने पितृदेवकी मृत्युका समाचार छिपाकर कहा—"आओ, भेंट हो जायगी, वे बहुत पीड़ित हैं"। मै दौड़ते दौड़ते उनके साथ राणाघाट घटक पाड़ेके बासे पर गया और वहाँ जाकर देखा कि बहुतसे लोग द्वार पर रास्ता घेरे खड़े हैं। घरके भीतरसे मेरी माँकी करुण क्रन्दन-ध्वनि मानो मेरे कानोंमें बर्छी सी लगी। समझमें आ गया कि मैं पितृविहीन हो गया। लोग मुझको पकड़कर घरके भीतर ले गये। वहाँ देखा कि पिताजीका मृत शरीर आगंनमें तुलसी काननके बीच वस्त्रसे ढँका हुआ पड़ा है। मेरी स्त्री और माता मुझको देखते ही करुण क्रन्दनका भीषण चीत्कार कर उठीं, चारों ओर हाहाकार मच गया। राणाघाटके सभी भद्र लोग वहाँ उपस्थित हो गये। जमीदार सुरेन्द्रनाथ पालचौधरी वहाँ खड़े थे। मृतशरीरके संस्कारके लिए सारा प्रबन्ध हो चुका था। पांच मिनटके भीतर पिताजीका मृतशरीर बाहर निकाला गया, मैं अर्थी ले जाने वालोंमें एक था। चूरणी नदीके तीर नावका बन्दोबस्त था। नौका करके चाकदहके निकट कालीगंजमें गंगाजीके तट पर मेरे पितृदेवकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई थी।

वह दिन मेरे लिए बड़ा ही दुर्भाग्यका दिन था। परन्तु उस विपत्तिके दिन राणाघाटके सज्जन लोगोंने मेरे इस कार्यमें जिस प्रकार सहायता की थी, कहीं कोई वैसा नहीं करता। मैं इसके लिये उनका चिर कृतज्ञ हूँ। ४० वर्ष तक मेरे पूज्य पितृदेव राणाघाटमें रहे। वे वहाँ के आबाल-वृद्ध नर-नारीवृन्दके बड़े ही सम्मानके पात्र थे। उनके स्नेह और अनुरागके कारण सभी उनके परम प्रिय हो गये थे। इसी कारण उनके अन्तिम कालके सारे कार्य उन लोगोंने किये। मेरे हाथमें एक कौड़ी भी न थी। पिताजीके हरिनामके झोलेमें केवल एक रुपया था। तो भी मेरे पितृदेवके मृतशरीरका दाह संस्कार चन्दनकी चिता पर किया गया। बड़े समारोहके साथ राणाघाटमें उनका श्राद्ध किया गया। बहुतसे लोग निमन्त्रित हुए थे। ये सारे खर्च करनेके बाद राणाघाट वासी मेरे पिताके मित्रोंने मेरी माताके हाथमें २-३ सौ रुपये देकर दोगाछियामें घर पर भेजा था। उनके ऋणसे मैं जीवनमें कभी उद्धार नहीं पा सकता।

ग्यारहवें दिन आद्य श्राद्ध शेष होते होते मुझको एक तार मिला कि मुंगेरमें मुझे १५रु० मासिक वेतन पर एक दिन भी विलम्ब किये बिना डाकघरमें तारबाबूका काम करने जाना होगा। मैंने दूसरे ही दिन प्रातःकाल मुण्डित केश एक साधारण कपड़ेकी पोटली हाथमें लेकर शोकातुरा मातृदेवीको उस अवस्थामें राणाघाट रखकर मुंगेरके लिए प्रस्थान किया। उस दिनकी बात याद होने पर आज भी मेरी आँखोंके आँसूसे वक्षःस्थल तर हो जाता है। वह सारी दुःखकी बातें यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। पितृशोकाकुल पुत्रको अपनी पतिशोकाकुला जननीकी सेवा छोड़कर उसे ऐसी अवस्थामें रखकर विदेश जाना पड़ा केवल १५रु० रुपये महीनेकी नौकरी करनेके लिए। यह दृश्य चाकरी वृत्ति द्वारा आजोविका चलाने वाले भाग्यहीन बंगालीके घर ही शोभा पाता है। दुःखिनी शोकाकुल माताके अश्रुजलसे शरीर सिक्त कर दुःखित मनसे मैं घरसे बाहर निकला। ३० नवम्बर १८८६ ई० को शुक्रवारके दिन मैंने मुंगेरके लिए प्रस्थान किया।

यहाँ यह बता देना चाहता हूँ कि मेरा छोटा भाई गुरुदास राणाघाटसे भाग कर काशी चला गया था। वहाँसे भागलपुर मेरे बहनोईके घर आया। वहीं पिताजीके स्वर्गवासका समाचार पाकर वह राणाघाट आकर उनके आद्य श्राद्ध कार्यमें योगदान करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सका।

मेरे पूज्यपाद पितृदेवके इस आकस्मिक देहावसानका प्रधान कारण था दुश्चिन्तासे उत्पन्न हृद्-रोग। उनको शूल रोग पहलेसे ही था। एकादशीके दिन दोपहरके बाद कुछ विश्राम करके वह टट्टी गये, शौच आदिसे निवृत्त होकर आंगनमें एक अमरूदके पेड़की डालका अवलम्बन कर कुछ देर खड़े रहे। इसके पश्चात् दूसरे क्षण-भरमें निकटस्थ तुलसी काननमें वे अचानक गिर पड़े और गिरते ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

मुंगेरमें तारबाबू

•

पिताके वियोगके पश्चात् मेरी पहली नौकरी १५ रु० मासिक वेतन पर मुंगेरके बड़े डाकघरमें तारबाबूके पद पर लगी। मैंने राणाघाटसे मुंगेर जाकर पितृशोकसे आर्त्त, भग्नहृदय होकर १० दिसम्बर १८८९ ई० को कर्मक्षेत्रमें पदार्पण किया। उस समय अतुलकृष्ण वसु महाशय मुंगेरके पोष्टमाष्टर थे। वे मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। सिर मुँड़े, पितृविहीन सुन्दर ब्राह्मण बालकको नौकरी करते देखकर वहाँके सब लोग मुझ पर दया और श्रद्धा करते थे। मेरे एक स्वजातीय वैदिक श्रेणीके ब्राह्मण युवक थे हरिनाथ भट्टाचार्य। वे मुंगेर डाकघरमें उस समय बड़े तारबाबू थे, वेतन था केवल २० रु० मासिक। वे मणिरामपुर बारकपुरके निवासी थे। नवद्वीपके उपेन्द्रनाथ सरकार उस समय स्थानीय डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेड क्लर्क थे, उनका वेतन भी केवल ३० रु० मासिक था। तोपखाना बाजारमें एक बंगालीबाबूके मेसमें मैंने अपने रहनेका प्रबन्ध किया। उस मेसमें दस-बारह बंगाली थे। मुझे याद है, रेलवे आडिट आफिसके बड़े बाबू केदारनाथ घोषाल हमारे मेसके मैनेजर थे। उस समय मुंगेरमें भोजनका सामान बड़ा सस्ता था। मेसमें हमारा खर्च ५॥ रु० या ६ रु० मासिक पड़ता था। मैंने स्थायी नौकरी मिलनेके बाद ही डाकघरमें ५०० रु० का जीवन बीमा करा लिया। उसमें मेरा १५ आने १० पाई मासिक प्रीमियम लगता था। शेष १४ रुपयेमें मेसका खर्च, और धोबी-नाईका खर्च काटकर प्रतिमास अपनी दुःखिनी माताको दोगाछिया घर पर ७ रु० घर-खर्चके लिए नियमित भेजता था। इस साधारण सहायतासे वे किसी प्रकार गृहस्थी चलाती थीं। उस समय हमारा संसार बड़ा दुःखमय था। वह बात याद आने पर आज भी मेरे प्राण रो उठते हैं।

छोटी उम्रसे ही मुझको पढ़ने-लिखनेका रोग था। जीवनमें मैंने तास खेलना तक नहीं सीखा। आज ६३ वर्षकी अवस्थामें भी मैं तासकी चिड़िया और पान तकका ज्ञान नहीं रखता। मैं तास, पाँसा, जूआ आदि खेलके मौजसे बिल्कुल वञ्चित रहा। चाय, चुरुट, तम्बाकूने अब तक मुझको स्पर्श नहीं किया। बाल्यकालसे ही मेरे सारे

सुख पढ़ने-लिखने तक ही सीमित रहे। मुंगेरमें उस मेसमें रहकर एक एकान्त कोठरीमें बैठकर मैं अपनी रुचिकर चीजें पढ़ने-लिखनेमें लगा रहता था। स्थानीय स्कूलके माष्टरोंके साथ मेरा अच्छा मेल-जोल था। उनकी कृपासे मुझको स्कूलके पुस्तकालयसे पढ़नेके लिए ग्रंथ मिल जाया करते थे। अपनी उस छोटी आयमें भी मैं स्वयं बंगला और अंग्रेजीके तीन समाचार पत्रोंका ग्राहक था। स्वनाम धन्य गरिफाके अमृतलाल राय द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक 'Hope' तथा अंग्रेजी मासिक 'Hindu Magazine' एवं बंगला 'बंगवासी' मैं स्वयं मूल्य देकर लेता था, तथा अन्यान्य सामयिक अंग्रेजी-बंगला पत्रिकाएँ संग्रह करके मैं नियमित रूपसे पढ़ता था। इसके फलस्वरूप अंग्रेजी और बंगला भाषा पर मेरा कुछ अधिकार हो गया था। स्कूली पढ़ाई लिखाई मेरी साधारण ही हुई थी।

राणाघाट स्कूलके भूतपूर्व हेडमास्टर (उस समय वे सुपरिण्टेण्डेण्ट कहलाते थे) श्रीव्रजगोपाल मुखोपाध्याय एम० ए०, बी० एल० महाशय उस समय मुंगेरमें वकालत करते थे। अब भी सुनता हूँ अति वृद्धावस्थामें वे वहीं हैं। वे मुझको पितृहीन अवस्थामें असमय स्कूलकी पढ़ाई छोड़ते देखकर मेरी गृहशिक्षा 'Home education' पूरी पूरी हो सके, इसका वहाँ भी विशेष ध्यान रखते थे। मैं भी उनका अपने पिताके समान ही सम्मान करता था। उनके उपदेशसे मैं प्रतिदिन साप्ताहिक बंगवासीसे अपनी शक्ति-अनुसार स्वरचित अंग्रेजी भाषामें शुरूसे अन्त तक अनुवाद कर जाता था, उनके पाससे अंग्रेजी "Bengali" पत्रिका लेकर उसका बंगानुवाद इसीप्रकार करता था। इस अनुवाद प्रत्यानुवाद से मेरी अंग्रेजी-बंगला रचनाका अभ्यास बढ़ने लगा। व्रजगोपाल् बाबूने मुझको प्रति रविवार यह सब अंग्रेजी-बंगला अनुवाद लेकर उनके बासे पर आनेका आदेश दिया था। तदनुसार मैं प्रति रविवार उनके पास जाता था। वह नाममात्रके लिए मेरे अनुवादके कागजको उलट पलट कर देख लेते थे। कुछ संशोधन या विशेष उपदेश दिये बिना ही "अच्छा हुआ है" कहकर मुझे बिदा करके कहते थे, "और भी लिखो"। इस प्रकार सालभरसे अधिक समय तक मैं परिश्रमपूर्वक यह काम करता रहा और अपने वृहद् आकारके नोटबुकमें जो अच्छा लगता उसे लिख लेता था। व्रजगोपाल बाबूने परम प्रसन्न होकर "इण्डियन मिरर' अंग्रेजी दैनिक पत्रिकाके संवाददाताके रूपमें सम्पादक श्री नरेन्द्रनाथ सेन महाशयके साथ पत्र द्वारा मेरा परिचय करा दिया था। उसके फलस्वरूप मैं 'Indian Mirror' का मुंगेरका निजी सम्वाददाता नियुक्त हो गया था। मेरा लिखा हुआ प्रथम समाचार जब अखबारमें प्रकाशित हुआ तो मेरे आनन्दका ठिकाना न रहा। अपना लेख समाचारपत्रमें छपा देखकर मैं द्विगुण उत्साहसे विभिन्न प्रकारके अंग्रेजी लेख 'अमृतबाजार पत्रिका' 'स्टेट्समैन' आदि अंग्रेजी पत्रोंमें लिखने लगा। उनकी कतरन आज भी मेरे पास यत्नपूर्वक रक्खी हुई है। इस प्रकार मेरा नाम तत्कालीन शिक्षित

समाजमें खूब प्रसिद्ध हो गया। एक दिन प्रातःकाल मैं मुंगेर डाकघरमें बैठकर काम कर रहा था, उस समय एक कलकत्ता-निवासी सम्भ्रान्त पुरुष मेरे पास आकर बोले—"महाशय! हरिदास गोस्वामी यहाँ कौन हैं? कहाँ रहते हैं, बतला सकते हैं?" मैंने उत्तर दिया—"मैं ही हरिदास गोस्वामी हूँ।" उनको विश्वास नहीं हुआ कि मैं ही वह हरिदास गोस्वामी हूँ, जो अंग्रेजी समाचार-पत्रोंमें लेख लिखते हैं, क्योंकि उस समय मेरी नयी अवस्था थी, मैं नया छोकड़ा था, डाकघरमें साधारण वेतन पर नौकरी करता था। वे बोले—"इंडियन मिररमें अभी The Bengalis at home and Bengalis abroad, a contrast." शीर्षक बड़ा सा निबन्ध जिसने लिखा है, मैं उसी हरिदास गोस्वामीको ढूँढ़ता हूँ।" मैंने कहा—"हाँ महाशय! वही मैं हूं।" बहुत आश्चर्य-चकित होकर एक बार मेरे ऊपर आपाद मस्तक एक गहरी दृष्टि डालकर उन्होंने डाकघरके भीतर जाकर पोष्टमाष्टर अतुल बाबूसे मेरी बातकी सचाईके सम्बन्धमें प्रश्न किया। अतुल बाबू मुझको जानते थे। उन्होंने जब बताया कि मैं ही वह लेखक-पुंगव हूँ तब उन सम्भ्रान्त पुरुषको विश्वास हुआ। तब उन्होंने मुझको फिर बुलाया और सबके सामने कहा—"आपके साथ आज मेरे बंगले पर २ नं० फोर्टमें आपके इस लेखके सम्बन्धमें कुछ विचार-विमर्श होगा। क्या आप अनुग्रह करके संध्याके बाद वहाँ आवेंगे?" मैंने पोष्टमाष्टर महाशयके मुँहकी ओर देखा। वे बोले—"गोस्वामी! जाओगे न? मैं भी चलूँगा। मैं देखूँगा कि तुम्हारे भीतर debating power अर्थात् तर्कना शक्ति कैसी है? उस दिन सन्ध्याके बाद हम लोग कुछ आदमी एक साथ डाकघरके बगलमें उस सम्भ्रान्त पुरुषके बंगले पर गये। वहाँ देखा कि अपने कई मित्र वकील, डिप्टी आदि कुछ गणमान्य विशिष्ट जनको लेकर वे बैठकमें आमोद-प्रमोद कर रहे हैं। हमको देखते ही उन्होंने आदर पूर्वक बैठनेके लिए आसन दिया, और पहले ही कहा कि "डाकघरके इस किरानीबाबूने बिदेशी बंगालीके सम्बन्धमें इण्डियन मिरर में जो कुछ लिखा है, उसके सम्बन्धमें आज कुछ विचार होगा। इन्होंने लिखा है कि विदेशी बंगाली और बंगाल देशवासी बंगाली—दोनोंमें विशेष विभिन्नता पायी जाती है। इनकी प्रकृतिमें भी विभिन्नता लक्षित होती है। ऐसा लगता है मानो आचार-व्यवहारमें दोनों दो विभिन्न जाति या सम्प्रदाय हैं। क्या यह सत्य है?" इस विषयको लेकर उस समय गर्म बहस शुरू हो गयी। एक ओर मैं था और दूसरी ओर वे ५-७ शिक्षित विदेशवासी विशिष्ट बंगाली थे। सारथियों से घिरने पर जैसे अभिमन्युके ऊपर वाण वर्षा हुई थी, उसी प्रकार अजस्त्र वाक्य वाण वर्षा मेरे ऊपर होने लगी। मैंने विचार और तर्कके द्वारा एक एक करके उनके सारे वाक्य वाणोंको व्यर्थ करके अपने सिद्धान्तकी पुष्टिकी। उपस्थित शिक्षित सज्जनवृन्द मेरी वाक् चातुरीकी छटा, और विचार-विश्लेषणकी घटा देखकर अवाक् हो गये। मैं तर्कमें विजयी होकर बासे पर लौटा। सभी उपस्थित सज्जन मुझको धन्य धन्य कहने लगे। उस दिनसे मुंगेरके शिक्षित सभ्यसमाजमें मेरा खूब आदर सत्कार हो

लगा। वह अंग्रेजी लेख यहाँ उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण न कर सका। यह लेख १० मई १८६० ई० के Indian Mirror के अंकमें प्रकाशित हुआ था*।

---

*The Bengalis at Home and the Bengalis Abroad—A contrast. To the Editor of the "Indian Mirror."

Sir,

The heading of the subject in hand is sufficient to convince your readers that I am going to give a description of the Bengalis who remain at home, and earn their livelihood by humble means and of those, who have taken service and to other professions, as their means of subsistance, and in consequence have to roam about in many distant places, and to spend the greater portion of their lives, far away from their native land. The remarks I would pass on this subject, are the results of my practical experience and knowledge of Bengali life at home and abroad. I must tell the truth at any risk, but as truth is always disagreeable I am afraid, my remarks will provoke indignant criticism in certain quarters.

Bengalis at home and the Bengalis abroad appear to me to be two different classes of men, quite indifferent to, and heedless of, the interest of each other. Bengalis, who live abroad, are generally well to do men, and many among them are, of course, well-educated. In every Indian town of some importance, where there are some public offices, a strong element of Bengali residents may be seen, serving there as Head Babus or clerks etc., and living together for the most part with their families and children, where the number of such Bengalis is considerable, and where there are some among them, who hold well paid post, and who are professional men of some standing a division is always made amongst them, and a distinction is observed. A high circle is generally formed in such a places; the illpaid clerks and other Bengalis of less importance and income, are not allowed to mix with the men of the so called high circle, though their number may be comparatively small. As a consequence of this a *Daladali* is formed, as is now the case with every Bengali village; and jealousy, party feeling, discontent, enmity always prevail among them. It is a fact that cannot be denied, that many a Bengali, who live abroad have no paternal residence of their own to live in, or though some of them have a residence, so to say, yet it is merely nominal. The ancestral residences of many of them have either long tumbled down or are in a very wretched and dilapidated condition for want of timely repairs. But the Babus care very little for them. Some say, that their native land is not at all worth living in; some say, fixed residence is not required so long they are in service; some say they have no means to build a suitable house for themselves or even to keep their paternal residence in thorough repair. Do you know, Mr. Editor, why some of the Babus prefer spending the

मुङ्गेरके डाक घरमें मैंने तीन वर्ष तक नौकरी की थी। प्राथमिक डाक विभागकी शिक्षाने मेरे कर्म जीवनका पथ विशेष रूपसे उन्मुक्त कर दिया। इन तीन वर्षोंमें मैंने हाथमें कलम लेकर डाकघरके सारे कार्य सीखनेकी विशेष सुविधा प्राप्त की थी। यद्यपि मैं तार बाबू था, अर्थात् मुझे केवल तारका ही काम

---

time of their leave in the places where they hold service? These men, for the most part, have no house of their own to live in, and so it is better for them to remain where they are, during their leave. Some of them do not at all like to take leave unless compelled by circumstances,—and do you know why? My answer is the same as before. This is, indeed, the case with many who live from hand to mouth. This is certainly not creditable to them. The income of these men is sufficient, should they live a little economically, to do all that is required for a gentleman todo. Banglow-hire, carriage and horse expences, wages of servants etc., which are considered indispensably necessary for them to keep their position in right royal fashion and to maintain their families with ease and comfort, may be true to some extent. But is there no remedy? Western idea of civilization has ruined them for ever and they have no idea how to effect curtailment of their expenses strictly according to the Hindu method of economy. An ordinary gentleman of humble means, who live at house can easily afford providing his guests with metal untensils to have them fed, but many among the Bengalis, who live abroad, and who are proud of their so-called service, have no such things in their house at all. I was once invited as a Brahmin to eat at a so-called Hindu Deputy's house, and my fooding was served on plate and dishes, and I was given a tumbler to drink water instead of a brass or stone glass.

Now as regards their religious tendency, spiritual improvement, their manners and customs and their mode of living, I would like to mention something which I have been able to gather from constant intercourse with them. I do not know of Hindus so lamentably irreligious, and so fearlessly bold to throw the Hindu Shastras altogether over board, with some honourable exceptions, of course, as the Bengalis abroad. They profess to belong to any religion according to the circumstances they are placed in at times, and their manners and customs are changed according to their circumstantial requirements. They are creatures of circumstances in the strictest sense of the words. The up-country men, as a general rule hate the Bengalis for their polluted manners, and their unholy and un-Hindu lives. They do not take water even from the Bengali Brahmins, and in fact, many among them look upon the Bengalis in the same light as they do upon the Mohomadans. And what is the cause? My experiences have taught me that these men have in reality some good reason to hate the Bengalis, and to stand aloof from their society. They have formed an idea of Bengali life from

सबेरे शाम मिलाकर आठ घण्टा करना पड़ता था। परन्तु वह काम बहुत अधिक न था, तथा सदा काम नहीं रहता था। मैं सुयोग मिलते ही डाक घरमें जाकर सब विभागोंके काम सीखता था, तथा अपने विश्रामके समय भी भोजन आदि करके फिर दोपहरमें स्वेच्छापूर्वक डाकघरमें जाकर काम सीखता, तथा कायदा

---

the un-Hindu manners of a few Bengalis, who live in their midst, and with whom they always come in contact. It has, indeed, pained me much to see some of the Bengali Brahmins, with grey hairs on their heads, speaking slightingly of the Hindu religion and the Hindu Shastras, and questioning Manu's authority, which their fathers and fore-fathers followed with the utmost reverence. Religious customs and institutions, and social laws to the Bengalis abroad, are something like holidays, which it is their option to observe, or not to observe. They have no society at all—they have no society head,—they are found to do freely what they like. They are found to eat freely what they like, some of them actually take forbidden food—they break down boldly social laws and customs. They do not observe the caste system. They all eat together. The Brahmin and the Goldsmith, the Baidya and the Blacksmith, the Kayastha and the Oilman, the weaver and the washerman are all found to sit and eat together, and there is none to speak a word to them,—should any one dare to say a word of protest or give them a piece of advice, all of them fall foul on him, and he is put to trouble. Still these worthies are called Hindus, and they are the leading members of the Hindu society. When they come home, they are even found to attend *Hari savas! O tempora! O mores!* The evil these men are doing to the Hindu society and the Hindu religion is simply incalculable. They are contaminating the whole Hindu society, and the poor Hindus, their neighbours and relatives at home, who do not know their real character, or have no chance to read them thoroughly, thus unconsciously lose their dear religion and therefore endevour to remain aloof from their Company, for this reason orthodox Hindus do not like to mix with their relatives who live in distant places and thus try to avoid contamination. It is superfluous to state that the Bengalis abroad are not liked by the Bengalis at home nor the latter by the former. The reason is not far to seek. Long separation generally slackens the ties of love and affection. The Bengalis abroad cannot reasonably claim such amount of affection and love from their relatives at home, as they are entitled to get during their temporary stay at home for a month or so, after three or four years. Their relatives and neighbours are simple men, and generally God-fearing and religious. They can not but look with anxiety and fear at the un-Hindu manners of their relatives abroad, and naturally enough they shrink from their company, and try to leave their connections as far as possible. So it is evident that the Bengalis abroad, when they come home, get no happiness and comfort, and are disgusted, and

कानून पढ़ता था। इस प्रकार दिन रात परिश्रम करके मैं एक काम-काजका आदमी बन सका था। सब लोग यह बात कहते थे कि मैं कानून जानने वाला भी बन गया था। डाकघरके किसी कानूनकी चर्चा होने पर पुराने पोष्ट माष्टर अतुलकृष्ण बसु महाशय गोसाईं बाबूको बुलाकर सबसे पहले पूछते थे। गोसाईं बाबू उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे। इससे पुराने और बूढ़े क्लर्क यहाँ तक कि डिप्टी पोष्ट माष्टर भी गोसाईं बाबू पर कुदृष्टि रखते थे। अवश्य ही इसका कारण था हिंसा-प्रवृति। परन्तु सभी इस गोसाईं बाबूकी खातिर करते थे। प्रेम नहीं था, यह बात मैं नहीं कह सकता। क्योंकि जब जिनको काम पड़ता था, तब वे मेरा बड़ा आदर करते थे, निमन्त्रण देकर उत्तम भोजन कराते थे। डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेड क्लर्क उपिन बाबूसे मेरा उतना मेल-जोल न था। उनका घर नवद्वीपमें था। वे हाकिमके बड़े बाबू थे, इस कारण हकूमत करना उनको पसन्द था। मुझको यह अच्छा नहीं लगता था। बचपनसे ही मैं बड़ा आत्माभिमानी व्यक्ति था, स्वतन्त्र मैं सदा ही रहा, आज भी हूँ। इसके लिए मैंने खूब लड़ाई झगड़ा किया है, अब भी करता हूँ। क्या करूँ? यही मेरा स्वभाव है। "स्वभाव ना जाय मले, इल्लत् ना जाय धुले।"

डाकघरमें मेरा नाम प्रसिद्ध था—खूब काम करने वाला आदमी, तथा लिखने पढ़ने वाला आदमी। परन्तु वेतन था केवल १५ रु० मासिक। महात्मा शिशिर कुमार घोषके बहनोई मोतीलाल बक्सी महाशय जो बड़े साहबके बड़े बाबू थे, यह कहा करते थे कि मुंगेरके तार बाबू हरिदास गोस्वामी जैसी अंग्रेजी लिखते हैं, वैसी अंग्रेजी बड़े-बड़े पोष्ट माष्टर भी नहीं लिख सकते। उस समय डिप्टी पोष्ट

---

consequently they prefer remaining, where they serve, in their own fashion. The children of the Bengalis abroad are no better than their fathers. They have no sympathy with their nearest relatives at homes and have generally a hatred of their native land. They have imbibed all the disqualifications and demerits of their parents more or less, and are as un-Hindu in manners and customs as their fathers. I have seen boys objecting to have their heads shaved during the 'Upnayan' ceremony, and to take *Kacha*, and to do *Habishya* when their parents die. The case with the females of the Bengalis abroad, with a few exceptions, is the same as their lords. What will they do? They are but tools in the hands of their earthly gods.

My letter has become rather too long, but the multitude of matter discussed in it is my only excuse. I intend reverting to the subject in a future issue.

Monghyr,

10th May 1890.

Yours,

Hari Das Goswami.

माष्टर जनरलका ग्राफिस था दानापुरमें। मैं एक बार वहाँ घूमने गया था। सब लोगोंने मेरी खूब खातिरकी थी। परन्तु महीना वही १५ रु० था। डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्ट राय बहादुर सुदर्शन सिंह सेठ राधेश्याम सम्प्रदायके अन्तिम गुरुजी महाराज मुंगेरमें कुछ दिन हमारे अफसर रहे। उन्होंने बड़े साहबको मेरे विषयमें सिफारिश करके लिखा था।

"This is to certify that Babu Hari Das Goswami worked under me as second signaller Monghyr for more than six months, when I had enough opportunities to Judge of his merits. In education and scholastic attainments I consider him far superior to men drawing Rs. 50/- and more in this Division and therefore he deserve a much higher pay than he now gets."

"यह प्रमाणित किया जाता है कि बाबू हरिदास गोस्वामीने मेरे नीचे मुंगेरमें तार बाबूका काम ६ महीनेसे अधिक किया है। उस समय मुझे उनकी योग्यता जाँचनेका अवसर मिला था। मेरी रायमें उनकी पढ़ने-लिखने की योग्यता ५० रु० तथा उसके ऊपर वेतन पाने वाले डाकघरके कर्मचारीकी अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी है। अतएव इनका वेतन जो ये अभी पा रहे हैं उससे कहीं अधिक होना चाहिए।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० जे.ए. बेथम साहबने सिफारिश करते हुए लिखा था—
"I am sure he will get on better in the Revenue or Judicial branch of the Public Service than in the P.O. I hope he may rise to be a Dy. Magistrate or perhaps something better." अर्थात् गोसाईं बाबूकी डाकघरकी अपेक्षा न्याय-विभागमें नियुक्ति होने पर उन्नतिकी अधिक सम्भावना है। ये एक डिप्टी मजिस्ट्रेटके पद तक अथवा उससे भी ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। यह सारी सिफारिश होते हुए भी तीन वर्ष तक इस गोसाईं बाबूको १५ रु० महीना वेतन पर मुंगेरके डाकघरमें "टक्कू ट्राप टक्कू ट्राप" करना पड़ा।

तीन वर्ष तकके मुंगेर अवस्थान कालमें इसी १५ रु० मासिक वेतनमें मुझे बाध्य होकर एक स्वतन्त्र बासा लेकर सपरिवार रहना पड़ा। क्योंकि उस समय मेरे देश दोगाछिया ग्राम, नदिया कृष्णनगरमें मलेरियाका बड़ा प्रकोप था। मेरी माता, मेरी स्त्री तथा भ्रातृवधू सभी देशमें मलेरियासे बहुत परेशान हुईं। मुंगेर स्वस्थ्यकर स्थान था। जलवायु परिवर्तनके लिए उनको बाध्य होकर मुंगेर आना पड़ा। ३ रु० मासिक भाड़े पर मुंगेरके तोपखाना बाजारमें एक खपरैलके घरमें मैं सपरिवार रहता था। नौकरानीको १ रु० महीना देना पड़ता था। शेष ११ रु० से मासिक जीवन बीमाका प्रीमियम देना पड़ता था। इसी समय मेरे कनिष्ठ भ्राता गुरुदासको आरा जिलामें अफीम विभागमें एक साधारण अस्थायी नौकरी मिल

जानेसे वह मुझको ६-७ रुपये मासिक भेजनेमें सहायक हुआ था। उन दिनों सस्तेका जमाना था, रुपयेमें सोलह सेर चावल, बीस सेर गेहूँ, सोलह सेर दाल मिलती थी। दूधका भी यही भाव सोलह सेर था। तरकारी सब सस्ती थी, मुंगेर जेलकी चार पाँच सेर वजनकी एक फूल गोभीका दाम एक आना मात्र था। इसी कारण उस अल्प आयसे हमारा काम ठीक चल जाता था। मुंगेरमें हंडियाका घी रुपयेमें डेढ़ सेरका बिकता था। ऐसा था तबका जमाना और हायरे आजका जमाना।

मुंगेरमें रहते समय स्कूल लाइब्रेरीसे जितनी पुस्तकें थीं उन सभीको पढ़नेका मुझे सुयोग प्राप्त था। स्कूलके हेडमाष्टर साहब मुझसे बड़ा स्नेह रखते थे। वहाँ मैंने एक Postal clerk's Association स्थापित की। उसमें केवल अंग्रेजी साहित्यकी चर्चा तथा पोष्ट आफिसके कायदे-कानूनकी शिक्षा होती थी। डाकघरके मूर्ख क्लर्कोंको अंग्रेजी सिखानेके लिए ही इस समितिका संगठन हुआ था। मैं अध्यक्ष था, क्लर्क लोग मेरे मित्र थे। अधिकांश अवस्थामें मुझसे बड़े थे। तथापि वे मुझसे अंग्रेजी सीखते थे। सबको अंग्रेजी समाचार-पत्र पढ़ना पड़ता था। सबके पास नोट-बुक था। अंग्रेजी रिपोर्ट लिखनेकी शिक्षा मैं देता था। इस प्रकार मेरी भी शिक्षा होती थी, तथा क्लर्कोंकी भी कुछ-कुछ शिक्षा होती थी। मेरा अपना एक बड़ा सा नोट बुक था। उसमें जहाँ कहीं अच्छी बात पाता, जहाँ कहीं अच्छा अंग्रेजी रचना पाता, उसे नकल कर लेता था। बहुत पुराने Hindu Patriot नामक पत्रके दो वर्षकी फाइल मैंने अपनी छात्रावस्थामें भागलपुरमें ही संग्रह की थी। उसमें सुप्रसिद्ध स्वनामधन्य वक्ता सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय महाशयकी नौकरी छूटनेका सारा विवरण था। वे आई.सी.एस. थे। वे वर्खास्त किये गये थे। एक कमीशन बैठा था, उसकी सारी रिपोर्ट थी। दुःख की बात है कि मेरी वह पुरानी सामग्री खो गई है। छोटी अवस्थासे ही अच्छी-अच्छी चीजें संग्रह करके रखनेका मेरा बड़ा शौक था। अब भी है। कोई वस्तु मैं फेंकता नहीं हूँ। छोटी अवस्थामें मैंने यह कहाँ पढ़ा था, याद नहीं है कि—

"जेखाने देखिबे छाइ, उड़ाइया देख भाइ,
पेलेओ पेतेओ पार लुकान रतन।"

"हे भाई जहाँ कहीं राख दीखे, उसे उड़ाकर देखो, वहाँ छिपा रत्न भी तुम्हें मिल सकता है।"

यही मेरा काम था। मुझे याद है जिस समय मेरी १२-१३ वर्षकी अवस्था थी, मैं अपने पूज्यपाद पिताजीके साथ एक बार कलकत्ता उनके शिष्यके घर गया था। चौरङ्गीके रास्तेसे पैदल चलते-चलते मैंने देखा कि एक साहबके मकानके सामने एक समाचार-पत्र पड़ा है। लोभ संवरण न कर सकनेके कारण मैंने उसे

उठा लिया। खोलकर देखा तो उसमें पाखाना लपेटा पड़ा था, परन्तु उस अखबारमें एक सुन्दर लेख था। छिपाकर पाखाना लगे हुए कागजको तो फेंक दिया और अंग्रेजी अखबारके उस लेखको पढ़ लिया तब जाकर कहीं चैन पड़ा। तत्पश्चात् कालीघाट जाकर गंगा स्नान करके शुद्ध हुआ। इस प्रकार पढ़ने-लिखनेके प्रति मेरे मनमें बाल्यकालसे ही एक उत्कट लालसा थी। आज भी इस बुढ़ापेमें नियमित रूपसे पढ़ता हूँ। जहाँ कहीं अच्छी बात मिल जाती है, अपनी रफ कापीमें लिख लेता हूँ।

तीन वर्ष तक परम आनन्दपूर्वक मुंगेरमें परदासत्व करनेके बाद तथा साथ ही अपना भी कार्य कर 'गोसाईं बाबू' तरक्की पाकर २० रु० मासिक वेतन पर चम्पारन जिलेके मोतीहारी हेड आफिसके तार बाबूके पद पर पहुँचे। मुंगेरमें तो मेरे परिचित बहुत बन्धु-बान्धव थे। उनको मेरी इस पदोन्नतिसे आनन्द तो हुआ, परन्तु बड़े दुःखके साथ उन्होंने मुझको विदा किया। ता० १ नवम्बर सन् १८९२ ई० को मोतीहारी पहुँचकर मैंने अपने नये कार्यमें योगदान दिया।

जमालपुरमें किरानीगीरी

•

यह कहना मैं भूल गया था कि मुंगेरमें रहते समय वहाँसे जमालपुर डाकघरमें जाकर मैंने अस्थायी पद पर कुछ दिनों क्लर्कका काम किया था। १८६१ ई० २ अक्टूबरसे लेकर २८ दिसम्बर तक मैं वहाँ रहा। वेतन था केवल २० रु० मासिक। रहता था मेसमें, और काम था तार बाबू तथा डाक क्लर्कका, मिश्रित, खिचड़ी जैसा। उस समय जमालपुरमें बंगालियोंकी संख्या बहुत अधिक थी। ई. आई. रेलवेके आडिट, कोचिङ्ग तथा लोको आफिसमें उस समय लगभग हजारसे ऊपर बंगाली काम करते थे। आडिट और कोचिङ्ग, दोनों बड़े आफिसोंके बड़े बाबू थे—दो वैद्य। इसलिए जमालपुरमें वैद्योंकी संख्या अधिक थी। यहाँ तक कि वहाँ वैद्य पाड़ा नामका एक बड़ा-सा गाँव जैसा स्थान बस गया था। वहाँ बंगाली स्त्रियां स्वतंत्रतापूर्वक राहघाट पर घूमती थीं; तथा इस घरसे उस घर जाकर नारी-पार्लमेण्टमें योगदान करती थीं। दोनों आफिसोंके दोनों वैद्य बड़े बाबुओंका नाम था पार्वतीचरण गुप्त तथा दुर्लभचन्द मजूमदार।

जमालपुरमें अनेकों छोटे बड़े अफसरोंके सुरम्य बंगले थे। फिरंगी मुहल्ला देखने पर कलकत्तेके चौरङ्गीका भ्रम हो जाता था। जमालपुर उन दिनों इतना बड़ा तड़क-भड़क वाला शहर था, हवा-पानी बड़ा ही उत्तम था। भोजनके पदार्थ खूब सस्ते थे। मेसमें हमको मासिक खर्च ७-८ रुपये देने पड़ते थे। रातमें दाल रोटी और आलूदम, तथा गोभीका व्यञ्जन रोज तैयार होता था। तीसरे पहर जलपानके लिए प्रबन्ध था आलूसिद्ध—प्रत्येक व्यक्तिके लिए एक पाव आलू सिद्ध, घृत, और काली मिर्चका चूर्ण मिला हुआ नमक—पीनेके लिए बर्फका जल। एक नए पोष्ट-माष्टर आये थे, नाम था केदारनाथ मुखोपाध्याय, नैहाटी निवासी थे, ५० वर्षके ऊपर उम्र थी। खूब मोटे थे, वजनमें तीन मनसे कम न होंगे। वह पुराने कर्मचारी थे, परन्तु स्वभावगत दोषके कारण उनकी वाणी कठोर थी। वृद्धावस्थामें वह पदोन्नतिके स्थानमें अवनतिको प्राप्त हुए थे। १५० रु० मासिक से घटाकर ७० रु० मासिक वेतन पर वह जमालपुरमें पोष्ट माष्टर होकर आये थे। उनके दो क्लर्क थे,

कालीप्रसन्न घोष और मैं। घोष महाशय पूर्व बंगके निवासी (बंगाली) थे और मैं पश्चिमी बंगनिवासी (बंगाली) था। परन्तु हम दोनोंमें काफी मेल-जोल था।

नये पोष्ट माष्टर केदार बाबूने आकर हमारे मेसमें योगदान तो किया, परन्तु आते ही मेसके मैनेजरने सेठजीसे एक बात पूछी। वह बोले—"मैं खूब भोजनानन्दी हूँ, २-३ आदमियों का भोजन अकेले ही खा सकता हूँ। इसलिए मैं मेसमें डबल चार्ज देनेके लिए तैयार हूँ।" यह बात सुनकर हम लोग एक बार तो खूब हँसे। मैनेजर साहब काफी सज्जनता तथा आदरपूर्वक बोले—"जो हो महाशय, आप ब्राह्मण हैं, हमारे मेसमें एक ऐसा भोजन-प्रिय आदमी हो तो बड़ा आनन्द होगा।" केदार बाबू बोले—"यह न होगा। मेरा ठीक डबल चार्ज हुए बिना मैं आप लोगोंके बासेमें न रहूँगा। गरीब क्लर्क लोगोंका अन्न मारना ठीक नहीं है।" इसलिए बाध्य होकर मैनेजर साहबको उनके मतके अनुसार राजी होना पड़ा।

पहले दिन रातमें उनके भोजनकी क्रिया पर सबकी दृष्टि पड़ी। दो दस्ते मोटी रोटी, एक तसला गाढ़ी चनेकी दाल, और एक कटोरा आलू-गोभीकी तरकारी खाकर उस दिन उनकी उदर-पूर्त्ति हुई। दो-तीन आदमीकी खुराक कम पड़ी। बेचारे रसोइया ब्राह्मणको फिरसे रसोई बनानी पड़ी। बादमें तो मैनेजर साहबने उपयुक्त व्यवस्था करदी। उनके जलपानके लिए आध सेर आलूदमकी व्यवस्था की गयी।

केदार बाबू बड़े रसिक पुरुष थे। पढ़े लिखे थे, अंग्रेजी खूब अच्छी जानते थे। देखनेमें काले स्याह थे। बङ्किम बाबूके साथ उनका विशेष सम्बन्ध था। सदा ही वह मजाक करके हम लोगोंको हँसाते थे। हँसी मजाककी कहानियाँ सुनाते थे। कुछ दिन मेसमें रहनेके पश्चात् उन्होंने स्वयं ही डाक घरमें आहारकी व्यवस्था की। वह विचारवान आदमी थे। डबल चार्ज देकर भी मेसमें रहने पर गरीब क्लर्कोंका नुकसान होगा, यह विचार कर उन्होंने स्वयं अपना अलग प्रबंध किया। वह पत्नी-विहीन थे।

जमालपुर सब-पोष्ट आफिस था, दो ही क्लर्क थे। काम बहुत अधिक था। अतएव पोष्ट माष्टरको स्वयं सेविङ्ग बैंक तथा अंग्रेजी चिट्ठी-पत्र पढ़ने और डिलीवरी करनेका काम करना पड़ता था। पोष्टमैन लोगोंको अंग्रेजी पत्रका पता पढ़कर बतलाते थे। आजकल उसी जमालपुर डाकघरके पोष्ट माष्टरका वेतन २५० रु० महीना है। क्लर्क भी १४-१५ होंगे। हायरे तबका समय और आजका समय!

पोष्ट माष्टर केदार बाबू जब डिलीवरी टेबलपर जाकर चिट्ठी पढ़कर बाँटते थे तो छोटे-बड़े फिरंगियोंके फक्कड़ लड़के लड़कियाँ आकर उनको बहुत परेशान करते थे। वे सब फिरंगियोंके लड़के पोष्ट माष्टरकी कुर्सीके पास घेर कर खड़े हो जाते, और अपनी चिट्ठियोंके लिए उनको बहुत तङ्ग करते थे। एक दिन वृद्ध ब्राह्मणने क्रुद्ध होकर बंगला भाषामें उन फिरंगी (अंग्रेज) बालकोंसे मधुर भाषामें कहा "शाला शाली,

थोड़ा चुप चाप रहो, मुझको काम करने दो। तुम्हारी चिट्ठियाँ पोष्टमैन जाकर तुम्हारे घर दे आयेगा। अभी घर जाओ।" और कुछ समझें या न समझें, परन्तु अंग्रेज बालक 'शाला शाली' शब्दका अर्थ जानते थे। एक अंग्रेज लड़का, केदार बाबूकी इस प्यारी बातसे मुग्ध होकर उनको डैमफूल कह कर गाली दे बैठा। केदार बाबूने तुरन्त उसका कान पकड़ कर गाल पर एक हल्कीसी चपत लगादी, और पोष्ट आफिसके बाहर निकाल दिया। बस अनर्थ हो गया! तत्काल उन साँपके बच्चोंने रोते-रोते जाकर अपने मां-बापसे शिकायत कर दी। बस, क्या था! गोरोंकी पल्टनके समान अंग्रेजोंने आकर डाकघरको घेर लिया। पहलेही पोष्ट माष्टरके आदेशसे डाकघरका द्वार बन्द कर दिया गया था। बाहर खड़े होकर वे लोग धमकी देने लगे। डाकघरमें खलबली मच गई! परिस्थिति देखकर केदार बाबू अपने बासे पर चले गये। इस महासमरमें शान्ति स्थापनका भार पड़ा मेरे ऊपर। क्योंकि मैं ही एक मात्र क्लर्क उस समय ड्यूटी पर था। साहब लोग मुझको बहुत मानते थे। कोई भी डाकघरका जटिल काम पड़ने पर उसके निर्णयके लिए वे मेरे पास आते थे। पोष्ट माष्टरके मुँहफट होनेके कारण उनके पास कोई नहीं जाता। उस समय मैं वहाँ जाकर तोपके मुँह पर खड़ा हो गया। मैं सदासे ही दुःसाहसी पुरुष रहा हूँ। मेरे मुँहकी ओर देखकर वे फिरंगियोंके सैनिक पोष्ट माष्टरके विरुद्ध युद्धसे उस समय तो विरत हो गये, परन्तु उनको अवाच्य भाषामें गाली देनेसे न चूके, तथा धमकाते रहे। जो हो, बड़ी कठिनाईसे वह बला किसी तरह टली। परन्तु उस दिन केदार बाबू फिर आफिसमें नहीं आये। अपने बासेके भीतरसे सब देख लिया। मुझको बुलाकर बोले—"बहुत अच्छा गोसाईं! तुम निश्चय ही बड़े आदमी बनोगे।"

जमालपुरमें उस समय अनेकों गरीब क्लर्क बहुत कम वेतन पर नौकरी करते थे। उनमें अधिकांशका वेतन १५ रु० से २५ रु० मासिक था। प्रत्येक महीनेमें वेतन पानेपर पहले २-४ रुपये वे लोग सेविंग्स बैंकमें जमा करते थे, और महीनेके अन्तमें एक-दो रुपया निकाल लेते थे। इससे पोष्ट माष्टरका काम काफी बढ़ जाता था। इसलिए इस श्रेणीके क्लर्कोंके ऊपर वह बहुत रुष्ट रहते थे। सबके सामने आफिसमें बैठे बैठे वह उनको गाली बका करते थे। शाला कहना तो उनकी साधारण बोली थी। यदि कोई कुछ कहता तो वह वृद्ध ब्राह्मण क्रुद्ध होकर कहते—"जाओ शाले, तुम लोग अपने बाबा पोष्ट माष्टर जनरलके पास शिकायत करो।" फल यह हुआ कि केदार बाबूके विरुद्ध डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरलके पास कई आदमियोंकी शिकायत पहुँच गयी। उसकी जाँच करनेके लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट L. A. Massa साहब स्वयं जमालपुर आये। साहब इटालियन थे, बड़े सज्जन थे, सदा नशेमें चूर रहते थे, खूब नबाबी चाल-ढाल थी, विद्वान् थे, पीछे असिस्टैण्ट डाइरेक्टर जनरल हो गये थे। उन्होंने आकर केदार बाबूसे

जवाब तलब किया। केदार बाबूने अपना दोष स्वीकार करते हुए कहा—"If notice is taken of these petty clerks complaints in a place like Jamalpur where they could be found as many as black berries, no Post Master can work here.'' अर्थात् "इन सब मामूली क्लर्कोंकी शिकायत पर ध्यान दिया गया तो, कोई पोष्ट माष्टर यहाँ काम न कर सकेगा ।" "They should be thrown in the waste paper basket." "रद्दी कागजकी टोकरीमें ये शिकायतें फेंक देनी चाहिए ।" यही उनका जवाब था। Massa साहब यह बात सुनकर हँसने लगे और केदार बाबूको एक सुन्दर व्याख्यान दिया । उससे केदार बाबू कुछ सावधान हो गये थे। उसके बाद सेविंग्स बैंकका काम मेरे सिर पड़ा। केदार बाबू बोले—"प्राण बचा गोसाईं ! अपने बन्धु-बान्धवको तुम ही सन्तुष्ट करो ।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब आफिस निरीक्षण करने आते तो केदार बाबू कुर्सी छोड़ कर नहीं उठते थे। वे मुँहसे ही good morning (गुड मारनिंग) कहकर बोलते—"I am too fat to get out of my chair." अर्थात् मैं बहुत मोटा हूँ कुर्सीसे उठा नहीं जाता। साहब हँसने लगते। मोती नामका एक मेल पिऊन था । उससे कहते—"मोती ! यह कुंजी लो और साहबको खजाना दिखला दो ।" यह कहकर लोहेकी सन्दूककी चाबी फेंक देते थे। केदार बाबू इस प्रकारके मिजाजी और तेजस्वी पोष्ट माष्टर थे। इसी कारण उनका प्रोमोशन कभी कभी निम्नगामी हो जाता था। यदि उनका मिजाज कुछ ठण्डा होता तो वह एक उच्च कोटिके पोष्ट माष्टर बनते । परन्तु वह मुझको बहुत मानते थे और खूब भोजन कराते थे।

एक दिन वह अपना सर्विस बुक (नौकरीका खाता) देखते-देखते मुझको पास बुलाकर कहने लगे—"देखो गोसाईं, शाले लोग हमारे सर्विस बुकमें क्या क्या लिख गये हैं। मैंने स्वयं भी देखा । प्राय: सभी ऊपरके अफसरोंने उनकी शिकायत लिखी थी। उन्होंने मेरे हाथसे सर्विस बुक लेकर दियासलाईसे सबके सामने उसे जलाकर खाक कर दिया। हम लोग पोष्ट माष्टर साहबके इस काण्डको देखकर अवाक हो गये ! परन्तु वह वृद्ध ब्राह्मण हँसने लगे । मैंने कहा—"आपके पेन्शनमें बाधा पड़ेगी ।" उन्होंने उत्तर दिया—"शालोंने मुझको २६ वर्ष नाकमें नकेल डालकर खूब खटाया है। मेरे लिए शाले लोग कुछ खटें। अब नयी सरविस बुक तैयार करें। पेन्शन उनके बाबा देंगे ।" हेड आफिससे जब उनके सर्विस बुकके लिए तकादा आया तो उन्होंने लिख दिया—"खो गया है, खोजनेसे नहीं मिला ।"

जीवन-दान

जमालपुरमें रहनेके समय मेरा एक बड़ा भारी ग्रह कट गया। एक दिन इन्सपेक्टर चौबेजी महाराजके साथ मैं सायंकाल स्टेशनकी ओर टहलने गया। हम रेलवे लाइन पार होकर जा रहे थे। बातचीतमें मेरा मन इतना लीन था कि सामने आते हुए एक इंजनकी ओर मेरा ध्यान ही नहीं रहा। मैं रेलकी लाइन पर पैर रखने ही वाला था कि उसी समय चौबेजीने मेरा हाथ पकड़ कर जोरसे अपनी ओर खींच लिया। तब मुझको चेत हुआ और देखा कि क्षणभरमें इञ्जन पाससे गुजर गया। उस दिन चौबेजी महाराजने इस दुर्घटनासे मेरी रक्षा की थी। यदि वह न होते तो उस दिन गोसाईं बाबूकी दशा पोष्ट माष्टर केदार बाबू जैसी होती। केदार बाबू एक महीनेकी छुट्टी लेकर घर गये थे फिर लौटे ही नहीं। नैहाटीमें रेलसे कटकर उनकी दुःखद मृत्यु हो गयी। बेचारेको पेन्शन भोगनी पड़ी ही नहीं। उसी दिन या उसके दो एक दिन पहले ही उनकी इस शोचनीय मृत्युकी बात मेरे ध्यानमें आयी थी। सुनते हैं जो ध्यान किया जाता है, वह सामने आता है। इसी कारण जान पड़ता है मेरे लिए वह दुर्घटना संघटित हुई। श्री गौराङ्ग सुन्दरकी कृपासे उस दिन मेरी प्राण-रक्षा हुई थी। केदारबाबूको मैं बड़ा प्यार करता था। जान पड़ता है इसी कारण उन्होंने इस प्रकार मुझको अपने प्रेमका निदर्शन करके अपने साथ ले जाना चाहा था।

जमालपुरसे स्वदेशग्राम

•

जमालपुरसे एक मासकी छुट्टी लेकर मैं घर गया था। अकेला था, पासमें सामान बहुत था। स्टेशन जाकर खाली गाड़ी खोजने लगा । एक बंगाली सपत्नीक एक छोटे तीसरे दर्जेके डब्बेमें जा रहे थे। उन्होंने बंगाली जानकर मुझको आदर पूर्वक पुकार कर सामान आदि ऊपर लेकर अपने डब्बेमें चढ़ा लिया। मैंने देखा उन सज्जनकी अवस्था ४० वर्षसे ऊपर थी। खूब बलिष्ट थे। सुना कानपुरमें नौकरी करते थे। दाल रोटी खाकर शरीर बना था, चौड़ी छाती, हाथ-पैर आदिकी मांस पेशी बलिष्ट थीं। मेरी उस समय २३-२४ वर्षकी अवस्था होगी। रोगी, दुर्बल, शरीरमें मांस नहीं, हवासे उड़ती हुई क्षीणकाय पांजरकी हड्डियाँ गिनी जा सकती थीं। परन्तु देखनेमें बड़ा सुन्दर था, वर्ण कच्चे सोनेके समान, मुँह निखूँट सुन्दर, नाक नुकीली, सिरपर दिव्य घने काले केश—बीचमें स्त्रियोंके समान सीमन्त(पाटी)काढ़े, शरीरमें एक छींटकी फरफर कमीज ! अपना रूप जब मैं स्वयं दर्पणमें देखता तो रूपके गर्वसे मेरा क्षीण वक्षः स्थल दस हाथ फूल उठता। सोचता था, कब मैं मोटा हो जाऊँगा ? ट्रेनमें जब हम दोनों आदमियोंका मिलन हुआ, दो विभिन्न आकारके प्राणियोंकी जब आँखें चार हुई, तब दोनोंके मनमें एक भाव उदय हुआ । उस भावके आदान-प्रदानके पूर्व मेरे अपरिचित बन्धुने दया करके मेरे सामानको सँभाल लिया। क्योंकि वह जानते थे कि इस अद्भुत क्षीणकायके द्वारा यह कार्य न हो सकेगा । मेरे साथ करीब आधामन तोलकी भेली (गुड़की चक्की) थी और मुंगेर जेलकी प्रत्येक ४-५ सेर वजन वाली ५ फूल गोभी, और थे एक ब्राकेट, और एक आबनूस काठका छोटा रूल। आज भी ये दो वस्तुएँ मैं व्यवहार करता हूँ। मुझसे कोई वस्तु खोती नहीं। लड़कपनकी बहुत सी वस्तुएँ आजभी मेरे बक्समें पड़ी हैं । मेरी बूढ़ी माँ सांसारिक वस्तुएँ प्राप्तकर बड़ी खुश होती थीं। पास पड़ौसके लोगोंमें बाँटनेकी कुछ सामग्री पाकर उनके मनमें बड़ा आनन्द होता था। इसी कारण मातृदेवीकी मनस्तुष्टिके लिए मैं इतना गुड़ और गोभी लेकर घर जा रहा था ।

जमालपुरसे लूप मेलसे हम यात्रा कर रहे थे। दोनों आदमी साथ बैठकर आनन्दसे वार्त्तालाप करते जाते थे। मेरे मित्रकी स्त्री एक कोनेमें बैठ गयीं। जगह काफी थी। कुछ देरके बाद हमलोग गाड़ीमें सुखपूर्वक सो गये। हमारे डब्बेमें कोई नहीं चढ़ा। प्रातःकाल जब गुस्करा स्टेशन पर गाड़ी पहुँची, तब हमारी नींद टूटी। वहाँ देखा कि दो आदमी १५-१६ वर्षके अल्हड़ लड़के, बड़े फक्कड़, हाथमें घड़ी लिए, बाल सँवारे प्रातःकाल पान चबाते, दो हाँड़ी हाथमें लिए हमारे डब्बेमें चढ़ गये। कानपुर वाले मेरे मित्रने बड़ी शिष्टतापूर्वक कहा कि बगलका डब्बा खाली है, इस डब्बेमें स्त्री है, आप लोग कृपा करके बगलके डब्बेमें चले जाइये। यह बात सुनकर उनमें एक लफंगर फक्कड़ लड़का बोला—यह रिजर्व गाड़ी नहीं है, और स्त्रियोंका डब्बाभी नहीं है। हमलोग यहीं रहेंगे। वह बाबू तब कुछ न बोलकर भृकुटी टेढ़ी करके उस उद्धत लड़केकी ओर क्रुद्ध नेत्रोंसे देखने लगे। गाड़ी चलने लगी। तब उन दोनों लड़कोंने पहले सीटी बजायी, फिर टप्पाका गाना शुरू किया। तब मेरे मित्र उठ खड़े हुए। अपने कुर्तेका बटन खोलकर दाल-रोटीसे तैयार अपना शरीर उन नवागत अतिथियोंको दिखलाते हुए बोले—"बाबू ! चुपचाप भले आदमीके समान बैठो, मेरा शरीर देख लो, यदि कुछ बड़बड़ किया तो दोनोंको जुल्फी पकड़कर चलती ट्रेनसे बाहर फेंक दूँगा।" एकने उत्तर दिया, "कौन शाला मारेगा, देख लूँगा।" यह बात सुनते ही मेरे भीमकाय मित्रने दोनों लड़कोंके सिरकी लम्बी जुल्फी दोनों हाथोंसे पकड़कर उनको बेंच पर से बलपूर्वक उठा लिया और उनके सिरको तीन बार लोहेके गरादेसे ठुकराकर कहा—"देख लिया न, शाले ! बोलने का मजा ? अब चुपचाप बैठो, दूसरे स्टेशन पर चुपकेसे उतरकर चले जाना, नहीं तो यही सजा फिर दूँगा।" मैं भय और आश्चर्यसे अभिभूत होकर डब्बेमें एक कोनेमें बैठा रहा। देखते देखते ट्रेन दूसरे स्टेशन पर पहुँची तब मेरे मित्रने उनसे फिर कहा—"जाओ शाले, यहाँ उतर जाओ।" दोनों लड़कोंका मुँह पीला पड़ गया था। वे चोरके समान बैठे थे और जल्दीसे उठकर उतर गये। जानेके समय दोनों हाँड़ी ले जाना भूल गये। कुछ देरके बाद एक आदमी एकबार हाँड़ीकी खोजमें आया। मेरे मित्रने उससे कहा—"आओ शाले, फिर तुमको मजा चखाऊँ।" यह बात सुनते ही वह भयसे दस हाथ दूर चला गया। इतनेमें गाड़ी छूट गयी। तब हमलोगोंने दोनों हाँड़ी खोलकर देखा। एक हाँड़ीमें सन्देश था और दूसरेमें रसगुल्ला। अब तो हमारे आनन्दकी सीमा न रही। हुगली होकर हमलोगोंने नैहाटी पहुँचकर, गंगा स्नान करके पेटभर सन्देश और रसगुल्ले खाये, और दूसरे लोगोंको भी खिलाये। साथ साथ घर भी कुछ ले आये।

मोतीहारीमें

•

१ नवम्बर १८९२ ई०के दिन मैंने अकेले ही मुंगेरसे मोतीहारीकी यात्रा की। मोतीहारी चम्पारण जिलेका हेड क्वार्टर है। नेपालकी तराई है। जलवायु अच्छी नहीं है। सीलकी जगह है। बिहारमें उस समय पूर्णिया और मोतीहारी ये दो स्थान अस्वास्थ्यकर प्रसिद्ध थे। उस समय मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा न था। सभी मेरे बन्धु-बान्धव इस बदलीसे दुःखित हुए। मैं और क्या करूँ? १५ रु० मासिक से २० रु० मासिक वेतन पर तरक्की हुई है। गरीबका लड़का हूँ, महा मूर्ख हूँ, यही इस समय मेरे लिए सौ रुपयेके समान है। मोतीहारी मेरे लिए दार्जिलिंग या शिमलाका पहाड़ है। वस्तुतः हुआ भी वैसा ही। मैं बचपनसे ही परम रोगी रहा, मेरे शरीरमें माँस न था। उस समय मेरी अवस्था २४-२५ वर्षकी थी। परन्तु मैं ताड़के सिपाही जैसा था। मेरे अस्थिचर्मावशिष्ट शरीरमें माँस लगा इस मोतीहारीमें ही। ६ महीनेके भीतर ही मैं अच्छा गोल-गाल हो गया। वहाँ मैं अकेला ही था और अपने हाथसे भोजन बनाता, और २० रु० महीना कमाता। घर पर बूढ़ी माँ, और दो बहुएँ थीं। अपने कुटुम्बी जन भी थे। उनको प्रतिमास १२ रु० भेजना पड़ता था। शेष ८ रु० में मुझको अपना निजी खर्च चलाना पड़ता था। कुछ दिन मोतीहारीमें नौकरी करके शरीरको दिव्य गोल-गाल बना लिया, वर्ण भी गौर था, इस बार कुछ लालिमा भी दौड़ गयी। देखनेमें दिव्य युवा पुरुष था। नटवर नागर हरिसुन्दर बनकर एक महीनेकी छुट्टीमें मैं घर गया। गांवके लोग मुझको देखकर एक बारगी चकित हो गये। मेरा शरीर भी कभी मांसल हो जायेगा, यह उन्होंने सोचा भी न था। मेरे एक फुफेरे भाई थे। नाम था नील माधव वृहस्पति। बड़े पण्डित थे। वह बचपनमें मुझको कहा करते थे—"हरिदास! तुम पूर्वजन्ममें माँस विक्रेता व्यवसायी थे, इसी कारण तुम्हारे शरीरमें माँस नहीं है।" बचपनमें ही मुझे यह बात सुननी पड़ी थी। इससे मनमें बड़ा दुःख हुआ था। इस बार मैं यह गोल-गाल सुन्दर सुडौल शरीर तथा उसके साथ एक छोटा सा तोंद लेकर घर जा रहा हूँ इससे मनमें बड़ा आनन्द था कि दादा (बड़े भैया) को दिखाऊँगा और आत्मीय स्वजनोंको दिखाऊँगा।

माँ भी देखेगी, तथा गृहिणी मनमें कितनी आनन्दित होगी। इस आनन्दमें तल्लीन होकर मैं मोतीहारीसे घरके लिए चला था। दोगाछियावासी आत्मीय बन्धु-बान्धव मुझको देखकर, मेरे अपरूप रूपको देखकर मनही मन ईर्ष्यासे जल उठे। क्योंकि नदिया जिलेका एक दोगाछिया ग्राम उन दिनों राक्षसी मलेरियाके मुखका ग्रास हो चुका था; इस प्रकारका एक स्वस्थ, गोल, सुडौल शरीरका आदमी वहाँ सबकी आँखोंका काँटासा हो गया। मुँहसे तो कोई कुछ बोलनेका साहस नहीं करता, परन्तु परोक्षमें सब कहने लगे कि, हरिदास जो मोटा हो गया है, इसका कारण है, विदेशमें रहता है, रुपया-पैसा कमाता है, निश्चय ही कुछ मद्यपान करता होगा, नहीं तो ऐसा चिकना, गोल-गाल कैसे हो जाता ?" बात मेरे कानोंमें भी पहुँची, मैं खूब ही हँसा। माताने भी सुना। वे उसी गाँवकी कन्या थीं। सब लोग उनके आत्मीय थे। वे उनको खूब गालियाँ देने लगीं, मुह-जला मरघट्टा आदि दो-चार मधुर बातोंसे सब सन्तुष्ट होकर चुप हो गये। मेरी माताजी खूब गंभीर प्रकृतिकी स्त्री थीं। गाँवके सब लोग उनसे डरते थे। मेरे भैया नील माधव वृहस्पति मुझको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और मुझे आशीर्वाद दिया। उनकी पहली बात जब मैंने याद दिलायी तो हँसके बोले—"मैंने तो तुमको उपहासमें कहा था कि तुम पूर्वजन्ममें माँस-विक्रेता थे। तुमने मेरी वह बात मुझे अभी याद दिलाई, इससे मुझे बड़ा आनन्द हुआ।"

छोटी-छोटी बातोंको याद रखनेकी मेरी आदत थी। छोटे काम मुझे बहुत पसन्द थे। छोटी-छोटी वस्तुओं पर मेरा ध्यान अधिक जाता था। मेरी छोटी उम्रकी बहुत-सी छोटी-छोटी वस्तुएँ आजभी मेरे बक्समें यत्नपूर्वक सुरक्षित पड़ी हैं। मेरी स्त्रीके अंका-बंका प्रथम पत्र भी मेरे पास आज तक मौजूद हैं। जब मैं मुंगेरके डाकघरमें पहले-पहल १५ रु० महीनेकी नौकरी करता था, उस समय मैं एक बार घर गया था। मेरी माताजीके एक समीपके रिस्तेदारने मेरी १५ रु० महीनेकी नौकरीकी बात सुनकर मेरे सामने ही मेरी मातासे कहा था—"बुआ, हरि जो डाक घरकी नौकरीमें १५ रु० महीनेमें घुसा है, तो इसको इसी १५ रु० में पेन्शन लेनी पड़ेगी। थोड़ा पढ़-लिखकर डाकघरमें काम करने पर ऐसा ही होता है।" यह बात सुनकर माताजी बहुत दुःखी हुई थीं। मुझको बड़ा क्रोध हुआ था। उस समय मैंने कुछ नहीं कहा लेकिन यह मैंने प्रतिज्ञाकी कि पश्चात् सुयोग और सुविधा पाकर इसका उत्तर दूँगा। बहुत दिनों बाद जब मैं डाकघरका सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गया, उस समय एक बार घर जानेपर उस रिश्तेदारसे भेंट हुई तो मैंने उनको पहली बात याद दिलाकर लज्जित कर दिया।

जिन दिनों मैं मोतीहारीमें काम करता था, भाग्यसे एक बंगाली ब्राह्मण मुझे द्वितीय तार बाबूके रूपमें मिल गये थे। उनका नाम था त्रिगुणाचरण चट्टोपाध्याय।

वे बड़े नैष्ठिक ब्राह्मण थे। पोष्ट माष्टर थे उन दिनों एक वृद्ध ब्राह्मण। नाम था प्रसन्नकुमार चट्टोपाध्याय, बड़े रसिक पुरुष थे। उनके पास दूध देने वाली दो गाएँ थीं। तीन पीढ़ीका परिवार था। जिस स्थानमें उनकी गाय रहती थी, उसमें ही दिनमें हमारा भोजन बनता था। रातमें उसके सामने एक खुली जगहमें वृक्षके नीचे हम लोग किसी प्रकार कुछ परोंठे तैयार कर लेते थे। दोनों आदमी मिल-जुलकर खूब भोजन बनाते और खाते थे। रातमें बिना भाड़ेकी डाकघरकी एक बाहरी कोठरीमें हम दोनों चारपाई डालकर सो जाते थे। बीचमें केवल एक हाथ भर स्थान था। मेरा भन्डार था खटियाके नीचे। इस प्रकार एक वर्षका समय काट कर एक महीनेकी छुट्टी लेकर मैं घर गया, और फिर मोतीहारी सपत्नीक आया। इस बार इसी कारण एक भाड़ेका मकान लेना पड़ा। २॥ रु० मासिक भाड़ा था। डाकघरके समीप एक अंधकूपके समान खपड़ेके दो तल्ला घरमें गृहिणीको कारागारमें बन्द किया। ऊपर-नीचे मिलाकर जङ्गला-शून्य दो कमरे थे। ऊपर चढ़नेके लिए नीचेके घरमें काठकी सीढ़ी थी। ऊपर चढ़ते समय छप्परसे सिर टकराता था, और पैर रखते ही मिट्टी का छत कड़मड़ करने लगता था। इस प्रकाश और वायुसे शून्य अन्धकूपमें कई दिन रहना पड़ा। सौभाग्यवश एक दिन मोतीहारीके प्रथम मुन्सिफ घनश्याम गुप्त महाशयकी स्त्री हमारे घर आयीं। वह और उनके पति दोनों मुझ पर बड़ा स्नेहभाव रखते थे। घनश्याम बाबूके ज्येष्ठ पुत्र श्री ज्ञानेन्द्रनाथ गुप्त (G. N. Gupta I. C. S. Retired Commissioner) उसी समय आई.सी.एस. पास करके विलायतसे मोतीहारी आकर पितृगृहमें कुछ दिन रहे थे। उनके साथ मैं मोतीहारी सोन नदीमें एक नावपर नौका विहार करने गया था। गुप्त महाशयके अन्य पुत्र चूणि, मणि, पन्ना आदि मेरे मित्र थे। मुन्सिफ महाशयकी स्त्री मुझको पुत्रवत् मानती थीं। उन्होंने जब सुना कि मैं सपत्नीक आया हूँ और स्वतन्त्र बासेमें रहता हूँ तो वह मेरी स्त्रीको देखनेके लिए आयीं। उस समय मैं डाकघरमें काम पर था। वे अन्धकूपमें हमारा बासा देखकर अप्रसन्न हो उठीं और मेरी स्त्रीसे बोलीं; कल तुम लोगोंके लिए अच्छा बासा कर दूंगी। उसी दिन मुन्सिफ बाबूसे कहकर डाकघरके पास ही नदीके किनारे एक सुन्दर बासा ५ रु० मासिक भाड़े पर ठीक कर दिया और हम लोगोंको वहाँ ले जाकर सारा बन्दोबस्त कर दिया। वे बड़ी स्नेहवती, दयावती, साध्वी और शिक्षिता स्त्री थीं। गरीबके ऊपर वह बड़ी दया करती थीं। मोतीहारीमें इस गुप्त परिवारके साथ मेरा बड़ा प्रीति-सम्बन्ध था। सब मुझसे स्नेह करते थे। जिला स्कूलके हेडमास्टर अन्नदा प्रसाद मित्र बी० ए०, जो पीछे स्कूल इन्सपेक्टर हो गये, मेरे अंग्रेजी और बंगला लेखोंको पढ़कर मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। नन्दलाल भट्टाचार्य एम० ए०, बी० एल० तथा कान्तिचन्द्र वन्द्योपाध्याय एम० ए०, बी० एल० वकील, एवं डिप्टी मजिष्ट्रेट शशीभूषण बसु एम० ए०, तथा मुन्सिफद्वय घनश्याम

गुप्त और दे महाशय (पूरा नाम याद नहीं है) उस समय २० रु० महीना पानेवाला डाकघरका क्लर्क होने पर भी मेरे साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे। मेरे अंग्रेजी लेख उस समय Indian Mirror, Hope, Hindu Magazine आदि अंग्रेजी सामाजिक-पत्रोंमें नियमित रूपसे प्रकाशित होते थे। स्वनामधन्य गरीफाके अमृतलाल राय Hope और Hindu Magazine के सम्पादक थे। और उनके छोटे भाई चारुचन्द्र राय, Executive Engineer थे। चारुचन्द्र रायके साथ घनश्याम गुप्त महाशयकी कन्याका विवाह हुआ था। इस सूत्रसे अमृतलाल राय जब मोतीहारी आये तो उनके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ। वह मुझको देखकर बोले—"आपके लिखे लेखको पढ़कर मेरे मनमें होता था कि आप प्रवीण व्यक्ति हैं। पुराने ढंगके सीनियर Scholar हैं। परन्तु आज देखता हूँ कि आप डाकघरके एक साधारण क्लर्क हैं। धन्य है आपका अध्यवसाय ! ऐसी अच्छी अंग्रेजी कैसे सीखली ?" सबके सामने इतनी बड़ी आत्म प्रशंसाकी बात सुनकर मैं बहुत ही लज्जित हुआ। मोतीहारीके बंगाली कुलीन समाजमें मेरा बड़ा सम्मान था। चाहे कोई काम हो, गोसाईंजीके न रहने पर वह काम मानो सुसम्पन्न ही नहीं होता था। किसी न किसी डिप्टी या वकीलकी गाड़ीमें गोसाईंजी प्रायः संध्या कालीन भ्रमणमें जाते थे। यह देखकर पोष्ट माष्टर भी ईर्ष्यासे मरे जाते थे।

मोतीहारीमें उसी २० रु० मासिक वेतन पर बड़े तार बाबूके पद पर मैं दो वर्ष रहा। परन्तु वहाँ मेरा रंग खूब जम गया था। मेरा भाग्य कुछ उज्ज्वल था, चेहरा भी उसके अनुरूप था। विद्याको तो, मैट्रिक फेल था और वह भी जुबलीके वर्ष—जिस साल ६० प्रतिशत लड़के पास हुए थे।

मोतीहारीके पोष्ट माष्टर साहब प्रसन्न बाबू वृद्ध होते हुए भी तीसरा विवाह करके युवाके समान उत्साही पुरुष थे। सांसारिक कार्यमें सर्वदा तत्पर रहते थे, सरकारी काममें उनका अच्छा नाम नहीं था। अचानक उनकी बदली पूर्णिया हो गयी और नये पोष्ट माष्टर आये शरतचन्द्र मुखोपाध्याय महाशय। प्रसन्न बाबूकी अचानक बदलीका एक विशेष कारण था। एक दिन सायंकाल कोई श्वेताङ्ग अंग्रेज डाकघरके भीतर आकर साधारण बातको लेकर पोष्ट माष्टर साहबको अंट-शंट बोला और मारनेके लिए तैयार हो गया। पोष्ट माष्टर साहब उस समय हिसाब लिख रहे थे। हम लोगभी उस समय अपने अपने काममें व्यस्त थे। वृद्ध ब्राह्मण अपमान और क्रोधसे तिलमिला उठे और बंगलामें उसको खूब गाली सुनाते हुए उसको गरदनिया देकर नीचे ढकेल दिया। तब डाकघरके सब लोगोंने मिलकर उसको उत्तम-मध्यय दण्ड दिया, मैं भी उनमें था। दैवात् उसी समय E. G. Colvin I.C.S. (उस समय मोतीहारीके Settlement officer थे। पश्चात् Agent to the Governor General हो गये) डाकघरके बाहर बरामदेमें खड़े थे और इस घटना को अपनी आँखों देख रहे थे। वह बहुत कुलीन अंग्रेज थे। उन्होंने उस दुष्ट प्रकृतिके अंग्रेजको बाहर बुलाकर काफी डाँटा

और शीघ्र मोतीहारी छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी । पोष्ट माष्टर साहबको भी सभ्यतापूर्वक उपदेश देकर तथा इस विषयमें और कुछ लिखा पढ़ी न करनेकी राय देकर चले गये । परन्तु जब अंग्रेज लोगोंमें इस घटनाकी खबर पहुँची तो वे भीतर ही भीतर डाकघरके ऊपर और विशेषतः पोष्ट माष्टर प्रसन्न बाबूके ऊपर बहुत क्रुद्ध हो उठे, और नाना प्रकारसे डाकघरके ऊपर उपद्रव करने लगे, तथा झूठ-मूठ विलायती डाक चुरानेका अभियोग लगाया । फलस्वरूप डाकघरके क्लर्कोंके बासे, तथा पोष्ट माष्टरके घरतककी खाना तलाशी हुई, परन्तु सन्देह-जनक कोई वस्तु न मिली । तथापि पोष्ट माष्टरको व्यक्तिगत रूपसे विशेष परेशान होना पड़ा । फलस्वरूप अचानक उनकी बदली पूर्णिया हो गयी । एक सप्ताह या दस दिनके एक बच्चेको लेकर तीन दिनके भीतर बहुत दूर एक नये अस्वास्थ्यकर स्थानमें जाना पड़ा । जानेके पहले रातमें उनके घर चोरी हो गयी । स्त्रीके वस्त्राभूषण तथा दूसरी वस्तुएँ चोरी चली गयीं, उसके लिए नालिश या खोज करानेका भी सुयोग न मिला । इसी प्रवाहमें डाकघरके बहुत लोगोंकी बदली हुई । केवल हम दो तार बाबू बच गये । नये पोष्ट माष्टर शरद बाबू आते ही मुझको नेक नजरसे देखने लगे । मैंने जिस हेड पोष्ट आफिसमें काम किया, पोष्ट माष्टरकी प्राइवेट सेक्रेटरीशिप मेरे लिए मानो रिजर्व रही । क्योंकि डाकघरमें मैं एक प्रभावशाली विश्वासी आदमी था । मेरा प्रभुत्व अन्यान्य क्लर्कोंको कांटेके समान चुभता था । परन्तु गोस्वामीजी परवा न करने वाले स्वतन्त्र व्यक्ति थे । कामके सिवाय और किसी बात पर ध्यान नहीं देते थे । स्वयं जैसे रात-दिन काम करते थे, दूसरोंके द्वारा भी उसी प्रकार काम करा सकते थे । इसी गुणसे बूढ़े-बूढ़े पोष्ट माष्टर लोग उनको प्राणके समान मानते थे ।

सामान्य वेतनकी नोकरी होने पर भी मैं बड़ा दुःसाहसी था । भय किसको कहते हैं, यह मैं जानता न था देखने में ताड़पत्रके सिपाहीके समान था जो हवासे उड़ जाता । परन्तु मानसिक बल बहुत था । लोग मुझको दुःसाहसी पुरुष कहते थे । बहुत लोग निन्दा भी करते थे ।

J. Short नामक एक जबरदस्त अंग्रेज उन दिनों वितारके Dy. Post Master General थे । वह डाकघर परिदर्शन करने मोतीहारी आये । वह बड़े विद्वान और कुलीन थे । पहले वह किसी कालेजमें अंग्रेजीके प्रोफेसर थे । सभी उनसे डरते और सम्मान करते थे । वह सिंह राशिके पुरुष थे, किसीको उनके साथ बातें करनेका साहस नहीं होता था । उन्होंने डाकघरमें आकर काम-काजका निरीक्षण करनेके बाद सर्विस बुक देखनी चाही । पोष्ट माष्टर शरद बाबू स्वयं एक एक करके रजिष्टर दिखला रहे थे । मेरी सर्विस बुकके साथ अन्तमें मेरे अंग्रेजी प्रशंसा-पत्रोंकी छपी एक पुस्तिका संलग्न थी । साहब बहादुरकी कृपादृष्टि उसके ऊपर भी पड़ी । उन्होंने खूब ध्यान-पूर्वक उन सबको पढ़ लिया । इसमें बहुत समय लगा । क्योंकि वह १६ पृष्ठकी

एक पुस्तिका थी । मेरी बुलाहट हुई । मैं जाकर उनके सामने उपस्थित हो गया । मुझको देखते ही वह बोले—Are you Mr. Goswami ? तुम्हारा नाम गोस्वामी है ?

मैं—Yes sir. हाँ महाशय ।

साहब—I see you keep connection with the press. तुम समाचार पत्रमें लेख लिखते हो ।

मैं—Yes sir, I do keep connection with the press. but I write on social and religious subjects only. हाँ, मैं समाचारपत्रमें लिखता तो हूँ, परन्तु सामाजिक और धर्म सम्बन्धी लेख लिखता हूँ ।

साहब—What is the guarantee that you do not write on political subjects ? इसका क्या प्रमाण है कि राजनीतिक विषय पर लेख नहीं लिखते हो ?

मैं—My word is guarantee, if you do not believe me, you can catch me red-handed. मेरा कथन ही प्रमाण है, यदि आपको विश्वास न हो तो मुझे रंगे हाथों पकड़ सकते हैं ।

साहब बहादुरके साथ इस प्रकार दो टूक बातें हो रही थीं, उसी समय मेरे पीछेसे पोष्ट माष्टर साहब मेरा बदन दबाकर और बात न बढ़ानेका इशारा कर रहे थे । साहब बहादुरने भी मुझसे और कोई प्रश्न न करके अपनी नोटबुकमें कुछ लिखा, तथा मेरी ओर कड़ी नजर डालकर मुझे बिदा किया । दूसरे दिन मैंने अपने अंग्रेजी लेखोंकी सारी कतरनें एकत्रित कर, उसके साथ एक दरख्वास्त लिखकर साहब बहादुरके दफ्तरमें भेज दी । उसका अभिप्राय यह था कि, आपने मेरे समाचार-पत्रोंमें छपे लेखोंके सम्बन्धमें जो धारणा बनायी है, वह मौखिक है । आपके पास सारी कतरनें भेज रहा हूँ, इनको पढ़कर यदि आप कृपाकर इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करें तो मैं अनुग्रहीत होऊँगा । तीन महीने तक मेरी इस दरख्वास्तका कोई उत्तर न आया । मैं तगादा पर तगादा करने परभी कोई उत्तर न पा सका । Postal Supdt. Con. J. Dease साहबके मारफत दरख्वास्त दिया गया । उनको भी कई बार लिखा । कुछ दिनके बाद मुझे कतरनें वापस मिल गईं । उत्तर भी प्राप्त हुआ । 'इस प्रकारके लेख लिखनेमें कोई आपत्ति नहीं' । प्राण बचा, मैंने लम्बी साँस ली । मेरी कलम पूर्ववत् चलने लगी ।

मोतीहारीमें मैं दो वर्ष रहा । वहाँके जिला-स्कूलके हेडमाष्टर अन्नदा बाबू तथा डिप्टी मजिस्ट्रेट शशी बाबूकी मेरे विषयमें कैसी उच्च धारणा थी, यह निम्नलिखित दो प्रशंसापत्रोंसे प्रकट हो जायगा :—

"I have much pleasure in stating that I have been acquainted with Babu Hari Das Goswami for some time. He belongs to a respectable Brahmin family; circumstances compelled him to leave his

studies early in life and take to service. He, however, did not leave his habit of private study. In this way he has improved so much that on perusing his contributions on social subjects in 'Hope'—an English Calcutta weekly paper,—I have no hesitation in saying that his acquirements in English are equal to those of an ordinary B.A. He has also some skill in poetical compositions. I have seen some of his writings and am of opinion that he has in places shown beauties of imagination and skill in the choice of words to make them flow sweet and liquid-like. Like his poetry also his temper is mild and sweet. He is very well-behaved. I conclude it by expressing my earnest desire that he may prosper in life which he so well deserves."

(Sd.) Sashi Bhusan Bose M.A.,B.L.
Dy. Magistrate
26-6-1894. Motihari.

"I have known Babu Hari Das Goswami, signaller-in-charge, Motihari Post Office for a period of over three years. He is one of those young men, very rare now-a-days, who retain a genuine love for letters amidst the worry pre-occupations of a busy official life. I have read most of the Bengali Poems written by him, and several of his compositions in English and am struck by the originality of the one, and the correctness of the other. It gave me great pleasure to read some of his papers. They are beautifully written and they fully prove the learning of the writer."

(Sd.) Annada Prasad Mittra B.A.
Head Master Zila School,
26-6-1894. Motihari.

मैं यह लिखना भूल गया हूँ कि मैं जिस समय मोतीहारीमें नौकरी करता था, मेरे ज्येष्ठ भ्राताके पुत्र श्रीमान् ज्ञानेन्द्रनाथका उसी समय जन्म हुआ। मैं उस समय सपत्नीक मोतीहारीमें रहता था। मेरे स्व० कनिष्ठ भ्राता उस समय अफीम विभागमें आरा शहरमें नौकरी करते थे। दोनोंका वेतन उस समय केवल २० रु० मासिक था। श्रीमान् ज्ञानेन्द्रनाथके अन्नप्राशनमें मैंने ३० रु० दिये थे। पूज्यनीया स्व० मातृ देवी इससे बड़ी ही प्रसन्न हुई थीं। विदेशमें ५ रु० महीना मकान भाड़ा देकर सपत्नीक परिवार चलाकर इस प्रकार गृहस्थीके कार्यमें सहायता देना उस समय संभव था। आज २०० रु० महीना वेतनकी नौकरी करके भी उस प्रकारकी सहायता असम्भव हो गयी है।

लालगंज और दरभंगामें

•

मोतीहारीसे अस्थायी भावसे चार महीनेके लिए मैं मुजफ्फरपुर जिलेके लालगंज डाकघरमें सब-पोष्ट-माष्टरके पद पर बदल कर गया। हाजीपुरसे लालगंज १४ माइलकी दूरी पर है। इक्केसे जाना पड़ता है। मोतीहारीसे विदा होनेके समयके दृश्य मुझे खूब याद हैं। सब मित्रोंकी स्नेह-पुष्पाञ्जलिसे मेरा शुष्क हृदय प्रेमसे गद्‌गद् हो गया था। ६ अगस्त १८६४ ई० को मैं मोतीहारीसे बदलकर सपरिवार लालगंज गया।

लालगंज व्यवसायिक केन्द्र है। बहुत बड़ा ग्राम है। एक बंगाली डाक्टर डाकघरके पास ही रहते थे। उनका नाम था रासबिहारी बाबू। वे शान्तिपुरके निवासी थे, मेरी ससुरालके गाँवके आदमी थे, बड़े प्रेमी थे। "असारे खलु संसारे सारं श्वसुर नन्दिनी" अपने बापके गांवके आदमी पाकर प्रेमानन्दमें मत्त होकर मेरी धर्मपत्नी तो खूब घुलमिल गयीं, और मैं कार्यमें मत्त था, काममें ही माथा-पच्ची करने लगा। लालगंजमें एक और बंगाली बाबू कुछ दूर रहते थे। वह नीलकोठीके साहबके बड़े बाबू थे। उनकी बात और कुछ न कहूँगा। इस प्रकारके कुसङ्गीका सङ्ग जीवनमें कभी नहीं हुआ। जनसमाजके भीतर विदेशमें रहते बंगालीका कहाँ तक अधः पतन हो सकता है, कहाँ तक पाप-पङ्कमें फँस सकता है, कितना पशुत्वको प्राप्त हो सकता है, उसका उत्कृष्ट और जीता जागता उदाहरण इन बंगाली बाबूका परिवार था। मैंने दूरसे ही प्रणाम करके उनका संग त्याग दिया था।

लालगंजमें रहते समय मेरी एकमात्र कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरीदेवी मातृ-गर्भमें आयी। वहाँ मैं केवल ४-५ महीने रहा। उसके बाद जब मेरी बदली दरभङ्गा हेड आफिसमें हुई तो मैंने पत्नीको घर पर माताके पास भेज दिया। लालगंजमें मेरा अस्थायी रूपसे वेतन २५ रु० मासिक था। दरभंगामें पूर्व स्थायी वेतन २० रु० मासिक पर बदली हुई थी। २७ नवम्बर १८६४ ई० को मैंने दरभंगा हेड आफिसमें कार्य प्रारम्भ किया। नदिया जिलेके पलासडेंगा गाँवके निवासी हेमचन्द्र सरकार नामक मेरे एक पूर्व परिचित मित्र उस समय वहाँ क्लर्क थे। वह मेसमें रहते थे, मैं भी

उनके साथ मेसमें ही रहने लगा। पोष्ट माष्टर उस समय थे मौलवी सैयद अमजद अली साहब। वे खूब सज्जन पुरुष थे, कुलीन वंशके थे, साधारणतः विद्वान थे, बात-चीतमें शेक्सपीयर और मिल्टनकी कविता उद्धृत करते थे। वे छपराके पोष्ट-माष्टर थे और पहले Post Master General Office में Head Asstt. रह चुके थे। छपरासे झूठमूठ बदनाम करके उनकी दरभंगामें बदली हुई थी। इससे बुढ़ापेमें उनके मनमें बड़ा दुःख होता था। उनको आँखकी बीमारी थी। वे पीड़ित भी रहते थे और अपने दुःखकी बात बीच-बीचमें मुझको सुनाते थे।

दरभंगामें मेरा काम था Sorting Clerk चिट्ठियाँ छाँटनेका। दिन भर खड़ा-खड़ा आलमारीके खाने-खानेमें चिट्ठियों की छँटाई करनी पड़ती थी। इससे मेरे दोनों पैर सूज गये। कभी-कभी टेबुलके ऊपर बैठकर काम करता था लेकिन यह नियम विरुद्ध था। ठीक गाड़ीके समय डाकका थैला बाँधकर तैयार करना पड़ता था। दिनमें ६-७ बार डाक जाती थी। यह मेरा काम बड़ा कष्टप्रद था। सन्ध्या होनेपर आकर खाट पर मरे हुयेकी तरह सो जाता और उठनेकी इच्छा नहीं होती थी। मेरे प्रिय मित्र हेम बाबू मेरा देह, हाथ-पैर दबा देते थे, उनका ऋण जीवनमें कभी न भूलूंगा। इस प्रकार सिर-तोड़ परिश्रम करनेके बाद पढ़ना-लिखना बड़ा कठिन था। परन्तु बेकार बैठना बड़ा रोग है। अतः रातमें अकेले घरमें बैठकर मैं कागज कलम लेकर कुछ न कुछ लिखा करता था, कई पुस्तकें पढ़ता था। दरभङ्गा महाराजके आत्मीय तथा तत्कालिक उनके प्राइवेट सेक्रेट्री श्रीयुत् विन्ध्यनाथ झा बी०ए० एक दिन कार्यवश डाकघर आये, तब उनसे मेरा परिचय हो गया। मेरे लिखने-पढ़नेका दफ्तर मेरे साथही रहता था। डाकघरमें समय मिलतेही उसको उलटता-पलटता था। मेरी अंग्रेजी cuttings और कापीको हेम बाबूने उनको दिखलाया। वे बड़े विद्वान् थे। अंग्रेज प्राइवेट ट्यूटर रखकर महाराजा रामेश्वर सिंह बहादुरके साथ घर पर ही अंग्रेजी सीखकर प्राइवेट बी०ए० परीक्षा पासकी थी। इन्हीं विन्ध्यानाथ झा महाशयके छोटे भाई महामहोपाध्याय गङ्गानाथ झा एम० ए० बड़े महान् पुरुष विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर थे। उनके साथ भी मेरा परिचय था। मेरी कापियोंको विन्ध्यनाथ बाबू साथ लेते गये, और कह गये कि पढ़कर लौटा दूँगा। ३-४ दिनके बाद उन्होंने निम्नलिखित पत्रके साथ मेरी कापियोंको लौटा दिया।

"Many thanks for your Book. It has indeed given me a very great pleasure to read your articles. They speak very highly of your power of English letter-writing. I have scarcely read such good ideas clothed in such chaste and good English, discussing some of the most important social questions of the day. You evidently seem to have studied these complicate questions from different stand-point."

(Sd.) Vindya Nath Jha B.A.
Private Minister to His Highness
The Maharaja of Darbhanga.

Dated : Darbhanga,
The 18th December, 1894.

तबसे विन्ध्यनाथ बाबू अक्सर डाकघरमें आते थे, मुझको बुलाकर बहुत बातें किया करते थे। कभी कभी अपनी गाड़ीमें मुझको लेकर घूमने जाते थे। पोष्ट माष्टर मौलवी साहब बड़े ही सज्जन पुरुष थे। वे इससे बड़े प्रसन्न होते थे। कामके लिए मुझको कुछ भी नहीं कहते थे। मैं जब घूमने जाता था, हेम बाबू मेरा काम कर देते थे।

दरभंगामें वही प्रसिद्ध डिप्टी पोष्ट-माष्टर-जनरल J. Short एक बार आये पोष्ट माष्टर मौलवी साहबको बदनाम करके उन्होंने ही छपरासे दरभंगा बदली करायी थी। मौलवी साहब बड़े तेजस्वी पुरुष थे। साहबके आफिसमें आने पर वह कुर्सीसे न उठे। साहबने स्वयंही good morning कहकर कुशल-मङ्गल पूछा तब वह बोले—"Mr. Short, you stabbed me in the dark, and you robbed me of my good name. I do not like to serve any longer under you. I am going to retire very soon." अर्थात् "तुमने मुझको अँधेरेमें छुरा मारा है, मेरे सुनामको नष्ट कर दिया है। मैं तुम्हारे अधीन और काम करना नहीं चाहता । मैं शीघ्र ही पेन्शन लूँगा।" इतना कहकर उन्होंने शेक्सपियरकी यह कविता पढ़ दी। साहब बहादुर चुप चाप सुनते रहे।

"Good name in man and woman Oh! My Lord!
Is the immediate Jewel of their soul,
He who flinches from me my good name,
Robs me of that, which not enriches him.
But makes me poor indeed."

साहब बहादुर लज्जासे कुछ बोल न सके, कुछ परिदर्शन कर न सके, पोष्ट-माष्टर साहबको सलाम करके धीरे धीरे चले गये और फिर डाकघरमें कभी नहीं आये।

वारुण डाकघर (गया जिले) में

•

दरभङ्गा हेडआफिसमें मुझे अधिक दिन नहीं रहना पड़ा। उसी २० रु० वेतनमें सब-पोष्ट माष्टर और तार बाबू (दोनों) 'एकमेवाद्वितीयम्' होकर गया जिलेमें सोन नदीके तीर पर ग्राण्ड ट्रंक रोडके ऊपर एक स्वास्थ्यप्रद स्थानमें वारुण नामक गाँवमें डाकघरका सर्वेसर्वा बनकर गया। मनमें बड़ा आनन्द था। बिना भाड़ेका सरकारी मकान रहनेके लिए मिलेगा। दैनिक कार्य देखने वाला ऊपर कोई न होगा। मैं ही कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता रहूँगा। पोष्ट माष्टर लोगोंकी यह सुविधा और सौभाग्य देखकर ही बाल्यकालसे डाकघरकी नौकरी करनेका लोभ मेरे मनमें पैदा हुआ था। अब वह सुख-सुयोग प्राप्त हो गया। गृहिणीको पत्र लिखा, परन्तु वह उस समय गर्भवती थीं। उसके भाग्यमें यह सुख और सुयोग विधाताने लिखा न था। लालगंजमें भी यह सुयोग प्राप्त था, परन्तु वह अस्थायी नौकरी थी, और यहाँ स्थायी नौकरी थी। उस समय डाकघरमें स्थायी-अस्थायी नौकरीमें कोई विशेष अन्तर न था। वर्षमें ३-४ बार बदली होती थी। विशेषतः तार बाबू लोगोंकी बदली बहुत जल्दी जल्दी होती थी। शिमलाकी पोष्टल कमेटीमें इस प्रकारकी बदलीके विषयमें मैंने विशेष रूपसे आन्दोलन किया था, जिसके फलस्वरुप अब Time Scale हो गया है।

वारुणमें पोष्ट माष्टरका निजी निवास-स्थान पत्थरका पक्का पी० डबल्यू० डी० का नया मकान था। ४ मार्च १८९५ ई० को मैंने वारुणमें जाकर कार्यभार ग्रहण किया। रन्धन-शालाका कार्यभार भी स्वयंको ही ग्रहण करना पड़ा। काम धन्धा बहुत कम था। दिन भरमें ३-४ घंटा काम करना पड़ता था इसलिए समय काफी बचता था। वहाँ कई मित्र जुट गये, जिनमें अन्नदाचरण गुह, संभवतः बरीसालके निकटके निवासी थे, मेरे साथही डाकघरमें रहते थे। मैं भोजन बनाता, और वे सामान जुटा देते। वे बड़े ही सज्जन व्यक्ति थे, पी० डबल्यू० डी० के ओवर-सियर होते थे। वहाँ एक और ओवरसियर थे, नाम था वामाचरण बसु मल्लिक, गोआड़ी कृष्णनगरके निवासी थे। वे भी मेरे परम मित्र थे। उस समय तारके खंभे (Teligraph Post) खूब अच्छी सैगोन लकड़ीके होते थे। Well-seasoned होते थे।

पुराने खंभे बीच बीचमें नीलाम कर दिये जाते थे । वे पुराने तारके खंभे चार आने प्रति खंभेके हिसाबसे मेरे लिए खरीद करके उन्होंने अपने ही आदमियोंसे एक पलंग तैयार करा दिया था । वह पलंग अनेकों स्थानोंमें भ्रमण करके आजभी पूर्ण व्यवहारोपयोगी दशामें श्रीधाममें वर्त्तमान है । परन्तु मैंने उसको अब पेन्शन दे दी है । क्योंकि अब मुझको खटिया पर सोनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है । एक छिन्न-भिन्न चटाई पा जाने पर ही उसे यथेष्ठ मानता हूँ । उसी समय वहाँ एक अच्छी दरी मैंने ५ रु० में खरीदी थी । गया जिलेमें ओब्रा नामक स्थानमें अच्छी दरी तैयार होती हैं । मेरे लिये यह दरी फरमाइशसे बनवाई गई थी । मैं आज भी उस दरीको व्यवहारमें लाता हूँ । ये पुरानी वस्तुएँ मेरी बहुत प्रिय हैं । इनसे पूर्वस्मृति जागृत होती है ।

इसी समय श्रीपाट दोगाछिया ग्राममें २७वीं आषाढ़ १३०२ सालमें, रविवार, नवमी तिथि, चित्रा नक्षत्र, कन्याराशिमें—३० जून १८९५ ई० को मेरी एकमात्र कन्याका जन्म हुआ । मेरे फुफेरे भाई नील माधव वाचस्पति महाशयने पत्र द्वारा यह समाचार मुझे वारुणमें भेजा था । वह पत्र अब भी मेरे पास यत्नपूर्वक रक्खा हुआ है । 'कन्यारत्न महाधनं' एक कहावत है । मेरे लिए यह कहावत पूर्ण सत्य हुई है । मेरी कन्या भक्ति धनसे धनी है । मेरी एक मात्र कन्या बाल अवस्थामें विधवा हो गयी । जागतिक सुखका कोई अनुभव उसे नहीं हुआ । उसको परम सुखका आस्वाद मिला, परम वस्तुका सन्धान प्राप्त हुआ, अपूर्व प्रेमानन्दकी अनुभूति हुई, जिसके सामने जागतिक सुख तुच्छ है । जिस परिवारमें एक ब्रह्मचारिणी विधवा रहती है, वहाँ एक विशिष्ट धर्मप्रभाव होता है । जिस परिवारमें विधवा नहीं होती, उस परिवारमें सदाचारसे देव-सेवा आदि कार्य सुसम्पन्न होना दुष्कर है । इसके लिए गृहस्थाश्रममें विधवाकी आवश्यकता है । वह श्रीभगवान्‌की अपूर्व सृष्टि तथा विशिष्ट दान है । यह बात सहज ही समझमें नहीं आती ।

सोन नदी एक बहुत बड़ी नदी है । २-३ मील चौड़ी है । वर्षा-कालमें ताड़के पेड़के समान ऊँचा ज्वार आता है । बड़े बड़े वृक्ष, वनके जन्तु आदि दूर-दूरसे बहते आते हैं; भयानक तरङ्गोंके आघातसे दोनों किनारोंको प्लावित करता हुआ जब ज्वार आता है तो इस महान् नदीके तीरके बसने वाले जीव-जन्तु तथा मनुष्य भयसे प्राण लेकर भागते हैं । इसी नदीके तट पर मेरा डाकघर था । नदीके उस पार आरा जिला डिहरी (Dehiri on Sone) और इस पार वारुण गया जिलेमें है । नदीके ऊपरसे होकर ग्राण्ड-ट्रंक रोड जाता है । बड़े बड़े पत्थर देकर इतनी बड़ी नदीका निम्नभाग पूर्णतः पक्का बांध दिया गया है । उसके ऊपरसे इक्का, घोड़ा-गाड़ी तथा मनुष्य आदि निरन्तर आते-जाते रहते हैं । इतनी बड़ी नदी तीन मील लम्बे पुलसे बांधी गयी है । सुना है इस पुलको बँधानेमें तीन करोड़ रुपये लगे थे । इसका निचला भाग ४८ बड़े बड़े लोहेके दरवाजोंके द्वारा बीच-बीचमें आबद्ध है । इस पुलके द्वारा सोन नदीके भीषण

जल-प्रवाहको आबद्ध करके एक ओर पटना नहर, तथा दूसरी ओर आरा नहर काटकर पटना और आरा जिलेके तीरवर्ती भूभागको नदीके जलसे उर्वरा क्षेत्र परिणत करके किसानोंको विशेष सुविधा प्रदान की गयी है । यह महान निर्माण-कार्य डिहरी और बारुणमें पी० डबल्यू० डी० की अक्षय कीर्ति है । वहाँका प्राकृतिक दृश्य अति सुन्दर है, उत्तम स्वास्थ्यकर स्थान है । इन डिहरी आन सोन और बारुण—दोनों स्थानोंमें ही मैं पोष्ट माष्टर था । डिहरीकी कथा यथास्थान वर्णनकी जायगी ।

सोन नदीमें मूल्यवान पत्थर पाये जाते जाते हैं, यह सुनकर मैं प्रतिदिन स्नानके समय दो तीन घण्टे पत्थर खोजनेमें लगाता था । फलतः कई पुखराज पत्थर एकत्र कर कर लाया था । उनमें से दो तीनको कटाकर हाथकी अंगूठी बनवायी है, वह मेरे हाथमें हीरेकी अँगूठी जैसी जान पड़ती है । मेरे हाथमें उसके मूल्यकी वृद्धि तो होगी ही, क्योंकि मैं इस समय वह १५-२० रुपये वेतनका डाक बाबू या तार बाबू नहीं हूँ । मैं तो इस समय श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु हूँ । बड़े लोगोंके हाथमें काँचकी अँगूठी भी हीरेकी अंगूठी बन जाती है ।

डिहरीमें उस समय पी०डबल्यू०डी० का बड़ा बोलबाला था । Ex. Engineer, Asstt. Engineer, Sub Asstt. Engineer, Overseer, Sub-Overseer आदि सभी बंगाली बाबू थे । २० रु० महीने वेतनका डाक बाबू होने पर भी मेरा एक व्यक्तिगत प्रभाव था । सभी मुझसे श्रद्धा-भक्ति रखते थे । मुझमें उस समय क्या गुण था, नहीं जानता । उसी गुणसे सब आकृष्ट होते थे । रूप निश्चय ही था । यह मुझे ठीक याद है कि रूपसे भी बहुतसे लोग मुग्ध होते थे । मुझको वे लोग निमन्त्रित करके पानीके बोट द्वारा सोन नदीके इस पारसे उस पार कभी कभी डिहरी ले जाते थे । वहाँ खूब खाना-पीना होता था । परन्तु मेरे लिए कुछ स्वतन्त्र बन्दोबस्त होता था । गोसाईं सदा ही गोसाईं थे । इतने बड़े-बड़े लोगोंके बीचमें भी २० रु० मासिकके गोसाईं बाबूकी एक स्वतन्त्रता थी । मैं भी तभीसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमें समर्थ था । पण्डित और कविके रूपमें उस समयसे ही मेरी एक प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा थी । सभा-उत्सव आदिमें दरबारी बातें करनेमें भी मैं दक्ष था । हास्य रसोद्दीपक गल्पमें मेरा विशेष अधिकार था । उस समय धर्मके सम्बन्धमें मेरी ज्ञान-बुद्धि साधारण ही थी । कर्म-जीवनकी बात, नैतिक चरित्रकी बात, आदर्श कर्मवीरकी कहानी, बड़े बड़े मनीषियोंकी जीवनी आदिके विषयमें मैं खूब आलोचना करता था । उपन्यास-नाटक आदिसे मेरा सदासे ही द्वेष था । यथार्थ सांसारिक बातोंसे ही मेरा मस्तिष्क भरा रहता था । मेरे उपस्थित रहने पर अन्य किसीकी दाल नहीं गलने पाती थी । उस समय यही मेरा व्यक्तिगत वैशिष्ट्य था, और इस वैशिष्ट्यने ही मुझको लोगोंकी आंखोंमें उन्नत किया था ।

उस समय गया डिवीजनके डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्ट थे एक अंग्रेज पादरी J.A. Betham. वह बड़े दयावान और महान् हृदयके राजपुरुष थे। मेरा उनके साथ साक्षात्कार नहीं हुआ था। सरकारी कागज-पत्र आदिके द्वारा उनके साथ मेरा प्रथम परिचय हुआ था। छोटेसे छोटा डाक बाबू होने पर भी डाकघर सम्बन्धी बड़े बड़े विषयोंमें मेरा दिमाग दौड़ता था। इन विषयोंमें मैं सरकारी डाक-विभागके बड़े कर्त्ता (Director General) पर्यन्तको भी कागजी लड़ाईमें ललकारनेसे नहीं हिचकता था। ये सारी लिखा-पढ़ीके कागज Proper channel द्वारा जाते थे, अर्थात् उक्त पादरी महाशयके द्वारा जाते थे। मेरी विद्वता और गुणशीलताके विषयमें इन कागज-पत्रोंके द्वारा ही कुछ कुछ जानकर मेरे लिए दो एक उत्साहपूर्ण सिफारिशी पत्र उन्होंने लिखकर दिये थे, जिनमेंसे एकमें लिखा था "I will forward your application to the High Court with pleasure and trust you will be successful. I am sure you will get on better in the Revenue or Judicial Branch of the Public Service. I hope you may rise to be a Dy. Magistrate or some thing better." अर्थात् "मैं आपका आवेदन-पत्र प्रसन्नताके साथ हाईकोर्टमें भेज दूँगा। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि आप राजस्व या न्याय विभागमें डाकघरकी अपेक्षा अच्छी नौकरी प्राप्त करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि आप किसी दिन डिप्टी मजिष्ट्रेट हो जाँयगे, अथवा उसकी अपेक्षा भी उच्च स्थान प्राप्त करेंगे।"

वारुणमें नौकरी करते समय एक बार दोनों भाई एक साथ छुट्टी लेकर देश जाकर घरकी मरम्मत और सफेदी कराकर आये थे। मेरे पूज्यपाद पिताजीने दो पक्की कोठरी तो बनाई थीं, परन्तु दीवालमें बालू-चूना देनेका पैसा नही जुटा पाये थे। फलतः बहुत समय तक ऐसाही पड़ा रहनेके कारण ईंटकी दीवालमें बीच-बीचमें तिल-चट्टे आदि कीड़ोंने घर कर लिया था। रातके समय वे सब कृष्णके जीव स्वच्छन्द घरमें उड़कर घूमते थे। उनके साथ-साथ चमगुदड़ीका दल भी रेल-पेल करने लगता। किसकी मजाल जो रातको घरमें सोये? मेरे कनिष्ट भ्राता गुरुदास और मैंने डेढ़सौ रुपये कर्ज लेकर किसी प्रकार गोआड़ी कृष्णनगरसे माल-मसाला लाकर एक महीना भूतके समान परिश्रम किया। परन्तु दीवालके बाहरी भाग पर पूरा पूरा बालू-चूना लगते-न-लगते रुपया और छुट्टी दोनों समाप्त हो गये, और काम अधूरा रह गया। दीवालके भीतरी भाग बाकी रह गये, उनमें बालू-चूना नहीं लग सका। वह इतना प्रिय पैतृक घर अब भूमिसात हो गया है। वहाँकी सम्पत्ति, बाग-बगीचा, जमीन-जायदाद भूतोंका डेरा बन गया। दोगाछिया ग्राम गोआड़ी कृष्णनगरसे दक्षिण, तीन मीलकी दूरी पर है। पहले यह एक लम्बा-चौड़ा बड़ा सा गांव था, अब भयानक मलेरियाके प्रकोपसे श्मशानमें परिणत हो गया है।

इस समय हमारे गृह-देवता नारायण तथा एक छोटे बाल-गोपालकी लघु श्रीमूर्त्तिको, जो हमारे पूर्व-पुरुष श्री चैतन्य भागवतोक्त, बाल-गोपाल-उपासक तैथिक विप्र श्रीसत्यभानु उपाध्यायके द्वारा अर्चित और सेवित हुए थे, श्रीधाम नवद्वीपमें मेरी मँझली बहिनके घरमें रखनेका प्रस्ताव हुआ। क्योंकि हमलोग तो विदेशमें नौकरी करते थे, घर पर दूसरा कोई ब्राह्मण नहीं था, तथा मेरे कनिष्ट भ्राता गुरुदासने माताजीके सहित अपनी पत्नीको अपने पास मोतीहारीमें, जहाँ वह नौकरी करते थे, ले जानेका सङ्कल्प किया। इसलिए गृह-देवताको कुछ दिनोंके लिए मँझली बहिनके घर रखनेके लिए हम बाध्य हो गये थे। मुझे खूब याद है, उस दिन हम दोनों भाई पैदल ही लगे पाँव काल वैशाखी (अकालवृष्टिमें वैशाख) के दिन अपराह्नमें १० मील रास्ता चलकर रातमें ९ बजेके बाद स्वरूपगंजमें पहुँचे थे। उस दिन हमको भयंकर तूफानके साथ-साथ मूसलाधार वृष्टिमें भीजते-भीजते सारी राह चलनी पड़ी थी। उस दिनकी विपदकी बात याद आने पर अब भी प्राण मानों कांप उठते हैं, स्वरूपगंजके घाट पार उतरनेके लिए नाव न मिलनेके कारण उस दुर्दिनकी वह भयानक रात दूकान पर बैठकर स्वरूपगंजमें ही काटनी पड़ी थी। गृह-देवता गृह छोड़कर पर-गृह जा रहे थे, इस कारण उनका मन दुःखित होनेसे ही हमारी वह दुर्दशा और दुर्गति हुई थी। किसी प्रकारसे उस दिन हमारी प्राण-रक्षा हो गयी थी, इसमें भी ठाकुरजीकी कृपाका अनुभव हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल नवद्वीप जाकर बहिनके घर ठाकुरजीको रखकर दोगाछिया लौट आया। कुछ दिनके बाद विदेश जाने पर बहिनके पत्रके द्वारा ज्ञात हुआ कि हमारे गृह-देवता नारायण और बालगोपाल किसी कारणसे महाप्रभुके मन्दिरमें कुछ दिन रक्खे गये थे। ऐसे अनेक ठाकुर वहाँ रहते हैं। परन्तु एक दिन एक संन्यासीने आकर एक नारायण शिलामूर्त्तिकी याचनाकी। उस दिनके पुजारी गोस्वामीप्रभुने हमारी नारायणशिला ही उस संन्यासीको दान कर दी। बहिनने अपनी पूजाके दिन हमारे नारायणको महाप्रभुके मन्दिरमें न देखकर अत्यन्त दुःखित और चिन्तित होकर पता लगाया, तथा समाचार प्राप्त करके हमको सूचित किया। वह दुःसमाचार प्राप्तकर उस दिन दुःखित होकर मैंने उपवास किया था, यह मुझे याद है। इसके १५-१६ वर्षके बाद जब मैं अजमेर (राजपूताना) का पोष्ट माष्टर था, तब एक अपरिचित संन्यासी अचानक आकर बिना माँगे मुझे एक नारायणशिला प्रदान करके चुपचाप चले गये। यह एक अपूर्व बात है। वह गण्डकी शिला नृसिंह नारायण हैं, साधु-सन्यासीके द्वारा ही इसकी सेवा होती है। गृहस्थके घरमें नियमपूर्वक सेवा-पूजा न होनेसे महान् अनर्थकी आशंका रहती है। मैंने इस नारायणशिलाको प्राप्त कर उसी दिनसे अपने हाथोंसे विधिपूर्वक उनकी सेवापूजाका भार ग्रहण किया। आजतक वह हमारे श्रीमन्दिरमें सेवित और पूजित होते हैं। अबतक भय या विपद्का कोई कारण देखनेमें नहीं आया।

गया पोष्ट आफिसमें

•

इसी समय गयाके पोष्टमाष्टर बाबू राजकुमारलालने बहुत लिखा-पढ़ी करके मुझको अपने आफिसका क्लर्क बनानेकी चेष्टाकी। सालभर तक उनकी चेष्टाके फलस्वरूप उसी २० रु० महीने पर गया हेड आफिसमें मेरी बदली हो गयी। इसी बीच एक बार एक महीनेकी छुट्टीमें घर जाकर नवजात कन्याको मैं देख आया। उस समय उसकी उम्र ८-१० महीनेकी थी, खूब चंचल और धृष्ट थी। गृहिणी कन्या उत्पन्न होनेके कारण कुछ लज्जित थी। मेरे छोटे भाई गुरुदासका ज्येष्ट पुत्र उस समय डेढ़ वर्षका था। नाम था ज्ञानेन्द्रनाथ—बड़ा ही दुर्बल बालक था। दोनों भाई-बहिनमें खूब मारपीट—काटाकाटी होती थी। ये दोनों शिशु मेरी माताजीके बहुत दुलारे थे। उस समय हमारी गृहस्थीकी हालत बड़ी ही शोचनीय थी। किसी प्रकार भोजनाच्छादन चलता था। इस दुःखके संसारमें मेरी पूज्यनीया मातादेवी किसी प्रकार लौकिक कुटुम्बिता, तथा मोटा चावल और मोटे कपड़ेकी व्यवस्था करके बहुत कष्ट-पूर्वक परिवारका संचालन करती थीं। यह देखकर मेरे मनमें बड़ा कष्ट होता था। परन्तु क्या करें, कोई उपाय न था। दुःखित परिवारमें जन्म लेकर उपयुक्त शिक्षा ग्रहण न करके डाकघरमें सामान्य वेतन पर काम करनेके लिए मैं बाध्य हुआ था। छोटा भाई भी इसी प्रकार सामान्य वेतन पर सरकारी अफीम विभागमें कलर्कके काम पर बहाल हुआ था। दोनों भाई माताजीको १०-११ रु० महीनेसे अधिक नहीं दे पाते थे। इससे किसी प्रकार भोजनाच्छादन मात्र चलता था। ये सब बातें याद आनेपर मेरे मनमें बड़ा कष्ट होता है। वृद्धावस्थामें माता-पिता अर्थाभावमें बड़ा कष्ट पा गये हैं; और इस समय हम नबाबी करते हैं, यह बड़ी लज्जाकी बात है। आज यदि वे विद्यमान होते तो मैं देवताके समान उनकी पूजा और सेवा करके धन्य हो जाता। माता-पिताकी वृद्धावस्थामें सेवा करनेका सौभाग्य बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होता है।

वारुणसे मेरी गयामें बदली हुई। यहाँ भी क्लर्कका काम था। ८ अप्रैल १८९६ ई० में मैंने गया हेड पोष्ट आफिसमें द्वितीय तार बाबूके स्थान पर कार्य प्रारम्भ किया। मेसमें रहता था। गयामें बहुत बंगाली रहते थे। क्रमशः सबके साथ परिचय

प्राप्त हुआ । पोष्ट माष्टर लाला राजकुमार लाल अतिवृद्ध, नामवर और पक्के पोष्ट माष्टर थे । उन्होंने मुझको अपना correspondence clerk खास केरानी बना लिया। उस समय डाकघरमें ४-५ बंगाली थे । इसलिए मुझको बड़ी सुविधा हुई । जिस मेसमें मैं रहता था, वह भी बंगाली मेस था । हेमचन्द्र मित्र नामके एक बाबू उस समय आबकारीके केरानी (clerk) थे, वह आगे चलकर डिप्टी मजिष्ट्रेटके पद पर पहुँच गये । इस समय पेन्शन लेकर कृष्णनगर-गोआड़ीमें आनरेरी मजिष्ट्रेट हैं । उस दिन एक मुकदमेमें मैंने उनके इजलासमें गवाही दी थी । उन्होंने मेरा नाम सुनते ही मुझको पहचान लिया, और अपने इजलासमें ही कुर्सी देकर काफी खातिर की । मैंने उनको देखकर पहचाना नहीं, गयामें मैं तीन वर्ष तक रहा । कुछ दिनके बाद वहाँ सपरिवार रहने लगा था ।

उस समय मेरी कन्याकी उम्र ३-४ वर्ष रही होगी । गयामें श्रीविष्णुपादपद्म श्रीमन्दिरके पास एक पत्थरके बने तीन तल्ले मकानमें मैंने सपरिवार कुछ दिन गया धाममें वास करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था । मकानमें ऊपर-नीचे ५-७ कोठरियाँ थी । चारों ओर सुन्दर बरामदेसे घिरा था । कुआं नीचेके तल्लेमें था, परन्तु तितल्लेसे जल खीचनेका प्रबन्ध था । इतने सुन्दर तीन तल्ले मकानका भाड़ा उस समय १८ रु० साल अर्थात् केवल १।। रु० महीना था । उन दिनों गयामें मकान इतने सस्ते भाड़ेमें मिलता था । भोजनके पदार्थ भी खूब सस्ते थे । बड़ा डाकघर था सिविल स्टेशनमें, मेरे बासेसे १।। मील दूर । मुझको डाकघर प्रातःकाल ६ बजे जाना पड़ता था । भोजन करनेके लिए दोपहरको बासे पर आता, और फिर दो बजे जाकर सन्ध्या कालके बाद रातमें ८-९ बजे बासे पर लौटता था । इस प्रकार प्रतिदिन मुझको ६ मील पैदल चलना पड़ता था । ग्रीष्म और वर्षाकालके कष्टकी बात कही नहीं जा सकती ? गया खूब ग्रीष्म प्रधान देश है, प्रायः चारों ओर पहाड़-पर्वत हैं । असह्य गर्मी पड़ती है, उसी गर्मीके मध्याह्नमें तीन मील रास्ता आना-जाना कितना कष्ट-प्रद है, इसे भुक्तभोगीके सिवा और कोई नहीं जान सकता । नौकरी वस्तु ही ऐसी है, नौकरीमें मनुष्यको सब सहना पड़ता है । नौकरी बनाए रखनेके लिए जगत में ऐसा कोई काम नहीं, जिसे वह न कर सके । नौकरीको इसी कारण दिल्लीका लड्डू कहते हैं । जो खाता है वह भी पछताता है, और जो नहीं खाता वह भी पछताता है। पेट भरनेके लिए इस नौकरीके लिए इतना कष्ट ! उसके ऊपर फीलपाँवके ऊपर विषैला फोड़ा ! ऊपरसे अफसरोंका डंडा जूता सहना पड़ता है । परन्तु मुझको नौकरीसे कभी घृणा नहीं हुई । न जाने क्यों ? छोटी नौकरीके समयसे ही ऊपर वालोंकी सदा ही मेरे ऊपर कृपादृष्टि रही । बड़ी नौकरीकी तो बात ही क्या ? बड़े बड़े साहब लोगोंको मेरी सहायताकी जरूरत पड़ती थी । खुशामदका तो मैं नाम ही नहीं जानता था । डाली देना तो दूर रहा अपनी नौकरीके समय बड़े बड़े ऊपर वाले साहबोंसे मैंने स्वयं डाली प्राप्त की है। इन सब

बातोंकी यहाँ आवश्यकता नहीं है । यथा समय अपनी बड़ी बड़ी नौकरीके जीवनकी अनेक बड़ी बड़ी बातें कहूँगा ।

गया धाममें रहते समय मेरी माताका स्वर्गवास हो गया । वे मेरे छोटे भाई गुरुदासके पास मोतीहारीमें थीं । अचानक निमोनियासे उनका देहान्त हो गया । चम्पारन जिलेमें मोतीहारीसे १२ फरवरी १८६६ ई० को तार पाकर जबमैं गयासे मोतीहारी गया तो अपनी पूज्यनीया माताको मृत्युशैय्या पर सोते पाया। कुछ बात तो नहीं हो सकी, परन्तु मृत्युकालमें उनको देख पाया । यही मेरे लिए परम सौभाग्यकी बात थी। गण्डकी नदीके तीर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करके दोनों भाइयोंने सपरिवार गया आकर उनकी श्राद्धादि क्रिया सम्पन्न की । दस वर्ष पूर्व मैं पितृ-विहीन हो चुका था, अब मातृ-विहीन होकर संसारको अन्धकारमय देखने लगा । दोनों भाई आपसमें गलेमें हाथ डालकर खूब रोये । मातृ-निधनके साल दोगाछियाके पूजागृहका ताला बन्द था । ब्राह्मण पण्डितके घर पीतल और कांसेके वर्त्तनोंका अभाव न था । एक घर कलसी ही कलसीसे भरा था । मेरे पूज्यनीय पिताजी सुविख्यात भागवत कथावाचक थे । दरी, गलीचा, चौकी, आसन, लोटा, कटोरा वर्तन आदि हमारे घरमें भरे पड़े थे। कुछ दिनके बाद समाचार मिला कि घरका ताला तोड़कर चोर सब कुछ चुरा ले गये हैं। छुट्टी लेकर घर जाकर देखा तो पता लगा कि स्वजन दस्युओं द्वाराही यह कार्य सम्पन्न किया गया है । कई आदमियोंके घरमें देखा कि मेरे ही घरकी वस्तुएँ व्यवहृत हो रही हैं । परन्तु साधारण तुच्छ वस्तुके लिए मैंने और कुछ न करना चाहा । हमारे घरकी एक प्राचीन हस्तलिखित श्रीमद्भागवतकी पोथी भी चोरी चली गयी थी। पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह नवद्वीपके किसी भागवत व्यवसायी गोस्वामी सन्तानके हाथ साधारण मूल्यमें बेची गयी है । छोटी उम्रमें मैं पितृ-विहीन हो गया था, अब मातृ-विहीन हो गया, पैतृक सम्पत्ति चली गयी, घर द्वार सब चला गया । केवल दिल्लीका लड्डू २० रु० मासिककी नौकरी ही एक सहारा रह गयी । ऐसी अवस्थामें पड़कर जो मनुष्य बनता है, वही यथार्थ मनुष्य है । परन्तु इस हतभाग्यके पक्षमें यह नियम कारगर न हुआ । मनुष्य भी न हो सका, सज्जन भक्त होना तो दूरकी बात है ।

कहना भूल गया, जिस समय मैं गयामें अकेला मेसमें रहता था, उस समय एक मासके लिए मुझे गया जिलेके वजीरगंज डाकघरमें सब-पोष्ट-माष्टरी करनेके लिए जाना पड़ा था । वजीरगंज गयासे २०-२२ मील दूर है । वहाँ ऊँट गाड़ी करके जाना पड़ता है । वह अति प्राचीन स्थान है। किसीभी स्थानमें जमीन खोदने पर पत्थरकी बौद्ध मूर्त्ति आज भी निकलती है । मैं भी एक अति सुन्दर प्राचीन बुद्धदेवकी श्रीमूर्त्ति वहाँसे ले आया था । वह तौलमें आधा मन, तीस सेर तक होगी । वह गयामें ही रक्खी गयी है । संभवतः आज भी मेरे मित्र गयानाथ बाबूके यहाँ होगी ।

गयासे मुझको पुनः अस्थायी रूपमें छपरा जिलेके दिघवारा सब-पोष्ट माष्टरीमें, आरा डीवीजनके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेडक्लर्ककी जगह पर, पटना जिलेकी दीघा सब-पोष्ट माष्टरीमें, तथा अन्तमें पूर्णियाँ डिवीजनके सुपरिण्टेण्डेण्ट साहबके हेडक्लर्ककी जगह पर काम करके फिर दूसरी बार गयामें आना पड़ा। उस समय मैंने वहाँ कुछ समय सपरिवार निवास किया। इसी समय मेरा मातृ-वियोग हुआ था।

उपर्युक्त चार स्थानोंमें मैंने १२ जून १८९७ ई० से १५ अगस्त १८९८ ई० तक काम किया अर्थात् एक सालसे कुछ अधिक समयके भीतर मेरी चार स्थानोंमें बदली हुई। मुझे याद है कि जब शिमलेमें पोष्टल कमेटी बैठी थी तो उसमें मेरा प्रधान अभियोग था अनवरत और अनावश्यक बदली। उसके फलस्वरूप Time Scale के समयके बाद ही बदली होनी शुरू हुई।

इन सब स्थानोंका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना कहना यथेष्ट होगा कि दानापुर-दीघामें जब मैं था, उस समय मेरी गृहिणी और कन्याको मेरे पास मेरे एक आत्मीय स्वजन पहुँचा गये थे। मेरी कन्या सुशीला उस समय बहुत धृष्ट और चंचल थी। डाकघरके सामने बाँकीपुर-पटना- दानापुरका बड़ा सदर रास्ता G. T. Road पड़ता है, उसपर सदा घोड़ागाड़ी चलते रहते हैं। पोष्टआफिसके ठीक सामने एक बर्फकी फैक्टरी थी। सुशीला रास्तेमें सदा दौड़ा करती थी। कमाल नामक एक अत्यन्त शरीफ मुसलमान मेरा पोष्टमैन था। वह सुशीलाको बहुत मानता था, सदा उसको आँखोंमें रखता था। तभीसे सुशीलाने अपने आप लिखना-पढ़ना प्रारम्भ किया था और उसको वर्ण-परिचय हो गया था। उस समय उसकी आयु ३-४ वर्ष थी। कमाल उसके पास बंगला अक्षर सीखता था। वह कमालकी अध्यापिका थी।

बड़े साहब डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरलका आफिस उस समय दानापुरमें था। दीघा दानापुरसे एक मीलसे कुछ अधिक दूर होगा, मैं बड़े आफिसमें बड़े बाबूके पास बीच बीचमें दानापुर भेंट करने जाता था। सभी मुझसे प्रेमभाव रखते थे। भक्तिश्रद्धा करते थे और डरते भी थे। शान्तिपुर निवासी श्रीहरिप्रसन्न खाँ उस समय बड़े बाबू थे। वे बड़े ही सज्जन थे, मेरी ससुरालके गाँवके आदमी थे, मुझपर दयाभाव रखते थे। पश्चात् वे ढाकाके पोष्ट माष्टर होकर ६०० रु० महीने वेतन पर पेन्शन लेकर लखनऊमें रहने लगे। बीच बीचमें जब घर पर आते थे तो नवद्वीपमें आकर मेरे साथ मिल जाते थे। वह मुझमें बड़ी भक्ति रखते थे। महात्मा शिशिरकुमारके भानजे श्रीयुत रञ्जन विलास राय चौधरी उस समय बड़े साहबके दफ्तरके इन्सपेक्टर थे। वे बड़े गौर-भक्त थे, मुझसे बड़ा स्नेह करते थे। उस समय मैं नामका गोस्वामी प्रभु था, गौरके सम्बन्धमें अनभिज्ञ था, एक जड़पिण्ड मात्र था। तथापि

गोस्वामी प्रभु कहकर मेरा बड़ा सम्मान होता था। इससे मुझे बड़ी लज्जा आती थी। डाकघरोंमें मेरी ख्याति थी सुशिक्षित मनुष्यके रूपमें। डाकघरके लोग प्रायः मूर्ख होते हैं, परन्तु लिखा-पढ़ीमें मैं तेज था। इस कारण डाकघरके लोग मुझसे भय भी खाते थे और सम्मान भी करते थे। रञ्जन बाबूके साथ भी कई बार लिखा-पढ़ीकी लड़ाई हुई थी। उस समय सुपरिण्टेण्डेण्ट थे J. A. Betham साहब। वे बड़े सज्जन थे, पादरीके समान थे। वह मध्यस्थ होकर हमारा झगड़ा मिटा देते थे।

आरा और पूर्णियाँमें सुपरिण्टेण्डेण्टके बड़े बाबूका वेतन केवल ३० रु० महीना था। अब २५० रु० महीना हो गया है। मैंने इन दोनों जगहोंमें एक-एक महीने अस्थाई भावसे काम किया था। दोनों स्थानोंमें सुपरिण्टेण्डेण्ट लाल मुँह वाले साहब थे। एकका नाम Burn था और दूसरे का नाम Love. उन दिनों पूर्णियाँ बड़ा ही अस्वास्थ्यकर स्थान था। वहाँका हवापानी मुझे सहन न हुआ। माताकी बीमारीके बहाने छुट्टी लेकर मैं वहाँसे भाग गया, फिर नहीं लौटा। इससे साहब बहादुर बहुत रुष्ट हुए। उसमें मेरी कोई हानि न थी। वही Love साहब बादमें कलकत्तामें प्रेसिडेंसी पोष्ट माष्टर हो गये थे।

इतने दिनों तक मेरी असली तनख्वाह २० रु० महीना ही रही। मुझको अस्थायी भावसे बड़ी बड़ी उत्तरदायित्वपूर्ण नौकरियाँ करनी पड़तीं। इन नौकरियोंमें कहीं २६ रु० कहीं ३० रु० महीना वेतन मिलता था। इसके बाद मैं ३० रु० महीने पर पक्का होकर कर्ल्कके काम पर फिर गया हेड आफिसमें आया, यह १६ अगस्त १८९८ ई० की बात है। मैं जब छपरा जिलेमें दिघवारा पोष्ट आफिसमें काम करता था, उस समय एक बड़ा भूकम्प हुआ था। यह भूकम्प सारे देशमें व्याप्त था। बहुत लोग मरे, बहुतों को हानि भी अत्यधिक हुई। मुझको याद है कि मैं आफिसमें बैठकर काम कर रहा था। मानो किसीने मुझको वहाँसे हटाकर घरके बाहर कर दिया। सारा मकान हवामें वृक्षकी डालके समान डोल रहा था। वैसा भूकम्प मैंने जीवनमें कभी नहीं देखा। उस समय मेरी पूज्यनीया माता देवी जीवित थीं। मेरा समाचार जब तक न मिला तब तक उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। मेरा पत्र पानेके बाद ही उनको शान्ति मिली।

यह लिखना भूल गया हूँ कि जब मैं श्रीविष्णुपादके मन्दिरके पास गया धामके पाँच मुहल्लामें १८ रु० वार्षिक भाड़ेमें तीन तल्ले मकानमें रहता था, उस समय मेरी कन्या सुशीलाकी अवस्था केवल ३-४ वर्ष थी। बचपनसे वह बड़ी चंचल और धृष्ट थी। गयाकी गलियाँ टेढ़ी-मेढ़ी हैं, और तंग हैं। दोनों ओर बड़े-बड़े पक्के तीन तल्ले, चौतल्ले मकान हैं। गलियोंके रास्ते भी पक्के हैं। नीचे नालियाँ हैं। आगन्तुक यात्री सहज ही इन गलियोंमें रास्ता भूल जाता है। मेरी शिशु कन्या सुशीला

अचानक एक दिन नीचेके तल्लेमें जाकर गलीके रास्तेसे बाहर निकलकर बहुत दूर तक चली गयी। दोतल्ले पर गृहिणी गृहकर्ममें लीन थी, उनका ध्यान उधर नहीं गया। सुशीला एक गलीसे दूसरी गली होती हुई ठीक सदर रास्ते पर डिष्ट्रिक्ट बोर्डके हेड क्लर्क मेरे मित्र राजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायके बासेके सामने जा उपस्थित हुई। उन्होंने मेरी लड़कीको कभी न देखा था, बंगालीकी एक छोटी-सी लड़कीको अकेली रास्तेमें देखकर अपने नौकरके द्वारा सुशीलाको बुलाया और हाथमें खाना देकर प्रेमसे पूछा—"तुम्हारे बाबाका क्या नाम है ?" उत्तर मिला—'बाबा'। नाना प्रकारके प्रश्न करके जब पता न लगा कि किसकी लड़की है, तो अपने नौकरके गोदमें सुशीलाको देकर प्रत्येक बंगालीके घर गयामें घुमानेकी आज्ञा दी। इधर मेरी गृहिणी, उस गायके समान जिसका बछड़ा खो गया है, अत्यन्त व्याकुल होकर सुशीलाकी खोजमें नौकरानीको भेजकर दूसरे आदमीके द्वारा डाकघरमें मुझको खबर भेजी। पहले कह चुका हूँ कि मेरे बासेसे डाकघर डेढ़ मीलसे अधिक दूर था। मैं यह समाचार पाकर जल्दी-जल्दी बासेकी ओर लौट रहा था, उसी समय गलीके भीतर राजेन्द्र बाबूके नौकरकी गोदमें सुशीलाको देखा। उसके हाथमें खानेका ढोंगा था, और हँस-मुख चेहरा। परम आनन्दपूर्वक खाना खाते हुए वह शहरकी दुकानों और आदमियोंको देखते हुए आ रही थी, मुझको देखतेही 'बाबा' कहकर मेरी गोदमें आ गयी। उसको लेकर और नौकरको साथ लेकर जिस समय मैं बासे पर आया, उस समय दोपहर हो रहा था। गृहिणी आँसू बहाती हुई दुःखित होकर बाहर द्वार पर खड़ी थी। रंधनादि कुछ भी नहीं हुआ। कन्याको पाकर मानो उनको आकाशका चाँद हाथ लग गया। राजेन्द्र बाबूके नौकर को बख्शीश देकर बिदा किया। मैंने उस दिन गृहिणीको उनकी असावधानीके लिए कुछ खरी-खोटी सुनायी। उसी दिनसे सदर दरवाजा बिल्कुल बन्द रहने लगा।

उसी समय एक और घटना हुई, जिसको कहे बिना गया धामके उस बासेकी बात अधूरी रह जायगी। उसी समय महाबोधि सोसायटीके धर्मपालके साथ बुद्धगयाके महन्तका एक बड़ा फौजदारीका मुकदमा चल रहा था। उस मुकदमेमें बंगालके सुप्रसिद्ध वैरिष्टर मनमोहन घोषको महन्तके पक्षमें गया आना पड़ा था। बुद्ध गया हमारे गया धामसे ७-८ मील दूर अवस्थित है। जापानके राजाके तत्वावधानमें धर्मपाल महाशयने एक सुन्दर बुद्धकी प्रतिमा जापानसे लाकर बुद्ध गयामें स्थापितकी थी। उसीको लेकर यह मुकदमा चल रहा था। हिन्दू महन्तको भगाकर बुद्ध गयामें बौद्धगणोंका अधिकार करनेके उद्देश्यसे छिपे रूपसे गया-टिकारी महाराजसे कुछ जमीन लेकर वहाँ यह प्रतिमा स्थापित करनेका प्रयत्न था। बुद्ध गयाका हिन्दू महन्त खूब धनी और बड़ा आदमी था। उसकी रहन-सहन राजाके समान थी। हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही सब कुछ थे। उनके साथ मेरा परिचय उनके गयाके एजेण्ट शशाङ्क

बाबूके द्वारा हुआ था । वे मुझको विशेषरूपसे जानते थे । मेरे द्वारा अंग्रेजी और बंगला पत्रोंमें इस विषयका आन्दोलन करानेके उद्देश्यसे महन्तके पास वे मुझको ले गये थे । यद्यपि मैं नौकरी करता था, परन्तु सब लोग जानते थे कि लेखादिके द्वारा वाद-विवाद चलानेमें मैं बड़ा पटु हूँ । अंग्रेजी-बंगला भाषामें समाचार-पत्रोंमें युक्तिपूर्ण प्रबन्ध लिखकर मैं सुन्दरतापूर्वक आन्दोलन करनेमें सिद्धहस्त हूँ, यह बात सब लोग जानते थे । मैंने सामयिक अंग्रेजी और बंगला समाचार-पत्रोंमें कतिपय सुयुक्तिपूर्ण निबन्ध लिखकर महन्त महाराजका कुछ उपकार किया था, इसलिए उन्होंने मुझको विधिपूर्वक पारिश्रमिक, तथा भोज्य वस्तुएँ और वस्त्रादि भेंट किये थे । उन सब लेखोंकी कतरन आज भी मेरे पास हैं । डाकघरमें सिरतोड़ परिश्रम करनेके बाद भी मैं घरमें अध्ययन करता था । रातके नौ बजेके बाद डाकघरसे आकर भोजनादि करके मैं लिखने-पढ़नेका काम प्रारम्भ करता था । इस कार्यका मानो मुझको एक नशा था । कुछ लिखे-पढ़े बिना रातको मुझको नींद नहीं आती थी । यदि यह नशा अपने जीवन-सर्वस्व धन श्रीगौराङ्गके सम्बन्धमें होता तो मेरा जीवन और यौवन सार्थक हो जाता । दुर्भाग्यवश उस समय मेरा यह भाव नहीं था, यह प्रेम नहीं था । अब उसके लिए हाय-हाय करता हूँ, और दिन-रात दीवालमें सिर पटकता हूँ । मेरा दुर्लभ जीवन-यौवन एकबारगी व्यर्थ गया । इसी दुःख और अनुतापसे जबलपुरमें बैठकर १८ वर्ष पूर्व मैंने एक पद लिखा था, उसको नीचे उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता ।

यथा राग

गौर हे !
(आमार) वृथा बहि गेल यौवन ।
नवीन यौवने, ना पानु तोमारे,
कि फल राखिये जीवन ।
साधेर यौवन, वृथा बहि गेल,
ना पानु पराण धन ॥
केह ना बलिल, तुमि गुणनिधि,
छिले मोर निज जन ।
(एखन)गियाछे यौवन, कि दिये तोमाय,
तूषिब हे प्राणधन ॥
नाहि नव रूप, नाहि रस लेश,
नाहि उचाटन मन ।
नाहि वेशभूषा, पीरित-पियासा,
(से) कातर मनोवेदन ॥

हे गौरांग !

मेरा यह यौवन व्यर्थ ही चला गया । नवयौवन-कालमें तो तुमको पाया नहीं, अब जीवन रखनेसे क्या लाभ ? मेरा अभीप्सित यौवन व्यर्थ बीत गया, मुझे प्राण-धन नहीं मिले । किसीने नहीं बतलाया कि तुम गुणनिधि मेरे निज जन थे । हे प्राणधन ! अब यौवन तो चला गया, अब क्या देकर तुम्हें सन्तुष्ट करूँ ? न तो अभीनव रूप है, न रसका लेश है, और न मनका उच्चाटन है । न वेशभूषा है, न प्रीतिकी प्यास है, और न कातर मनोवेदना है ।

रूप चलि गेल, रस शुकाइल,
तबे एले प्राणधन ।
कि दिब तोमाय, तूमि रसमय,
(हे) सुन्दरी- मनोमोहन ।।
अदृष्ट तोमार, अदृष्ट आमार,
(तुमि)पीरितेर वश अति ।
पीरितेर धन, परम रतन,
(तुमि)वृद्धार युवक पति ।।
रूप नाहि ब'ले, देखा कि दिबे ना ?
ओहे प्राणरमण !
(तब)दुःखिनी दासिया, मरे जे काँदिया
हाराये यौवन-धन ।।
कि दिये तूषिब, विष्णुप्रिया-धव,
अङ्गे नाहि आभरण ।
(ताइ) मेखेछि अङ्गे, परम रङ्गे,
धूलि तब श्रीचरण ।।
एस रसराज, धूलि माखा साजे,
सङ्कीर्तन–रासरङ्गे ।।
हरिदासियार, मन भ्रान्ति सब,
घूचाओ हे भ्रूभङ्गे ।

जब रूप चला गया, रस सूख गया, तब प्राणधन आये । हे सुन्दरियोंके मनमोहन ! तुम तो रसमय हो, तुमको क्या दूँ ? तुम्हारा अदृष्ट और मेरा अदृष्ट एक है । तुम प्रीतिके परम वशवर्ती हो, तुम प्रीतिके धन हो, परम रत्न हो, तुम वृद्धाके युवक पति हो । हे प्राण-रमण ! मेरे पास रूप नहीं है, इस कारणसे क्या तुम दर्शन न दोगे ? तुम्हारी यह दुःखिनी दासी यौवन-धनको खोकर रो-रोकर मर रही है । हे विष्णुप्रिया-बल्लभ ! मेरे अङ्गमें कोई आभूषण भी नहीं है । तुमको क्या देकर सन्तुष्ट करूँ ? इसी कारण तुम्हारे श्रीचरणकी धूलि अपने अङ्गोंमें परम आनन्दसे मैंने लगा रखी है । हे रसराज ! धूलि-धूसरित होकर सङ्कीर्तनके रासरङ्गमें आओ और हे प्रियतम ! अपनी भ्रू-भङ्गियोंके द्वारा हरिदासियाके मनकी सारी भ्रान्ति दूर करो ।"

काशी-यात्राका अनुभव

•

गयामें नौकरी करते समय मुझे काशी तीर्थ दर्शन करनेका एक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह बड़ी अद्‌भुत तीर्थ कहानी है। गयाके डाकघरके सहकर्मी अमृतलाल गांगुलीके पुत्र उपेन्द्रनाथने रेलवे पासका जोगाड़ किया था। हम चार मित्र एक साथमें गयासे उस पासके द्वारा काशीके लिए रवाना हुए। मुगलसराय स्टेशन पर उतरते ही एक सम्भ्रान्त वेशधारी मध्यम वयस्क ब्राह्मणने हमको पुकार कर कहा कि उसके बासेमें किसी प्रकारका खर्चा नहीं है। प्रत्येक आदमीके ऊपर प्रतिदिन एक पैसा मकानका भाड़ा लगेगा। हम लोग गाड़ी-भाड़ा करके उनके साथ बंगाली टोलेमें गये। वहाँ यह ब्राह्मण सपरिवार निवास करते थे। उन्होंने एक घर खोलकर बिछौना लगा दिया, स्नान करनेके लिए तेल दिया। हम लोगोंने मणिकर्णिका पर स्नान करके अन्नपूर्णा विश्वनाथका दर्शन करके देवालयमें कुछ दक्षिणा चढ़ाकर बाजारसे काशीकी कुछ वस्तुएँ खरीदकर बासे पर आकर बाजारसे लाया हुआ भोजन ग्रहण किया। सन्ध्याकी ट्रेनसे ही हमारे गया वापस जानेकी बात थी।

अपराह्न कालमें देखा कि उसी बासेमें काशीके दो पण्डे या गुण्डे हाथमें लाठी लिए हमारे घरके द्वार पर बैठे हैं। हमने पूछा "तुम लोग क्या चाहते हो?" उन लोगोंने गम्भीर भावसे उत्तर दिया--"तुम लोगोंने मणिकर्णिकामें स्नान किया, अन्नपूर्णा-विश्वनाथका दर्शन किया। अब पण्डाकी विदाई करो। आदमी पीछे पांच रुपया दो।" हम लोग यह सुनकर आश्चर्य-चकित होकर बोले--"हम लोग तीर्थ करने नहीं आये हैं। काशी देखने आये हैं, हमारे पास पैसा-कौड़ी भी नहीं हैं। पाससे आये हैं, पाससे चले जाँयगे। हम लोग कुछ नहीं दे सकते।" यह बात सुनकर काशीके दोनों पण्डे बोले--"वह बात नहीं सुना जायगा। बीस रुपया देना होगा। नहीं देनेसे घरमें ताला बन्द कर देंगे।" उपेन्द्र बाबू बिगड़कर गाली-गलौज करने लगे। घरके मालिक उस ब्राह्मणने तब आकर उन गुण्डोंका साथ दिया और बोला--"रुपये तो देनेही पड़ेंगे। हम सब लोग उस समय खाली हाथ थे, कहाँ रुपया मिलता। आधे घण्टे तक रगड़ा-झगड़ा होनेके बाद वे हम लोगोंको उस घरमें बन्द कर ताला लगाकर चले गये। जाते

समय बोल गये—"कल सुबह फिर आवेंगे। रुपया देना होगा, नहीं तो जान लेंगे।" हम लोग बड़ी विपदमें पड़े। धीरे-धीरे रात हुई। अँधेरा घर था। का कस्य परिदेवना। कहीं कोई न था। मकान वालेका कोई पता न था। दरवाजेको खटखटाने पर भी कोई आवाज नहीं आयी। तब हम लोग इस महा विपत्तिसे त्राण पानेका उपाय सोचने लगे। उस घरके पीछेका दरवाजा खोलकर अपना सामान लेकर हम लोग छत पर चले गये। काशीके मकानों की छतसे छत मिली रहती हैं। दो-तीन घरोंकी छत पार करने पर एक घरसे बाहर जानेकी सीढ़ी दीख पड़ी। अति कष्ट पूर्वक उस सीढ़ीसे उतर कर एक अँधेरी गलीसे उतरतेही एक पुलिसने हम लोगोंको पकड़ लिया। उस समय रातके ९ बजे थे। हम लोगोंके पास काशीकी दो एक नयी वस्तुएँ थीं। हमारे पास एक पीतलका पुष्प पात्र था। पुलिस हमको चोर समझ कर थाने पर ले गयी। थानेदार एक देशवासी सज्जन थे। हम लोगोंकी अवस्था जान लेने पर उन्होंने हमको छोड़ दिया, और एक पुलिस कान्स्टेबलको आदेश दिया कि हमको स्टेशन तक पहुँचा दे। पहले मुझको पता नहीं था कि पुलिसके थानेदार भी ऐसे सज्जन होते हैं। उनको हृदयसे धन्यवाद देकर हम पुलिस कान्स्टेबलके साथ स्टेशन पर आये, और रातमें २॥ बजेकी ट्रेनसे गया रवाना हुए। इस तीर्थ यात्राका विवरण मैंने समाचार-पत्रोंमें भेजा था। इस बार हमारा एक बड़ा भारी ग्रह कट गया, ऐसा जान पड़ा।

बक्सर और साहेबगंजमें

गयाधामसे दो महीनेके लिए मेरी बदली ३० रु० मासिक वेतन पर आरा जिलेके बक्सर पोष्ट आफिस में सब पोष्ट माष्टरकी जगह पर हुई । ता० ३-९-१८९९ ई० को मैंने वहाँ जाकर कार्यभार सँभाला और ५-११-१८९९ को वहाँसे पूर्णियाँ डिवीजनके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेड-क्लर्कके पद पर साहेबगंज गया । श्रीरामपुरके द्वारकानाथ गोस्वामी उस समय वहाँके सुपरिण्टेण्डेण्ट थे । वे मुझको विशेषरूपसे जानते थे । उन्होंने लिखा-पढ़ी करके मुझको अपना हेडक्लर्क बनाकर साहेबगंज बुला लिया ।

बक्सरमें मैं बीमार पड़ गया, और मुझको छुट्टी लेनी पड़ी । उस समय मेरे छोटे भाई गुरुदास मोतीहारीमें अफीमके महकमेमें काम करते थे । मैं कुछ दिन वहाँ जाकर सपरिवार रहा ।

बक्सरमें शरीर अस्वस्थ रहनेके कारण तथा बहुत कम दिन वहाँ रहनेके कारण विशेष कुछ देखनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ । बक्सर प्राचीन शहर है, गङ्गाके दाहिने तट पर अवस्थित है । वहाँ उस समय एक बड़ा जेलखाना था । खूब स्वास्थ्यप्रद स्थान है । बक्सरमें किला देखने योग्य है । अंग्रेजोंने १७६८ ई० में अवधके नवाब शुजा उद्दौला तथा बंगालके नवाब मीरकासिमकी संयुक्त सेनाको यहाँ ही हराया था।

साहेबगंजमें मैंने सपरिवार एक छोटेसे मकानमें डेरा लिया । सुपरिण्टेण्डेण्ट गोस्वामी महाशय भी वहाँ सपरिवार एक बड़े बासेमें रहते थे । आफिस स्थानीय पोष्ट आफिसके एक भागमें था । गोस्वामी महाशय सन्थाल परगना और पूर्णिया जिलाके डाक-घरोंके कर्त्ता-धर्त्ता विधाता थे । और उनके दाहिने हाथ थे हरिदास गोस्वामी महाशय। दोनों गोस्वामियोंका यह अपूर्व मिलन बड़ा ही सुखमय था । द्वारकानाथ गोस्वामी महाशय मुझको प्राणतुल्य मानते थे, और अपने छोटे भाईके समान स्नेह और प्रेम करते थे । अपनी गृहस्थीके प्रबन्धका सब प्रकारका भार उन्होंने मेरे ऊपर दे रक्खा था। इससे उनकी गृहिणी कुछ मेरे ऊपर ईर्ष्यालु रहती थीं । गोस्वामी महाशय १५ रु० महीने

वेतनसे पोष्ट माष्टर जनरलके आफिसके क्लर्क होनेके बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट हुए थे । Sorting तथा रेलवे Mail arrangement में उनकी बुद्धि खूब काम करती थी, और उन्होंने नाम भी प्राप्त किया था । मैं उनका दाहिना हाथ था । काली प्रसाद नामक एक उत्तरी हिन्दुस्तानके निवासी २० रु० मासिक वेतनके क्लर्क मेरे सहायक (Assistant) थे । मैं draft करता था । काली प्रसाद नकल करते थे । गोस्वामी महाशय जब हेड-क्वार्टरमें रहते थे तो वे रातमें ८-९ बजेके बाद आफिसमें आते थे । हम लोग १० बजेसे ६-७ बजे तक जब काम करते-करते थक कर बासे पर जाते थे, उसके कुछ देर बाद ही वे आकर अपना कार्य आरम्भ करते थे । हम लोग आफिसके समीपमें ही रहते थे । उनके प्रेमके वश तथा कार्य करनेमें अनुराग होनेके कारण हम लोग उस समय बासे पर नहीं रह सकते थे, कुछ जल-पान करके दोनों आदमी फिर रातको आफिसमें जाकर हाजिर हो जाते । इसका नाम है कामका नशा । काम करने वाले आदमी कभी अपने सुख या स्वछन्दताका विचार नहीं करते । आराम नहीं चाहते । वे काम मिलने पर ही सन्तुष्ट होते हैं । ओहार-निद्रा हो या न हो । हमारी भी यही दशा थी । जब गोस्वामी महाशय अपना कार्य पूरा करके बासे पर आते थे तब रातको बारह एक बजे हम लोग भोजन करते थे । वह कहते थे कि रातको उनका मस्तिष्क खुलता है, इसी कारण दिनकी अपेक्षा रातको काम करना उनको अधिक पसन्द था । हम लोगोंको दिनमें और रातमें समान रूपसे खटना पड़ता था । परन्तु हम लोग सोचते थे--"कुछ परवा नहीं, काम तो सीख लिया।" इसी गुणसे मैं भली भाँति काम सीख सका । बासेमें गृहिणी छोटी बालिकाको लेकर रसोई बनानेका काम समाप्त करके भोजन सामग्री ढक कर घरका द्वार बन्द करके निश्चिन्त होकर सो जाती थी । रातके समय साढ़े बारह बजे लूप मेल चले जानेके बाद मुझे बासे पर जाकर जोरसे द्वार पर धक्का देकर गृहिणीकी निद्रा-भङ्ग करनी पड़ती थी । बेचारीके कष्टको देखकर दुःख होता था । परन्तु जो लोग कामके पीछे पागल होते हैं वे स्त्री-पुत्रके पीछे पागल नहीं होते । मानो हमारा विवाह कामके ही साथ हुआ था, कामसे ही हमको स्नेह प्रेम था । आज बुढ़ापेमें भी वही बात है । दिन-रात कार्य रूपी प्रणयिनीके साथ रसालाप करनेमें जो सुख पाता हूँ वैसा सुख और कहीं किसी वस्तुमें नहीं दीखता । यह मेरा दोष है या गुण--विचारवान् पाठक स्वयं विचार करें । पाठिकाओंको यह बात सुनकर रोष होगा यह मैं समझता हूँ, इसी कारण उनके ऊपर विचार करनेका भार नहीं दिया है ।

संथाल परगनामें

•

छः महीने इस प्रकार काम करनेके बाद कुछ दिनके लिए अस्थाई भावसे संथाल परगनामें मुझे डाकघरके इन्सपेक्टरका काम करना पड़ा था। संथाल परगना इलाका बहुत बड़ा है। एक-एक डाक घर ४०-५० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। समस्त परगनाकी संथाल जातिने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया है। ३-४ बड़े पादरी राजप्रासादके तुल्य अट्टालिकामें वहाँ सपरिवार लाट साहबके समान निवास करते हैं और इस प्रकार की एक वीर जातिको अपना पदावनत दास बना लिया है। भीतरी बातें बतलाना यहाँ अप्रासाङ्गिक होगा, इसलिए यहाँ इस सम्बन्धमें कुछ विस्तार पूर्वक कहना नहीं चाहता। वेनेगोड़ियाके पादरीके पास मैंने एक हजार गायें देखी हैं। खेती-बारी, घर-द्वार, पोखरा-पोखरी सब कुछ है। केवल हिरणपुरमें एक बालिका विद्यालय है। ४-५ सौ संथाली लड़कियाँ पढ़ती हैं और वहाँ चाय बागानके कुलीके समान रहती हैं। इतनी खेती-बारी, गोचारण, पोखरा-पोखरी निर्माण आदि सब उन्हींके काम हैं। देखने पर दु:ख होता है। बालकोंके भी ऐसे ही स्कूल हैं। किसी डाकघरमें जाने पर कोई हिन्दू नहीं मिला। अपने हाथसे कुएसे जल निकालकर प्यास बुझाई। छोटे-छोटे लद्दू घोड़े भाड़ा करके मुफस्सिलमें जाना पड़ा हैं। जबमैं अकेला था, तब कुछ भोजनकी सामग्री लोटेमें रखकर घोड़ेके गलेमें बाँधकर धीरे-धीरे मैदानके रास्ते जाता था। वहीं डाकघरमें खाकर किसी प्रकार दिन काटकर आना पड़ता। इस प्रकार संथाल परगनाके डाकखानोंकी इन्पेक्टरी दो-दो बार मुझको करनी पड़ी। वेतन केवल ३०+१४=४४ रु० मात्र था और बाहर जाने पर प्रतिदित ३ रु०भत्ता मिलता था। जो हो, तरक्की तो थी और डाकघरके क्लर्कके लिए अफसरी भी मिली थी। उन दिनों साहेबगंजमें चीजें बड़ी सस्ती थीं। टीन-का-टीन गायका घी मेरे बासे पर सदा मौजूद रहता था। उत्तम चावल बोरेका बोरा पड़ा रहता। भण्डार चीज-वस्तुओंसे भरपूर रहता। राजसी ठाटसे रहता, भोजन करता और बन्धु-बान्धव अतिथि-अभ्यागतको खिलाता था। आजकल ३००-४०० रुपये मासिक वेतन पाने वाला भी उतने ठाटसे नहीं रह सकता है। मुझे याद है, ऐसे ही समयमें मेरी कन्या

सुशीलाके श्वसुर त्रिपुराचरण भट्ट महाशय अपने पुत्र आनन्दमय भट्टको लेकर एक बार मेरे बासे पर आये थे। वह केवल एक दिन ठहरे थे। उस समय आनन्दमयकी अवस्था १०-११ वर्षकी थी। सुशीला उस समय ५-६ वर्षकी रही होगी। वह बालक जमींदार का लड़का था, परम सुन्दर था। वैदिक ब्राह्मणोंमें उन दिनों एकमात्र जमींदार थे मुर्शिदाबाद, बहरमपुर, उकीलाबादके प्रसिद्ध भट्टवंश। इसी भट्टवंशके साथ आगे चलकर हम लोगोंका वैवाहिक सम्बन्ध होगा, यह मैं उस समय सोच भी नहीं सकता था। त्रिपुराचरण भट्ट महाशय अतिशय खुशदिल आदमी थे, बड़े उदार थे। उन्होंने मेरे बासे पर एक दिन रहकर कहा था कि इस प्रकारका खिलाने-पिलानेका बन्दोवस्त बड़े-बड़े जमींदारके घर भी मैंने नहीं देखा। जो हो, दरिद्र ब्राह्मणके लिए इस प्रकारका सुनाम प्राप्त करना साधारण बात नहीं है। उस समय माता-पिता याद आते और मेरे मेरे मनमें बड़ा दुःख होता। यदि वे लोग इस समय होते तो मैं कितना सुखी होता ? मैं उनकी सेवा करके कृतार्थ हो जाता। इस प्रकारके भाव मनमें आते और दुःखके कारण आँखोंसे अश्रुधार बह निकलती।

डेहरी ग्रान सोन और सोनपुरमें

•

दो वर्ष तक इस प्रकार पूर्णिया डिवीजनके डाकघरोंके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेड-क्लर्क तथा संथाल परगनाकी इन्सपेक्टरी करनेके बाद मेरी बदली हुई डेहरी ग्रान सोनमें। वहाँ सब पोष्ट माष्टरकी जगह पर ता० १८-५-१९०१ ई० को बहाली हुई। डेहरी ग्रत्यन्त स्वास्थ्यप्रद स्थान है। बहुत बड़े पी० डबल्यू० डी० के बंगलेमें डाकघर था। वहाँ सपरिवार चार महीने रहा। वहाँ उस समय पी० डबल्यू० डी० के बड़े साहबका ग्राफिस था। Ex. Engineer, Asstt. Engineer, Sub-Engineer, Overseer, Sub-Overseer सभी बंगाली थे। पहले डेहरीके सामने सोन नदीके उस पार गया जिलेके वारुण डाकघरमें जब मैं पोष्ट माष्टर था तो डेहरीमें प्रायः निमन्त्रण खानेके लिए ग्राता था। सोन नदीके विषयमें पूर्व ही बहुत कुछ लिख चुका हूँ। यहाँ विशेष कुछ लिखना नहीं है। डेहरी सुन्दर स्वास्थ्य-निवास है। चार महीनेके समयमें ही हम सबके स्वास्थ्यमें विशेष उन्नति हुई।

डेहरीसे मेरी फिर छपरा जिलेके सोनपुरमें बदली हो गयी। वहाँ भी सब-पोष्ट माष्टर रहा। इसी सोनपुरमें शीतकालमें प्रसिद्ध हरिहरक्षेत्रका मेला लगता है। इस मेलाके समय सोनपुर एक बड़े शहरके रूपमें परिणत हो जाता है। बड़े-बड़े साहेब ग्रौर मेम इकट्ठे होते हैं। घुड़दौड़ होती है। चौरङ्गीके समान साहेब लोगोंका मोहल्ला बस जाता है। मेलेके बाजारमें हाथी-घोड़े बिकते हैं। सारे भारतवर्षके राजा लोग हाथी-घोड़ा खरीदने ग्राते हैं। टेलिग्राफिक मनीग्रार्डर द्वारा दस, बीस, चालीस-पचास हजार पर्यन्त उनके रुपये ग्राते हैं। डाकघरके एक इन्सपेक्टर बराबर महीने भर वहाँ रहते हैं। इसके ग्रतिरिक्त पोस्ट मास्टर जनरल, सुपरिण्टेण्डेण्ट ग्रादि बड़े ग्रधिकारी भी बीच-बीचमें निगरानी करने ग्राते हैं। क्लर्क ग्रौर पोष्ट माष्टरोंकी संख्या बढ़ जाती है। महीने भर यह मेला रहता है। इस प्रकारके पोष्ट ग्राफिसमें इसी प्रकाण्ड मेलेके समय मैं पोष्ट माष्टर था। मेरा वेतन ग्रब ३० से ३५ हो गया था। ता० २१-८-१९०१ से ३०-१२-१९०१ तक मैंने सोनपुरमें पोष्ट माष्टरी की

थी। बारह वर्षों के बाद दस रुपये महीनेसे पैंतीस रुपये महीना वेतन मेरा यहीं पक्का हो गया था। इस क्षुद्र मासिक वेतन तक उन्नति करनेमें एक युग लग गया था। उस समय डाकघरोंमें इसी प्रकार पदोन्नति होती थी। आजकल एक बारगी ३५-४० रुपये मासिक वेतन पर Paid Probationer नियुक्त होते हैं।

परीक्षा और पदोन्नति

•

छोटे-बड़े दरिद्र पेट पालने वाले मेरे जैसे भाग्यवान किन्तु मूर्ख किरानी धुरन्धरके ऊपर बहुत समयेके बाद अब डाक देवताका अनुग्रह वर्षण हुआ जिसकी स्वप्नमें भी आशा न थी। दानापुरमें बड़े साहेबके दफ्तरमें यह छींका टूटा हुआ धन पानेकी प्रतियोगिता परीक्षाके लिये एक कमेटीका निर्माण हुआ था जिसमें स्वयं डिप्टी पोष्ट-माष्टर जनरल साहब बहादुर मिष्टर आई० जी० जे० हैमिल्टन सभापति थे और सदस्य थे त्रिहुत, पटना, भागलपुर, पूर्णिया व शाहाबाद-आरा डिवीजनके डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्ट पंचक मुंगेर शहरका सरकिट हाउस अर्थात् डाक बँगला इस परीक्षाका केन्द्र था।

इसी समय डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्टके हेड क्लर्कोंके वेतनमें वृद्धि हुई। पहले ३० रु० था अब ७० रु०, ९० रु०, १०० रु० का ग्रेड बन गया, अर्थात् थर्ड ग्रेड ७० रु०, सेकेण्ड ग्रेड ९० रु० और फर्ष्ट ग्रेड १०० रु० मासिकका बना था। यह पदोन्नति मंजूर होनेके बाद प्रदेशके तत्कालीन डिप्टी पोष्ट-माष्टर जनरल साहब J. Hamilton ने यह आदेश जारी किया था कि वह एक प्रतियोगिता परीक्षा लेकर उपयुक्त और शिक्षित मनुष्यको इस पद पर बहाल करेंगे। निश्चय यह हुआ कि तीन सुपरिण्टेण्डेण्ट जिसको चुनेंगे, उसीको परीक्षामें बैठने दिया जायगा। इसके अतिरिक्त वाहरसे दो-चार M.A., B.A. Graduate को भी परीक्षामें बैठने दिया जायगा। उस समय बिहारमें पाँच सुपरिण्टेण्डेण्टके डिवीजन थे। अतएव केवल पाँच हेड क्लर्ककी आवश्यकता थी। Nomination की संख्या थी १९-२० आदमी। प्रतियोगितासे पहले यह आदेश प्रचारित हुआ था कि पाँच आदमी लिये जाएँगे। मैं उस समय सोनपुरमें रात-दिन कार्यमें व्यस्त रहता था। कायदा-कानूनके ग्रन्थ पढ़नेका अवसर न था। परीक्षाका समय भी आ गया था। परीक्षाके विषय थे—दो-तीन अंग्रेजी रचना, डाकघरके सारे कायदे-कानूनकी पाँच जिल्दें। Civil Service Regulation सम्पूर्ण, Post Office Act, Postal and Teligraph Guide इत्यादि। मुँगेरका Circuit House परीक्षा केन्द्र नियत हुआ। तीन दिन दोनों वक्त परीक्षा होगी। लिखित उत्तर देना पड़ेगा, ठीक उसी प्रकार जैसे

University Hall में होता है। गार्ड साहब स्वयं डिप्टी पोष्ट-माष्टर जनरल Mr. Hamilton थे तथा पाँच सुपरिण्टेण्डेण्ट थे, जिनमें ४ अंग्रेज थे और एक बंगाली द्वारकानाथ गोस्वामी, जो मेरे पुराने अफसर थे। मुझको परीक्षाके एक दिन पहले छुट्टी दी गई, दूसरे दिन १० बजेसे परीक्षा थी। मैं मुँगेर ६ बजेकी गाड़ीसे पहुँचा था। आधे घण्टेमें कुछ जल-पान करके परीक्षा-केन्द्र Circuit House में यथा समय जाकर परीक्षा देनी पड़ी।

यह बताना मैं भूल गया कि जिस समय मैं हरिहर क्षेत्र मेलाके दिनों सोनपुरमें था परीक्षाके ८-१० दिन पूर्व डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरल Mr. Hamilton साहबने एक बार सोनपुर आकर मुझको बहुत डाँट फटकार बतलायी थी कि किसने तुझको Nominate किया है, मैं तुमको परीक्षा नहीं देने दूँगा। मेरा अपराध यह था कि आफिसके मोहरकी छाप चिट्ठी पर ठीक नहीं उठती थी, अर्थात मैं Supervision नहीं करता था। उस समय मैंने कुछ बोलनेका साहस नहीं किया। साहब बहादुरका शासन समझकर सोचने लगा कि परीक्षा भवनमें वह मुझको प्रवेश करने नहीं देंगे। परन्तु परीक्षाके समय ऐसा कुछ भाव नहीं देखा गया।

इस परीक्षामें डाकघरके चुने हुए नामी और धुरन्धर २१ क्लर्क बैठे थे, जिनमें अधिकांशकी एकसे अधिक सुपरिण्टेण्डेण्टने सिफारिशकी थी, तथा कुछको स्वयं डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरलने मनोनीत किया था। यह प्रतियोगिता १८-१९-२० नवम्बर सन् १९०१ ई० में हुई थी, और ७ दिसम्बरको इसका फल प्रकाशित हुआ था (Vide Dy. Postmaster General Bihar Memo. No. 16274 Dated 7. 12. 1901) उसमें मेरे जैसे घोर मूर्ख मोहर मारने वाले डाक बाबूका नाम प्रथम स्थान पर रहा था, यह देख कर मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सब मिलाकर पाँच विषयोंकी परीक्षा हुई। सभी डाकखानोंके कायदे-कानूनके सम्बंधोंमें केवल अंग्रेजी भाषाके ऊपर परीक्षार्थियोंके अधिकारकी परीक्षाके लिए तीन अंग्रेजी लेख थे—(1) Early History of Post office. (2) Village sanitation and water supply. (3) Report on a Highway mail robbery case. मैंने अंग्रेजीमें सर्वोच्च नम्बर प्राप्त किया। कुल ५०० नम्बरोंमें मुझे ३८१ नम्बर प्राप्त हुए और प्रतियोगितामें मुझे प्रथम स्थान मिला। दूसरा व्यक्ति मुझसे ५० नम्बर कम पाया। परीक्षामें अंग्रेजीका उत्तर वहाँ बैठे बैठे देख गये थे, और स्वयं बड़े साहब बहादुर मेरे पास उस दिन आकर मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए बोले—Mr. Goswami, you have stood first in English, you have got 80% marks in English. This is a great credit to you. I hope you will do better in other papers.

अर्थात तुमने अंग्रेजीमें १०० में ८० नम्बर प्राप्त किये हैं, और सबमें प्रथम आये हो, यह तुम्हारी अंग्रेजी भाषाकी योग्यताका अच्छा परिचय है, आशा करता हूँ

तुम दूसरे विषयोंमें भी अच्छे नम्बर प्राप्त करोगे ।" और इसी बड़े साहबने एक सप्ताह पूर्व सोनपुर डाकघरका परिदर्शन करते समय मेरे आफिसके मुहरकी छापको स्पष्ट न देखकर मुझको यह कहकर धमकाया था कि, "किसने तुमको परीक्षा देनेकी सिफारिश की है ? मैं तुमको परीक्षा नहीं देने दूंगा ।" बराबर मेरा भाग्य उज्ज्वल रहा, जिसके फलस्वरूप मूर्ख होने पर भी सर्वत्र विद्वानोंमें मेरी गणना होती थी । भाग्यसे ही मैं सबसे बड़ा बना--"न विद्या न च पौरुषम् ।"

अस्तु--मैंने इस परीक्षाके फलस्वरूप ७० रु० महीने पर डबल प्रोमोशन प्राप्त किया और तिरहुत डिवीजनके सुपरिण्टेण्ट Mr. J. A. Betham साहबका हेडक्लर्क होकर मुजफ्फरपुर गया । सुननेमें आया कि मुझको हेडक्लर्क बनानेके लिए पाँचों डिवीजनके सुपरिण्टेण्डेण्टमें काफी चखचख हुई थी । सबकी इच्छा और चेष्टा यही रही कि मुझे अपने पास रक्खें परन्तु बड़े साहब बहादुर खूब हुशियार आदमी थे । उन्होंने इस झगड़ेको मिटानेकी एक सुन्दर व्यवस्था करदी । पाँचों सुपरिण्टेण्डेण्टकी Seniority के अनुसार पाँचों क्लर्कोंका बँटवारा हुआ । मैं पड़ा--वृद्ध पादरी साहब Mr.J.A. Betham के हाथमें या गलेमें--ठीक कह नहीं सकता । यह साहब मेरे पूर्व परिचित, देव तुल्य थे, बड़े ही दयालु थे और विद्वान् भी खूब थे । उन्होंने ही पहले मुझको एक पत्रमें लिखा था—I will forward your application to the District Judge with pleasure and trust you will be successful. I am sure you will get on better in the Revenue or Judicial Branch of the Public service than in the Post office—I hope you may rise to be a Deputy Magistrate or perhaps something better. अर्थात् "उनके विचारसे मैं डाकघरकी अपेक्षा न्याय विभागकी नौकरीमें अधिक उन्नति कर सकूँगा । यहाँ तक कि डिप्टी मजिष्ट्रेट या उससे ऊपरका अफसर भी हो सकता हूँ ।" परन्तु पता नहीं, मेरे भाग्यके ऊपर पत्थर रखा हुआ था, या किसी मतलबी दुष्ट आदमीने सुन्दर पुरुषके उज्ज्वल सुन्दर कपालको नजर लगादी। मेरा जिस समय वेतन २० रु० मासिक था, उस समयका यह सिफारिशी पत्र है ।

मैंने १ जनवरी १९०२ ई० के दिन मुजफ्फरपुरमें सुपरिण्टेण्डेण्टके आफिसमें नये उत्साहसे नयी नौकरीका कार्य प्रारम्भ किया । हमारा आफिस था काँजी सरायके डाकघरके पास एक भाड़ेके मकानमें । मैं सपरिवार उसी मकानमें रहता था । मकान सुन्दर था । उस समय मेरी कन्या सुशीलाकी अवस्था केवल ७-८ वर्ष थी। सुपरिण्टेण्डेण्ट अपने बंगलेमें अंग्रेजी क्वार्टरमें सपरिवार रहते थे, बीच बीचमें आफिस आते थे । मेरे सिवा आफिसमें दो और क्लर्क थे, एकका वेतन ३० रु० था और दूसरेका २० रु० महीना । मेरे ही ऊपर सारा लिखने-पढ़नेका, तथा काम-काज देखभाल करनेका भार था । उस समय डाकघरके Paid Probationer का वेतन केवल १५ रु० मासिक था ।

मैंने विशेष चेष्टा करके एक दर्जन शिक्षित शिक्षानवीस Paid Probationer क्लर्क रख लिये थे। वे सब पहले मेरे पास आफिसका काम सीखते थे, प्रयोजन पड़ने पर डाकघरमें जाकर भी काम सीखते थे। सबको नियम-पूर्वक मेरे आफिसमें १० बजे से ५ बजे तक काम करना पड़ता था। उनमें एन्ट्रैन्स पास, एफ० ए० पास, बी० ए० फेल कई थे। एक आदमी बी० ए०, बी० एल०, भी थे। उनका काम था मृत्युञ्जय गांगूली। वह मोतीहारीके मेरे मित्र नन्दलाल बाबूके सहोदर भाई थे। वकालत या अन्य किसी नौकरीके लिए अनुपयुक्त समझ कर उन्होंने इनको डाकघरमें प्रवेश करानेके लिए मुझसे अनुरोध किया था। अब सुना है कि वह डाकघरके इन्स्पेक्टर हो गये हैं। २५० रु० वेतनके ग्रेडमें हैं। ये एक दर्जन शिक्षा-नवीस मेरी लिखी चिट्ठियाँ प्रतिदिन नकल करते थे। मैं इतनी चिट्ठियाँ प्रतिदिन लिखता था। बड़े बड़े मुकदमोंकी इतनी बड़ी बड़ी राय लिखता कि मेरे सहकारी दो क्लर्क और एक दर्जन शिक्षा नवीस उनकी नकल नहीं कर पाते थे। मैं जुटकर काम करता था, कामकी अधिकतासे सब लोग घबरा जाते थे। कामको लेकर मेरा खूब नाम फैला परन्तु साथही शत्रु भी पैदा हो गये। कलियुगमें अच्छे कामका ऐसा फल अवश्यम्भावी होता हैं। धर्मके क्षेत्रमें भी यही बात है, बड़े बड़े साधु-महात्माओंके बड़े बड़े शत्रु होते हैं। जिसका जितना ही धर्मक्षेत्रमें प्रभाव होता है उसके उतने ही शत्रु होते हैं। जो हो, मेरे इस निःस्वार्थ और सिरतोड़ परिश्रमके कारण मेरे अफसर तथा सज्जन लोग मेरे ऊपर खूब प्रसन्न रहते थे। कुछ लोग स्वार्थी तथा कामचोर 'भकोल' मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करनेसे बाज नहीं आते थे। 'भकोल' शब्द उधरके देहाती लोग व्यवहार करते हैं, बंगालमें उसको ढोल कहते हैं अर्थात् वह वस्तु जो दोनों ओरसे बजे, कुछ लोग बोलते तो मधुर हैं, पर पेटमें विष होता है। सामने बाहबाही करते है, और पीठ पीछे निन्दा करते हैं। इस प्रकारके लोगोंकी संख्या अधिक है।

मुजफ्फरपुरमें

मुजफ्फरपुरके पोष्ट माष्टर उस समय एक अंग्रेज साहब थे, उनका नाम था Mr. Debeaux वे वृद्ध थे । काम-काजमें उनकी ख्याति नहीं थी । वे स्वाधीनतापूर्वक कोई काम नहीं कर पाते थे, तथा किसी पर विश्वास भी नहीं करते थे । उन्होंने बड़े साहबसे मेरे विरुद्ध कुछ चुगली करके मुझको अपने आफिसमें Deputy बनानेकी चेष्टाकी । इस समय मेरे पुराने अफसर सुपरिण्टेण्डेण्ट Mr, Beatham की बदली हो गयी थी । एक नये खास विलायतसे आये हुए छोकड़े साहब Mr. Richardson तिरहुत डिवीजनके सुपरिण्टेण्डेण्टके पद पर नियुक्त होकर आये थे । उसी समय मुजफ्फरपुर हेड आफिसमें डिप्टी-पोष्ट-माष्टरके पद पर मेरी बदली हुई । एक वर्ष सात महीने डटकर सुपरिण्टेण्डेण्टके हेडक्लर्कका काम करके ६ अगस्त १६०३ ई० को मैं मुजफ्फरपुर बड़े डाकघरकी डिप्टीगीरी पर नियुक्त हुआ । इस पद पर मैं केवल १० महीने तक रहा । इस बीच वृद्ध पोष्ट माष्टर साहबकी बदली अजमेर हो गयी, और उनके स्थानमें Mr. A.C. Vernuix नामक एक दूसरे नवयुवक साहब मुजफ्फरपुरके पोष्ट माष्टर हुए । वह केवल दो महीने काम करके अचानक China Field Force में चले गये, और उनके स्थानमें मैं ही मुजफ्फरपुरका अस्थायी हेड पोष्ट माष्टर हो गया । उस समय पोष्ट माष्टरका वेतन २०० रु० महीना था । मैंने इसी वेतन पर कुछ दिन काम किया । Vernuix साहब खूब विद्वान आदमी थे और बड़े साहसी कर्मचारी थे । मैंने उसके पास थोड़े ही दिन काम किया था । इस समय वे पोष्ट माष्टर-जनरल हो गये हैं । उनके पास नौकरीके विषयमें कतिपय विशिष्ट शिक्षाएँ तथा सदुपदेश प्राप्तकर तथा उनका पालन कर नौकरीके क्षेत्रमें मैं समय समय पर विशेष उपकृत हो चुका हूँ, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ । वे मुझको बहुत मानते थे, उनके विषयमें बहुतसी बातें लिखनी हैं, परन्तु अभी इतना ही बस है । वह जब Field Force में गये तो मेरे लिए पोष्ट माष्टर जनरल साहबके निकट उन्होंने एक सिफारिश पत्र लिखा था, उसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है ।

"I wish to bring to your notice before I leave for the Sikkim Mission, the good work done by my deputy Babu Hari Das

Goswami. I have been in charge of the office for nearly five months and never during the period he failed to consistently maintain all the good qualities, which have so often been acknowledged before both by his officers and others. I have also observed that he is firm with his subordinates and while displaying tact and courtsey he is able to hold his own when personally dealing with European Public.

(Sd.) A.C. Vernuix.
10-4-1904

मुजफ्फरपुरमें भूतपूर्व पोष्ट माष्टर Mr. Debeaux, जिन्होंने मेरे विषयमें निन्दा-शिकायत करके मुझे कुछ दिनोंके लिए अपने आफिसमें डिप्टी बना लिया था, आश्चर्यकी बात है कि वह भी मेरे कामको देखकर मुझसे सन्तुष्ट थे। उनके आफिसके बहुतसे मुकदमोंके सम्बन्धमें उनके पास बड़े साहबके दफ्तरसे कड़े कड़े पत्र आते थे, उसके मूलमें मैं ही था, उस समय मैं सुपरिण्टेण्डेण्ट आफिसमें हेड क्लर्क (बड़ा बाबू) था, उनका आफिस मेरे अधीन था, और मेरा काम ही था सरकारी कामकाजकी निरपेक्ष आलोचना करना। इसी कारण वह मेरे ऊपर असन्तुष्ट थे और मैं जब उनका डिप्टी बनकर गया तो अपने मनका भाव न छिपाकर उन्होंने स्पष्ट रूपसे पहले ही दिन मुझसे कहा था—"Mr. Goswami, I am very glad to have you under me." मैंने सुस्पष्ट उत्तर दिया—"I am also very glad to come under you." इस प्रकार दोनोंमें पहले पहल प्रेमालाप हुआ। वही सज्जन अजमेर बदली होनेके पहले मेरे सम्बन्धमें क्या लिखते हैं, उसे भी सुन लीजिए।

"I have much pleasure in certifying that Babu Haridas Goswami worked under me at Muzaffarpur H.O. as Deputy Postmaster and I am very glad to say that he did his duties remarkably and admirably well and to my entire satisfaction. He is familiar with rules and regulations, efficient and quick in drafting correspondence. I would much like to have him again in a like capacity in another office and trust the opportunity will soon be found."

(Sd.) L.W. Debeaux.
Postmaster, Muzaffarpur
24-11-1903.

यह साहब जब जबलपुरमें पोष्ट माष्टर हो गये, तो उन्होंने मुझको वहाँ अपना डिप्टी बनाकर बुला लिया। उस समय मेरा वेतन १५० रु० हुआ, और पश्चात् उसी जगहमें ३००-२०-४०० रु०के ग्रेडमें पोष्ट माष्टर हो गया। ये सब बातें आगे लिखूँगा।

दानापुरमें इन्स्पेक्टरके पद पर

अस्थायी रूपसे मुजफ्फरपुरमें पोष्टमाष्टरी करते करते मेरी पदोन्नतिके साथ दानापुरमें बड़े साहबके Supernumary Inspector (विशेष कार्यके लिये अतिरिक्त इन्स्पेक्टर) के पद पर ६० रु० मासिक वेतन पर बदली हुई। बिहार प्रदेश भरमें सर्वत्र मुझे डाकघर सम्बन्धी चोरी-डकैती आदिके मामलोंके निपटानेके लिए घूमना पड़ता था। उस समय इस कामके लिए पोष्टमाष्टर जनरलके आफिसमें दो इन्स्पेक्टर स्थायी रूपसे नियुक्त थे। दोनों आदमियोंको बाहर जाना पड़ता था, और आफिसका काम करना पड़ता था। इस नये उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिए मेरी नियुक्ति होनेपर मुझे दानापुरमें बड़े साहबके दफ्तरमें १५ मई १६०४ ई०के दिन आना पड़ा था। इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यपर मैं पूरे एक वर्ष नियुक्त रहा, और ख्यातिपूर्वक कार्य सम्पादन किया।

प्लेगसे आक्रान्त डाकघरोंमें

जिस समय मैं बड़े साहबके दफ्तरमें Supernumary Inspector का काम करता था, उन्हीं दिनों लक्खीसराय डाकघरके पोष्ट माष्टर मेरे चचेरे बहनोई विधुभूषण भट्टाचार्यकी स्त्री प्लेगसे मर गयी थी, और इस कारणसे डाकघरका काम बन्द हो गया था। भयानक प्लेगके प्रकोपसे लक्खीसराय डाकघरके पोष्टमैन आदि सब कर्मचारी नौकरी छोड़कर भाग गये थे। उस समय मैं सरकारी कामसे मोतीहारीमें था। वहाँ मेरे छोटे भाई गुरुदास अफीमके महकमेमें नौकरी करते थे। मैं उनके बासेमें था। वहाँ बड़े हाकिमका एक हुक्म तारसे मिला—Proceed Lakhi Sarai immediately and work out the Post Office there disorganised by Plague—Postmaster's wife died of Plague, Postman and menials deserted office. अर्थात् "तुम तार पाते ही लक्खीसराय डाकघरमें जाकर आफिसका काम सँभालो। वहाँ प्लेगसे पोष्ट माष्टरकी स्त्री मर गयी है, भयसे पोष्टमैन आदि भाग गये हैं।" यह आदेश प्राप्त करके मुझे जान हथेली पर लेकर तुरन्त लक्खीसरायकी यात्रा करनी पड़ी। वहाँ जाकर मैंने देखा कि मेरी चचेरी बहिन प्लेगमें मर गयी है, और मेरी चाची अपने जामाईके साथ वहीं हैं। ऐसी अवस्थामें मैंने जाकर पुलिसकी सहायतासे डाकघरमें पहरा बैठाकर स्टेशनके कम्पाउण्डमें तम्बू डालकर डाकघरका प्रबन्ध करके नये आदमी बहाल किये। तार देकर जिला मजिस्ट्रेटकी अनुमति लेकर सब कामका प्रबन्ध करना पड़ा। दानापुरसे तम्बू आदिका सरञ्जाम मँगाना पड़ा। इन सब आवश्यक कामोंमें व्यय करनेका मुझे अधिकार था। परन्तु जान हथेली पर लेकर ये सब काम करने पड़े थे।

इसके पहले सोनपुरमें प्लेगसे मृत पोष्ट माष्टरसे मुझे चार्ज लेना पड़ा था। यह बात लिखना मैं भूल गया हूँ। यह बड़ी मजेदार बात है। मैं उस समय डिहरीमें पोष्ट माष्टर था, मेरे पास जरूरी हुक्म आया कि—"Sub Post Master Sonepur died of Plague—take charge of the office at once." अर्थात् "सोनपुरके पोष्ट माष्टर प्लेगसे मर गये हैं। तुम वहाँ जाकर काम करो।"

मैं उन दिनों अकेला था, इससे त्राण मिला। तार पाते ही सोनपुरके लिये चल पड़ा। सोनपुर जाकर मैंने सुना कि पोष्ट माष्टर २-३ दिन पहले ही प्लेगसे मर गये। उनकी साध्वी स्त्री पतिको रोगग्रस्त छोड़कर प्राण-भयसे भाग गई। पोष्ट माष्टरका मृत शरीर एक दिन डाकघरमें पड़ा रहा। पुलिसने आदमी लगाकर मृतशरीरका दाहसंस्कार कराया। डाकघर अभी बन्द है, मुझको उसी डाकघरमें इस समय काम करना पड़ेगा।

मैं सदासे ही दुःसाहसी पुरुष रहा। पुलिसकी सहायतासे डाकघर साफ-सुथरा कराके वहाँ काम कराने लगा। मुझे प्राणोंका भय नहीं होता था, यह नहीं कह सकता। तथापि नौकरीके उत्तरदायित्वके सामने सब भय भूतके भयके समान भाग जाते हैं। तीन महीने मैं अकेले खाना बनाकर खाता रहा, और नौकरी करता रहा। पश्चात् गृहिणीको वहाँ ले आया। सोनपुर खूब स्वस्थ्यकर स्थान था। खूब भूख लगती थी, परन्तु अपने हाथसे पकाकर खानेसे मेरा पेट कभी नहीं भर पाता था। दिनमें भात और रातमें परांठा खाता था, दोनों समय ही मेरा पेट नहीं भर पाता था। कृपणता मेरे स्वभावमें नहीं थी, तथापि चावल या आटेका माप ठीक नहीं रख पाता था। मैं स्वयं खूब अच्छा खाना पका लेता, परन्तु भात और दाल-रोटी सभी कम पड़ जाते थे। जलवायुके कारण भूख बढ़ गयी, इसीसे राक्षसके समान अधिक खाने लगा, अथवा स्वयं अपने भोजनका अंदाज नहीं कर पाता था—यह समझमें नहीं आता था। जो हो, गृहिणीके आनेपर मेरे भरपेट आहारकी व्यवस्था हो गयी। उसके पहले तीन महीने तक प्रतिदिन अपनी शिकायत अपने आप करता रहा, परन्तु उससे कोई विशेष फल न निकला।

भागलपुर व जमालपुरमें एवं सुशीलाकी शिक्षा

●

दानापुरमें इन्सपेक्टरके कामके बाद मुझको ता० २४-४-१६०५ से ता० २३-६-१६०५ तक भागलपुरमें हेड आफिसमें पोष्ट माष्टरका कार्य करना पड़ा। उस समय भागलपुरमें बाबू सत्यचरणराय नामक एक प्रसिद्ध पुराने पोष्ट माष्टर काम करते थे। उनकी बीमारीसे डाकघरमें विशेष रूपसे हिसाब-किताबकी गड़बड़ी हो जानेके कारण बड़े साहबने उसे ठीक करनेके लिए मुझको वहाँ नियुक्त किया था।

इसी भागलपुरके हेड आफिसमें सबसे पहले मैंने उम्मीदवारी की थी, और मुझको घरका खाकर वनका भैंस हांकना पड़ा था। यह केवल १३-१४ वर्ष पूर्वकी बात है। उस सयय मैं भागलपुरमें कन्या पाठशालाके हेड पण्डित अपने बहनोई श्री चन्द्रभूषण भट्टाचार्य महाशयका अन्नदास था। यहीं पहले मैंने तेज नारायण जुबली कालेजमें पढ़ाईकी थी। वहाँ सब लोग मुझको जानते थे और प्रेमभाव रखते थे। बहुतसे उच्च पदाधिकारी मुझको अंग्रेजी लिखने-पढ़नेमें परम पण्डित समझकर सम्मान भी करते थे। यह बातें पहले लिख चुका हूँ, यहाँ उनकी पुनरुक्ति करना अनावश्यक है। भागलपुरमें अस्थायी रूपसे हेड पोष्ट माष्टरका काम करते-करते मेरी बदली मुंगेर जमालपुरमें हो गयी। वहाँ मैंने २८-६-१६०५ से ३१-१०-१६०५ तक पोष्ट-माष्टरी की।

उस समय मेरी कन्या सुशीलाकी आयु ८-९ वर्षकी थी। उसको अभी तक मैंने स्कूलमें पढ़नेके लिए नहीं भेजा था। न जाने क्यों, आधुनिक गर्ल्स स्कूलोंकी पढ़ाईके प्रति मेरे मनमें एक प्रकारकी द्वेष-बुद्धि थी। विशेषतः लड़कियोंकी स्कूल कालेजकी शिक्षाके सम्बन्धमें चिरकालसे मेरा विरोध भाव रहा है। परन्तु जमालपुरमें आने पर

अपनी स्त्रीकी प्रेरणासे सुशीलाको केवल चार महीने तक एक मिशनरी गर्ल्स स्कूलमें पढ़ने दिया था। सुशीला घर पर बैठकर इस छोटी उम्रमें बहुत-सी बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ चुकी थी। छोटी उम्रसे ही उसको पढ़ने-लिखनेके प्रति एक स्वाभाविक उत्कण्ठा थी। भागलपुरके जिला स्कूलके नन्दलाल भट्टाचार्य महोदय मेरे पड़ोसी थे। उनके पुस्तकालयमें संस्कृत बंगलाकी अनेकों पुस्तकें थीं। सुशीला उनके घर जाकर आलमारीसे बड़ी-बड़ी पुस्तकें लाकर खाटके नीचे बैठकर छिपकर अपने आप पुस्तकें पढ़ा करती थी। रामायण, महाभारत, नाटक उपन्यास कुछ भी वह नहीं छोड़ती थी। उसे दिनमें खोजना कठिन होता था। पण्डित महोदय उसको बहुत प्यार करते थे। उनके घरसे उसको पकड़कर लाना पड़ता। इसके लिए वह अपनी माँसे तथा मुझसे बहुत डाँटी-फटकारी जाती थी, परन्तु इसकी वह कुछ परवाह नहीं करती थी। इस प्रकार उसने अपने आप लिखना-पढ़ना सीखा। उसे कभी किसीने नहीं पढ़ाया। संस्कृत साहित्यमें इसी प्रकार उसने अपने आप अद्भुत ज्ञान प्राप्तकर अब गीता, भागवत, पुराण तथा सारा गोस्वामी शास्त्र टीकाकी सहायतासे भली भाँति पठन-पाठन करना सीख लिया। इसे ही दैव विद्या कहते हैं। वह एक स्वाभावतः कवि है और बंगला साहित्यमें भी उसको दिव्य ज्ञान प्राप्त है।

मेरी पक्की नौकरी भागलपुरमें डिप्टी पोष्ट माष्टरकी थी। मुझको उपयुक्त समझकर बड़े साहब अस्थायीरूपसे उच्च वेतन पर अनेक स्थानोंमें विशिष्ट कार्य पर नियुक्त करते थे। वे मुझको विशेषरूपसे जानते थे और मेरे ऊपर विशेष कृपा-दृष्टि रखते थे। उनका नाम था Mr. F. B. O'shea साहब। वे बदलकर जब नागपुर गये तो मुझको उच्च वेतन पर विहारसे मध्यप्रदेशमें ले गये। यह आगे चलकर वर्णन करूँगा।

कनिष्ठ भ्राता गुरुदासके पास

जमालपुरसे मुझको पुनः भागलपुर डिप्टी पोष्ट-माष्टरी पर आना पड़ा। इस समय तीन महीनेकी छुट्टी लेकर मैं मोतीहारीमें सपरिवार अपने छोटे भाई गुरुदासके यहाँ रहा। उस समय मोतीहारीमें रञ्जन विलासराय चौधरी पोष्ट माष्टर थे। वह महात्मा शिशिरकुमारके सुयोग्य भाञ्जे और परम गौर-भक्त थे। इसी मोतीहारीमें मैं २० रु० मासिक वेतन पर डाकघरमें तारबाबू था। बहुतसे मेरे पुराने मित्र और सखा यहाँ पर थे। यहाँ छुट्टी बहुत आनन्द पूर्वक कट गयी। यहाँ रहते हुए मुझे महात्मा शिशिर बाबू द्वारा लिखित "अमिय-निमाई-चरित" पाठ करनेका पहले पहल सौभाग्य प्राप्त हुआ था और रञ्जनबाबूके साथ गौर-कथाकी आलोचना करनेकी सुविधा मिली थी। मेरे छोटे भाई गुरुदासने उस समय रञ्जनबाबूके साथ गौर-तत्त्वकी आलोचना प्रारम्भकी थी, जिसके फलस्वरूप उसके द्वारा लिखित एक लेख वहाँकी हरि सभामें पढ़ा गया था। परन्तु मेरे हृदयमें उस समय तक गौर-तत्त्वानुशीलन अथवा गौरलीला-रसास्वादनकी लालसा उतनी बलवती नहीं हुई थी। सारांश यह है कि उस समय भी मेरे ऊसर हृदय-क्षेत्रमें श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणोंका स्पर्श नहीं हुआ था। जहाँ तहाँ 'अमिय-निमाई-चरित' के कुछ अंशोंका पठन अवश्य किया, परन्तु उससे कुछ विशेष फल प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि तब तक श्रीगुरुके चरणोंका आश्रय लेनेकी योग्यता प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। यह सौभाग्य प्राप्त होनेके बाद जब दूसरी वार मैंने "अमिय-निमाई-चरित" का पाठ किया, उस समयके रहस्यकी बात मैं पीछे लिखूँगा।

छुट्टीके बाद मैं भागलपुरमें अपनी स्थायी नौकरी डिप्टीगीरी पर लौट आया और वहाँ सात महीने तक रहा। बंगाली टोलामें मेरा बासा था। भागलपुरमें ही सुशीलाका विवाह हुआ। ये सब बातें विस्तारपूर्वक पीछे बताऊँगा।

गौरधाम-गत मेरे कनिष्ठ भ्राता श्रीमान् गुरुदास गोस्वामी लिखित 'श्रीगौराङ्ग-अवतार' शीर्षक निबन्ध १९०८ ई० में 'आनन्द बाजार' और 'श्री विष्णुप्रिया पत्रिका' में प्रकाशित हुआ था। यह निबन्ध मेरी आत्म-कहानीके साथ स्थायी भावसे

रक्खे बिना वह अपूर्ण रह जायगी। अतएव सारा निबन्ध यहाँ दिया जा रहा है। मेरे प्राणोंसे भी प्रिय, परम गौरभक्त, कनिष्ठ भ्राता गुरुदास आज जीवित होते, तो वह मेरे प्राण-प्रिय भाई मेरे गौर-धर्म-प्रचारमें बहुत सुन्दर सहायक बनते। मैं जीवाधम भाग्यहीन हूँ। इस प्रकारके योग्य भाईकी सहायतासे आज बञ्चित हो एकाकी, असहाय और दुर्बल हो गया हूँ। प्रभु और प्रियाजीकी यही इच्छा थी जो मेरे जैसे नराधम अयोग्यके द्वारा अकेले इस गुरुतम भारको वहन करा रहे हैं। बीस वर्षकी अवस्थासे ही मैं सर्वतोभावेन अकेला, साधनहीन, निःसहाय हूँ। प्रभु-प्रियाजीकी यही इच्छा है। मैं क्या कर सकता हूँ ? उनकी इच्छा पूर्ण हो। जय श्री विष्णुप्रिया-गौराङ्ग !

श्रीगौराङ्ग-अवतार

"आजकी सभामें सहृदय भ्रातृगणने मुझको धर्मके सम्बन्धमें कुछ लिखकर ले आनेका आदेश दिया था। आप लोगोंके सामने श्रीगौराङ्ग देवके तत्त्वके विषयमें कुछ व्यक्त करनेकी मेरी इच्छा है। मैं ज्ञानहीन हूँ—क्षुद्रसे भी क्षुद्र हूँ, जीवाधम हूँ। उनके तत्त्वकी बात कैसे कहूँ—साहस नहीं हो रहा है। श्रीगौराङ्गका परम पवित्र नाम स्मरण करके जहाँ तक हो सकेगा उनका गुणगान करूँगा। आशा करता हूँ, आप लोग ध्यान देकर श्रीगौर-कथा श्रवण करेंगे।"

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयतुमुन्नतोज्ज्वलरसाम् स्वभक्तिश्रियम् ॥
हरिः पुरटसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः।
सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः ॥

अर्थ—जो कलयुगमें अन्य अवतारोंके द्वारा अनर्पित (अदत्त) मुख्य उज्ज्वल रसपूर्ण अपनी भजन-सम्पत्ति रूप भक्तिके प्रदानके लिए कृपा करके अवतरित हुए हैं, जिनकी कान्ति स्वर्णसे भी अधिक उल्लसित है, वह शचीनन्दन श्रीहरि आप लोगोंकी हृदय-रूप गिरि-कन्दरामें प्रकाशित हों।

राधाकृष्णप्रणयविकृतिह्लादिनीशक्तिरस्मा—
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम् ॥

अर्थ—श्रीकृष्ण-प्रेमकी विकृति रूपाह्लादिनी शक्ति ही राधा नामसे अभिहित हैं। इसी कारण राधाकृष्णने एकात्मा होकर भी अनादिकालसे विलासकी अभिलाषासे भूतल पर देहभेद स्वीकार किया है। अब वे दोनों एकत्वको प्राप्त होकर चैतन्यके

नामसे प्रकट हुए हैं। अतएव राधाभाव और राधाकान्ति समन्वित श्रीकृष्णस्वरूप (निराकार परब्रह्मस्वरूप) श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी मैं वन्दना करता हूँ।

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयै वा
स्वाद्यो येनाद्भुत मधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेतिलोभा—
त्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥

अर्थ—श्रीराधाकी प्रणय महिमा कैसी है? श्रीराधा प्रेम द्वारा जिसका आस्वादन करती हैं, मेरा वह अद्भुत माधुर्य कैसा है? मेरा अनुभव करते हुए श्री राधाको जो सुखोद्रेक होता है, वह सुख कैसा है? इन तीनों सुखोंके लोभसे राधाभावमय श्रीकृष्णरूप चन्द्र शचीगर्भरूप समुद्रसे प्रादुर्भूत हुए हैं।

श्रीगौराङ्ग, भक्त हैं या भगवान्—इस विषयको लेकर विचार करना यहाँ प्रयोजनीय नहीं है। जो लोग हृदयसे श्रीभगवान्को करुणामय कहते हैं, उनके लिए श्रीभगवान्का अवतार असम्भव नहीं है। गीताके अध्याय ४ श्लोक ५ में श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

श्रीभगवान्के अवतारकी इयत्ता नहीं है। जो लोग मुँहसे उनको करुणामय कहते हैं और फिर मन ही मन कहते हैं कि वह इस क्षुद्र समाजमें किसलिए आवेंगे, वे निश्चय अवतारको नहीं मानते। जो अपने मनमें विश्वास करते हैं कि श्रीभगवान् वस्तुतः बड़े दयालु हैं, उनको यह बात माननेमें क्या आपत्ति हो सकती है कि वह हमारे बीच आते हैं। विशेषतः उनके साथ यदि मिलनेकी आवश्यकता होती है तो, क्योंकि हम उनके जैसे नहीं बन सकते, इसलिए उनको ही हमारे समान बनकर हमारे पास आना पड़ता है। बिना इसके जीवोंका उद्धार नहीं हो सकता। संसारमें जितने अवतार हुए हैं उनमें गौराङ्ग-लीला ही विशेष प्रमाणिक है। क्योंकि इनके बारेमें प्रसिद्ध पण्डित और साधु-जन अपनी आँखों देखकर लिखकर छोड़ गये हैं। भगवान्में जितनी शक्तियाँ हैं, उनमें प्रेम और करुणा सर्वश्रेष्ठ हैं, और इन दोनों शक्तियोंको उन्होंने जगतमें दो अवतारोंके द्वारा पूर्णतः प्रकट किया है। श्रीकृष्ण अवतारमें पूर्ण प्रेम और श्रीगौराङ्ग अवतारमें पूर्ण करुणाका विकास हुआ है। युगलके बिना श्रीभगवान् पूर्ण नहीं होते। भगवान् नित्यपूर्ण हैं। अतएव नित्य युगल हैं। परन्तु जब लीलाके लिए वह जगतमें अवतीर्ण होते हैं, तब लीलारसका विकास और उद्दीपन करनेके लिए स्वतन्त्र पुरुष प्रकृति बनकर उदय होते हैं। इसी कारण प्रेमावतारमें श्रीकृष्ण और श्रीमती राधा तथा करुणावतारमें श्रीगौराङ्ग और श्रीमती विष्णुप्रिया बनकर श्रीभगवान्का विकास हुआ।

प्रेमावतारमें ब्रजमें श्रीकृष्णने प्रेम-प्रकाशके लिए जैसे ही वंशी बजायी वैसे ही श्रीमती राधिकाजी तथा करुणावतारमें नवद्वीपमें श्रीगौराङ्गके जैसे ही नयनाश्रु उथल पड़े वैसे ही श्रीमती विष्णुप्रिया आकर युगल हो गयीं। अतएव श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जैसे प्रेमकी युगल मूर्त्ति हैं, उसी प्रकार श्रीमती विष्णुप्रिया और श्रीगौराङ्ग करुणाकी युगल मूर्त्ति हैं। भगवत-प्रेमके विकासके लिए श्रीकृष्णका अवतार तथा जीव जिससे वह प्रेमधन प्राप्त कर सके, उस साधन शक्तिकी शिक्षा देनेके लिए श्रीगौराङ्गका अवतार है। श्री गौराङ्ग इसीसे करुणाका सार होकर अवतीर्ण हुए हैं। साध्यवस्तु और साधनके मिलनके बिना साधककी अभीष्ट सिद्धि नहीं होती और श्रीभगवान्‌की करुणाके बिना जीव और भगवान्‌में मिलन नहीं हो सकता। स्वेच्छामय भगवान् इच्छा होते ही जीवको दर्शन दे सकते हैं। परन्तु भक्ति-जगतका नियम यह है कि, जिस समय जीव अकिञ्चन भावसे श्रीभगवान्‌की शरण लेता है, उसी समय यदि श्रीभगवान् नरमुख हों तो जीव और भगवान्‌में मिलन हो सकता है। जीवके प्रति भगवान्‌की कृपादृष्टि होनेसे ही जीवकी इष्ट-सिद्धि हो जाय ऐसी बात नहीं है। श्रीभगवान्‌से प्राप्त इस करुणाके द्वारा जीव निर्मल होकर केवल साधन बल प्राप्त करता है। इस साधन बलको प्राप्तकर इसमें जीवका जिस परिमाणमें अधिकार प्राप्त होता है उसी परिमाणमें जीवके हृदयमें श्रीभगवान् विकसित होते हैं। करुणादृष्टि द्वारा जीवको निर्मल करके उसको साधन-बल तथा उसके उत्कर्ष साधनकी शिक्षा प्रदान करके और उस साधन बलके उत्कर्षके साथ-साथ जीवके हृदयमें श्रीभगवान्‌की शक्तिका विकास करनेके लिए श्रीगौराङ्ग अवतारको सब अवतारोंमें श्रेष्ठ मानना पड़ेगा। इसी कारण उनका एक नाम 'जीव-बन्धु' है।

अनन्तकालसे जीवकी सृष्टि हो रही है और जीवकी सृष्टिके साथ-साथ साधककी सृष्टि हुई है। तभीसे साधन-बलके लिए जीवको श्रीभगवान्‌की करुणाके ऊपर निर्भर रहना पड़ा है और श्रीभगवान् भी जीवोंको यह करुणा प्रदान कहते आये हैं। भगवत्-करुणाको प्राप्त करनेके लिए जीवको कठोर तपस्या सदा ही करनी पड़ी है। परन्तु जीवका तप-बल ह्रास होते-होते क्रमशः साधन-बल भी घट जाता है। श्रीभगवान् करुणामय हैं। जीवका पतन देखकर वे कातर हो जाते हैं और उनकी इच्छा होती है कि अपेक्षाकृत सहज उपायसे जीवके ऊपर करुणा करें। इसी इच्छाके वश होकर श्री भगवान् श्री श्रीगौराङ्ग रूपमें जीवोद्धारके निमित्त श्री नवद्वीप धाममें अवतीर्ण हुए हैं।

श्रीभगवान्‌की साक्षात् प्राप्तिसे जीवके हृदयमें जो साधन-बल प्रकट होता है उसीको श्रीगौराङ्गने प्रदान किया एवं स्वयं साधक होकर जीवको भक्ति-साधन योगकी शिक्षा दी। इससे जीवको जिस परिमाणमें अधिकार प्राप्त होता है, उसी परिमाणमें उसके हृदयमें उन्होंने भगवत् शक्तिका विकास करके आत्मोन्नतिके मार्गमें मानवको

उठनेकी शिक्षा दी है। ज्ञानयोगमें जीव ब्रह्मके तुल्य हो जाता है। परन्तु जगतमें दो ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रह सकता। इसलिए ज्ञानयोगमें जैसे ही जीव ब्रह्मके तुल्य होता है, वैसे ही वह ब्रह्ममें लयको प्राप्त हो जाता है। इसको ही निर्वाण मुक्ति कहते हैं। जिस योगके द्वारा ब्रह्मके तुल्य होकर जीव ब्रह्ममें लयको प्राप्त होता है, उसकी शिक्षा देनेके लिए श्री श्रीगौराङ्ग अवतारका उदय नहीं हुआ है। वह निखिल सुख जिसमें आनन्दका लय हो जाता है, जीवको वह सुख या आनन्द प्रदान करनेके लिए भी श्री श्रीगौराङ्गक उदय नहीं हुआ। जो सुख या आनन्द नित्य और निरुपम है, वह जिससे जीवको प्राप्त हो इसी निमित्त श्री श्रीगौराङ्ग अवतारका उदय हुआ है।

परिवार फैलाकर जीवन बितानेकी स्पृहा जीवके लिए अनिवार्य है। यह अनिवार्य स्पृहा जीवको श्रीभगवान्‌की स्पृहामयी शक्तिसे प्राप्त हुई है इसमें सन्देह नहीं है। इसीलिये भक्त लोग कहते हैं कि श्रीभगवान्‌का भी परिवार है एवं ब्रजधाम और कुछ नहीं है, केवल श्रीभगवान्‌का एक वृहद् नित्य सुखमय परिवार है। इस ब्रजधाममें जो श्रीभगवान्‌के साथ वास करते थे, उनके साथ श्रीभगवान्‌की जिस परिमाणमें आत्मीयता तथा प्रेम-सम्पर्क उत्पन्न हुआ था, उसी परिमाणमें तथा उसी प्रेम-सम्पर्कके अनुसार उनको श्रीभगवान्‌के साथ अपना बनकर रहना पड़ता था। इस आत्मीयताके अनुरोधसे इस संसारके जीव किसी भी प्रकारसे भगवान्‌के तुल्य नहीं हो सकते। अतएव ज्ञानयोग-सिद्ध जीव जैसी निर्वाण मुक्तिको प्राप्त होता है, वैसी निर्वाण मुक्तिकी अपेक्षा उनको नहीं होती। श्रीभगवान् नित्य हैं और उनका संसार भी नित्य है, अतएव उनके संसारमें जो वास करते हैं वे भी नित्य हैं। जिस साधन-बलसे जीव इस नित्य संसारमें नित्यानन्द सुखसे सुखी होकर श्रीभगवान्‌के साथ एकत्र वास कर सकता है, जीवको उसी साधन-बलकी शिक्षा देनेके लिए श्री श्रीगौराङ्ग देवका अवतार है।

निज-जन हुए विना कोई किसीके संसारमें प्रवेश नहीं कर सकता, और हृदयके प्रेम-बन्धनके विना कोई किसीका निज-जन नहीं हो सकता। जिस प्रेमयोगके द्वारा जीव श्रीभगवानके साथ हृदयका अटूट बन्धन स्थापित करके उनके संसारमें प्रवेश कर सकता है, श्रीगौराङ्गने जीवको उसी प्रेमयोग की शिक्षा दी है। यद्यपि वे जीवको प्रेमयोगकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए श्रीधाम नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए थे, अतएव उन्होंने नवद्वीपका परित्याग इसलिए नहीं किया कि वह प्रेमयोगका अधिकारी न बनने पाये। वह दयाके पूर्णावतार बन कर प्रेमदाता कल्पतरुके रूपमें धराधाममें उदित हुए थे और जिस जीवने जिस भावसे उनकी आराधनाकी, उन्होंने उसको उसी प्रकार साधन बल प्रदान करके सिद्धकाम बना दिया था। अब भी जीव सद्‌गुरुके चरणोंका आश्रय लेकर श्री श्रीगौराङ्ग लीलासे सम्यक अवगत होकर उनके प्रदर्शित पथका अवलम्बन करके सहज ही, और अनायास प्रेमभक्ति मार्गमें प्रवेश करनेमें समर्थ होगा। श्री श्रीगौराङ्ग

प्रभुके द्वारा प्रदर्शित भक्तिमार्गका पथ बड़ा ही सुगम है। अन्धजीव टेढ़े रास्तेको पकड़ कर व्यर्थ ही विडम्बनामें पड़ते हैं। साधु, गुरु तथा आचार्यगण इसी श्रेणीके अंधे जीवोंको सच्चा पथ दिखलाकर उनका भ्रम संशोधन करेंगे। दुःखकी बात यह है कि सच्चे आचार्यका मिलना आजकल दुष्कर हो गया है, सच्चे आचार्यके बिना अधम जीवका उद्धार होना बड़ा ही कठिन है।

श्रीगौराङ्गके देहमें पुरुष प्रकृति—दोनों भावोंके मिश्रणका और एक कारण है। श्री श्रीगौराङ्ग श्रीमती विष्णुप्रियाको साथ लेकर जो लीला करते हैं, वह उनकी करुणाकी लीला है। श्री श्रीगौराङ्ग विरही, और श्रीमती विष्णुप्रिया विरहिणी होकर इस करुणाका विकास करते हैं। श्री भगवान् प्रकृतिसे स्वतन्त्र होकर लीला करें तो वे मधुर नहीं हो सकते। परन्तु संन्यासी श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने प्रकृतिके मुख-तकका भी दर्शन नहीं किया था। इस कारण प्रकृति और पुरुषका एकत्र मिलन होकर श्रीगौराङ्गका आविर्भाव हुआ था। श्री श्रीगौराङ्ग देवके श्रीअङ्गमें श्रीमती राधा अविछिन्न भावसे विराजती हैं, इस कारण श्रीविष्णुप्रियाके साथ लीलाके उद्देश्यसे विछिन्न होने पर भी श्री श्रीगौराङ्गमें मधुर भावका अभाव नहीं हुआ। श्री श्रीगौराङ्ग प्रेमके साधक बनकर जीवको इस अपूर्व प्रेम-साधन-योगकी शिक्षा देते हैं। इसी कारण वे श्रीमती राधाकी भाव-कान्ति लेकर जगतमें अवतीर्ण हुए। श्री श्रीगौराङ्ग जीवके हृदयमें व्रजके निगूढ़ रसका विकास करके, किस प्रकार वह संसारमें रहकर इस रसका आस्वादन कर सकते हैं, इसकी शिक्षा देनेके लिए वह सदा सर्वदा प्रेम-रस-तरङ्गमें स्वयं मत्त रहते थे, और इसी कारण वे अपने हृदयमें श्री श्रीराधाकृष्णके युगल रूपको छिपाकर आये थे। जो लोग मातृभावसे श्रीभगवान्‌की उपासना करना चाहते हैं उनके लिए वह जगन्माताकी शक्ति लेकर आये थे, और नाटकके बहाने उन्होंने जगन्माता रूप धारण करके भक्तोंको मोहित किया था।

उपनयनके समय वे वामन मूर्त्ति धारण करके प्रकट हुये और किसी भक्तको उन्होंने वाराह मूर्त्ति तथा काजीको नरसिंह मूर्त्ति दिखलायी थी। राय रामानन्द आदिको उन्होंने द्विभुज मुरलीधर रूपसे दर्शन दिया था। गौर भक्तगणने उनमें अपनी अपनी सर्वदेव मूर्त्तियोंका दर्शन किया था। इसी कारण ज्योतिषी और गणकने उनकी महती शक्तिकी महिमाकी गणना करके उनका नाम श्रीविश्वम्भर रक्खा था।

जगत-प्रसिद्ध श्रीवासुदेव सार्वभौम, जिन्होंने मिथिलासे समस्त न्यायशास्त्र कण्ठस्थ करके नवद्वीपमें न्यायके ग्रन्थ लिखकर विद्यालय स्थापित किया था, तथा जो काशीधाममें रहकर वेदशास्त्रमें विशेष व्युत्पत्ति अर्जन करके सहस्रों दण्डी संन्यासियोंको वेद विहित धर्मकी शिक्षा देकर 'सोऽहं' कहकर परिचय देनेमें नहीं हिचकते थे, वे भी अन्तमें श्रीश्रीगौराङ्गके चरणोंमें आत्मसमर्पण करके उनकी करुणाके प्रार्थी हुए थे। वासुदेव सार्वभौम लिखते हैं :—

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग:
शिक्षार्थमेकं पुरुषः पुराणः ।
श्रीकृष्णचैतन्य शरीरधारी
कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥१॥
कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः
प्रादुष्कर्त्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।
आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे
गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृङ्गः ॥२॥

अर्थ—जो अद्वितीय पुराण पुरुष वैराग्य-विद्या और भक्तियोग विषयक शिक्षा प्रदान करनेके लिए श्रीकृष्णचैतन्य रूप देह धारण करके आविर्भूत हुए, उन्होंने देखा कि उनके प्रति जीवकी भक्ति क्रमशः नष्ट हो रही है, अतएव जीवके प्रति कृपा करके अपने प्रति जीवको उसी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिए श्रीकृष्णचैतन्य नाम धारण करके जो जगत्‌में अवतीर्ण हुए उनके पादपद्मोंमें मेरा चित्तरूपी भ्रमर प्रगाढ़ रूपसे लीन हो जाय । श्रीवासुदेव सार्वभौमके ये दो श्लोक भक्तोंके कण्ठकी मणिमाला हैं । जैसे श्रीचैतन्य चरितामृतमें लिखा है—

"एइ दुइ श्लोक भक्त कण्ठ मणिहार ।
सार्व भौमेर कीर्त्ति घोषे ढक्का वाद्यकार ॥"

देशके तत्कालीन शीर्षस्थ व्यक्ति सर्वशास्त्र विशारद वेद पञ्चानन श्रीअद्वैताचार्य, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती आदिने श्री श्रीगौराङ्ग प्रभुकी सैकड़ों वार परीक्षा करके उनको पूर्णावतार स्वयं भगवानके रूपमें स्वीकार किया है । श्रीगौराङ्ग देवके श्रीचरणोंकी उन्होंने गङ्गाजल और तुलसी प्रदान करके पूजाकी थी । श्रीश्रीगौरचरणमें तथा उनके भक्तोंके चरणोंमें कोटि कोटि प्रणाम करके यह प्रबन्ध समाप्त करता हूँ ।"

दीन गुरुदास गोस्वामी
मोतीहारी (चम्पारन)
फाल्गुनी पूर्णिमा १९०५ ई०

अन्य बन्धु-बान्धवोंके सम्बन्धमें

•

पहले कह चुका हूँ कि मैंने छुट्टी लेकर मोतीहारी (जिला चम्पारण) में अपने कनिष्ठ भ्राता श्रीमान् गुरुदासके बासे पर कुछ दिन वास किया। उसी समय गुरुदासके साथ अपने पूर्वज द्विज बलरामदास ठाकुरकी पदावलीके विषयमें कुछ आलोचना हुई। महात्मा शिशिर कुमारके सुयोग्य भानजे श्रीयुत रञ्जनविलास राय चौधरी जो उस समय मोतीहारीमें पोष्ट माष्टर थे, हमारी इस आलोचनामें योगदान करते रहे। फल स्वरूप "गौर-पद-तरंगिणी" श्रीग्रन्थकी विस्तृत उपक्रमणिकाके ११८-११९ पृष्ठमें श्रीमान् गुरुदासके द्वारा लिखे एक पत्रमें हमारी वंशावलीका कुछ अंश प्रकाशित हुआ। उसके बहुत दिन बाद १३२८ बंगाब्दमें मैंने 'द्विज बलराम दास ठाकुरकी पदावली और संक्षिप्त जीवन चरित' एक पुस्तक लिखी, उसमें हमारी सम्पूर्ण वंशावली तथा श्रीपाट दोगाछिया तथा बालगोपाल उपासक पदकर्त्ता द्विज बलरामदास ठाकुरके सम्बन्धमें बहुतसी प्राचीन अप्रकाशित सामग्री संग्रहित हुई है। ये सारी बातें यथा स्थान मेरी धर्म जीवन-कथामें व्यक्त होगी।

छुट्टीके बाद मैंने फिर अपनी पक्की नौकरी डाकघरकी डिप्टीगीरी पर बहाल होकर भागलपुरमें सात महीने तक काम किया। मेरा बासा गंगाके किनारे बंगाली टोलामें था। डाकघरके सुपरिण्टेण्डेण्ट मेरे पुराने अफसर स्व० द्वारकानाथ गोस्वामीके दोतल्ले नये मकानमें मैं केवल ८ रु० मासिक भाड़े पर रहता था। उस समय बंगाली टोलेमें कई प्रसिद्ध बंगाली सज्जन रहते थे। सबके साथ मेरा खूब मेलजोल था। वहाँके सब लोग मुझको विद्यार्थी जीवनसे ही जानते थे और विशेष स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे।

यहाँ प्रसङ्गवश अपने पुराने अफसर स्व० द्वारकानाथ गोस्वामीकी आकस्मिक मृत्युका उल्लेख तथा साथ ही उनके पुत्र श्रीमान् दीनानाथ गोस्वामी, वर्तमानकालमें उड़ीसा-सम्भलपुर डिवीजनके डाकघरोंके सुपरिण्टेण्डेण्टके विषयमें कुछ न कहनेसे मेरी कथा अधूरी रह जायगी। श्रीरामपुर (हुगली) निवासी द्वारकानाथ गोस्वामी महाशय विशिष्ट कुल संभूत और उच्च राजकर्मचारी थे। उनकी उम्र ५० वर्षसे अधिक थी। वे भागलपुरमें डाक-बंगलेके तत्कालीन डाकघरोंके बड़े साहब Mr. J. Hamilton

के साथ भेंट करनेके लिए गये और अचानक हृद्रोगसे आक्रान्त होकर मूर्छित हो गये; फिर घोड़ागाड़ीसे बासे पर आते ही उनका देहान्त हो गया। उस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् दीनानाथ गोस्वामीकी उम्र १७-१८ वर्षकी थी। वह केवल प्रवेशिका परीक्षा पास थे। गोस्वामीजीके आत्मीय स्वजनोंकी राय थी कि उनको उच्च शिक्षाके लिए कालेजमें भेजा जाय, परन्तु मेरे परामर्शसे उनको इसी उम्रमें डाकघरकी नौकरीमें प्रवेश कराना तय किया गया। उस समय डाकघरमें १०-१५ रु० महीना वेतनसे प्रारम्भ करके ३० रु० महीना वेतन तक जाते-जाते दस-बारह वर्ष लग जाते थे। परन्तु हम सब लोगोंने मिलकर बड़े साहबसे अनुरोध करकर श्रीमान् दीनानाथकी एक बारगी ३० रु० महीने पर भागलपुरके बड़े पोष्ट-आफिसमें क्लर्कके काम पर नियुक्ति करवा दी। निश्चय ही उनके पिताकी आकस्मिक अकाल मृत्युके कारण डाकघरके बड़े अफसरोंकी सहानुभूतिके रूपमें दीनानाथको यह नौकरी मिली। इसके बाद जब मैं बड़े साहबके आफिसमें दानापुरमें इन्सपेक्टरके पद पर बदल कर गया, उस समय मैंने बड़े साहब (Mr. Knox Homan) से कहकर एक वर्षके भीतर ही ५० रु० मासिक वेतन पर दानापुरमें पोष्ट माष्टर जनरलके दफ्तरमें क्लर्कके काम पर श्रीमान् दीनानाथको बुला लिया तथा उसको साल भर तक अपने बासे पर काम-काज करनेकी शिक्षा मैंने दी। इस समय वे ६०० रु० मासिक वेतन पाते हैं। अब वह पक्के सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब हैं, योग्य पिताके योग्य पुत्र जो हैं। श्रीमान् दीनानाथ अब भी मुझको ज्येष्ठ भ्राताके समान मानते और सम्मान करते हैं। मैं भी उनके साथ कनिष्ठ भ्राताके समान यथोचित स्नेह व्यवहार करता आ रहा हूँ।

इस डाकघरकी नौकरीके सम्बन्धमें यहाँ प्रसङ्गवश और एक नदिया-कृष्णनगर निवासी ग्रेजुएट युवक, कुलीन सन्तानकी बात कहे बिना मैं नहीं रह सकता। उन सज्जनका नाम था श्री नलिनीकान्त राय बी० ए०। इस समय वे परलोक गत हैं। कुछ ही महीने वे पेन्शन भोग कर सके थे। उन्होंने भी ३० रु० महीने वेतन पर डाकघरकी नौकरी शुरू करके ६०० रु० महीने वेतन पर सुपरिण्टेण्डेण्टके पदसे अवसर ग्रहण किया। वे टिकारी (गया) में स्कूलमें ३० रु० महीने पर सामान्य शिक्षकका काम करते थे। उस समय मैं गया हेड आफिसमें काम करता था। मेरी ही रायसे नलिनी बाबूने स्कूलकी नौकरी छोड़कर ३० रु० महीने पर डाकघरमें पहले-पहल प्रवेश किया। नलिनी बाबू मेरे परम मित्र थे। वे उच्च शिक्षा-प्राप्त तथा रसज्ञ पुरुष थे। उन्होंने मेरी लिखी पुस्तक "श्रीविष्णुप्रियाचरित" को पढ़कर मुझे लिखा था—

"श्रीविष्णुप्रिया-चरित" को पढ़कर अत्यन्त आनन्दित हुआ। वैष्णवधर्मके रसका उत्स अति दुर्गम स्थानमें अवस्थित है। श्रीभगवान्ने आपको रसलोलुप तथा दुर्बल भक्तोंका पथ-प्रदर्शक बननेकी शक्ति प्रदानकी है।"

अपने हाथसे अपनी बात लिखनेमें लज्जा जान पड़ती है। पूज्यपाद श्री चैतन्य चरितामृतकार कविराज गोस्वामीने लिखा है—"आपनार कथा लिखि निर्लज्ज हइया"—मैं भी निर्ल्लज्ज होकर लिख रहा हूँ। मैंने डाकघरमें बहुतोंको नौकरी दिलायी। उनमेंसे आज भी छोटी-बड़ी जगहों पर कई आदमी हैं। बिहार और मध्य-प्रदेशके डाकघरोंमें अनेकों बंगाली-अबंगालीको काम दिलाया था। इसके लिए एक दिन सिविलियन पोष्ट माष्टर जनरलने मुझको स्पष्ट कहा था—"Mr. Goswami, you are very fond of your own race Bengalis." मैंने उनके मुँह पर जबाब दिया था—"Are you not Sir, very fond of your own race ? Is that a fault ?" यह बात जब मैंने कही थी, उस समय मैं डाकघरोंके एक गजटेड अफसरके पद पर प्रतिष्ठित था और एकवारगी ५०-६० रु० महीने पर कई बंगाली ग्रेजुएटको मैंने स्वयं डाकघरकी नौकरी दी थी। मुँह पर ही ऐसा स्पष्ट उत्तर पाकर साहब बहादुरने उस समय तो मुझसे कुछ नहीं कहा। परन्तु Appointment Roll के ऊपर मन्तव्य लिखकर मुझसे कैफियत माँगी। मुझे याद है उत्तरमें मैंने लिखा था—"The appointments were in my gift and I have selected the best men according to my own judgement, if you like, you can cancell the appointments." इसका कुछ उत्तर मुझे नहीं मिला।

कन्या का विवाह

इसी समय भागलपुरमें मेरी एकमात्र कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीका शुभ विवाह हुआ। उस समय उसकी उम्र केवल दस वर्षकी थी। १३ फागुन १३१२ साल, तदनुसार २८ फरवरी १९०६ को नया बाजारमें राय बहादुर गोपालचंद्र सरकार वकीलके दो तल्ले बड़े मकानमें अपना बासा बदलकर यह शुभ कार्य सम्पन्न किया गया। मुर्शिदाबाद बहरमपुर वकीलपाड़ाके निवासी वकील और जमीदार श्रीश्यामाचरण भट्ट महाशयके पौत्र कलकत्तेके प्रसिद्ध जमीदार महाराजा प्रद्योतकुमार ठाकुरके प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुत त्रिपुराचरण भट्ट महाशयके पुत्र श्रीमान् आनन्दमय भट्टके साथ श्रीमती सुशीला सुन्दरीका शुभ विवाह कार्य बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ था। इस विवाहमें बहरमपुरसे बहुतसे सम्भ्रान्त लोग बाराती आये थे। उन लोगोंके रहनेके लिए एक बड़े राजगृहमें स्वतन्त्र स्थान निश्चित किया गया था। हमारे सम्बन्धी श्रीयुत् त्रिपुराचरण भट्ट महाशय बड़े रसिक पुरुष थे। वे बड़े ही खुले दिलके आदमी थे। वे और उनके पुत्र आज २२ वर्ष हो रहे हैं, परलोक चले गये। यह बड़े दुःखकी बात है। पश्चात् यथास्थान इसके विषयमें लिखूँगा। पिता-पुत्रकी मृत्युमें केवल २० दिनका व्यवधान था। पुत्रकी मृत्युके बाद पुत्रशोकमें पिताने देह त्याग किया।

मेरी कन्याके विवाहमें खिलाने-पिलानेका सारा भार मेरे प्रिय मित्र श्रीयुत् निमाईचरण चट्टोपाध्याय एल० एम०एस० भागलपुरके अवसर प्राप्त (रिटायर्ड) सिविल सर्जन महाशयके ऊपर था। निमाई बाबूके साथ मेरा बहुत दिनोंका प्रेम-व्यवहार सम्बन्ध था। वे मोतीहारीमें सिविल सर्जन थे। मेरे छोटे भाई गुरुदासको अपने छोटे भाईसे भी अधिक स्नेह करते थे। वे लोगोंको खिलाने-पिलानेके काममें खूब अभ्यस्त थे। स्वयं भी उत्तम भोजन बना सकते थे। लोगोंको खिलाना उनका एक नियमित व्रत था। बड़े-बड़े लोगोंके घर यदि किसी उद्देश्यसे खिलाने-पिलानेका आयोजन होता तो वहाँ वह अगुआ बन जाते थे। मेरी कन्याके विवाहमें उन्होंने स्वेच्छापूर्वक यह कार्य-भार अपने ऊपर लिया था। मुझे याद है सुशीलाके विवाहमें बहुतसे गण्यमान्य

लोगोंको भली भाँति भोजन कराया गया था। खूब उच्चस्तरका खाना-पीना हुआ था। बासेमें हलवाई मिठाई बनानेके लिए बैठाये गये थे। निमाई बाबूने अपनी देख-रेखमें देश-देशकी नाना प्रकारकी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मिठाइयाँ भागलपुरमें बैठे-बैठे तैयार कराई थी। उनके साथ-साथ सदा २-३ रसोई बनाने वाले पक्के पाचक ब्राह्मण रहते थे। वे मोतीहारीमें अकेले रहते थे, फिर भी उनके बासेमें नित्य दावत होती थी। उनको मित्रोंको तथा प्रियजनोंको साथ लेकर खानेमें बड़ा आनन्द मिलता था। मेरी कन्याके विवाहके बाराती विशिष्ट सम्भ्रान्त लोग थे। उन लोगोंने भोजन करते समय विवाहकी रातमें पक्का फलाहार, और दूसरे दिन मध्याह्नके भोजनके समय विशेष रूपसे प्रशंसा करते हुए कहा था—"ये नाना प्रकारकी उत्तम मिठाइयाँ कहाँसे मंगायी गयी हैं ?" उत्तरमें निमाई बाबूने कहा था—"हरिदास बाबूने बहुत खर्च करके कलकत्ता, बर्दवान, बनारस, दिल्ली, आगरा आदि दूर-दूरके स्थानोंसे मँगाकर मिठाइयोंका संग्रह किया है।" इस विवाहमें खिलाने-पिलानेमें मुझे बड़ा यश प्राप्त हुआ था। मेरे अनेकों मित्रोंने इस विवाहका सब भार अपने ऊपर ले लिया था। मेरे कनिष्ठ भ्राता गुरुदासने सपरिवार भागलपुरमें आकर काम-काज सम्भाला था। मैं केवल फूल बाबूकी तरह दुपट्टा डाले लोगोंसे मीठी-मीठी गल्प मारा करता था। इस विवाहमें मेरे जन्म-स्थान दोगाछियासे अधिकांश आत्मीय स्वजन आये थे। खर्च भी मेरा यथेष्ट हुआ था। यद्यपि मेरा मासिक वेतन उस समय केवल ७० रु० था—तथापि अधिकांश समय मैं ऊँचे वेतन पर स्थान-स्थान पर काम करता था। इससे हाथमें कुछ रुपये हो गये थे।

मेरे जमाई श्रीमान् आनन्दमय भट्ट उस समय १७-१८ वर्षके नवयुवक अति सुन्दर पुरुष और पूर्ण स्वस्थ थे एवं सबके चित्तको आकर्षित कर लेते थे। इस विवाहमें भागलपुर शहरमें बंगाली समाजमें एक प्रकार धूम-सी मच गयी थी।

पहले कह चुका हूँ कि मेरे एक बहनोई पण्डित चन्द्रभूषण भट्टाचार्य भागलपुरमें कन्या-विद्यालयमें हेड पण्डित थे। उनके देहावसानके बाद भागलपुरमें मेरी कन्याका विवाह हुआ था। मेरी दीदी, बड़ी बहन, भाञ्जा और भाञ्जीने इस विवाहमें मेरी विशेष सहायताकी थी। नौकरी करते समय भागलपुरमें ही मैंने अपनी एक भाञ्जीके शुभ विवाहका सम्बन्ध स्थिर करके स्वयं उपस्थित होकर कार्य-सम्पादन किया था। बालिकाका नाम था श्रीमती पाषाणीदेवी। वह सर्व सुन्दर लक्षणोंसे युक्त साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा थी। पाषाणी केवल नाम था, कार्यमें वह दयावती लक्ष्मी स्वरूपिणी थी। उसका विवाह मलेरिया ज्वरकी सुप्रसिद्ध पेटेण्ट दवा 'वैसलिन' के आविष्कर्त्ता द्वितीय पक्षके वर श्रीमान् विपिनबिहारी चक्रवर्ती एल० एम० एस० डाक्टरके साथ हुआ था। जिस समय यह विवाह हुआ था, उस समय डाक्टर श्रीमान् विपिनकी आर्थिक दशा

विशेष सोचनीय थी। परन्तु इस समय वे १८ नं० श्रीगोपाल मल्लिक लेन, कलकत्तामें औषधिका विस्तृत कारोबार करके एक गण्यमान्य व्यक्ति बन गये हैं। पत्नीके भाग्यसे ही उनकी अवस्थामें यह परिवर्तन हुआ था। धन और सन्तान दोनोंसे ही वे इस समय सौभाग्यशाली लक्ष्मीवान थे। "स्त्री भाग्ये धन" यह सुभाषित महाजन वाक्य साक्षात् फलित हुआ था।

नागपुरको बदली और यात्रा

पहले कहना भूल गया हूँ कि दानापुरमें बड़े साहबके दफ्तरमें जब मैं काम करता था उस समय पोष्ट माष्टर जनरलके Head Asstt. Mr. D.J.C. Burn नामक एक साहबने मुझसे डाकघरके काम-काज तथा कायदा-कानून सीखनेका अनुरोध किया था। वे उस समय सुपरिण्टेण्डेण्टकी परीक्षाके लिए तैयारी कर रहे थे। कई महीने उनके बंगले पर जाकर उनको नियमपूर्वक पढ़ाना पड़ा। इसी सूत्रसे मेरे साथ उनका विशेष मिलना-जुलना तथा प्रेम-भाव हो गया। पश्चात् परीक्षा पास करके वे नागपुरमें पोष्ट माष्टर जनरल साहबके Personal Asstt. नियुक्त हुए। मेरे पूर्व-कालके अफसर Mr. F.B.O'shea उस समय वहाँके डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरल थे। उस समय छोटे-छोटे Postal Circle डिप्टी पोष्ट माष्टर जनरलके अधीन थे। इन दोनों महाशयों (Messrs D.J.C.Burn तथा F. B. O'shea) ने परामर्श करके मुझको बिहार सर्किलसे मध्य प्रदेशके बड़े साहबके दफ्तरमें नागपुर बदली करा लिया। कहाँ भागलपुर और कहाँ नागपुर? बारह सौ मील दूर नये अज्ञात स्थानमें इस प्रकार साधारणतः Non gazetted अफसरकी बदली नहीं होती थी। परन्तु मेरे सम्बन्धमें विशेष कानून लगा, क्योंकि वहाँ योग्य व्यक्तिकी आवश्यकता थी। दोनों अंग्रेज अफसरोंकी विशेष सिफारिश थी, फिर कोई बचाव कैसे होता? नागपुर बड़े साहबके दफ्तरमें Supernumary Inspector के पद पर बहालीका परवाना भागलपुरमें जा पहुँचा। उस समय मेरी कन्याका विवाह हुए कुछ ही महीने हुए थे। जामाताको भागलपुरमें बुलाया था, वे हमारे साथ ही थे। उसी समय अचानक बदलीका हुक्म आ गया। बन्धु-बान्धव, मित्र-स्नेही सब लोगोंने इतनी दूर जानेसे मना किया। परन्तु मेरा मन नागपुरके बड़े-बड़े सन्तरे खानेके लिए लुब्ध हो गया। नये-नये स्थान देखनेको मिलेंगे, यह सोचकर मन उत्फुल्ल हो उठा। जामाताजीको साथ लेकर उसी दूर देशके लिए डेरा-डण्डा लेकर कूच करनेकी तैयारी करने लगा। नागपुर मेरा बिल्कुल अज्ञात स्थान था, वहाँ मेरा एक भी परिचित आदमी न था। मैं सदासे बड़ा दुःसाहसी आदमी था। सारे परिवार (मैं, मेरी स्त्री और जामाता, कन्या तथा एक बूढ़ा नौकर घुनसिया

और अपने पूज्य पिताजीके पढ़ाये एक मैना पक्षी) को साथ लेकर भागलपुरसे १० अक्टूबर १९०६ ई० को मैंने नागपुरकी यात्राकी। बहुत सर-सरंजाम साथ लेकर बहुत दिनका डेरा-दण्डा लेकर जाना पड़ा था। बन्धु-बान्धव, आत्मीय स्वजन और कर्मचारीगण सब लोग बहुत दुःखी होकर मुझको विदा करनेके लिये स्टेशन गये थे। उनमें बूढ़े पोष्ट माष्टर काशीप्रसाद बाबू भी थे। वे मुझको विशेष स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे।

भागलपुरसे हावड़ा होकर मैं पैसेंजर ट्रेनसे नागपुर रवाना हुआ। साथमें बहुत सर-सरंजाम था, स्त्रियाँ थीं। मेल ट्रेनसे जानेकी हिम्मत न हुई। नौकर बहुत बूढ़ा था। किसी प्रकार थर्ड क्लासके एक खाली डिब्बेमें सामानको गोदामकी तरह भरकर हम रवाना हुए। नागपुर पहुँचनेमें पूरे ढाई दिन लगे। वह नितान्त अपरिचित स्थान था। कोई भी परिचित आदमी न था। कोई सिफारिशी पत्र नहीं ला सका। कहाँ जाऊँ, किसके घर उतरूँ, तीन दिनसे किसीके मुँहमें अन्न नहीं गया था, बंगालीके लड़कोंके प्राण अन्नमें रहते हैं। भूखे कुत्तेके समान सब अन्नके दानोंके लिए लालायित थे। पहले मैंने अपने पुराने अफसर Personal Asstt. Mr. Burn को एक पत्र लिखकर अपने नागपुर पहुँचनेकी तिथिकी सूचना दे दी थी। उन्होंने कृपा करके आफिसके एक चपरासीको स्टेशन पर भेज दिया था। ता० १२ अक्टूबर १९०६ ई० के दिन खूब तड़के गाड़ी नागपुर स्टेशन पर पहुँची। हावड़ासे किसी स्थान पर गाड़ी बदलनी नहीं पड़ी। कहीं हम लोग उतरे भी नहीं। ट्रेनसे प्लेटफार्म पर उतरनेमें भी मुझको भय लगता था। अब भी मुझमें वह भय विद्यमान है कि कहीं गाड़ी छूट जाय और मैं चढ़ न पाऊँ। गाड़ी १०-१५ मिनट रुकती है और कहीं आधा घण्टा तक रुकती है इस बातमें मेरा विश्वास नहीं होता था। मेरे पूज्यपाद पिताजी पुरातन युगके अध्यापक पण्डित थे। बीच-बीच निमन्त्रणमें उनको अनेक स्थानोंमें जाना पड़ता था। रानाघाटमें उनकी पाठशाला थी, बहुतसे छात्र पढ़ते थे। उनको जब किसी दिन गाड़ीसे कहीं जाना होता और गाड़ी ९ बजे आने वाली होती तो प्रातःकाल उठकर स्नानादि कृत्य समाप्त करके कभी-कभी १-२ घण्टे पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर बैठे रहते। मैं स्टेशन पर साथ-साथ जाता था, इतना पहले आकर व्यर्थ ही बैठकर समय खोनेकी बात सोचकर मैं पूछता—"बाबा ! आप इतना पहले स्टेशन क्यों आते हैं ? गाड़ीका समय तो निर्दिष्ट है, उससे थोड़ी देर पहले आनेसे काम बन जाता।" वह उत्तर देते—"बापू तुम लोग लड़के हो, समझते नहीं हो यदि गाड़ी छूट जाय तो वह बड़े ही कष्टकी बात होगी। उसकी अपेक्षा पहलेसे ही आकर बैठना अच्छा है और एक बात है। गाड़ी जब तब आती जाती है। इसके समयका क्या ठिकाना ?" बाबाके मुखसे यह बात सुनकर मैं हँसता था। मैं अपने पिताका उपयुक्त पुत्र था। उनका यह भाव मुझमें सञ्चारित हो गया। रेलगाड़ीके समयका ठिकाना नहीं है यह पितृ-वाक्य मेरे मनमें बद्धमूल हो गया। अब भी मैं बहुत पहले स्टेशन जाकर बैठता हूँ। कलकत्ता जाकर ट्रामसें बैठकर कहीं उतरनेमें भय लगता है कि कहीं उतरते-उतरते ट्राम चल न

जाय। कभी-कभी ट्रामके अन्तिम गन्तव्य स्थान तक जाकर वहाँसे पैदल लौटकर निर्दिष्ट स्थान पर जाता हूँ। यह मेरा दोष है या गुण, पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं।

नागपुर स्टेशन पर पहुँचकर तीन ताँगे किये, माल-असबाब चढ़ाकर सपरिवार गाड़ीमें बैठे। ताँगे वालेने पूछा—"बाबू साहब! कहाँ जाना होगा?" मैंने उत्तर दिया—"पहले बङ्गाली बाबूके डेरे पर चलो।" तीन गाड़ियाँ एक साथ चलीं। धनतली दाजी चालके निकट सदर रास्तेके ऊपर एक बङ्गाली बाबूके बासेके सामने गाड़ी खड़ीकी गयी। मैं उतरकर उच्च स्वरसे बोला—"महाशय! घर पर हैं?" प्रातःकालका समय था, चार बार पुकारनेके बाद एक दाढ़ी वाले प्रौढ़ वयस्क बङ्गाली बाबूने ऊपरके बरामदेमें खड़े होकर उत्तर दिया। तब मैंने उनसे कहा—"मैं एक बिदेशी बङ्गाली हूँ; भागलपुरसे यहाँ डाकघरके बड़े साहबके दफ्तरमें बदली होकर सपरिवार आया हूँ, यहाँ मेरा परिचित कोई आदमी नहीं है, मुझको एक मकान भाड़ा कर देना होगा।" बाबूका नाम था नृसिंह प्रसाद। फौरन नीचे रास्ते पर उतरकर वे मुझको बङ्गाली बाबूके बासे पर अर्थात् दाजीके चाल पर ले गये। वहाँ एक चालके बारह खण्डोंमें १२ बङ्गाली एक साथ रहते थे। मेरी गाड़ीको रास्ते पर देखकर प्रायः सभी बङ्गाली बाबू अपने घरसे बाहर आकर मेरा आदर सत्कार करने लगे। श्रीयुत् पाँचू सहाय वन्द्योपाध्याय विशेष आग्रह पूर्वक माल-असबाबके साथ हमको अपने बासेमें ले गये। उसी दाजीके चालमें उस समय कालेजके तीन बङ्गाली प्रोफेसर रहते थे, शारदाबाबू, गांगुली बाबू और प्रियनाथ मुखोपाध्याय महाशय। चक्रवर्ती महाशय, दास महाशय, राय महाशय आदि कतिपय बाबू भी वहाँ थे। दास महाशयका पूरा नाम था श्रीयुत हरिचरण दास। वह पी० डबल्यू० डी० के ओवरसिअर थे। वहाँ ये सब लोग मेरे परम मित्र हो गये। यही हरिचरण बाबू आज ३-४ वर्ष हुए, श्रीधाम नवद्वीप में आकर सपत्नीक मुझसे दीक्षा ग्रहण कर गये हैं। अस्तु, एक ही दिनमें अपने समीप मेरा बासा ठीक वे लोग करके अपने घरसे चौकी खटिया आदि स्वयं उठाकर ले आये, तथा बासेके लिए अन्यान्य प्रयोजनीय वस्तुओंका भी संग्रह कर दिया। विदेशी बङ्गालियोंका इस प्रकार सहानुभूति-सूचक आदर व्यवहार देखकर मेरा मन आनन्दसे भर गया। उस दिन श्रीयुत् पाँचूसहाय वन्द्योपाध्याय महाशयके बासेमें तीन दिनके पश्चात् अन्न प्रसाद पाकर हम लोगोंने परम आनन्द पूर्वक पेटभर भोजन किया। पश्चात् अपने बासे पर जाकर दो-एक दिनके भीतर सारा बन्दोबस्त कर लिया। घरका भाड़ा १३ रु० मासिक तय हुआ। उस समय नागपुरमें बङ्गालियोंमें बड़ा वेतन पाने वाले थे श्रीयुत् मन्मथनाथ भट्टाचार्य एम०, ए०, Acctt. General, C.P.। वे स्व० प्रातः स्मरणीय महामहोपाध्याय महेशचन्द्र न्यायरत्नके पुत्र थे। एक नया बङ्गाली नागपुरमें आया है, यह सुनकर वे एक रविवारके दिन प्रातःकाल गाड़ी भाड़ा करके मेरे बासे पर उपस्थित हो गये। मेरा परिचय, कुशल-मङ्गल, जरूरत आदिकी सारी बातें पूछकर उन्होंने अपनी वंशोचित भद्रताका अच्छा परिचय दिया।

नागपुर-कालीन जीवन

•

उस समय नागपुरमें बङ्गालियोंकी संख्या बहुतही कम थी। Postal Account Audit Office के तीन भाग होकर एक Audit Office नागपुरमें स्थापित हुआ था। उसमें प्राय: डेढ़ सौ बङ्गाली कलकत्तेसे बदलकर आये थे।

पोष्ट माष्टर जनरलके आफिसमें उस समय एक भी बङ्गाली क्लर्क नहीं था। केवल मैं एक नया बङ्गाली इन्स्पेक्टर नियुक्त हुआ था। मेरा काम था सारे मध्यप्रदेशमें डाकघरकी चोरी-डकैतीका मुकदमा देखना, तथा डाकघरके द्वारा भेजे जाने वाले रुपये-पैसे, रजिष्ट्री चिट्ठी-बीमा आदिकी क्षतिके विषयमें अनुसन्धान करना, तथा उसके विषयमें पोष्ट माष्टर जनरलको रिपोर्ट देना। इस कारणसे मुझको महीनेमें १५ दिनसे ऊपर कभी कभी बाहरही रहना पड़ता था। मुझको इन्टर क्लासका पास मिला था, और बाहर जाने पर प्रतिदिन ३ रु० भत्ता मिलता था। इसके सिवाय दफ्तरकी क्लर्कीका भार भी मेरे ऊपर था। डाकघरोंके लिए सरकारी मकानोंके निर्माण, मरम्मत आदि विषयक मुकदमे, Cesses and taxes, बड़ी-बड़ी Public Complaint, Personal enquiry आदिका भार भी मेरे ऊपर पड़ता था। इसके सिवाय miscellaneous cases विविध विषयक कागज-पत्र भी मेरी टेबुल पर आते थे। मुफस्सिलमें मेरे नामसे रजिष्ट्री करके स्पेशल थैला जाता था। कार्य-संपादन करके कागज-पत्र मैं मुफस्सिलसे नागपुर बड़े आफिसमें नियमपूर्वक वापस भेजता था। जब नागपुरमें रहता तो नियमपूर्वक आफिसमें जाता था, और क्लर्कका काम करता था। साढ़े दस बजे जाता और साढ़े चार बजे लौटता था। मेरी टेबुल पर कागजों (cases) का ढेर लगा रहता था। मेरे एक Asstt. Clerk थे, वह कागजोंको मेरे सामने उपस्थित करते थे। मेरे बासेसे बड़े साहबका दफ्तर डेढ़ मील दूर था। नये स्थानमें नया काम करनेमें मुझको कोई विशेष असुविधा नहीं होती थी। क्योंकि ये सारे काम पहले दानापुरमें बड़े साहबके आफिसमें मैं कर चुका था। परन्तु नये सर्किलमें बहुत कुछ नये सरकुलर और नये कायदे-कानून थे जिनका ज्ञान न होने पर उनके विषयमें दूसरोंसे पूछना पड़ता। परन्तु कोई आदमी मुझको बतलाता नहीं था, क्योंकि मैं दूसरे सर्किलसे वर्द्धित वेतन पर

आकर बहुतोंकी आँखोंका काँटा बन गया था । एक क्लर्क मिष्टर खरेने मेरे नामसे अपील भी की थी । उस अपीलके उत्तरमें बड़े साहबने उनको मौखिक कहा था—'Mr. Goswami can teach yon for ten years." आफिसमें महाराष्ट्री खरे, बोखारे, काले आदिका एक प्रबल दल था। एक बङ्गालीका कहींसे उड़कर आना और जमकर बैठना उनको कैसे सह्य हो सकता था ? दोष उनका नहीं था, दोष मेरा था।

नागपुर रहते हुए सरकारी कामोंको लेकर मुझे समग्र मध्यप्रदेश, मध्यभारत, एवं रीवा राज्यके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करना पड़ता था । डाकघरके चोरी डकैती आदिके मुकदमोंको लेकर, और दूसरे विशेष कामोंको लेकर और अन्यान्य विशेष अनुसन्धानके कार्योंको लेकर विभिन्न स्थानोंके पोलिटिकल एजेंट, कमिश्नर, डिप्टी कमश्निर, जज, मजिष्ट्रेट प्रभृति उच्च पदस्थ सरकारी राजकर्मचारी लोगोंसे मिलना पड़ता था । फौजदारी कचहरीमें डाकघरके मुकदमोंका विचार करने वाले हाकिमके समक्ष नियमानुसार वकालती बहस भी मुझे करनी पड़ती थी । बड़े साहबके दफ्तरके साथ मेरा दफ्तर था और साथमें सहकारी किरानी बाबू (क्लर्क) था। वहाँसे मेरे लिए डाकका विशेष थैला बराबर आया जाया करता और बाहर भी मुझे अपने दफ्तरका कार्य उपरोक्त कामोंके अतिरिक्त बराबर करना पड़ता था ।

जब मैं भागलपुरसे इस नये कार्य पर नियुक्त होकर नागपुर आया था तब मैं नया व्यक्ति हूँ इसका बहाना बनाकर बड़े साहबके दफ्तरके बड़े बाबू (हेड क्लर्क) ने अपने प्रिय बन्धु द्वितीय किरानी बाबू थानसिंहको इन कामोंके लिये बाहर भेजनेके उद्देश्यसे बड़े साहबके पास चुपचाप नीचेसे सिफारिश पहुँचाई थी । बाहर जानेसे दैनिक भत्ता आदिसे दो पैसोंकी आमदनी भी होती थी और मान, यश और प्रतिष्ठा भी होती थी। इसीलिये अपने स्वार्थ-साधनके लिये इस प्रकारकी गुप्त, हीन चेष्टाकी गई थी । मैं इन्वेष्टीगेशन इन्स्पेक्टर था, मेरा वेतन एकसौ रुपया मात्र था । द्वितीय किरानी बाबू थानसिंहका वेतन था १२० रु०। अधिक वेतन होनेसे क्या होता है ? थे तो केवल किरानी बाबू (क्लर्क) और मैं था अफसर । मुझे निकम्मा साबित करनेके लिये इस प्रकारका षड्यन्त्र रचा गया था । हेडक्लर्क रामसिंहजीने डाकघरके एक मुकदमेके कागज पर बड़े साहबको एक नोट लिखकर भेजा था "Mr. Goswami is a raw man, may I send Thansingh out ? अर्थात् गोस्वामीजी नये आदमी हैं अतः अनुपयुक्त हैं इसलिये थानसिंहको बाहर भेजना अच्छा होगा । इस प्रकारकी गुप्त बात लिखा-पढ़ी द्वारा हुई थी क्योंकि बड़े साहब उस समय मुफ्फसिलमें बाहर थे । इसके उत्तरमें उन्होंने हेड क्लर्क बाबूको लिखा था "Send Mr. Goswami out. He was investigating Inspector Bihar cercle for a long time and can teach Thansingh for ten years. अर्थात् गोस्वामीको ही बाहर काम पर भेजा जाय, ये बिहारमें बहुत समय तक इन्वेष्टिगेटिंग इन्स्पेक्टर रह चुके हैं, ये थानसिंहको अभी दस वर्ष काम सिखा सकते हैं।

ये कागज पीछे मेरे हाथमें आये। इसी घटनाके कारण ही दोनों सिंहजीके साथ कुछ मनोमालिन्य आरम्भसे ही चलने लगा। वे थे बड़े साहबके दफ्तरके कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता। उन्होंने मेरेसे शत्रुता करनी नहीं छोड़ी। लेकिन मैंने भी तीन वर्ष तक उनके साथ ही दफ्तरमें बैठकर अपना काम अपने ढंगसे ही करते हुये सुख्याति पाई थी।

सिंहजी-द्वय आफिसके मुकदमे संबंधी कागजोंका भार अपने अपने डिस्पैच बक्समें बन्द करके प्रतिदिन मजदूरके सिर पर लाद कर घर ले जाकर वहाँ काम किया करते थे। रामसिंहजीको आफिसके केसोंके कागज स्टाक डिपोके डाकके ठेले पर लाद कर ले जाते मैंने कई बार देखा है। कामकी इतनी भीड़ उनके पास रहती थी। बड़े आफिसके सभी लोग इस बातको जानते थे। बड़े साहबको भी पता था। लेकिन इसमें कोई आपत्ति नहीं करता। लेकिन मैं अपना जितना भी काम था सब आफिसमें बैठकर ही पूरा किया करता, कभी एक दिन भी सरकारी कागज पत्र घर नहीं लेगया। इसलिये भी उच्च पदस्थ किरानी बाबुओंके मनमें मेरे प्रति यथेष्ट हिंसा रहा करती। उनका अपेक्षा मेरा काम किसी प्रकार भी कम नहीं था। विविध विषयोंके कागज पत्र सब मेरे दफ्तरमें भेज दिये जाते। आफिस पहुँचता तो देखता कि टेबल पर स्तूपाकार कागज पत्र भरे पड़े हैं। डाकघरका सभी प्रकारका काम मैं पहिले अपने हाथसे और कलमसे कर चुका हूँ इसलिये कोई भी काम मेरे लिये नया नहीं था। इस प्रकार कुछ समय तक कार्यक्रम सुचारुरूपसे चलता रहा।

भ्रातृ-वियोग

[यह प्रकरण श्रीहरिदासजी गोस्वामीके भतीजे श्री सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी एवं उनकी कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीसे जानकारी प्राप्त करके लिखा गया है।]

आत्म-कथामें वर्णन आ चुका है कि प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामीके एकमात्र अनुज थे श्रीगुरुदास गोस्वामी। बाल्यावस्थामें दोनों भाई सर्वतोभावेन विपरीति प्रकृतिके थे। आकृतिमें श्रीहरिदास गोस्वामी गौरवर्ण थे तो श्रीगुरुदास अपेक्षाकृत श्यामवर्णके थे। ये लम्बे कदके थे तो वे नाटे। ये सहिष्णु और उदासीन थे तो वे उद्धत और बड़े नटखटी धूर्त। बचपनमें दोनों भाइयोंमें पटती न थी, परन्तु कालक्रमसे जब वे बड़े हुए तो उन्हींमें भ्रातृप्रेमकी पराकाष्ठा-सी हो गयी। सुदूर स्थानोंमें रहते हुए भी पत्र-व्यवहारके द्वारा वे सदा समीप सदृश्य थे। उत्तर-प्रत्युत्तरका क्रम अबाध-गतिसे चलता रहता। दोनोंमें सामञ्जस्य पैदा हो गया। दोनोंके हस्ताक्षर तक एक समान थे। दोनों ही भक्तिमार्गके पथिक थे। श्रीहरिदासजीने अमिय निमाई-चरितका प्रथम बार अध्ययन मोतीहारीमें श्रीगुरुदासजीके यहाँ ही किया था। अतः यदि यह कहें कि गौरभक्तिकी प्रेरणा उनको अपने अनुजके निमित्तसे ही सर्वप्रथम प्राप्त हुई तो अत्युक्ति न होगी।

नागपुरमें डाकविभागके सेवा कालमें श्रीहरिदासजीको अपने इन अभिन्न आत्मा, प्राण-प्रिय भाईके आकस्मिक वियोगका मर्मान्तक दुःख स्वीकार करना पड़ा।

श्रीगुरुदास गोस्वामीके देहावसानकी घटना भी अत्यन्त ही हृदय-विदारक है। मोतीहारीमें उन्होंने अपना निजी वास-गृह बना लिया था। वहाँसे वे कार्यवश गया गये हुए थे। गयाके पास देहातमें वे अकस्मात् बीमार पड़े। गयाके अस्पतालमें प्रवेश होनेके बाद उनकी बीमारी बढ़ गयी और वहीं गौरधामको प्रयाण कर गये। उस समय उनके पास उनके एक निजी नौकरके सिवाय दूसरा कोई न था। उसने दाह-संस्कार किया तथा तार द्वारा इसकी सूचना नागपुर भी भेजी। गोस्वामीजीके ऊपर

अनभ्र बज्रपात-सा हुआ, अपने प्राण-प्रिय अनुजके वियोगसे वे व्याकुल हो उठे। उन्हें चतुर्दिक अन्धकार ही अन्धकार दीखने लगा, रोते-धोते वे मोतीहारी पहुँचे। मोतीहारीसे अपनी अनुज-बधू तथा उनके बाल-बच्चोंको नागपुर साथ ले आये। (अनुमानतः यह १३१४ बंगाब्दकी घटना है।)

अब भ्रातृ-वियोगके कष्टसे अपनेको सँभालकर श्रीगोस्वामीजीने कर्त्तव्य-पालनकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया। उस समय श्रीगुरुदासजीके पाँच पुत्र जीवित थे—ज्ञानेन्द्रनाथ गोस्वामी, निशानाथ गोस्वामी, जितेन्द्रनाथ गोस्वामी, धीरेन्द्रनाथ गोस्वामी तथा सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी। इन सबकी शिक्षा-दीक्षाका भार उनके ऊपर आ पड़ा। डेढ़ वर्ष तक अपने साथ रखनेके बाद बङ्गला शिक्षाकी समुचित व्यवस्था वहाँ न होनेके कारण गोस्वामीजीने अपनी अनुज-बधूको सपरिवार नवद्वीपमें उनके पीहर भेज दिया। अनुज-बधूको आशा थी कि ननिहालमें रहकर उनके लड़कोंकी शिक्षा-दीक्षा सुचारु रूपसे चल सकेगी। परन्तु ६ महीने भी बीतने न पाये थे कि लड़कोंकी शिक्षामें बाधा होने लगी। उन्हें इन सभी कारणोंसे अपने मैकेसे पूर्ण विरक्ति हो गयी। लाचार उन्होंने श्रीहरिदासजी गोस्वामीको अपनी विपद-कथा लिख भेजी और निवेदन किया कि उनके रहनेके लिये नवद्वीपमें एक अलग मकान ठीक कर दें, जहाँ रहकर वे बालकोंकी शिक्षा भली भाँति सम्पन्न करा सकें। पत्र पाकर श्रीहरिदास गोस्वामीने तुरन्त रुपये भेजे जिससे वर्तमान श्रीगौरविष्णुप्रिया-कुञ्जकी भूमि खरीदी गयी। इस कुञ्जमें रहनेके लिए टूटा-फूटा सा मकान था। वहीं रहकर अनुज-बधू अपने बालकोंको शिक्षित करने लगीं।

४३२ गौराब्द, १३२५ सालमें श्रीहरिदासजी अजमेर डाकघरमें काम करते समय अवकाश लेकर नवद्वीप गये तथा अपनी अनुज-बधूके परिवारको कुछ कालके लिये अन्यत्र भाड़ेके घरमें रखकर कुञ्जको नये सिरेसे तैयार करवाया। कुञ्जका मकान तैयार होने पर अनुज-बधू पुनः अपने परिवारके साथ इस नये स्थान पर आ गयीं। उसी स्थानको आगे चलकर श्रीबसन्त साधुने श्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्ज नाम प्रदान किया।

श्रीहरिदासजीने उनके पुत्रोंको काममें लगाया। जिनमें प्रथम श्रीज्ञानेन्द्रनाथ गोस्वामी जबलपुरके पोष्ट माष्टरके पदसे अवसर ग्रहण करके वहाँ ही मकान बनाकर रहते हैं। इनके (श्रीज्ञानेन्द्रनाथ गोस्वामीके) दो लड़के इंजीनियर हैं।

दूसरे श्रीनिशानाथ गोस्वामी प्रयाग रेलवे सर्विससे अवकाश ग्रहण करके अपने लड़कोंके साथ रहते हैं, इनके भी दो लड़के इंजीनियर हैं।

तीसरे श्रीजितेन्द्रनाथ गोस्वामी (जर्मनीसे विशेष शिक्षा-प्राप्तकर) दामोदर वैली कारपोरेशनके सुयोग्य मुख्य इंजीनियरका काम कर अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

इनका एक लड़का (जर्मनीमे विशेष शिक्षा प्राप्त करके) आजकल कोलम्बोमें इंजीनियर हैं।

चौथे श्रीधीरेन्द्रनाथ गोस्वामी अजमेरमें पोष्ट माष्टरके पदसे अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

सबसे छोटे पाँचवें लड़के हैं श्रीसुरेन्द्रनाथ गोस्वामी। इन्होंने साबरमती आश्रममें तीन महीने तक शिक्षा पायी और भारतके स्वाधीनता-संग्राममें महात्मा-गान्धीके नेतृत्वमें वर्षों काम किया है। पाँच बार कारावास भी जा चुके हैं। लगभग दो-ढाई वर्ष तक कारावासमें रहना पड़ा है। इनके निमित्तसे श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग कुञ्जमें कई बार तलाशियाँ भी हुईं। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद सब प्रपञ्च छोड़कर श्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्ज नवद्वीप धाममें रहकर ही आप भजन-साधनमें जीवन बिता रहे हैं।

श्रीगुरुदास गोस्वामी आबकारी विभागमें एक साधारण सेवा (नौकरी) पर नियुक्त थे। परन्तु उनकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्रों और पौत्रोंने आशातीत उन्नति की। इस उन्नतिके मूल निमित्त श्री हरिदास गोस्वामी प्रभु ही हैं। वे विलक्षण कर्मठ थे, इसका प्रमाण उनके भ्रातृ-पुत्रोंके इस उन्नत-जीवनमें स्पष्ट अभिलक्षित होता है।

कन्याका वैधव्य

आत्मकथामें पहले वर्णन आ चुका है कि भागलपुरमें १३ फाल्गुन १३१२ बंगाब्द, ४१९ गौराब्द, २८ फरवरी सन् १९०६ ई० को कन्याका विवाह सम्पन्न करके लगभग ७ महीनोंके बाद अक्टूबर १९०६ में भागलपुरसे जब श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी बदली नागपुर हुई तो वे जामाता आनन्दमय भट्टके साथ अपनी नव-विवाहिता कन्याको भी साथ-साथ नागपुर लेते गये। वहाँ कुछ महीने रहनेके बाद उनके जामाता अपने घर बरहमपुर चले गये।

विवाहके लगभग दो वर्षके उपरान्त बरहमपुरमें रहते समय श्रीआनन्दमय भट्ट कालाजार ज्वरसे ग्रस्त हो गये और लगभग दस महीने बराबर औषधोपचार करने पर भी वे रोग-मुक्त न हो सके। तब जलवायु बदलने और नये चिकित्सककी देख-रेखमें रहनेके उद्देश्यसे वे नवद्वीपमें लाये गये। दो महीने वहाँ रहने पर उनके स्वास्थ्यमें कोई सुधार नहीं हो पाया। श्रीहरिदासजी भी अपने जामाताको देखनेके लिये इन दिनों नवद्वीप आये हुए थे। (उस समय वे जबलपुरके डाकघरमें काम करते थे।) नवद्वीपसे जामाताको जबलपुर ले जाकर दो महीने चिकित्सा करायी, परन्तु कुछ लाभ होते न देखकर प्रयाग ले जानेका विचार किया।

इनका एक लड़का (जर्मनीसे विशेष शिक्षा प्राप्त करके) आजकल कोलम्बोमें इंजीनियर हैं।

चौथे श्रीधीरेन्द्रनाथ गोस्वामी अजमेरमें पोष्ट माष्टरके पदसे अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

सबसे छोटे पाँचवें लड़के हैं श्रीसुरेन्द्रनाथ गोस्वामी। इन्होंने साबरमती आश्रममें तीन महीने तक शिक्षा पायी और भारतके स्वाधीनता-संग्राममें महात्मा-गान्धीके नेतृत्वमें वर्षों काम किया है। पाँच बार कारावास भी जा चुके हैं। लगभग दो-ढाई वर्ष तक कारावासमें रहना पड़ा है। इनके निमित्तसे श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग कुञ्जमें कई बार तलाशियाँ भी हुईं। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद सब प्रपञ्च छोड़कर श्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्ज नवद्वीप धाममें रहकर ही आप भजन-साधनमें जीवन बिता रहे हैं।

श्रीगुरुदास गोस्वामी आबकारी विभागमें एक साधारण सेवा (नौकरी) पर नियुक्त थे। परन्तु उनकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्रों और पौत्रोंने आशातीत उन्नति की। इस उन्नतिके मूल निमित्त श्री हरिदास गोस्वामी प्रभु ही हैं। वे विलक्षण कर्मठ थे, इसका प्रमाण उनके भ्रातृ-पुत्रोंके इस उन्नत-जीवनमें स्पष्ट अभिलक्षित होता है।

कन्याका वैधव्य

आत्मकथामें पहले वर्णन आ चुका है कि भागलपुरमें १३ फाल्गुन १३१२ बंगाब्द, ४१९ गौराब्द, २८ फरवरी सन् १९०६ ई० को कन्याका विवाह सम्पन्न करके लगभग ७ महीनोंके बाद अक्टूबर १९०६ में भागलपुरसे जब श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी बदली नागपुर हुई तो वे जामाता आनन्दमय भट्टके साथ अपनी नव-विवाहिता कन्याको भी साथ-साथ नागपुर लेते गये। वहाँ कुछ महीने रहनेके बाद उनके जामाता अपने घर बरहमपुर चले गये।

विवाहके लगभग दो वर्षके उपरान्त बरहमपुरमें रहते समय श्रीआनन्दमय भट्ट कालाजार ज्वरसे ग्रस्त हो गये और लगभग दस महीने बराबर औषधोपचार करने पर भी वे रोग-मुक्त न हो सके। तब जलवायु बदलने और नये चिकित्सककी देख-रेखमें रहनेके उद्देश्यसे वे नवद्वीपमें लाये गये। दो महीने वहाँ रहने पर उनके स्वास्थ्यमें कोई सुधार नहीं हो पाया। श्रीहरिदासजी भी अपने जामाताको देखनेके लिये इन दिनों नवद्वीप आये हुए थे। (उस समय वे जबलपुरके डाकघरमें काम करते थे।) नवद्वीपसे जामाताको जबलपुर ले जाकर दो महीने चिकित्सा करायी, परन्तु कुछ लाभ होते न देखकर प्रयाग ले जानेका विचार किया।

श्रीहरिदासजी गोस्वामीके जामाताके पितृव्य श्रीत्रिधाराचरण भट्ट प्रयागमें गंगापार भूँसीमें समुद्रकूप आश्रममें साधन-भजनमें अपना जीवन यापन कर रहे थे। प्रयागकी जलवायु अधिक उपयोगी होगी, यह विचारकर श्रीहरिदासजी अपनी पुत्रीके साथ जामाताको वहाँ ले गये और उनको उनके पितृव्यदेवकी देख-रेखमें छोड़कर अपने काम पर जबलपुर लौट आये। प्रयागमें भी कुछ दिन रहने पर कोई सुधार दृष्टिगोचर नहीं हुआ। यह समाचार पाकर जामाताके पिता श्रीत्रिपुराचरण भट्टने कलकत्तेमें औषधोपचार करानेके विचारसे एक मकान भाड़े पर लिया और बेटेको प्रयागसे बुलवाया। श्रीत्रिधाराचरण भट्ट अपने भाईके पुत्र और पुत्र-बधूको लेकर कलकत्ते आये। उन दिनों कालाजार ज्वरको शमन करने वाली औषधिका आविष्कार नहीं हुआ था, और यह ज्वर प्रायः असाध्य माना जाता था। कलकत्तेके डाक्टरोंने बहुत चिकित्साकी, पर वे उन्हें रोग-मुक्त न कर सके। हालत बिगड़ती ही गयी और अन्तमें आश्विन कृष्ण पक्षमें श्रीआनन्दमय भट्ट इस संसारको छोड़कर चले गये।

अपने इकलौते बेटेकी मृत्युसे श्रीत्रिपुराचरण भट्टके हृदय पर बज्रपात-सा हो गया। अन्तमें बेटेका दाह-संस्कार करके वे पत्नी एवं अपनी पुत्र-बधू श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीको साथ लेकर अशौचमें ही प्रयाग पहुँचे। प्रयागमें ही श्राद्धादि कर्म किया। पुत्र-विछोहका इतना प्रबल आघात पड़ा कि श्रीत्रिपुराचरण भट्ट श्राद्धकर्मकी समाप्तिके बाद एक सप्ताह भी जी न सके और पुत्र-वियोगमें तड़प-तड़पकर इस धराधामसे कूच कर गये।

इस विकट समयमें श्रीहरिदासजी गोस्वामी भी अपनी पत्नीके साथ प्रयाग आ गये थे। अपनी इकलौती पुत्रीके पतिकी अकाल मृत्यु और इससे मर्माहत उसके श्वसुरजीका सुरलोक प्रयाण, इन दोनों हृदय-विदारक घटनाओंसे गोस्वामीजीके हृदय पर क्या बीती होगी, इसका पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

(यह १३१६ बंगाब्दके आश्विन मासकी घटना है।) श्वसुरका श्राद्धादि कर्म जब प्रयागमें समाप्त हो गया तो श्रीमती सुशीला सुन्दरीको एक ओर तो माता-पिता अपने साथ ले जाना चाहते थे और दूसरी ओर उनकी सास उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थीं। इसके अतिरिक्त श्रीत्रिपुराचरणजी भट्ट अपनी सम्पत्तिका अर्द्धभाग अपनी पुत्र-बधूके नाम जीवितावस्थामें संकल्प (will) कर गये थे। उसकी लिखा-पढ़ीका कार्य बरहमपुरमें सम्पन्न होना था। इस उद्देश्यसे भी श्रीसुशीला सुन्दरीका बरहमपुर अपनी सासके साथ जाना निश्चित हुआ। वह अपने पितृव्य श्वसुर श्रीत्रिधाराचरण भट्ट और अपनी सासके साथ बरहमपुर चली गयीं और वहाँ कुछ महीने रहकर वसीयतनामेकी कार्यवाही पूरी हो जाने पर उनके साथ प्रयाग लौट आयीं।



श्रीश्रीमाँ और दादा

श्रीबसन्त साधु (दादा) का परिचय

•

(श्रीगौरपद घोष द्वारा निर्मित नित्य-बसन्त-माधुरी ग्रन्थके आधार पर लिखित)

बाल्यकाल

श्रीबसन्त साधु वैष्णव गृहस्थ साधु थे । इनके पिताका नाम श्रीरामहरि देव और माताका नाम श्रीमती उमातारा देवी था । बसन्त साधुका जन्म बंगाब्द १२६७ साल आश्विन मासकी दुर्गाष्टमीके दिन ठीक दुर्गोत्सवके समय त्रिश गांवमें हुआ था जबकि चारों ओर शंख घंटा, कांसर, ढोल आदि वाद्यों और कुलांगनाओंकी मंगलमयी जय ध्वनिसे दशों दिशाएँ गुंजार रही थीं । जन्मके समय इनके पैर सबसे पहले पृथ्वी पर आये (न कि शिर जैसा साधारणतया होता है) तो भी माताको कोई अस्वाभाविक प्रसव पीड़ा नहीं हुई। इनके एक बड़ी बहिन तथा एक छोटे भाई थे । अपने माता-पिताके ये तीनही बालक थे। शिशु अवस्थामें जब भी श्रीबसन्तसाधु रोते तो "हरि बोल, हरि बोल" ध्वनि सुनकर क्रन्दन छोड़ खिलखिला उठते ।

बाल्यकालमें कुछ समय ग्राम्य पाठशालाओंमें पढ़नेके बाद इन्हें मुरादनगर मिडिल स्कूलमें पढ़ने भेजा गया, जहाँ रोज तीन मील पैदल चलकर जाना पड़ता था। मार्गमें कभी बाघ आदि जंगली जानवरोंका भय रहा करता । कुछ कालके बाद इनके पिताने ढाकामें अपने पास बुलाकर वहाँके विद्यालयमें प्रवेश कराया । दो वर्ष वहाँ पढ़कर "मध्य बंगला छात्रवृत्ति" परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद इनकी कोई कालेज आदिकी उच्च शिक्षा नहीं हुई ।

ढाकामें पढ़ते समय एक बार इन्हें किसी उत्सवके समय राजा बनाकर सोनेकी चौकी पर बैठाया गया था; इससेही इनकी सुन्दरताका अनुमान किया जा सकता है। अपूर्व सौन्दर्यके बिना राजअभिनयके लिये इनका निर्वाचन कैसे संभव होता ।

मध्य बंगला छात्रवृत्ति परीक्षोत्तीर्ण लोगोंकी तरह वकालतके व्यवसायका आश्रय ये ग्रहण नहीं कर सके । इस व्यवसायके अनेक दोष इनकी सहज-वृत्तिके

विकासमें बाधक जो थे। कुछ दिन किसी दफ्तरमें किरानीगीरी (क्लर्की) करके एक मध्य अंग्रेजी स्कूलके हेड (मुख्य) पण्डितके पद पर नियुक्त हुये। लेकिन वहाँभी असत्यके व्यवहार (कम वेतन लेकर अधिक वेतन प्राप्तिकी रसीद देना) के कारण उस वृत्तिको इन्होंने छोड़ दिया। उस समय इनकी अवस्था अनुमानतः सोलह वर्षकी थी।

विवाह

इनके एक कुटुम्बी श्री कुञ्जमोहन देवने कलकत्ता बड़ा बाजारमें मसालेका व्यवसाय करके अच्छी ख्याति प्राप्तकी थी। वहीं पर बाबू बाजारमें (उन्हीके देश) त्रिपुरा जिलेके जानधर ग्राम निवासी एक श्री प्राणकृष्णदेव महाशयने भी चावलकी दुकान द्वारा अच्छी उन्नति उपार्जित कर ली थी। दोनोंकी आपसमें बहुत घनिष्ट आत्मीयता थी, आपसमें सुख-दुःखकी सभी बातें हुआ करती थीं। श्रीप्राणकृष्ण देवके कोई पुत्र सन्तान नहीं थी, केवल दो कन्यायें थीं। बड़ी कन्याका विवाह हो चुका था। लेकिन दो वर्ष बाद ही उसका अन्तकाल हो गया। अब रह गई एकमात्र दूसरी कन्या, जिसका नाम था नित्यवासिनी। इसका जन्म भी बंगाब्द १२७५ की सालमें आश्विनकी शारदीय महाष्टमी तिथिके दिन हुआ था और इसने भी जन्मके समय पहले पृथ्वी पर चरण ही रखे थे। प्रसवके समय माताको भी कोई अस्वाभाविक वेदना नहीं हुई थी। लेकिन तीन वर्षकी शैशवावस्थामें ही इन्हें मातृ-विहीन होना पड़ा। इनके पिताने दूसरी बार विवाह नहीं किया और कन्याको चांदला ग्राम निवासी उसके मामा श्रीरामदयालके यहाँ प्रतिपालनार्थ भेज दिया।

श्रीप्राणकृष्णदेवको अपनी कन्याके योग्य वरकी चिन्ता होने लगी। कथा-प्रसंगमें एक दिन अपनी चिन्ता उन्होंने अपने आत्मीय श्रीकुञ्जमोहनदेवके समक्ष व्यक्त की तथा उन्हें बताया कि शिक्षित सच्चरित्रपात्रके साथ अपनी कन्याका पाणिग्रहण करनेके लिये वे अत्यन्त उत्सुक हैं। रूप और धन उनकी दृष्टिमें पात्रताकी प्रथम वस्तु नहीं थे। श्रीकुञ्जमोहनने बसन्तकुमारका प्रस्ताव सामने रखा। लेकिन प्राणकृष्णदेवको सन्देह था कि रामहरिदेव अपने सुन्दर और योग्य बालकके लिए मातृहीना कन्याको स्वीकार कर लेंगे। "नियति केन वाध्यते" की नीतिके अनुसार रामहरिदेव और उमातारा देवीसे सलाह किये बिना ही कुञ्जमोहनने अपनी जिम्मेदारी पर यह सम्बन्ध स्थिर कर लिया और बंगाब्द १२८३ में परिणय कार्य भी सम्पन्न करा दिया। नव-वधूके प्रत्यावर्तन पर धूमधामके साथ श्रीकुञ्जमोहनने कुलाचारका अनुष्ठान किया। श्रीरामहरि देव और श्रीमती उमातारा देवीने बिना किसी समालोचनाके नव वधूका बड़े आदरके साथ स्वागत किया और गृहलक्ष्मीकी तरह उसे स्नेह प्रदान करने लगे। अल्पवयस्का वधूको सास श्वसुर गोदमें लिये फिरा करते थे। बालिका बधू सास

श्वसुरके स्नेह और ममतापूर्ण व्यवहारसे इतनी सन्तुष्ट हुई कि एक प्रकारसे अपने पिताको भूल-सी गई ।

वधूकी रुग्णता

संयोगकी बात, तेरह-चौदह वर्षकी अवस्थामें वधू व्याधिग्रस्त होकर मरणासन्न हो गई । उस समय बसन्तकुमार अपने श्वसुर प्राणकृष्णके पास कलकत्तामें काम सीख रहे थे । प्राणकृष्णने कन्याकी व्याधिका समाचार पाकर उसे चिकित्सार्थ कलकत्ता लानेको बसन्तकुमारको प्रेरित किया । बसन्तकुमारके बाल-बन्धु गुंजर निवासी गुरुदास व्यापारीके प्रस्ताव पर कलकत्ता जानेके पहले रास्तेमें ढाकाके निकट, सिद्धिगंज स्थित हरिसिद्धा माताके पास वधूको ले जाया गया । वहाँ जाते ही रोगकी निवृत्ति हो गई लेकिन एक सप्ताहके बाद घर लौटते ही फिर रोगके लक्षण उभर आये और फिर हरिसिद्धा माताके पास जाना पड़ा । अबकी बार हरिसिद्धा माता रुग्णा नित्यवासिनीको प्रति रातको निम्ब वृक्षके नीचे अपने देव-मन्दिरके सम्मुख लेकर बैठती और सारी रात निद्रा विहीन दोनों एक दूसरेके समक्ष बैठे न जाने क्या आदान प्रदान करते रहते । एक सप्ताहके बाद घर लौटते समय सिद्धामातासे पूछा गया कि फिर आनेकी आवश्यकता है क्या ? तो उत्तर मिला "और तुमको आनेकी आवश्यकता नहीं है, मैं ही तुम्हारे पास शीघ्र आउँगी ।" और वहाँकी रज, कुछ सरसोंका तेल और कुछ सिंदूर देकर उनको विदा किया और आदेश दिया कि लहसन, प्याज, मसूर की दाल और मांस न खाया जाय, नित्य तीन बार स्नान किया जाय, एकादशी व्रत रखा जाय एवं घरमें उत्तम स्थानमें तुलसी वृक्ष लगाकर प्रातः सायं धूप-दीपके द्वारा आरती की जाय और मिश्री या बताशा चढ़ाकर प्रसाद वितरण किया जाय तथा बहुतसे रोगी आवेंगे उन सबको रज, तेल, सिंदूर देकर उल्लिखित नियमोंका पालन करना बताया जाय ।

घर लौटकर हरिसिद्धा माताका आदेश यथावत पालन किया गया । नित्यके अनुष्ठानमें खोल-करतालकी वाद्य ध्वनि और हरिनाम संकीर्तनकी ध्वनिसे आकर्षित होकर त्रिशमें बहुत लोगोंका यातायात बढ़ गया । कुछ समयके उपरान्त हरिसिद्धा माताने भी एक दिन अपने स्वयंके स्थापित विग्रहोंके सन्मुख तुलसीके नीचे सज्ञानावस्थामें कीर्त्तन लीलाके बीच स्वेच्छासे इह लीला समाप्तकी । उसी समयसे वहाँ यह मान्यता प्रसिद्ध हो गई कि हरिसिद्धा माता वधूके शरीरमें प्रवेश कर अलौकिक लीला खेल रही हैं ।

वधूका चमत्कार

त्रिशमें लोगोंका आगमन-दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा । एक दिन निकटवर्ती हुसैनतल्ला ग्रामकी एक गर्भवती स्त्री तेरह मासके गर्भको लिये अन्य चिकित्साओंसे

हताश होकर वहाँ उपस्थित हुई । उसको पूर्वोक्त रज, तेल, सिंदूर देकर परिसिद्धा माताके बताये नियमोंका पालन करनेको बतला कर विदा किया गया। घर पहुँचतेही उस स्त्रीने पुत्र प्रसव किया; और एक माहके बाद निशमें आकर बहुत धूमधामके साथ हरिनाम कीर्त्तन में सम्मिलित हुई । अब तो चारों ओरसे टिड्डी दलकी तरह असाध्य रोगी वहाँ आने लगे और आरोग्य लाभ करने लगे ।

जब वहाँ प्रातः सन्ध्या तुमुल-कीर्त्तन तरंगमें लोग मतवाले हो उठते उसी समय वे (वधू नित्यवासिनी) आविष्ठावस्थामें ऊर्ध्व बाहु तथा उन्मुक्त स्वरूप धारण किये घरके भीतरसे तीव्र गतिसे आकर तुलसीके बिरवेके सम्मुख दण्डवत हो पड़ जातीं। कीर्त्तन शेष होने पर जब वे उठकर जातीं तब तुलसी तलेके थालमें कभी फलफूल, कभी छेना, सन्देश, मिश्री, कभी बताशा और कभी सिंदूर पाया जाता। प्रसाद स्वरूप सभी उसको ग्रहण करते ।

इन घटनाओंको लेकर लोगोंमें नाना प्रकारकी अनुकूल-प्रतिकूल समालोचनायें होने लगीं। इससे श्रीबसन्तकुमारजी को इस प्रकारके तुमुल कीर्त्तनको स्थगित करना पड़ा। फलस्वरूप एक नयी मुसीबत सामने आई। रात्रिको वधू नित्यवासिनी चीत्कार कर उठतीं मानो भयानक स्वप्न देख रही हों और नींद नहीं ले पातीं। श्रीबसन्तकुमार जीने अपने आप करतालीके साथ उनको स्वयं कीर्त्तन सुनाना आरम्भ किया; इससे भावमें कुछ शमन हुआ पर अब ऐश्वर्य भावका स्वाभाविक प्राकट्य बंद-सा हो गया।

दाम्पत्य जीवन

इस बीच दम्पतिको चार सन्तान हुई क्षीरदा नामकी एक कन्या तथा कालाचाँद, निशिकान्त और शिशिर नामके तीन पुत्र। एक समय गाँवमें विशूचिका (हैजे) का प्रकोप फैला जिससे क्षीरदा और कालाचाँद आक्रान्त हुये । अनेक विशेषज्ञोंसे चिकित्साएं कराई गईं लेकिन क्षीरदा अकाल कवलित हो गई। तब बधू नित्यवासिनीने निवेदन किया "इतनी चिकित्साके कराने परभी आप लोग क्षीरदाको नहीं बचा सके तो अब मेरी इच्छा है कि कालाचाँदको कमसे कम मृत्यु पूर्वका स्नान तो करा दिया जाय जिससे उसकी सद्गति हो ।" चिकित्सासे हताश परिजनों और चिकित्सकोंने कोई बाधा नहीं दी । नित्यवासिनीने मरणासन्न बच्चे कालाचाँदको गोदमें लेकर पुष्करिणीमें २०-२५ डुबकियाँ लगवाईं और घर लाकर उससे पूछा—"क्या खानेकी इच्छा है ?" कालचाँदने उत्तर दिया—"माँ ! पान्था भात, भट्टा और केला मिलाकर खानेकी इच्छा है।" माताने अपने हाथ सब चीज तैयार कर पेट भर कर खानेको दिया। कालाचाँदने सोकर उठनेके पश्चात् फिर उसी प्रकार खानेको मांगा । पुनः उसे वही भोजन दिया गया और इस तरह वह अपने आप पूर्ण स्वस्थ्य हो गया ।

वधूको सर्पाघात

एक बार शौचके लिये जाते समय नित्यवासिनी देवीके दाहिने पैरकी कनिष्ठिका अंगुलीको साँपने डस लिया। घरके सब परिजन घबरा गये। नित्यवासिनी देवीने सबसे करबद्ध निवेदन किया कि "सात दिन तक मेरी कोई चिकित्सा अथवा झाड़-फूक न कराई जाय, सात दिनके बाद मेरे मस्तकपर कई कलशोंकी जल-धारा दी जाय, इससे चैतन्य सञ्चार होगा और इसके बाद पान्था भातका प्रसाद और दही खानेको दिया जाय।" यही किया गया, इससे वे ठीक हो गयीं। इस घटनाके बादसे नित्यवासिनी देवीकी सभी बातोंका विशेष आदर होने लगा और सभी बातें यथावत पालन की जातीं।

बसन्तकुमारको प्लेग

श्वसुरके परलोक गमनके पश्चात् श्रीबसन्तकुमार ही उनकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हुये और उनके द्वारा स्थापित कलकत्ताके कारबारकी स्वयं देखभाल करने लगे। एक बार कलकत्तेमें प्लेगका आगमन हुआ और धड़ाधड़ लोग मरने लगे। श्रीबसन्तकुमार भी प्लेगसे आक्रान्त हो गये। समाचार पाते ही उनके पिता रामहरि देव वधू नित्यवासिनी देवी सहित गाँवसे कलकत्ता आये। नित्यवासिनी देवी प्लेगकी दारुण संक्रामकताका भय किये बिना ही चेतनाशून्य अपने स्वामीको गोदमें लिये तीन दिन तीन रात बिना स्नान, आहार और निद्राके एकान्तमें कमरेमें बन्द रहीं। चौथे दिन प्रातःकाल श्रीबसन्तकुमारने आँखें खोलीं और अङ्क-दान-कारिणीको मां! मां! सम्बोधन करते हुए वे उठ बैठे। कक्ष द्वार खोलकर नित्यवासिनी देवीने उपस्थित परिजनोंसे निवेदन किया कि जब इस रोगसे कोई भी जीवित नहीं रह पा रहा है तो कमसे कम रोगीको मृत्यु पूर्व गङ्गा-स्नान तो करा दिया जाय। सबकी सहमति लेकर दो तीन लोगोंकी सहायतासे वे बसन्तकुमारको गङ्गाजी ले गयीं और उन्हें बीस-पच्चीस डुबकियाँ दिलायीं। इसके बाद लगा कि प्लेगका दारुण ज्वर जैसे शान्त हो रहा है और बसन्तकुमार लाठीके सहारे धीरे-धीरे स्वयं चलकर घर आये। श्रीबसन्तकुमारने पूछे जाने पर मूँगकी दाल और भात खानेकी इच्छा प्रकट की। नित्यवासिनीने स्वयं रन्धन करकर उनको मन-इच्छा वस्तु खिलायी तथा उन्होंने भी स्वस्थ व्यक्तिकी तरह खूब पेट भर भोजन किया। धीरे-धीरे वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। वधू नित्यवासिनी देवीके इस अलौकिक प्रभावसे सभी बहुत विस्मयाविष्ट हुए।

इस घटनाके सन्दर्भमें जबसे श्रीबसन्तकुमारने अङ्कदात्री नित्यवासिनी देवीको "मां" कहकर सम्बोधित किया, तभीसे उन्होंने पत्नी भावका परित्याग कर दिया; लेकिन लोक-समाजमें इसका कोई प्रचार नहीं हुआ।

कलकत्ता प्रवास-कालमें श्रीबसन्तकुमारको उनके सखा श्रीकैलाशचन्द्रपालने शिशिर बाबूका "अमिय-निमाई-चरित्र" पढ़नेको दिया था जिसे पढ़कर वे बड़े मुग्ध हुए और मन ही मन शिशिर बाबूके प्रति इन्होंने आत्म-समर्पण किया एवं श्रीगौराङ्गकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त व्यग्र हो उठे; लेकिन कलकत्तामें कभी शिशिर बाबूसे इनको साक्षात्कारका अवसर नहीं आया।

बहिनके घर

इसके बाद श्रीबसन्तकुमार अपने गाँवमें ही रहने लगे। एक बार वे अपनी ज्येष्ठा बहिनके घर नासिराबाद गये। वहाँ रात्रिको साधु वैष्णवोंके साथ हरिनाम कीर्त्तन और भगवत चर्चा हो रही थी। बहिनने भाई श्रीबसन्तको बहिरङ्ग मानकर अलग सोनेकी व्यवस्था कर दी और उन्हें आराम करनेको भेज दिया। इससे दुःखी होकर श्रीबसन्तकुमार सारी रात रोते रहे, सो नहीं सके। प्रातःकाल उठनेके बाद ज्येष्ठा भगिनीके चरणोंमें पड़कर आर्त्तनाद करने लगे और अपनानेकी प्रार्थना की।

भगिनीने आश्वासन दिया और अगले दिन रात्रिको जब वैष्णव सत्सङ्ग आरम्भ हुआ तब श्रीबसन्तकुमार द्वारा वैष्णवोंकी पुष्प-चन्दनसे अभ्यर्थना करवाकर कृपा की।

बसन्तकुमारको पूर्वकालमें स्वप्नमें कालीदेवीके द्वारा सप्ताक्षर मन्त्र मिला था। उसके एक वर्ष पूर्व उनकी पत्नी नित्यवासिनी देवीको भी अमिय-निमाई-चरितकी कथा सुनकर आवेशावस्थामें वही मन्त्र मिला था, किन्तु किसी अन्यको या स्वयं पति-पत्नीको एक दूसरेके मन्त्र मिलनेकी बातका पता न था। उसके बाद स्वप्नके आदेशानुसार दोनोंने ही कुलगुरुसे मन्त्र-दीक्षा ली और दोनोंको एक ही मन्त्र मिला। आज श्रीबसन्तकुमारने ज्येष्ठा बहिनके निकट फिर मन्त्र-दीक्षा ली। मन्त्र लेते ही उनकी अवस्था अप्राकृत हो गई। उनकी ऐसी अवस्था देखकर दूसरे दिन प्रसाद भोजन करवाकर नाना प्रकारसे शान्त्वना देकर तथा एक व्यक्तिको साथमें देकर उन्हें घर भेज दिया गया।

जीवन-परिवर्तन

भगिनीका आदेश था कि वैष्णवको देखते ही प्रणाम करना। प्रातःकाल शैयासे उठकर श्रीबसन्तकुमार बिना भेदभावके सभीको प्रणामकर उनकी पद-धूलि सिर पर चढ़ाने लगे। उनकी दृष्टिमें सभी वैष्णव थे।

यह सम्वाद पाकर श्रीबसन्तकुमारके बालबन्धु गुञ्जर-निवासी श्रीगुरुदास व्यापारी, जिनकी प्रेरणासे नित्यवासिनी देवीको मरणासन्न अवस्थामें हरिसिद्धा माताके पास ले जाया गया था, आये और उन्हें एक वैष्णव सम्मेलनमें ले गये। वहाँ

चरितामृतका पाठ हुआ और उसके बाद रसालाप। श्रीबसन्तकुमार बराबर आत्म-विस्मृतसे बने रहे। जब कीर्त्तन आरम्भ हुआ और भक्तगण उद्दाम नृत्य करने लगे तब श्रीबसन्तकुमारकी चेतना जागी और वे भी उसमें योगदान देने लगे और आवेशा-वस्थामें एक काठकी खूंटीको ऐसा जकड़ा कि कोई छुड़ा न सका। प्रातःकाल कुछ ठीक अवस्था होने पर उन्हें घर ले जाया गया।

श्रीबसन्तकुमारकी अवस्था हर समय अप्राकृत-सी रहने लगी। कभी अश्रु, कम्प, स्वेद, पुलक आदि अष्ट सात्विक भाव उदय होते, कभी हँसते, कभी रोते, कभी स्थिर, कभी अस्थिर, कभी निर्वाक, कभी वाचाल और ज्ञान-शून्य अवस्थामें दौड़ा-दौड़ी करते और घरका सामान अस्त-व्यस्त कर देते। इनको उन्माद रोग-ग्रस्त समझ कर नाना प्रकारकी चिकित्सा करायी गई। यहाँ तक कि उन्हें बाँधकर, जकड़कर भी रखा गया। जब कोई भी उपाय सफल नहीं हुआ तो उनके कनिष्ठ भ्राता चन्द्रकुमारने ज्येष्ठ भ्राताका दैहिक कष्ट न सह सकनेके कारण उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया। श्रीबसन्तकुमार घरकी उत्तर दिशाकी एक झोंपड़ीमें कपाट बन्द करकर चुपचाप रहने लगे। उनकी पत्नी अब तक धैर्य-रक्षा करती आ रही थीं। अब लज्जा छोड़ सास, श्वसुर और देबरसे बोलीं कि आप लोगोंको अब कुछ करना बाकी नहीं रहा, अब रोगीको मेरे हाथोंमें छोड़ देवें। सबने चुपचाप इसको स्वीकार कर लिया।

नित्यवासिनी देवीने उस झोंपड़ीका कपाट खुलानेका असफल प्रयत्न किया। फिर झोंपड़ीके बाँसोंकी टट्टीको चीरकर अन्दर झाँका तो देखा कि श्रीबसन्तकुमार हाथमें लोहेका दाव लिये बैठे हैं। वे झोंपड़ीकी दीवारका बन्धन काटकर जगह बनाकर अन्दर गईं। उनके अन्दर जाते ही श्रीबसन्तकुमारने दाव चलानेकी कोशिश की। नित्यवासिनी देवीने दावके नीचे सिर झुका दिया। श्रीबन्तकुमार दाव फेंककर शान्त हो गये। उनकी पत्नीने सबको सावधान कर दिया कि जब तक दरवाजा स्वेच्छासे न खोला जाय तब तक कोई भी उसको खोलनेका प्रयत्न न करे। इस प्रकार जब कई दिन बीत गये तब श्रीबसन्तकुमारके माता-पिता उमातारा देवी और रामहरि देव अपने पुत्र और पुत्र-वधूको इतने दिनोंतक अन्न-जल विहीन देखकर चिन्तित हो उठे और क्रन्दन करते हुए उनके नाम लेकर पुकारने लगे। उधर इस बातका प्रचार होनेसे चारों ओरके लोग एकत्रित होने लगे।

भावावेश

ग्यारहवीं रात्रि बीतने पर प्रातःकाल श्रीबसन्तकुमार चीत्कार कर उठे और उपस्थित लोगोंको कहने लगे कि तुम लोग क्या कर रहे हो, आकर मांके दर्शन करो और वर माँगो। सबको देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। कइयोंको झोंपड़ीकी दीवारकी दरारों और छिद्रोंसे हिरण्यमय ज्योति और विद्युतका-सा प्रकाश निकलता दिखाई

दिया और आँखें झलमला गईं। किसी-किसीको नित्यवासिनीमें दस भुजा दुर्गारूपके दर्शन हुए। बसन्तकुमार पुष्प और विल्वपत्र द्वारा अर्चना करते और मां! मां! कहते हुए आकुल कण्ठसे पुकारते दीख पड़े। इसी समय सुरेन्द्र बाबूकी मांने धन-जन-श्री-वृद्धिका वर माँगा और जब्बर अलीकी मांने वर मांगा कि मेरे मरणकालमें तुम दोनों मुझे दर्शन देना। दोनोंकी इच्छा यथावत् पूर्ण हुई थी। झोंपड़ीमें प्रवेश करने वालोंमें सबसे पहले जब्बर अलीकी मां पर बसन्तकुमारकी दृष्टि पड़ी। दृष्टि पड़ते ही बसन्तकुमारने जब्बर अलीकी मांको कहा—"मधुर हरि नाम लेकर नृत्य करो।" मुस्लिम धर्मावलम्बी जब्बर अलीकी मां मन्त्र-मुग्धकी तरह ऊर्ध्व बाहु हो हरिनाम कीर्त्तन कर नाचने लगी।

वास्तवमें इन ग्यारह दिनोंमें बसन्तकुमार और नित्यवासिनी देवी भाव-समाधिमें रहे। उस अवस्थामें उन्हें अनेक प्रकारके अनुभव हुए। उनके पास अनेक देवी-देवता पीर-पैगम्बर आते और तरह-तरहके उपदेश देकर वर माँगनेको कहते। उत्तर मिलता "दयालु श्रीगुरुके चरणोंका भरोसा।" इस तरह अन्तमें श्रीगौराङ्ग आये और नित्यवासिनी देवीको मां कहकर सम्बोधन किया। इसके बाद शिशिर बाबू आये और समाधि भङ्ग कराकर श्रीबसन्तकुमारसे बोले—"भाई अभी तो मैं जाता हूँ, फिर आऊँगा। ब्राह्मणपाड़ाके प्रकाश बाबू आकर तुम्हारी खबर लेंगे।" इसके उपरान्त श्रीगौराङ्गने श्रीबसन्तकुमारको कहा—"ये तुम्हारी भी मां है और मेरी भी मां है, इतना ही नहीं यह जगत जननी हैं।" बसन्तकुमारने पूछा—"मैं तो इनके गर्भसे पैदा नहीं हुआ, ये मेरी मां कैसे हुईं?" श्रीगौराङ्गने कहा—"अच्छा, देखो।" इतनेमें ही श्रीबसन्तकुमार उनके गर्भमें प्रवेश कर भूमिष्ठ हुए। इसके बाद श्रीबसन्तकुमारने प्रश्न किया—"जगत जननी तो दशभुजा भगवती होती है। ये जगत जननी कैसे हुईं।" तब श्रीगौराङ्गने बसन्तकुमारको उनके दशभुजा रूपका दर्शन करवाया। दर्शन करते ही बसन्तकुमार चीत्कार कर उठे।

श्रीबसन्तकुमारने श्रीगौराङ्गसे पूछा—"अब मेरे लिये क्या कर्त्तव्य है?" श्रीगौराङ्गने उत्तर दिया—"तुमको कुछ नहीं करना है, जब जैसी आवश्यकता होगी तुमसे करवा लिया जायेगा। इसके बाद श्रीबसन्तकुमार प्रायः आविष्ठ अवस्थामें रहा करते और उसी अवस्थामें सब काम होता रहता।"

मातृभाव

"श्री मां" (नित्यवासिनी देवी) ने सोचा कि ये (बसन्तकुमार) तो अब मेरे पुत्र हो गये, मैं इन्हें क्या कहकर सम्बोधन करूँ। श्रीगौराङ्गने बताया—"गोपाल" बस अब सब अवस्थामें **श्रीबसन्तकुमार नित्यवासिनी देवीके साथ ठीक पुत्रवत रहने लगे और जगत जननी नित्यवासिनी देवीके लिये श्रीबसन्तकुमार और जगतके सब**

प्राणी गोपाल बन गये। जगत जननीकी सन्तानके नाते बसन्तकुमार सबके भाई हुए। बङ्गालमें बड़े भाईको दादा कहते हैं। सभी लोग श्रीबसन्तकुमारको 'श्रीदादा' और नित्यबासिनी देवीको 'श्रीमां' कहने लगे और तबसे इसी नामसे इनकी चारों ओर ख्याति हुई। प्लेगके चंगुलसे बचनेके बाद उपरोक्त भाव समाधिके समयसे "बसन्त दादा" बङ्गाब्द १३०८ पौष माससे लेकर बङ्गाब्द १३०९ ज्येष्ठ मास तक (छः माह) बड़ी विचित्र भावाविष्ट अवस्थामें रहा करते।

भाव-समाधिके बाद

भाव-समाधिमें शिशिर बाबू जिस प्रकार कह गये थे (ब्राह्मणपाड़ाके प्रकाश बाबू आकर तुम्हारी खबर लेंगे) ठीक उसी तरह कुछ समयके बाद ही ब्राह्मणपाड़ाके प्रकाशचन्द्र घोष स्वतः प्रवृत्त होकर दल-बल सहित बसन्त दादाकी खोजमें त्रिश आये और श्रीदादाके साथ इष्ट-गोष्ठी और कीर्त्तनमें प्रवृत्त हुए। ये प्रकाशचन्द्र घोष उस प्रान्तके अतीव सम्पन्न और प्रभावशाली, कुलीन जमींदार थे। उनके द्वारा श्रीदादाके भाव-पोषणको देखकर जो भी प्रतिकूल समालोचनायें थीं, सब शान्त होने लगीं। कुमिल्ला और कृष्णपुर आदि स्थानोंसे परम भागवत वैष्णव-गण आ-आकर योगदान देने लगे। इन सब वैष्णव महाजनोंके समागमसे एक अपूर्व कीर्त्तनान्दकी लहरी प्रवाहित होने लगी। इस भावाविष्ट अवस्थामें श्रीदादा किसी किसी भागवतकी ओर अंगुलीका इशाराकर उनका परिचय जाननेकी जिज्ञासा करते तब श्रीमां बताती कि :—

ये नरोत्तम हैं (ब्राह्मणपाड़ाके प्रकाश घोष)

ये रामानन्द हैं (चान्दलाके प्रसन्नदास)

ये गदाधर हैं (गुन्जरके गुरुदास व्यापारी)

ये श्रीधर हैं (गुन्जरके हरीश मुन्शी)

ये विश्वम्भर हैं (कृष्णपुरके बैकुण्ठ बाबू)

ये स्वरूप हैं (सुविलके तारक बाबू)

ये छोटे हरिदास हैं (त्रिशके प्यायी देव)

इन छः माहकी भावाविष्ट अवस्थामें श्रीदादाको अक्सर श्रीमांके ऐश्वर्य रूपके दर्शन होते। उस समय वे विल्वपत्र पुष्प चन्दन आदिसे उनकी अर्चना किया करते।

महात्मा शिशिरकुमार घोषसे सम्पर्क

इस प्रकार (६ महीने) भावाविष्ट अवस्थामें रहनेके बाद बिना साक्षात परिचयके केवल भाव-समाधिमें मिलन सम्बन्धके आधार पर बसन्त दादाने बङ्गाब्द

१३०९ सालकी आठवीं आषाढ़को शिशिर बाबूको कवितामें एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपनी अवस्थाका कुछ वर्णन किया है उसको नीचे उद्धृत किया जा रहा है:—

श्रीगुरु कृपा करिबा मात्र
कम्प कण्टकित हइल गात्र ;
क्रमे आर्त्तनाद प्रलाप कथा,
ज्ञान वशीभूत नहेक माथा ।
ए रूप देखिया स्वजन काँदे,
अपरे बलये राख हे बेंधे ;
कोन भाग्यवान् देखे तखन,
कि भावे के जाने करे रोदन ।
एइ रूपे दश दिवस गत
कत कत भाव कहिव कत ?
कखन रोदन कखन हास
कम्प, मोह, भय, कखन त्रास ।
एइ रूपे दश दिवस गत
जत जत भाव कहिब कत ?
एकादशे आसि कोन महाजन
कहिते लागिल मधुर वचन,
"बसन्त अशान्त हबे कि कारण
आसियाछि आमि शान्त कर मन ।
अधैर्य्य हइले नहे साध्य काज
पाबे तत सुख जत कर काज ।
मम परिचय शुन बलि भाइ
श्रीगौराङ्ग आज्ञा लइया बेड़ाइ ।
रहिते पारिनु देख भव त्रास
आसियाछि आमि बलराम दास* ।
क्रमे परिचय पाइबे मोर
निज गुणे काछे रहिब तोर ।
तोमरा जुगल लइया सुखे
खेलिबे ए भवे देखिबे जीवे ।
पत्नीभाव छाड़ि मातृभाव धर,

---

* महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषका काव्य-ग्रन्थका उपनाम 'बलरामदास' था ।

उपासना सत्य तबे हबे दृढ़ ।
मर्कट वैराग्ये नाहि प्रयोजन,
जाहा सत्य ताहा ना कर गोपन ।
त्यजि पश्वाचार, छाड़ लज्जा भय,
एसब थाकिले कृष्ण प्रेम नय ।
पवित्र हइले पवित्र पाइबे,
धर शिशुभाव वासना पूरिबे ।
मातृरूपे तब रहिनु काछे,
वात्सल्य प्रेमेते लइब ब्रजे ।
नयनेर तारा करे राख मोरे,
सहज भजन शिखाइनु तोरे ।"
आसिब आबार बलि लुकाइल
क्षणेकेर तरे विस्मय जन्मिल ।
जत उठे मने तत काँदे मन,
क्षणे श्वास रोध क्षणे हय घन ।
सपत्नी छिलाम बसि एकासने
चेये देखि जाया बसियाछे ध्याने ।
देखि से मूरति उपजिल भय
अपरूप शोभा देह ज्योतिर्म्मय ।
मा, मा बलि तवे पड़िनु चरणे,
"देह पद छाया रक्ष ए सन्ताने ।"
आमि गन्ध पुष्प स्वजन सहित
पूजि श्रीचरणे हलाम आश्रित ।
क्षण परे देह हल अचेतन्,
कत जे विभूति करि दरशन ।
से सब लिखिते साहस ना पाइ,
अपरे देखिले भाबिबे बड़ाइ ।
भूक्तभोगी जारा तारा छाड़ा आर
अपरे बूझिते नाहि अधिकार ।
दादा ! तब पदे जानाइते साध
जे खेला तुमि खेल मम साथ ।
कृतज्ञता लागि लिखिते प्रयास
बन्दि श्रीचरण दन्ते करि घास ।

तोमार करुणा तोमारे जानाते
केन जानि बड़ सुख हय ताते ।
कविता कुसुम नहे प्रस्फुटित ;
भय करे पदे करिते अर्पित ।
किंचित् करुणा कर दीन दासे,
बसन्त अशान्त श्रीचरण आशे ।

(१३०९ बङ्गाब्द, ८वीं आषाढ़)

इस प्रथम पत्रके दस दिन बाद अर्थात् १८वीं आषाढ़ बङ्गाब्द १३०९ को बसन्त दादाने दूसरा पत्र शिशिर बाबूको लिखा था और उसके बाद कई पत्रोंका आपसमें विनिमय हुआ ।

भाव समाधिके समयकी श्रीदादाकी अवस्थाकी सूचना, कलकत्ता स्थित 'दादा' की जातिके बन्धुओंने जब शिशर बाबूको दी तो उन्होंने अन्तर्यामीकी तरह उत्तर दिया कि तुम्हारे बतानेके पूर्वही मुझे सब मालूम हो गया है, कोई चिन्ताकी बात नहीं है । तत् पश्चात् उनसे सम्बन्धित और भी कितनी ही अज्ञात गूढ़ बातें शिशिर बाबूने प्रकट कीं ।

इसके बाद उस प्रान्तसे आसपासके पढ़े-लिखे अनेक लोग वहाँ आने लगे । कोई भक्ति-भावसे आता, कोई कुतूहलवश तमाशा देखने आता और कोई परीक्षा लेनेके हेतु । जो भी आते, वे सभी प्रभावित और उन्मादित हो लौटते ।

कुछ समयके बाद श्रीमां और दादा कलकत्ता आकर रहे और वहाँ शिशिर बाबूसे इष्टगोष्ठी चलने लगी । शिशिर बाबूके एक सहोदर भाई थे जिनका नाम था बसन्तकुमार । उनका परलोक गमन हो चुका था । श्रीदादाको वे अपने परलोकगत भ्राताजीकी जगह मानते थे और उसी प्रकार व्यवहार करते थे । कलकत्तासे बीच-बीचमें श्रीमां और दादा तीर्थयात्राके लिये कभी नवद्वीप, कभी वृन्दावन और कभी श्रीक्षेत्र जाकर भी रहा करते ।

एक बार दीर्घकाल तक वे नवद्वीपमें रहे । तब शिशिर बाबूने, गौरधर्म-प्रचारके अपने उद्देश्य-सिद्धिमें विघ्न पड़ते देख, श्रीदादाको नवद्वीप एक पत्र लिखा :—

"भाई बसन्त,

कोटि कोटि जीव त्रिताप ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं । अपने स्वदेशमें जाकर प्रेमनदीकी बाढ़ लाकर उन्हें शीतल करो । तुम्हारे लिये स्वदेशमें अनेक काम बाकी हैं ।"

श्रीदादाने अपनी अयोग्यता और अनधिकारकी अनेक बातें उत्तरमें लिखीं । किन्तु शिशिर बाबूने अन्तमें लिखा—"श्रीप्रभुने स्वप्नमें मुझे गौर-धर्म प्रचार करनेका आदेश दिया है । किन्तु मैं वृद्ध, जराजीर्ण और अक्षम हो गया हूँ । अतएव मैं तुम्हें

वह भार दे रहा हूँ। अयोग्य कहनेसे काम कैसे चलेगा ? पूर्व बङ्गालमें जाकर प्रचार कार्य आरम्भ करो। श्रीप्रभु तुम्हारी सहायता करेंगे।

श्रीदादा अब और अपने भाव गुरु शिशिर बाबूके आदेशकी अवहेलना नहीं कर सके और पूर्व बङ्गालमें जाकर अधिकतर वहीं रहे और जैसा आदेश और प्रेरणा होती रहती थी उसी प्रकार कार्य करते थे।

अमेरिकाकी नित्यानन्ददासी

अमेरिकाके शिकागो नगरकी एक क्रिश्चियन रमणी श्रीमती जी० बी० आदम्स शिशिर बाबूके अमिय-निमाइ-चरितके संक्षिप्त अंग्रेजी संस्करण 'लार्ड गौराङ्ग" को पढ़कर वैष्णव-धर्ममें अनुरक्त हुई थीं और विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहणकर शिशर बाबूकी अनुगामिनी बनी थीं। शिशिर बाबूने उनका दीक्षाका नाम 'नित्यानन्द दासी' रखा था। इन भद्र महिलाने एक दिन भाव-समाधिमें देखा कि वे 'श्रीमां-श्रीदादा' श्रीश्रीगौराङ्गके प्रकट लीलाकालमें भाई-बहन थे और साथ-साथ गौर भजन किया करते थे। कहाँ तो भारतवर्षके बङ्गाल प्रदेशमें त्रिपुरा जिलेमें छोटा-सा त्रिश गाँव और कहाँ अमेरिकाका शिकागो। अमेरिकामें बैठे-बैठे ध्यान-समाधिमें उन्होंने श्रीदादाको पहिचाना। यह 'लार्ड गौराङ्ग' के माध्यमसे शिशिर बाबूकी कृपाका ही प्रभाव था। शिकागोमें उन्होंने श्रीदादाके साथ पत्र विनिमय आरम्भ किया जिनमें से एक पत्रका संक्षिप्तांश इस प्रकार है :—

"I feel sure I lived in those days—know Chaitanya. Even if our tongues speak unknown languages, our hearts speak the same words of love and praise to Him our sweet 'Lord Krishna Chaitanya'—Lovingly Nityananda Dasi."

गौर-धर्म-प्रचार

श्रीमन्महाप्रभुजीके अप्रकटकालके पूर्व उनके विशेष आदेशके अनुसार प्रभुपाद श्रीनित्यानन्दजी संन्यास धर्मका त्यागकर गृहस्थ धर्ममें प्रवेश करके गौड़में हरिनाम प्रचारके लिए नये भावसे व्रती हुए थे। महाप्रभुने गम्भीरालीला साधनमें जिस स्तरका आचरण करके दिखाया था उसका कलिजीवोंके लिये आचरण तो दूरकी बात रही, कल्पना भी असम्भव है। इसलिये क्षमाके अवतार, विश्व प्रेमिक, जगाई मधाई जैसे पतित पाखण्डियोंके उद्धारकर्त्ता निताई चाँदको वैष्णव धर्म-प्रचार करनेके लिये कठोर आदेश देकर संन्यास त्याग करवाकर पुनः गृहस्थ बनाया। महाप्रभुके अप्रकट होनेके बाद उनके आवेशावतार नरोत्तम ठाकुर, श्रीनिवास और श्यामानन्दके साथ वृन्दावनसे तत्कालीन गोस्वामी पादके आदेशसे गौड़में आकर कालोपयोगी धर्म-प्रचारके लिये आदिष्ट हुए थे। नरोत्तम ठाकुरने स्वप्नादिष्ट हो गोपालपुरके विप्रदासके धान्येगोलासे

एक युगल-विग्रह लाकर तत्कालीन गोस्वामी पादगण और नित्यानन्द गृहिणी जाह्नवी गोस्वामिनीके अनुमोदन समर्थनसे उनको खेतरीमें खूब समारोहके साथ प्रतिष्ठित किया था, किन्तु नरोत्तम ठाकुरके अप्रकट होने पर उस धर्मका भी समस्त गौड़ देशमें प्रचार नहीं हो सका। बहुत कालके बाद महात्मा शिशिरकुमार घोषने वैष्णव धर्म व भक्ति-मूलक 'विष्णुप्रिया' पत्रिका द्वारा धर्मका प्रचार आरम्भ किया। तत्पश्चात् श्रीबसन्त दादाको प्रेरित कर उन्हें अपनी शक्ति प्रदान कर उनके द्वारा भागवत आचरण करवाकर पूर्व बङ्गालमें उसका खूब प्रचार करवाया। श्रीबसन्त दादाके प्रकट होनेके पश्चात् उस धर्मको प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीके द्वारा उत्तेजित किया गया। (पूर्व बङ्गालमें जो कुछ हुआ उसका दिग्दर्शन 'श्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-सेवा-प्रकाश व प्रचार के प्रकरणमें आगे मिलेगा।)

उपसंहार

श्रीदादाका महाप्रयाण बङ्गाब्द १३३० साल श्रावणमें हुआ था। इस प्रकार श्रीदादाने १६ वर्ष कौमार्य जीवन और ४७ वर्ष विवाहित जीवन बिताया जिसमें अन्तिम २३-२४ वर्षोंमें तो श्रीदादाने 'श्रीमां' के निकट पुत्र भावकी लीला खेली। यह सिर्फ लोक-दिखाऊ लीला नहीं थी, बल्कि वास्तविक भावमें थी, जिसका कुछ दिग्दर्शन 'बसन्त साधुके साथ महत्समागम' के प्रकरणमें श्रीक्षेत्र पुरीधामकी यात्रामें होता है। यदि यह लोक-दिखाऊ लीला होती तो एक-न-एक दिन कोई-न-कोई दोष किसी-न किसीके दृष्टिगोचर तो होता ही। वर्षों घोर तपस्या करनेके बाद भी परनारीके प्रति भी स्थायी मातृभाव दुःसाध्य देखा गया है। अपनी परिणीता नारीको मातृ सम्बोधन करने वाले भी सिद्ध सन्त देखे गये हैं, लेकिन उन्होंने भी उसके निकट निवासका त्याग किया। अपनी परिणीता नारीके साथ एकान्तमें दीर्घकाल तक निवास करते हुए विषधर सर्पके साथ खेल करने वाले कहीं देखने-सुननेमें नहीं आये।

श्रीदादाके लीला संवरणके लगभग १३ महीने बाद बङ्गाब्द १३३१ भाद्रमासकी अमावस्या शनिवारके दिन पूर्वाह्न कालमें श्रीमन्दिरमें भगवानके बाल्य भोगका प्रसाद पाकर भक्त नर-नारियोंसे समावेष्टित **'जयगौर-विष्णुप्रिया, प्राण गौर-विष्णुप्रिया'** कीर्त्तनान्दके बीच श्रीमां भी यह लोक-लीला संवरणकर गौरधाम पधारीं। इन तेरह महीनोंकी उनकी अपूर्व दिव्योन्माद दशा जिनको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ उन्होंने अनुभव किया कि ऊर्ध्व लोककी दो अपूर्व वस्तु त्रिश धाममें आविर्भूत हो सारे पूर्व बङ्गालको गौरमय बना गयीं।

श्रीबसन्त साधुके साथ महत्समागम

•

(प्रभुपाद श्रीहरिदासजी द्वारा स्वलिखित)

परिचय

त्रिपुरा* जिलेमें कम्पनीगंज परगनेके अन्तर्गत त्रिशनगरके श्रीबसन्त साधुका नाम बङ्गालके सभी गौरभक्तोंमें सुविख्यात है। उनका पूरा नाम था श्रीबसन्तकुमार दे। वे एक उच्च कायस्थ वंशके महापुरुष थे। उनके प्रेमीभक्त उन्हें 'श्रीदादा' कहकर पुकारते हैं। पूर्वी बङ्गालमें उनके पवित्र नामका स्मृतिगान घर-घरमें गूंज रहा है। उनके द्वारा प्रचारित श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा व नाम-कीर्त्तनसे समग्र पूर्वी बङ्गाल आज भी मुखरित हो रहा है। वे गौरधामगत महात्मा श्रीशिशरकुमार घोषके बड़े कृपापात्र थे।

पूर्वानुराग

बसन्त साधुके साथ मेरा सर्वप्रथम अप्रत्यक्ष परिचय जबलपुर (मध्यप्रदेश) में श्रीशिशिरकुमारजीकी गौर-पागलिनी भक्तिमती-विदुषी बहिन श्रीमती स्थिरसौदामिनीके मुँहसे उनके अपूर्व गौर-प्रेमकी कथा सुनकर हुआ था। यह घटना बङ्गाब्द १३१८ सालकी होगी। श्रीबसन्त साधुने इन रमणी-रत्नको, महात्मा श्रीशिशिरकुमारके देहान्तके पश्चात् एक अद्भुत पत्र लिखा था जिसमें शिशिर बाबूके सम्बन्धमें बहुत कुछ अप्रकट बातें लिखी गयी थीं। इस पत्रको पढ़नेके उपरान्त मैं सर्वप्रथम श्रीदादाके प्रेमकी ओर आकृष्ट हुआ। श्रीमती स्थिर सौदामिनीजीके पाससे मैंने इस पत्रकी नकल ले ली थी। शिशिर बाबूके सुयोग्य भाञ्जे श्रीमान् तड़ितकान्ति एम० ए० जबलपुरके एक कालेजमें अध्यापक थे। उनकी माता उन्हींके साथ जबलपुरसे रहती थीं। हमारा निवास-स्थान पास-पास था। हम लोगोंकी गोष्ठी भी सर्वदा होती रहती थी। बसन्त साधुके इस पत्रको नीचे उद्धृत किया जा रहा है। इस पत्रमें बहुत सी गूढ़ बातें हैं। इस पत्रका मर्म मैं बादमें प्रकाशित करूँगा। अभी केवल इतना ही अभीष्ट है।

---

* अब यह स्थान पूर्वी पाकिस्तानके अन्तर्गत चला गया है।

कि महात्मा श्रीशिशिरकुमारजीके आदेशके अनुसार इन श्रीबसन्त साधुने अपनी सह-धर्मिणी पत्नीको माता कहकर सम्बोधित किया तथा इस सम्बन्धकी मर्यादाका उन्होंने आश्चर्यजनक रूपसे आजीवन निर्वाह किया। इससे पहले वैष्णव जगतमें एक ठाकुर लोचनदासजीके अतिरिक्त ऐसे निर्वाह-समर्थ किसी भी महापुरुषका नामोल्लेख नहीं है। ठाकुर लोचनदासके इस भावके साथ भी बसन्त साधुके भावका सर्वथा साम्य नहीं हैं।

बसन्त साधुका वह पत्र यह है :—

"परमाराध्य श्रीश्रीयुक्त स्थिर-सौदामिनी देवी दीदी ! ठकुरानीके

श्रीचरण कमलोंमें।

दीदी !

आपका यह कङ्गाल भाई आपको प्रणिपात हो रहा है। इस अधमके ऊपर कृपा कीजिये। प्रभुने मुझे थोड़ा सा (यह भाईपनका) अहङ्कार दिया है जो मैं निर्लज्ज उसका पोषण कर रहा हूँ। दीदी ! मेरे मनकी बातें कहनेकी नहीं हैं। दूसरे सुनेंगे तो हँसेंगे। आज आपके चरणोंमें अपने मनकी दो बातें कहकर मैं कृतार्थ हो जाना चाहता हूँ।

श्रीप्रभु (शिशिर बाबू) हम लोगोंको छोड़कर अपने निज-स्थानको चले गये हैं। जीवोंके अभाव मोचन करनेके लिये और उन्हें सुख प्रदान करनेके लिये वे आये थे। वह काम पूरा कर गये। लेकिन जिस प्रकार उन्होंने मेरे ऊपर कृपाकी है, उस प्रकारसे किसीके ऊपर नहीं की।

एक दिन बसि भावि आपनार मने।
कि छिलाम कि ह'लान काहार साधने॥
जाइ नाइ गहन बने साधि नाइ व्रत।
प्राकत जगत केन हेरि अन्य मत॥
जगत जाहारे भजे से भजे आमारे।
चर्व्व, चोस्य, लेह्य, पेय नाना उपहारे॥
बसन भूषणे तोषे ना मागये किछु।
मम हित लागि सदा थाके पिछु पिछु॥
असाधने हेन धन आनि दिल के।
बलराम* छाड़ा आर ए जगते के॥

दीदी ! सच्ची बात यह है कि दादाने मुझे अभावशून्य स्वभाव दिया था। मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ इसलिये उन्हें भूलकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहा हूँ। प्रभु (शिशिर बाबू)

* महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषका काव्य-रचनाका उपनाम 'बलरामदास' था।

सबके ऊपर दया किया करते थे, पर मुझ पर तो उन्होंने अनुपम कृपा की है। कहाँ कलकत्ता और कहाँ यह सुदूर त्रिपुरा। अलक्षित रूपमें आकर 'भाई' कहकर मुझे अपनी गोदमें शरण दे दी और असम्भवको सम्भव कर दिखाया। इस संसारमें हम लोगोंको उन्होंने एक नयी रूपसज्जा प्रदान की और बताया कि :—

भाई !

तोमरा युगल लइया सुखे ।
खेलिबे ए भाव देखिबे जीवे ॥
श्रीगौराङ्ग प्रेम पवित्र कत ।
ना बुझिया जीवे आश्रय रत ॥
पत्नी भाव छाड़िया मातृभाव धर ।
प्रेमेर बन्धन तबे हबे दृढ़ ॥
कि भय तोमार आमि तब भाइ ।
बलराम दास जानिओ निताइ* ॥

इस तरहकी कृपा तो प्रभु (शिशिर बाबूने) किसी पर भी नहीं की। इस प्रकारके घोर अन्धकारमें उन्होंने किसीको भी ऐसी विद्युत-ज्योति नहीं दिखायी।

प्रभु (शिशिर बाबू) अपनी इस अलौकिक शक्तिके द्वारा सबको दर्शन, स्पर्शन देकर कृतार्थ करते थे, पर सभीको यह ज्ञात था कि वे मुझे सर्वाधिक आदर और प्यार करते थे। यद्यपि उनका सर्व जीवोंके प्रति समभाव था तथापि उनका स्वतन्त्र रूपसे अवलोकन करनेसे ऐसा लगता था कि मेरे सौभाग्यसे मुझे वे :—

देखिलेइ आनन्दे हतेन मातोयारा ।
कभू अचेतन कभू श्रीनयने धारा ॥
कभू उच्च हास्ये आसि चूम्बित बदने ।
जतने लइया जेतेन निर्जन भवने ॥
डाकिया आनिया प्रभु प्राणेर परशे ।
तानसेनेर गान मोरे शुनान हरषे ॥
भावेर आवल्ये कभु ह'ये अचेतन ।
धारिया फुलिर गले करित रोदन ॥
कभू आनन्दे प्रभु हइये मगन ।
आपनि गाइत प्रेमे करित नर्त्तन ॥

---

* महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषका काव्य रचनाका उपनाम 'बलरामदास' था। श्रीनित्यान्दजी श्रीबलरामजीके अवतार माने जाते हैं। श्रीबसन्त दादाको श्रीशिशिरकुमारजीमें श्रीनित्यानन्दजीका आविर्भाव प्रतीत होता था।

कभू प्रभु बुझि मोर प्रानेर आवेग।
फुल साजे सजाइते दितेन सुयोग।।
बसि निज जनसङ्गे हइये विभोर।
लइतेन मम पूजा प्रानेर ठाकुर।।
हेन गुननिधि मोरे गियाछेन छेड़े।
बसन्त अशान्त एखन कि उपाय करे।।

दीदी मेरे प्राण अब एकाकी लगते हैं। इस संसारमें बड़े-बड़े बुद्धिमान और ज्ञानीभक्त-भावुक दादाके स्नेह-पात्र हैं, लेकिन मुझे सबसे अधम जानकर वे मुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करते थे। मैं भी दादाका आदर पाकर इस पृथ्वीको गोलोक अनुभव करता था। उनके लिये तो भूलोक और गोलोक एक ही था। वे कहा करते थे—"भाई ! हमारे ये प्रभु बुरा करना जानते ही नहीं; तब क्या चिन्ता है ? केवल नाचो और गाओ।" मैं भी ऐसा ही करता था। (उनके) प्रेमसे (मेरी) आँखें अन्धी थीं तो भी दादा मेरी बातचीत, मेरी लिखावट, मेरा चाल-चलन सब कुछ पसन्द करते थे। दीदी ! अब इस पागलका पागलपन कौन समझेगा ? कौन अब इसका गौरव बढ़ावेगा ? दीदी ! क्या आप इस पागलको आशीर्वाद देकर कृतार्थ करेंगी ? दादा हर महीने मुझे अपनी कृपालिपि भेजा करते; वे अब नहीं मिलतीं। मेरी सुध लेने वाला अब और कोई नहीं है। श्रीयुक्ता राङ्गामांके श्रीचरणोंमें प्रणाम निवेदन कीजियेगा और श्रीमती कुलि गौरमणि मांको प्रीति-भक्ति।

आपका हतभाग्य—
बसन्त

पहले लिख चुका हूँ कि इस पत्रको पढ़कर ही मैं श्रीदादाके प्रेमके प्रति आकृष्ट हुआ हूँ। मेरे साथ उनका एक सम्बन्ध है, जिसको उन्होंने स्वयं ही अयाचित भावसे स्थापित किया था। दोनोंका यह सम्बन्ध-सूत्र एक ही रज्जुमें बँधा है। ये गूढ़ बातें कहनेकी नहीं हैं। श्रीदादाकी लीलाकथा अनन्त है जो क्रमशः भक्ति-जगतमें प्रकाशित होती जा रही है।

अप्रत्यक्ष मिलन

(लगभग बङ्गाब्द १३२२, गौराब्द ४२९ सन् १९१५ ईस्वीकी बात होगी) मैं जबलपुरसे बदलकर भोपाल आया था। उसके लगभग एक ही महीनेके भीतर मुझे बसन्त दादाका पहला पत्र मिला। "श्रीविष्णुप्रिया पत्रिका" में (जो शिशिर बाबूके संरक्षणमें प्रकाशित होती थी) श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके भजन-तत्वके सम्बन्धमें मेरे लेखोंको पढ़कर उन्होंने जो मेरे साथ सम्बन्ध स्थापित किया था, वह उनके पत्रसे प्रकट होगा। वे नवद्वीप रसके सुरसिक भक्त थे। उनका विशुद्ध नदिया-नागरी भाव था।

उन्होंने मुझको भूपाल-वासिया हरिदासिया सम्बोधन करके एक कविता लिखी थी। वे पत्रादिमें मुझे कभी दादा (बड़ा भाई) कभी दीदी (बड़ी बहिन) लिखकर सम्बोधन किया करते थे। मैं सर्वथा अरसिक हूँ, और उनके समान उच्च-भजनके अयोग्य हूँ—इसे वे शायद नहीं जानते थे। उनका प्रथम पत्र पाकर मैं बड़ा लज्जित हुआ था। किन्तु वे अपने साधु स्वभावसे मेरी इस अयोग्यताको वैष्णवीय दैन्य समझकर, अपने भक्त-समाजमें मुझको प्रतिष्ठित और सम्माननीय बनाकर मेरे अभिमानकी वृद्धि कर गये। मैं जानता हूँ कि मैं क्या हूँ और मेरा कितना-सा मूल्य है। बसन्त दादाका शुद्ध-बुद्धिसे जो मेरा सम्मान करते थे वह उनके गुणोंका परिचायक है। मैं उनके शिष्यका शिष्य भी होनेके योग्य नहीं हूँ—यह मैं भली भाँति समझता हूँ और उनके अनुगत भक्तवृन्दके साथ उसी रूपसा भाव-प्रकाश करता हूँ। खैर, बसन्त दादाका पत्र नीचे उद्धृत है :—

"श्रीश्रीचरण कमलेषु—

प्राणप्रिय दादा! दादा हे! तुम मेरे जीवन-मरणमें इह-लोक और परलोककी गति हो। इस बातको मेरी दीनता न समझें, यथार्थ मनकी बात है। सुनिये। गत आषाढ़ मासमें मैंने स्वप्न देखा मानों मैं कहीं गया हूँ। वहाँ विशेष शिक्षित लोगोंका समाज जुटा है। मैंने उनकी ओर देखकर जान लिया कि वे लोग मुझे अश्रद्धाके भावसे देख रहे हैं। तब मैं वहाँसे दूर चले जानेका उद्योग करने लगा, इस पर उन महानुभावोंने अपने एक नौकरको मुझे अपमानित करनेके लिये इशारा किया। वह नौकर मुझको धूर्त-पाखण्डी आदि कहकर तिरस्कृत करने लगा। मैंने अपने स्वभावके अनुसार उसको दण्डवत् करते हुए कहा—'गुरु! तुम मुझको शिक्षा देकर मेरा सुधार कर रहे हो।' वह नौकर हँसकर बोला—"मैं माया हूँ और तुमने मुझे गुरु कहकर वरण किया है, अतएव मेरे द्वारा तुमको मन्त्र दिया जाना आवश्यक हो गया।" इतना कहकर उसने मुझको कृष्ण-मन्त्र दिया और कहा—'तुम्हारे गुरु श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु हैं।' मैंने मन ही मन सोचा कि जो माया हैं वे कृष्ण-मन्त्रके सिवाय और कुछ नहीं जानते। इसी कारण शायद उन्होंने मुझे उपदेश दिया है कि श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु मेरे भावदाता गुरु हैं। स्वप्न टूटनेपर मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ।

प्रभात होनेपर यह स्वप्न-कथा मैंने 'श्रीमां' को बताई। वे बोलीं—**'तुम्हारे भावदाता गुरु श्रीमान् शिशिर कुमार घोष थे। वे इस समय अप्रकट हैं और उन्होंने श्रीपाद हरिदास गोस्वामीके शरीरमें प्रवेश किया है इसलिये अब वे ही तुम्हारे गुरु** हैं।' मैंने भी मन-ही-मनमें यह धारणा बनाई थी। अतएव इस प्रथम पत्रके आरम्भमें लिख बैठा कि तुम मेरे जीवन-मरणमें इहलोक और परलोककी गति हो।

प्रभु श्रीशिशिरकुमारजीने मेरे ऊपर अलौकिक भावसे कृपाकी थी। कहाँ मैं त्रिपुरा जिलेके एक छोरपर त्रिश गाँवमें और कहाँ वे कलकत्तामें। आयाचित भावसे

अशरीर देहसे आकर मुझे 'भाई' कहकर गोदीमें लेकर उन्होंने अपना परिचय दिया— **'मैं नित्यानन्द हूँ, शिशिर बाबूके शरीरमें रहकर गौर-लीलाका विस्तार कर रहा हूँ,** उनके संयोगमें तुम मेरा ही सङ्ग समझना—इत्यादि अनेक बातें हैं जो साक्षात् मिलूंगा तब बताऊँगा। दीदी! दीदी हे! अब तो तुम्हारे दर्शनोंके लिये प्राण अतिशय पिपाशातुर हो रहे हैं। और एक बात—इस बीचमें तुम्हारी कृपासे जो कुछ अंकुरित हुआ है उसको आओ, तुम्हें एक बार दिखाऊं; नहीं तो मरनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। श्रीशिशिरकुमारजीको दिखा नहीं सका, इसका दुःख जीवन भर नहीं जायगा। तुम्हारे देखने मात्रसे उनका भी देखना हो जायगा। मैं विशेष लिखना नहीं जानता, तुम मेरी सभी बातें जानते हो।

'अद्यापिओ सेइ लीला करे गौरा राय।
कोन कोन भाग्यवाने देखिवारे पाय॥'

भाग्यवान कौन है? श्रीशिशिरकुमारजी कहा करते थे कि नदिया-नागरी भाग्यवान् हैं। यह अक्षरशः सत्य है। पर मेरा ऐसा भाग्य कहाँ, मैं तो कुछ भी नहीं देख पाता। जो लोग श्रीगौरविष्णुप्रियाकी सेवा करते हैं उनके साथ 'वे' कभी परोक्षमें कभी साक्षात्भावसे अपूर्व व अलौकिक लीला-रङ्ग करते हैं। मैं यह सब सुनकर विस्मित और आनन्दित हो जाता हूँ। तुमको सब कुछ बतानेका मन करता है। जो कुछ देखता हूँ वह तुम्हारी ही शक्ति है।

तोमार महिमा तोमाके जानाते।
केन जानि लोभे हइतेछे चिते॥
बासना पुराओ देते नाहि सहे।
कङ्गाल बसन्त कर जोड़े कहे॥

श्रीमती सुवर्णमयी नामकी एक बालिकाने हमारे श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी सेवाका भार लिया है। विगत ९वीं भाद्रमासको श्रीविष्णुप्रिया ठकुरानीने सेवाके समय जब उनके चरणोंमें तुलसी समर्पितकी गई तब साक्षात् कहा—"बाबाको कहना कि एक नीलाम्बरी साड़ी दें।" बालिका प्रेमानन्दसे रोती-रोती मूर्छित हो पड़ी। जब उसको वाह्य ज्ञान हुआ तब उसने यह बात बताई। प्रभु और प्रियाजी जगह-जगह इस प्रकारकी लीलाएँ नाना प्रकारसे विस्तार कर रहे हैं। यदि कभी मिलनेका सुयोग हुआ तो जी भरकर ये सब बातें विस्तारसे बताऊँगा। इति।

तुम्हारा दर्शन-भिखारी
"बसन्त"

प्रत्यक्ष मिलन

श्रीबसन्त साधुका मेरे साथ सर्वप्रथम साक्षात मधुर-मिलन बंगाब्द १३२८ सालके आषाढ़ मासमें श्री श्रीजगन्नाथजीकी रथ-यात्राके प्रायः एक मास पूर्व (श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग कुञ्जमें) हुआ। यह बड़ा ही शुभ दिवस था। मैं उस समय सरकारी नौकरीसे छुट्टी लेकर कुछ समयके लिये श्रीधाममें वास कर रहा था। बसन्त साधुने श्रीधाम नवद्वीप आनेके पूर्व ही मुझको एक पोस्टकार्डके द्वारा सम्वाद दिया था :—

मेरे प्राण-प्रिय दादा,

श्रीचरणकमलेषु।

तुम्हारे दर्शन करने श्रीधाम आऊँगा, पश्चात् प्रभु और प्रियाजीकी इच्छा हुई तो पुरी धाममें श्रीजगन्नाथजीकी रथ-यात्राका दर्शन करने जाऊँगा। तुम श्रीधाममें रहोगे या नहीं, सूचित करना। तुम्हारे साथ मेरी विशेष बातें होंगी, और कार्य भी है।

तुम्हारा दासानुदास,

बसन्त

बसन्त साधु श्रीधाममें 'श्रीमां' और अपने कुछ निजजनके साथ संकीर्तन करते हुए श्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्जमें आ उपस्थित हुए। अपराह्नका समय था। मैं जैसे ही श्रीमन्दिरके द्वार पर उनका स्वागत करनेके लिये उपस्थित हुआ, वे मुझे प्रेमालिङ्गन करनेका अवसर न देकर मेरे ही चरणों पर प्रेमानन्दसे ढुल पड़े। बसन्त साधुके मुखसे मैंने पहले-पहल अपूर्व नाम संकीर्त्तन-सुधाका पान किया। उनके मुखसे **"जयगौर-विष्णुप्रिया प्राणगौर-विष्णुप्रिया"** उच्च नामकीर्त्तन मधुसे भी मधुर बोध होने लगा। वह अपूर्व प्रेम-भाव, वह विचित्र प्रेम-दृश्य भाषाके द्वारा वर्णित नहीं हो सकता, लेखनीके द्वारा अंकित नहीं हो सकता। मैंने उन्हें भूमिसे उठाकर प्रेमालिङ्गनमें जकड़ लिया तथा बड़ी कठिनाईसे श्रीमन्दिरके प्राङ्गण तक लाया। श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें धूलमें ही लोटकर उन्होंने साष्टांङ्ग प्रणाम किया। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह रही थी, सर्वाङ्ग पुलकित हो रहा था और प्रेमानन्दमें वे वाह्य-ज्ञानशून्य थे। बहुत देर तक वे भूतल पर पड़े रहे। उनके पास बैठा मैं उनके शरीर पर हाथ फेर रहा था और मृदु मन्द स्वरमें नामकीर्तन कर रहा था। इसी समय बसन्त साधु मेरी गोदमें अपना मुँह छिपाकर महिला सुलभ सरलतासे चीत्कार करकर रोने लगे, मुँहसे कोई शब्द बोल नहीं पा रहे थे। प्रेममें गद्-गद् थे, कभी-कभी मेरे मुँहकी ओर देखकर कहते—"दादा !" श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें कीर्तन चल रहा था **'विष्णुप्रियार प्राण गौराङ्ग—गौराङ्गेर प्राण विष्णुप्रिया'** हम दोनों प्राङ्गणमें इसी प्रकार बैठकर अजस्र आँसू बहा रहे थे। हम लोगोंको घेरकर कीर्तन चल रहा था। यह अपूर्व दृश्य था।

कुछ देरके बाद मैंने बसन्त साधुको गोदमें लेकर श्रीमन्दिरके बरामदेमें बिठाया। उस समय हमारी एक दूसरे पर पुनः दृष्टि पड़ी। प्रेमाश्रुपूर्ण नयनोंसे मेरी ओर देखते हुए प्रेम गद्गद् मधुर वाणीमें फिर बोले—"दादा! तुम तो बड़े सुन्दर हो! तुम्हारे ठाकुरजी भी बड़े सुन्दर हैं, परन्तु बहुत छोटे हैं"।

मैंने उत्तर दिया—"तुम भी तो सुन्दर हो। तुम्हारी दाढ़ी भी सुन्दर है। तुम्हारी चालमें नृत्य है, वाणीमें मधु है। मैं छोटा हूँ, मेरे ठाकुरजी भी छोटे हैं, मेरा श्रीमन्दिर भी छोटा है। प्रभुप्रियाजी छोटेके पास छोटे ही होकर आये हैं।"

बसन्त साधु—"तुम दादा हो या दीदी हो?"

मैं—"तुम्हारी आँखोंमें क्या रूप दीखता है?"

बसन्त साधु—"दीदी! छिः! क्या कह गया? तुम तो गोसाईं हो। मैं गोसाईंसे बहुत डरता हूँ।"

मैं—"भय क्या है? दादा! दिल खोलकर अपने दिलकी बात मुझसे निःसंकोच कहो।"

बसन्त साधु—"मैं तुम्हारे चरणोंकी दासी हूँ। तुम्हारे कुञ्जमें मेरे प्रभु-प्रियाजीका विलास होता है। तुम जटिला-कुटिलासे नहीं डरते, परन्तु मैं डरती हूँ। तुमने एक बार लिखा था—

कुले दिये कालि, देइ करतालि, गौर-गौर बलिया।	कुलको कालिख लगाकर, ताली बजाकर, गौर-गौर कहते हुए कलङ्क
कलंक सहिब, हासिब गाइब, सरब समक्षे नाचिया।	सहूँगी, हँसूँगी, गाऊँगी और सबके सामने नाचूँगी। यह असती
कलङ्किनी नाम, मोर बड़ मान, असती ए हरिदासिया।	हरिदासिया 'कलङ्किनी' नाममें अपना गौरव समझती है।

ये बातें मुझे बहुत अच्छी लगी थीं। मृणाल दादाने तुम्हारे 'गौर-प्रेमकी गम्भीरता' शीर्षकसे एक निबन्ध लिखा था।"

मैं—"मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कुछ भी नहीं जानता। मृणाल दादा प्रेम करते हैं, स्नेह रखते हैं। क्या-क्या कह जाते हैं।"

बसन्त साधु—"तुम कौन हो, सो तुम नहीं जानते। मैं कहता हूँ सुनो। तुम मेरे गुरु हो। यह मेरा गुरु-कुञ्ज है।"

मैं—"जानता नहीं, मैं तुम्हारा गुरु कैसे हो गया? तुम्हारे साथ तो मेरा यही प्रथम साक्षात परिचय है।"

बसन्त साधु—"मैंने स्वप्नमें तुमसे श्रीगौराङ्ग-युगल-मन्त्र प्राप्त किया है—यह बात बहुत पहले ही मैंने पत्र द्वारा तुम्हें बतला दी थी। भूल गये क्या?"

मैं—"स्वप्नकी बात छोड़ो दादा! तुम्हारे गुरु तो शिशिर बाबू हैं।"

बसन्त साधु—"शिशिर बाबूने तुम्हारे अन्दर प्रवेश किया है, अतः तुम मेरे गुरु हो।"

मेरे कानोंमें वह स्वप्न-प्राप्त मन्त्र कहकर उन्होंने बलात् अपने कानोंमें पुनः मेरे द्वारा कहलवा लिया। मैं काठकी पुतलीके समान चुपचाप बैठा रहा, कुछ बोल ही न सका। अन्तमें फिर वे ही बोले—"स्वप्न-प्राप्त-मन्त्र गुरुके स्थान पर जाकर फिरसे कानमें लेना पड़ता है। इसी कारण मैंने इस सुयोगका उपयोग कर लिया।"

इतना कहकर बसन्त साधु मेरे चरण पकड़कर पुनः रोने लगे। मैं बड़े असमञ्जसमें पड़ गया। क्या कहूँ, कुछ समझमें न आया। अकस्मात जो मनमें स्फुरणा हुई वही कहने लगा।

मैंने कहा—"दादा! तुम तो विधिकी परवाह नहीं करते, फिर तुमने यह जो किया है वह तो शास्त्र-विधि है। राग-मार्गमें तो विधिका बन्धन है ही नहीं।"

उन्होंने उत्तर दिया—"तुम्हारे गोस्वामी प्रभुगणोंने ही सम्प्रदाय बांध रखा है। तुम नित्यानन्द-परिवारके हो, अतएव इस बार तुम्हारे और मेरे बीच पक्का सम्प्रदाय-सम्बन्ध हो गया।" इतना कहकर उन्होंने उपस्थित निजजनोंसे कहा कि यह विष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्ज हम लोगोंका गुरु-कुञ्ज है।

इसके पश्चात् मैं बसन्त साधुका हाथ पकड़कर उन्हें घरके भीतर ले गया। एक बात लिखना भूल गया कि 'श्रीमां' ने आते ही मुझे 'गोपाल' कहकर सम्बोधित किया तथा गोदमें लेकर मधुर-स्नेहपूर्ण बातों द्वारा सन्तुष्ट करके घरके भीतर मेरी पत्नी और कन्याके साथ चर्चा करने लगीं। बसन्त साधु और मैं उनके पास भीतर आये। श्रीबसन्त साधु इतनी देर तक 'श्रीमां' को देख न पानेसे अस्थिर हो उठे थे। उनका स्वाभाविक बाल्यभाव था। बसन्त साधुने झटपट जाकर 'श्रीमां' से पूछा—"मां! मेरी भाभी कौन है?" श्रीमांने मेरी गृहिणीको दिखा दिया। बसन्त साधुने उनको प्रणाम करके कहा—"मेरे बड़े भाईके न होने पर मेरे लिये 'भाभी' दुर्लभ वस्तु थी। मैं बचपनमें जब रामायण पढ़ता था तो श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीके लीला-प्रसंगको पढ़कर मेरे मनमें अपूर्व आनन्द होता था। सोचता था कि भाभी देवरके लिये सर्वाश्रय है। एक ओर वह जैसे मातृभक्ति ग्रहण करती है, दूसरी ओर वही सख्यभावका पोषण करती है। इस जगतमें रसाश्रयका ऐसा अपूर्व सम्बन्ध अन्यत्र नहीं मिलता। इस जीवनमें यह अपूर्व वस्तु प्राप्त होनेकी सम्भावना न देखकर मनमें बड़ा क्षोभ होता था। परम प्रेममयी श्रीविष्णुप्रिया ठकुरानीने मेरे मनके दुःखको देखकर इस अपूर्व लीला रंगसे मेरे मनकी साध पूरी कर दी।" इतना कहकर बसन्त साधुने मेरी गृहिणीके साथ देवरोचित रसालापमें आनन्दका तूफान खड़ा कर दिया। उपस्थित रमणीवृन्द प्रेमानन्दमें मग्न हो गयीं।

'श्रीमां' का अपूर्व मातृभाव था। जगतवासी समस्त पुरुष उनके 'गोपाल' थे। उनके पति भी उनके 'गोपाल' थे और जितनी स्त्रियाँ थीं वे सभी दादाके लिये मां-बहिन थीं। उनकी स्त्री भी उनकी 'श्रीमां' थी। इस कोटिके पति-पत्नीके बीच समाज-विरुद्ध इस प्रकारके मातृभाव सम्बन्धके होने पर एकत्र भजन-भोजन-शयन आदि लोक-दृष्टिमें वर्जित होने पर भी बसन्त साधु जैसे इन्द्रियजयी महापुरुषके लिये गुरु-कृपा तथा उनकी आदेशवाणीसे ही यह पूर्णतः सफल हुआ था। वास्तवमें इस अपूर्व आदर्श चरित्रके बीच जगतमें एक महान प्रेम-शिक्षाकी सृष्टि हुई है। बसन्त साधु और उनकी पत्नीके प्रति उनके गुरुदेव अभिन्न नित्यानन्दजीकी आदेशवाणी हुई थी:—

तोमरा युगल लइया सुखे।
खेलिब ए भावे देखिबे जीवे॥
श्रीगौराङ्ग प्रेम पवित्र कत।
ना बूझिया जीव आश्रये रत॥
पत्नीभाव छाड़ि मातृभाव धर।
प्रेमेर बन्धन तबे हबे दृढ़॥
कि भय तोमार आमि तव भाइ।
बलराम दास जानिओ निताइ॥

धर्मजगतके इतिहासमें श्रीदादा और श्रीमांके समान अपूर्व आदर्श चरित्र और कहीं देखनेमें नहीं आता। बहुतसे साधु महापुरुषोंने स्त्री-सङ्गका त्याग किया है, स्त्री-जाति-मुख-दर्शन भी नहीं किया, अपनी परिणीता पत्नीको मातृ-सम्बोधन कर इस जन्मके लिये गृह-संसार परित्याग किया है। परन्तु बसन्त साधुके समान अपनी परिणीता पत्नीको—जिसके गर्भसे दो उपयुक्त पुत्र उत्पन्न कर दीर्घ काल तक गृहस्थ धर्मका निर्वाह किया हो—माता कहकर साथ-साथ रहते हुए आजीवन इस अलौकिक भाव सम्बन्धको निभाने वाला महापुरुष इस रत्नगर्भा धरित्रीपर शायद ही और कोई रहा होगा। कामजयी पुरुष जगतमें बिरले ही होते हैं। ब्रह्मादि देवता गण भी इससे बच नहीं सके। बसन्त साधु उस बलवान कामेन्द्रियको दाँत उखाड़े हुए काल-सर्पके सदृश निरुपद्रव और निष्क्रिय कर चुके थे। इस एक गुणसे ही ये जगतपूज्य महापुरुष हैं।

पुरुषोत्तम-क्षेत्र पुरीकी यात्रा

बसन्त साधुने श्रीधाम नवद्वीपसे उसी वर्ष पुरुषोत्तम क्षेत्रके लिये प्रस्थान किया। उनके साथ थे सस्त्रीक श्रीताराचन्द्र सिंह एवं अब्दुल्लापुरके श्री चन्द्रकुमार चक्रवर्ती। श्रीक्षेत्रमें रथारूढ़ श्रीश्रीजगन्नाथ देवके दर्शनोंके लिए उनका मन व्यग्र हो रहा था। प्रस्थानके दिनके पूर्व उन्होंने श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्जमें आकर हमारे साथ इष्टगोष्ठी की और मेरी पत्नीसे 'भाभी' कहकर सम्भाषण किया। बातोंही बातोंमें

बसन्त साधुने उनसे कहा—"भाभी ! हमारे साथ जगन्नाथजी चलोगी ?" उन्होंने उत्तर दिया—"यह सौभाग्य क्या श्रीजगन्नाथजी मुझको देंगे ?" बसन्त साधुने हँसकर कहा—"आपका सौभाग्य शिव-विरञ्चि अभिवाञ्छित है। दादाको साथ लेकर आप अवश्य आवें । हमलोग आगे जाकर वास-स्थान ठीक करके पत्र देंगे।" उन्होंने मेरे दोनों हाथ पकड़कर अपनी स्वभाव-सुलभ सरलतापूर्ण मधुर शब्दोंमें कहा—"दादा ! आपको इस बार सप्नीक श्रीक्षेत्र जाना पड़ेगा। मेरे सिरकी सौगन्ध।"

मैं और कोई बात न कह सका। बसन्त साधुने हम लोगोंसे विदा लेकर अपने साथियोंके साथ दूसरे दिन श्रीक्षेत्रके लिये प्रस्थान किया । उनके प्रस्थान करनेके दो तीन दिनके बाद उनका एक पत्र आया "स्वर्गद्वारमें महाराज मनीन्द्रचन्द्र नन्दीका एक छोटा-सा घर भाड़े पर लिया गया है, आप लोग शीघ्र आवें।" आषाढ़का महीना था, सामने श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा थी। मेरी गृहिणीने कहा—"ऐसा सुयोग नहीं छोड़ना चाहिये, चलो आज ही चलें।" घरमें तैयारी होने लगी। स्त्री, कन्या और वृद्ध ज्येष्ठ बहिनके साथ दूसरे दिन हम लोगोंने श्रीक्षेत्रके लिये प्रस्थान किया । यथासमय पुरी पहुँचकर स्वर्गद्वारमें उस भाड़े किये हुए मकानको खोजकर वहाँ पहुँचे। पण्डा-लोगोंका दल पीछे पड़ गया था। पण्डाका नाम पूछनेपर अकस्मात मेरे मुँहसे "विश्वम्भर पण्डा" निकल पड़ा। फिर क्या था, एक विश्वम्भर नामके पण्डा आकर साथ लग गये। हम सब स्वर्गद्वारमें जाकर बसन्त साधु और श्रीमांके पास पहुँचे। उन्होंने बड़े आदर सहित हमलोगोंको रहनेके लिये स्थान दिया । वसन्त साधु अपनी भाभीसे नाना प्रकारकी हँसीकी बातें करने लगे। वे बोले—"भाभी ! इस बार रथारूढ़ श्रीजगन्नाथजीके युगलजोड़ी सहित दर्शनोंका यह फल मुझे देना होगा।" उत्तर मिला—"तुम तो वैष्णव हो, किसी फलकी कामना तुम्हारे लिये उचित नहीं है।" बसन्त साधुने कहा—"श्री जगन्नाथ-दर्शनका फल श्रीगौराङ्गकी प्राप्ति तो मैं चाहूँगा ही। अन्य फल 'पुनर्जन्म न विद्यते' मुझे नहीं चाहिये। आप मुझे आशीर्वाद दें कि इसी जन्ममें श्रीगौराङ्गको प्राप्त कर सकूँ।"

हमलोगोंने एक साथ श्रीधाममें रथारूढ़श्रीजगन्नाथजीके दर्शन किये। १५-१६ दिन तक नित्य एक साथही समुद्रमें स्नान किया करते, एक साथ प्रसाद पाया करते। आनन्दपूर्वक समय कटा। बसन्त साधु मांका अञ्चल पकड़कर श्रीक्षेत्रके मार्गमें चलते, समुद्र स्नानको जाते, क्षण भर भी श्रीमांका सङ्ग छोड़कर नहीं रह सकते थे। प्रातः नींद टूटते ही मधुर प्रभाती कीर्तन करते हुए बहुत हँसीकी बातें करते, नाना प्रकारसे गौर-कथा कहते। वे बड़े ही रसिक पुरुष थे।

एक दिन समुद्र स्नानके लिये हम लोग कई स्त्री-पुरुष आपसमें हाथ पकड़कर कमरमें कपड़े बाँधकर तथा उन्हें अच्छी तरह लपेट कर समुद्रकी तरंगोंका सादर आवाहन करने लगे। उस समय और भी बहुत से स्त्री-पुरुष स्नान करनेको आये थे।

हमलोग सभी एक साथ समुद्र-स्नानके लिये उद्यत थे। प्रबल तरङ्गाघातसे उस बालुका-मय समुद्र तटपर हम लोग कुष्माण्डके सदृश आपसमें लोट-पोट होने लगे। कहाँका कपड़ा कहाँ चला गया। हम सब तितर-बितर हो गये। कमरेके आपसमें बाँधे कपड़े खुल गये। बड़े बड़े बालुकणोंके आघातसे हाथ पैरके कोहनी घुटने रक्ताक्तसे हो गये, स्त्री-पुरुष अर्द्ध-नग्नावस्थामें कुष्माण्डकी तरह लोटपोट होते रहे। प्राणरक्षार्थ एक दो जगह तो अज्ञातमें स्त्री-पुरुष आपसमें चिपट भी गये। समुद्र महाराजका यह अपूर्व लीला-रङ्ग देखकर सबसे पहले बसन्त साधु श्रीमांको खींच ले गये और दौड़कर किनारे पर खड़े होकर दोनों हाथोंसे ताली बजाते हुए उच्च स्वरसे कहने लगे—"कैसा मजा है? हमारे ठाकुर दादा और नाती-नातिनियोंके साथ समुद्र महाराज कैसा सुन्दर मधुर लीलारङ्ग कर रहे हैं।" हम लोग उस समय वस्त्र सँभालते हुए, लज्जासे मस्तक नीचा किये किनारे पर आये। बसन्त साधु धीरे-धीरे हमारे निकट आकर कई प्रकारके हास-परिहास करने लगे। उनका स्मरण आनेसे आज भी मुझे हँसी आती है। वे रस-शास्त्रके पूरे पण्डित थे। समुद्र स्नानके लिये जाने पर वहाँ उनका बाल-स्वभाव उमड़ पड़ता। पाँयचा कसकर, दोनों हाथोंसे ताल ठोककर श्रीमांका अञ्चल पकड़कर समुद्रकी ऊँची तरङ्गोंकी लवण-अम्बु-राशिके बीच जब वे बाल-भावसे जलक्रीड़ा करते तब प्रेमानन्दका श्रोत फूट पड़ता। वह दृश्य बड़ा मनोरम होता।

प्रसाद पानेके समय बसन्त साधुका लीला-रङ्ग मधुरसे मधुरतर बोध होता था। वह जगन्नाथ क्षेत्रमें हम लोगोंको पाकर दिल खोलकर प्रसादके माहात्म्यका कीर्त्तन करते थे, और स्वयं प्रसाद लेकर हम सबके मुँहमें दे देकर फिर स्वयं खाते थे। जगन्नाथके श्रीमन्दिरसे उत्तम-उत्तम प्रसाद लाकर हम लोगोंके सहित महा आनन्द-पूर्वक महोत्सव करते थे।

बसन्त साधुका श्रीमांके साथ मातृभावका पूर्ण परिचय मुझे श्रीक्षेत्रमें मिला। वे एक दिन घरके बरामदेमें बैठे हमारे साथ गौर-कथा कह रहे थे। उस समय किसी एक आदमीको मेलेके बाजारसे खरीदकर एक छोटा-सा मिट्टीका हाथी लिये उस रास्तेसे जाते देखकर बसन्त साधु श्रीमांका अञ्चल पकड़कर जिद्द करने लगे—"मां! मैं यह हाथी लूँगा"। श्रीमांने कहा—"इस समय मैं इसे कहाँसे लाऊँ, बाजार जाकर देखूँगी, यदि मिल गया तो खरीदकर ला दूँगी।" बसन्त साधु बालककी तरह श्रीमांकी गोदीमें जाकर छलछल नेत्रोंसे जिद्द करने लगे "मां! मैं तो यही हाथी लूँगा"। आखिर श्रीमांने घरके दरवाजेसे बाहर निकलकर जो व्यक्ति हाथी लिये जा रहा था उसको पुकारा और आने पर बोलीं—"बाबा! यह हाथी तुम कहाँसे लाये हो? क्या दाम है?" उसने उत्तर दिया—"बाजारमें मिलता है, केवल एक आना दाम है।" श्रीमांने कहा—"बाबा! यह हाथी तुम मुझको दे दो, हमारा 'गोपाल' बड़ा जिद्द कर रहा है, मैं तुमको दो आने देती हूँ, तुम इसके बदलेमें दो हाथी खरीद लेना।" उस व्यक्तिने

बिना विवाद किये हाथी श्रीमांको दे दिया। श्रीमांने उस हाथीको गोपालके हाथमें देकर कहा—"गोपाल ! तुम बड़े दुष्ट बालक हो, बड़े जिद्दी हो, इस तरह क्या मांको पागल कर दिया जाता है ?" बसन्त साधुने उत्तर दिया—"मां ! तुम्हारी बात सुनकर मुझे हँसी आती है। बच्चा मांके पास जिद्द नहीं करेगा तो किसके पास करेगा ?" यह कहते हुए परम प्रेम-पूर्ण निर्विकार चित्तसे श्रीमांके गलेमें बाँह डालकर कितना ही प्यार करने लगे। यह दृश्य अभूतपूर्व और बड़ा ही मनोरम था।

इसकी अपेक्षा एक और अपूर्व चित्रका यहाँ वर्णन करता हूँ। मैं सदासे ही दुष्ट हूँ। परीक्षा किये बिना मुझे किसी प्रकार विश्वास नहीं होता। अपनी आँखोंसे देखे बिना सत्यासत्यका निर्णय नहीं कर पाता। एक दिन ब्राह्म मुहूर्तमें मेरी निद्रा भंग हुई। श्रीदादा और श्रीमां मेरे बगलके कमरेमें एक साथ सोये थे। मछहरीके भीतर दोनों जने सोये थे। धीरे-धीरे द्वार खोलकर जो मैंने देखा उससे मेरे जैसे पाखण्डीका मन भी वात्सल्य रससे द्रवीभूत हो गया। मैंने देखा कि श्रीमांके वक्षके बीच मुँह छिपाये बसन्त साधु घोर निद्राके वशीभूत हैं, श्रीमांका एक स्तन उनके मुँहमें है और दूसरा हाथमें पकड़े हैं। अहा ! कैसा मधुर बालभाव है ! कैसा अपूर्व मातृभाव है ! पहले जो स्वामी-स्त्री थे उनका वह सम्बन्ध उनके दयालु गुरुदेवने उच्छेद कर दिया। जिस पत्नीके गर्भसे दो सन्तानें उत्पन्न हुई हों उसके साथ ऐसा विशुद्ध मातृभाव स्थापन करके उसकी इस प्रकार अलौकिक भावसे रक्षा करना सामान्य मनुष्यका काम नहीं। बसन्त साधु साधारण मानव नहीं थे, वे उससे भी ऊपरकी वस्तु थे। इन्द्रियजयी महापुरुष अनेक हैं, किन्तु इस प्रकार कालसर्पको लेकर कितने आदमी खेल खेल सकते हैं ? कामजयी होना बड़ा कठिन व्यापार है।

बसन्त साधुको यथार्थ रूपमें जिन्होंने पहचाना था, उनका कहना है कि ऐसे महापुरुष साधुजन कलयुग क्या, किसी भी युगमें विरले ही होते हैं। केवल विद्या और पाण्डित्य-प्रतिभा होनेसे या शास्त्र-चर्चा करनेसे ही कोई महापुरुष नहीं होता। महा-पुरुष इन्द्रियजयी होता है। सर्वेन्द्रियजयी महापुरुषका नाम जगतके इतिहासमें नहीं मिलता। बसन्त साधुकी साधु-प्रकृति ही उनके साधुत्वका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। असाधु प्रकृतिके लोग इन्द्रियजयी नहीं हो सकते। वे सर्वभावेन सन्त थे, उनका स्वभाव था आनन्दमय। उनकी मूर्त्ति प्रशान्त और प्रेमभाव-व्यञ्जक थी, उनके दोनों नेत्र प्रेमपूर्ण थे, उनकी भाषा सरल-मधुर बालभाषाके समान थी, 'अमृतं बाल भाषितम्'। वृद्ध होने पर भी उनकी बातोंमें अमृत-वर्षण होता था। निन्दाकी बात उनके मुँह पर नहीं आती थी, वे अदोषदर्शी पुरुष थे। वे गृही होते हुए भी उदासीन थे, संसारी होते हुए भी विरक्त थे, विषयी होते हुए भी निर्विषयी थे। इस प्रकारके महापुरुषका सङ्ग न तो मेरे गुरु गोसाईं ने किया और न महन्त महाजनोंने। कारण बसन्त साधुके मुँह पर दाढ़ी थी। वे एकादशीके दिन प्रसादका सम्मान नहीं करते, न तिलक लगाते। इसलिए

सभी वैष्णवगण उनको सदाचार सम्पन्न वैष्णव बताते कुण्ठित होते थे । फल-मूलादिके आवरणको लेकर खींचातान करनेसे जैसे उनके मधुर रसका आस्वादन नहीं मिल सकता, उसी प्रकार बाह्य आचार व्यवहारसे साधुके साधुत्वका निर्णय नहीं किया जा सकता । वास्तविक साधु पुरुषोंका आचार-व्यवहार साधारण लोगोंके लिये दुर्बोध्य है । यही सिद्धान्त श्रीनित्यानन्दजीके सम्बन्धमें श्रीमन्महाप्रभु बता गये हैं ।

विशेष कारणवश बसन्त साधुने श्रीक्षेत्रसे २-३ दिन पहले ही अपने घरकी यात्राकी, हम लोग उसके बाद भी कुछ दिन उस वासेमें रहे । बसन्त साधुका सङ्ग पाकर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें हमको परम आनन्द प्राप्त हुआ । बसन्त साधु तीर्थ करनेके लिये पुरुषोत्तम क्षेत्र नहीं गये । वे साधु पुरुष थे, तीर्थको तीर्थत्त्व प्रदान करनेके लिये ही साधु-महापुरुष तीर्थ जाते हैं, 'तीर्थी कुर्वन्ति साधवः' ।

बसन्त साधुके विरहमें तीर्थ-वास हमको नीरस लगने लगा । सेतुबन्ध रामेश्वर पर्यन्त हमारी जानेकी इच्छा थी । हम दुःखित होकर श्रीक्षेत्रसे ही श्रीधाम नवद्वीप वापस लौट आये ।

पुरी-यात्राके बाद

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रसे हम श्रीधाममें श्रावण मासमें लौटे । इसके एक महीने बाद मेरे पत्रके उत्तरमें श्रीदादाका एक मधुमय पत्र पाकर मैं कृतार्थ हो गया । मैंने अपने पत्रकी नकल नहीं रखी थी । स्मरण नहीं कि क्या लिखा था जिसको पढ़कर उनको इतना आनन्द मिला कि उन्होंने उसको अपने सब निजजनोंको दिखाया । श्रीदादाके इस मधुमय पत्रमें तारीख १४ आश्विन १३२८ साल लिखी थी । उस अमूल्य पत्रका अविकल अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :—

॥ श्रीश्रीगौर विष्णुप्रिया जयतः ॥

"**श्रीश्रीचरण कमलेषु,**

श्रीगुरुके श्रीचरणोंका अवलम्बन ।

प्राणोंके दादा ! प्राणोंकी दीदी ! प्राणोंके प्राण ! इस कङ्गालका साष्टाङ्ग दण्डवत । आपका आशीर्वाद-पत्र जन-जनको दिखाकर, जन-जनको सुनाकर मैं गर्व-बोध करता हूँ । आप लोगोंको यों पहचाननेका और पकड़पानेका मेरे लिये कोई कारण नहीं था । महामायाकी कृपासे अब आपके श्रीचरण-कमल प्राप्त हुए हैं । और भी समझा कि ये महामाया ही योगमाया है ।

दादा ! प्राण-प्रिय दादा ! इस बार आपकी श्रीचरणधूलि प्राप्तकर नया जीवन पा गया हूँ । अब मैं चारों ओर श्रीश्रीरसिकशेखरकी रसिकता अनुभव कर जगतको सुखमय देख रहा हूँ । दादा ! इस सुखमय आनन्द-सागरमें मुझे डुबाये रखो न ! मैं अभिमानी जीव हूँ, किसी अपराधसे कहीं फिर बह न जाऊँ, यही चिन्ता है । भीतर-

बाहर देखता हूँ श्रीप्रेममय रसिकशेखरकी रस-चातुरी। सुना था कण-मात्र प्रेममें जगत डूब जाता है। अब उसे देख रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ। आपकी चरण-धूलिकी महिमामें कितना बल है। हृदयकी बात कह नहीं पाता, इसका मनमें क्षोभ रहता है। घर आने पर श्रीमांको प्राप्तकर भ्रातगणोंके मृत शरीरमें मानों प्राण आ गये। नित्य कीर्त्तन-महोत्सव चल रहा है। इसी बीच कई स्थानोंमें विशेष अनुरोधसे वाध्य होकर भ्रमण करने चला गया था। प्रत्येक स्थानमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके विग्रहका सानुराग पूजन हो रहा है। जहाँ-तहाँ आनन्द और भाइयोंके हृदयका भाव देखा, वह सब लेखनीसे लिखा जाना सम्भव नहीं है। दादा! इस आनन्द-सिन्धुमें डुबाये रक्खो, जिससे फिर कभी बह न जाऊँ। श्रीमांके श्रीअङ्गोंका कुशल है। सन्तानगणके साथ विशेष आनन्दसे हैं। इस बार तीर्थ-भ्रमणमें आप लोगोंको पाया है, हमारे लिये यही चर्चाका विषय है। जितना ही बोलता हूँ, उतना ही अभिनव रस पाता हूँ और भाइयोंको भेंट करता हूँ।

जय गौर-विष्णुप्रिया, प्राण गौर-विष्णुप्रिया। जय हमारे श्रीविष्णुप्रियाजीके गण!

आपका अधम भाई—
बसन्त।"

बसन्त साधुकी बात याद आनेपर, उनके संग सुख स्मरण होनेपर मेरे मनमें अनिर्वचनीय प्रेमानन्दका सञ्चार होता है। मैं सहस्र मुखसे उनके गुणगान करता हूँ। **संसारमें सबसे बड़ा पाप है जीवके मनमें उद्वेग पैदा करना और सर्वश्रेष्ठ पुण्य है जीवके प्राणोंको सुख प्रदान करना।** बसन्त साधुके जीवनका व्रत था संसारके संतापसे दग्ध जीवके हृदयमें सुख प्रदान करना—मनको आनन्दित करना। इस कार्यमें वे सिद्ध महापुरुष थे। मैंने उनके मुँहसे कभी ऐसी बात नहीं सुनी, जिससे किसीके मनमें किसी प्रकारका उद्वेग पैदा हो। वे सदानन्द पुरुष थे, वे सदा ही हँसमुख प्रफुल्ल चित्त और प्रसन्न मन रहते थे। उनको देखकर स्वतः मनमें भगवत्स्फूर्ति होती थी। उनके साथ बातें करते समय हृदयमें प्रेमानन्दकी तरङ्ग उठा करती थी, उनके अङ्गकी वायुसे सर्व पाप दूर हो जाते थे। उनके निज जनोंसे मुझे पता लगा कि संसार-तापसे दग्ध न मालूम कितने लोग दूर-दूरसे आकर अपनी मनोवेदना उनसे कहते और उनके दर्शन करके, उनके मुँहसे मीठी-मीठी बातें सुनकर एक बार उनके हाथका स्पर्श प्राप्तकर उन लोगोंके सारे दुःख-ताप, सारी ज्वाला-यन्त्रणा दूर हो जाया करती और कहनेको कोई बात नहीं रह जाती। इस प्रकारके पारस-पत्थर थे हमारे बसन्त दादा। उनके गुणगानकी इयत्ता नहीं। जैसे-तैसे दो-चार बातें कहकर मैंने किसी प्रकार अपनी आत्मशुद्धि की है।

त्रिशके लिये प्रस्थान

"बसन्त दादाका बहुतही आग्रहपूर्ण निमन्त्रण था कि बङ्गाब्द १३३० सालके श्रावणके झूलन-पूर्णिमाके उत्सव पर हम लोग त्रिश आवें तथा कामिल्लाग्रामके सुप्रसिद्ध धनाढ्य एवं गौरभक्त श्रीअक्षयकुमारजी रायके घर श्रावणकी ३२वीं तारीखको श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल श्रीमूर्तिकी प्रतिष्ठाके महोत्सवमें सम्मिलित भी होवें। कलकत्ता डाक-विभागमें इतनी जल्दी छुट्टी मिलने की संभावना बहुत कम थी इसलिये मैंने उन्हें स्थिति बताते हुए वहाँ जानेकी संदिग्धताका-सा समाचार लिखा। इस पर उन्होंने पुनः मुझे निम्नलिखित पत्र लिखा :—

परमाराध्य प्राणप्रिय दादा,

अनेक दिनोंसे एक वासना थी, वह वासना प्रियाजी पूर्ण करेंगी या नहीं इसको वे ही जानें। आप इस उत्सवमें पधारेंगे इसकी मैंने सब भक्तवृन्दमें घोषणा करदी है। सभी आपके शुभागमनका सम्वाद पाकर आनन्दसे नाच उठे हैं। आप आनेकी चेष्टा रखें, प्रभु और प्रियाजीकी इच्छासे आपको छुट्टी मिल जायगी, मेरे जीवनकी अभिलाषा पूर्ण होगी। यदि हम लोगोंके दुर्भाग्यसे आपकी चरण-धूलि इस देशको प्राप्त न हो सके तो प्रियाजीके सेवक अपने एक प्रतिनिधिको भेजनेकी कृपा करें।

श्रीकुञ्जलाल गोस्वामी पधारें तो कैसा रहे? मैंने तो और किसीको भी पत्र नहीं लिखा। आपका पत्र आनेसे मेरे मनको शान्ति होगी। आपकी चरणधूलि मेरे घरमें नहीं पड़ेगी तो मुझे दारुण दुःख होगा। आपके चरणोंमें मेरा बार बार निवेदन है कि आप अवश्य पधारें। अपने मनकी अन्तिम बात आपको इस बार बताऊँगा।

श्रीमाँके स्नेह। जय गौर-विष्णुप्रिया।

आपका सेवक,
बसन्त।"

यह पत्र पाकर मेरा मन बड़ा अस्थिर हो उठा। छुट्टीका आवेदन-पत्र पहिले दिया हुआ था, दूरभाष (टेलीफोन) पर फिर ताकीद की। दस दिनकी छुट्टी मंजूर हो गयी है यह संवाद पाते ही मैंने उसी दिन श्रीदादाको सूचना भेज दी और त्रिश जानेकी तैयारी करने लगा। मेरे साथ श्रीनित्यगोपाल गोस्वामीका भी जाना स्थिर हुआ। वे नवद्वीपसे आकर मेरे पास उपस्थित हो गये। श्रीदादाके कृपा-पात्र, एक परम सेवानिष्ठ युवक श्रीमान् जगदीशचन्द्र हम लोगोंको साथ ले जायेंगे यह निश्चय हुआ। यह समाचार पाकर श्रीदादाको वर्णनातीत आनन्द हुआ। यह वर्षाकाल था। पूर्व बङ्गालमें नद-नदी-नाले, घाट-बाट, देश-ग्राम सभी उस समय जलमय हो रहे थे। ऐसे समय हम लोग वहाँ जानेको प्रस्तुत हुये थे।

हम लोगोंने २६वीं श्रावनके दिन सियालदा स्टेशनसे चट्टग्राम एक्सप्रेस गाड़ी द्वारा त्रिश कम्पनीगञ्जके लिये प्रस्थान किया। दादाके विशिष्ट अनुगत अन्तरङ्ग भक्त श्रीजगदीश साथ थे ही। वे बड़ी सम्हाल पूर्वक रेल, जहाज और फिर नइनपुर स्टेशनसे नाव द्वारा हमें अपने गंतव्यकी ओर ले गये। नइनपुरमें श्रीदादाके सुपुत्र श्रीकालाचाँद भी अपने दल बलके साथ उपस्थित थे। ३१वीं श्रावणके दिन अनुमान ९-१० बजे हम लोग नहरके किनारे त्रिशके घाट पर पहुँचे।

महाप्रयाण

बसन्त दादाके साथ मेरा यह मिलन सर्वथा नया नहीं था। विगत १० वर्षोंसे पत्राचारके माध्यमसे मेरा उनका परिचय था। विगत २ वर्षोंमें श्रीधाम नवद्वीपमें तथा श्रीक्षेत्रमें दो बार उनका सङ्ग लाभ प्राप्त करनेका सुयोग और सौभाग्य भी प्रभु कृपासे मुझे मिला था। वसन्तदादा गुरुबुद्धिसे मेरा प्रगाढ़ सम्मान और भक्ति करते थे। वे अत्युज्ज्वल नवद्वीप-रसके रसिक भक्त थे, उस मधुर रसके विन्दु मात्रके आस्वादनकी क्षमता मुझमें नहीं, अतएव मैं भी उनको उस अत्युज्ज्वल नवद्वीप-रसके भजनका गुरु मानकर परम प्रेममय दादा कहकर सम्बोधन करता था।

हमारी नाव त्रिशमें पहुँचते ही बसन्त दादा प्रेमानन्दमें उन्मत्त होकर अपने भक्तगण और अपूर्व सङ्कीर्त्तन-दलके साथ हमारे स्वागतार्थ अपने नहरके किनारे-किनारे अगवानीके लिये आगे बढ़े। कामिल्लाके उस उत्सवके उपलक्ष्यमें उस समय बहुतसे भक्तजनोंका त्रिशमें शुभागमन हुआ था। उस दिन बसन्त दादाका अपूर्व भाव था, उनके मुँहमें मानो हँसी समाती नहीं थी, मनमें भरपूर आनन्द था। उनके मनमें बड़ी साध थी कि मैं एक बार त्रिशमें उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल मूर्त्ति तथा उनकी अनुरागपूर्ण प्रेम-सेवाकी रीतिके दर्शन करूँ। इसके लिए उन्होंने पहले भी कई बार विशेष भावसे अनुरोध किया था। कुतेकी वृत्तिधारी मुझ जैसे जीवाधम विषय-कीटको यह सौभाग्य केवल एकमात्र प्रेममय बसन्त दादाके प्रबल प्रेमाकर्षणसे ही प्राप्त हुआ। उस आकर्षणकी कथा लिखनेमें उसका एक अलग प्रवन्ध हो जायगा। अतः उसके सम्बन्धमें यहाँ कुछ नहीं कहूँगा।

बसन्त दादा हमारा स्वागत करके **'प्राण गौर-विष्णुप्रिया, जय गौर-विष्णुप्रिया, जय शचीनन्दन, विष्णुप्रियार-प्राणधन'**—इत्यादि मधुमय नाम-कीर्त्तन करते करते भक्तवृन्दके साथ हम लोगोंको श्रीमन्दिरमें ले आये। वह दृश्य कैसा भक्ति-उद्दीपक था, कैसा विचित्र प्रेमसे परिपूर्ण था; वे भाव कैसे अमृतमय थे, कैसे मधुमय थे! जिन्होंने यह दृश्य देखा सदाके लिए उनके हृदय-पटलपर स्वर्णाक्षरोंमें उसका सजीव चित्र अङ्कित हो गया। भावनिधि दादाके उस दिनके भाव अति अपूर्व, अति अद्भुत, अति महान, और अति प्राण स्पर्शी थे। उनकी उस दिनकी आनन्दमयी परम पवित्र श्रीमूर्त्ति

जिन्होंने भली भाँति ध्यानसे देखी थी, वे समझ पाये थे कि हमारे प्रेममय दादा एक नये ही प्रेम-भावमें तल्लीन हैं। इतना भरपूर आनन्द, इतना उत्साह, प्रेमातिशय्य भाव उनका पहले कभी किसीने नहीं देखा था।

कीर्त्तनके समय मार्गमें और कीर्त्तन समाप्त होने पर श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें हम दोनोंका प्रेमालिङ्गन और प्रेम-क्रन्दन उपस्थित भक्तोंके लिए बड़ा ही भावोत्पादक हो गया था। स्नेहमयी श्रीमांके क्रोड़में मुख छिपाकर प्रेम-क्रन्दनमें मुझे जो आनन्द मिला, उनके परम पवित्र स्नेहाकर्षणकी 'गोपाल'! 'गौर'! की मधुर पुकारमें जो माधुर्य था, उनके आदर-सोहागमें जो मधुवृष्टि होती थी, उसे मुक्तभोगीके सिवाय दूसरा कोई नहीं जान सकता।

कीर्त्तन शेष होनेपर मेरे साथ दादाकी मनकी कितनी बातें हुई उनको विस्तार पूर्वक लिखा जाय तो एक ग्रन्थ बन जायगा। दादाकी प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीयुगल-विग्रह एक अपूर्व वस्तु है। ऐकान्तिक प्रेम-सेवाके फलसे श्रीविग्रह मानो चिर-सौन्दर्य और परिपूर्ण माधुर्यभावका अनुपम आधार बनकर श्रीमन्दिरको आलोकित करते हुए रत्नसिंहासनपर आसीन हैं और उनका प्रफुल्ल हास्य वदन, सहज स्वभाव-सुन्दर प्रमालिङ्गन भाव एवं परिपूर्ण नदिया-माधुरी-मय सुवलित सर्वाङ्ग सौष्ठव गठन नवद्वीप-रसलोलुप रसिक-भक्तवृन्दके मन-प्राण हरण कर रहे हैं। श्रीमूर्तिके दर्शन मात्रसे एक मधुमय प्रेमभावकी तरङ्ग, एक अभूतपूर्व नदिया-माधुरीकी किरण-छटा, बिजलीके प्रवाहके समान दर्शक वृन्दके अङ्गोंमें प्रवाहित हो जाती है। श्रीप्रभु व प्रियाजीकी प्रेमसेवाकी सुव्यवस्था, उनकी प्रिय वस्तुओं द्वारा भोगरागका प्रबन्ध, विचित्र वसन-भूषण और शैयासनादिकी परिपाटी देखकर नयन सार्थक हो गये। श्रीप्रभुके अपने मन्दिरमें और प्रियाजीके पित्रालयमें उन्हें जो सुख स्वच्छन्दता कभी नहीं मिली, आज इस त्रिश ग्राममें एवं पाण्डव वर्जित त्रिपुरा जिलेके नाना स्थानोंपर अनुपम सुखैश्वर्यसे श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया परम समादारके साथ पूजित और सेवित हैं—यह देखकर मेरे मन-प्राण प्रेमानन्दसे परिलुप्त हो उठे। श्रीविष्णुप्रिया परिवारके श्रीनित्यगोपाल गोस्वामी मेरे साथ थे, उनको ये सब बातें बताकर मैंने अपनेको शतधिक्कार दिया। वहाँ जो देखा उससे हमको अनेक शिक्षाएँ मिलीं।

भक्तगणोंके साथ प्रेमानन्द पूर्वक प्रसाद-भोजनके उपरान्त प्रेममय दादाने परम मङ्गल गौर-कथाके प्रसङ्गमें उन्होंने उस दिन मनकी अनेक बातें बताईं। मुझे क्या पता था कि मेरे प्राणप्रिय दादा हमको धोखेमें रखकर उसी दिन गौरधाम चले जायेंगे। बातोंही बातोंमें उस दिन सिद्ध चैतन्यदास बाबाजीकी बात उठाकर वे बोले—

"आमार भजन हइल सारा।
गौराङ्गेर कान्ता आमि, कान्त आमार गोरा॥"

इसके साथ उन्होंने यह भी कहा—"दादा ! मेरी बड़ी इच्छा थी कि महात्मा शिशिर बाबूको मेरे कुटीरके श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रहके दर्शन कराकर धन्य होऊँ, लेकिन मेरी वह आशा अपूर्ण ही रही । तुमने मेरे प्राणोंके ठाकुर-ठकुरानीको देख लिया इससे आज मेरा वह दुःख दूर हो गया, कारण **तुम्हारे देखनेसे शिशिर बाबूका देखना हो गया, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है** । मेरा काम पूरा हो गया, मेरा भजन भी पूरा हो गया, तुम्हारे साथ मिलन हो गया, तुमको मेरे प्राणोंकी वस्तु श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीविग्रह दिखा दिया, बस मेरी प्राणोंकी आकांक्षा पूर्ण हो गई ।"

दादाकी इन बातोंका मर्म समझनेकी शक्ति उस समय मुझमें नहीं थी । पहिले भी बातों ही बातोंमें एक बार दादाने मुझसे कहा था—"पहिले कितने जन्मोंमें कई देवताओंके नाम लेकर मरा हूँ, अबकी बार गौर-विष्णुप्रिया नाम लेकर मरकर देखूँ ।" आज फिर उन्होंने इसी ढंगकी बात कही । मैंने सहज रूपमें कहा—"इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है ।" दादा मेरे मुखकी तरफ देखकर मधुर मुस्कराए । इस हँसीका मर्म 'अबकी बार गौर-विष्णुप्रिया कहकर मर कर तुमको दिखाऊँगा' अब समझमें आया ।

इसके बाद दादाने स्वरचित श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया सम्बन्धी दो एक मधुर पद स्वयं पढ़कर मुझको सुनाए । सब भक्तवृन्द वहाँ उपस्थित थे । दादाके मुखसे उनके स्वरचित पद बड़े ही मधुर लगे । उनका परम सुख और आनन्दका विषय था श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिवा-सेवा-प्रकाश व श्रीनामकीर्तन—जिसके सम्बन्धमें कितनी ही बातें हुईं ।

कामिल्ल्या ग्राममें प्रतिष्ठित करानेके लिये श्रीधाम-नवद्वीपसे बनवाकर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी दारु-मूर्ति एक वर्ष पूर्व दादाके घर त्रिशमें मँगाई गयी थी । न मालूम क्यों वह मूर्ति दादाको पसन्द नहीं आई । उन्होंने दुबारा अपने भास्कर (मूर्ति निर्माता) द्वारा श्रीमूर्तिका पुनर्गठन एवं अङ्गराग अपने सम्मुख बैठाकर करवाया यह बात उन्होंने मुझे बताई और वही श्रीमूर्ति उन्होंने मुझे दिखाई भी । कैसी अनुपम श्रीमूर्ति थी । श्रीश्रीनदिया युगलकी रूप माधुरी अपूर्व थी । प्रियाजीकी श्रीमूर्ति तो मानो जीवित प्रतिमूर्ति ही हो । देखने मात्रसे ही प्राण शीतल होते और मन प्रेमानन्दसे विभोर हो जाता ।

अपराह्नमें श्रीनदिया युगलकी यही नव-मूर्ति लेकर कामिल्ल्या जानेका सब प्रबन्ध ठीक हो गया था । श्रीयुगल नव मूर्तिके मस्तकके लिये मुकुट, गलेके लिए हार, हाथोंके लिए बाजूबन्द, पैरोंके लिए नूपुर आदि दो-तीन हजार रुपयेके स्वर्णालङ्कार मंगाकर, दिव्य पटवस्त्र पहनाकर श्रीमूर्तिद्वयका अपूर्व शृङ्गार किया

गया। घाट पर एक अति सुन्दर बजरा तैयार था, एक अंग्रेजी-बाजेका दल नौका पर था। भक्तवृन्दोंके जानेके लिये १०-१२ नौकाएँ तैयार थीं। सङ्कीर्त्तन दलके सभी लोग प्रस्तुत थे। श्रीनदिया-युगल-श्रीमूर्तिको लेकर वाद्यभाण्ड और सङ्कीर्त्तनके साथ ससमारोह कामिल्ल्याके लिए प्रस्थान करना है। अनेक भक्त रमणीवृन्द अपने स्वामी अथवा आत्मीय स्वजनोंके साथ उत्सव दर्शनके लिये दादाके घर आई हुई हैं। उपस्थित सभी कामिल्ल्या जायेंगे। समय अन्दाज पाँच बजेका है। बसन्त दादाने स्नान करके वस्त्र बदला, और श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें आकर मुझको प्रणाम करके कीर्त्तनमें उतरे। उनके अपूर्व कीर्त्तनका प्रथम चरण था—**'विष्णुप्रियार प्राण गौराङ्ग गौराङ्गेर प्राण विष्णुप्रिया'**—इस पदको केवल तीन बार गाकर प्रेमानन्दमें मधुर नयन-रञ्जन नृत्य करते-करते श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीविग्रहके नेत्रोंमें अपनी दृष्टि स्थिर रखकर अपूर्व दर्शनानन्दमें तल्लीन होकर वे श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें लुढ़क गये। अब दादाको संज्ञा नहीं रही। शरीर शीतल, उत्तान नयन, बस, महासमाधिस्थ हो गये। मेरे प्राणप्रिय बसन्त दादा फिर न उठे। श्रीविष्णुप्रियादेवीने मानों उनको अपनी गोदमें ले लिया। संकीर्त्तन मृदुभावसे चलने लगा, श्रीमन्दिरका प्राङ्गण लोगोंसे खचाखच भर गया। व्याकुलसी स्नेहमयी श्रीमां आकर दादाको गोदमें लेकर बैठ गयीं, और करुण स्वरमें 'गोपाल ! गोपाल रे ! कामिल्ल्या नहीं जायगा ? बात तो करो ! बोलो तो सही !' इस प्रकार अपूर्व वात्सल्य-भावसे दादाको पुकारने लगीं। प्रेमक्रन्दनके कोलाहलसे श्रीमन्दिरका प्राङ्गण पूर्ण हो गया। भक्त-वृन्दकी हाहाकार-ध्वनिके साथ पुर-नारियोंके हृदय-विदारक क्रन्दनके मिलनेसे आनन्दोत्सवमें निरानन्दका स्रोत बह चला। कुछ समय तक समाधिस्थ रहकर सारी भक्तमण्डली और निजजनोंको रुलाकर पूर्वबङ्गको अन्धकारमय करके हमारे प्राणप्रिय दादा गौर-धाममें चले गये। उसके बाद जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करनेकी सामर्थ्य लेखनीमें नहीं है। श्रीमांकी दशा मैंने अपनी आँखोंसे देखी तो है, परन्तु उसको लिखकर व्यक्त करना मेरे लिए साध्य नहीं है। पता लगा था कि श्रीदादा अपने किसी अन्तरङ्ग भक्तको बता गये थे कि श्रीभगवान् युग-युगमें अपनी जननीको बहुत दुःख देकर गये हैं वे श्रीमांको भी कुछ दुःख देंगे। जो बात उन्होंने कही वही हो गई।

इस प्रकार तारीख ३१ श्रावण बङ्गाब्द १३३० साल, श्रावण शुक्ला पंचमी तिथि, गौराब्द ४३७ के दिन कुमिल्ला त्रिश निवासी रागमार्गके श्रेष्ठ साधक श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल भजन परायण, नवद्वीप-रस-रसिक-श्रेष्ठ भक्त प्रवर श्रीबसन्त कुमार दे महाशयने अपने स्वप्रतिष्ठित इष्ट देवता श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीविग्रहके मन्दिर प्राङ्गणमें गौर-कीर्त्तनानन्दके बीच अकस्मात समाधि प्राप्तकर गौरधाममें महाप्रयाण किया।

महाप्रयाण के बाद

बसन्त दादाकी हार्दिक इच्छा थी—कामिल्ल्यामें जाकर श्रीश्रीनदिया-युगल श्रीमूर्तिकी प्रतिष्ठाके कार्यको सम्पन्न करनेकी; श्रीमांका आदेशभी यही था। दादाकी वासनाको पूर्ण करना, और श्रीमांके आदेशका पालन करना अब हमारा प्रधान कार्य हो गया। इस कार्यका गुरुभार पड़ा मुझ जैसे अयोग्य जीवाधम पर। दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीमान् नृत्यगोपाल गोस्वामी तथा भक्त-मण्डलीके साथ श्रीविग्रहको लेकर नाव द्वारा हम लोग कामिल्ल्या गये तथा वहाँ हम लोगोंने दादाकी कामना और श्रीमांके आदेशको पूरा किया। त्रिपुरा जिलाके कामिल्ल्या ग्रामके प्रसिद्ध धनी श्रीअक्षयकुमार रायने बड़े समारोहके साथ श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगल-विग्रहकी प्रतिष्ठा करायी। पक्के नये ईंटोंके श्रीमन्दिरमें बहुमूल्य स्वर्णालङ्कारसे विभूषित श्रीविग्रहका दर्शनकर लोग आनन्दोन्मत्त हो उठे। इस प्रतिष्ठाकार्यमें २०-२२ हजार रुपये व्यय हुए थे।

इतने निरानन्दके बीच भी इस उत्सवमें कामिल्ल्यामें बसन्त दादाका अपूर्व प्रभाव लक्षित हुआ। प्रत्यक्ष दर्शी भक्तवृन्दने इसका अनुभव करके विशेष आनन्द प्राप्त किया था। निकटस्थ गुन्जार ग्रामके निवासी दादाके एक अनुगत भक्तने कहा कि दादाके महाप्रस्थानके बाद उसने उनको नौकासे कामिल्ल्या जाते हुए देखा था। वे दादाके तिरोभावकी बात नहीं जानते थे। उन्होंने दादाको देखकर पूछा था—"इतनी रातमें आप अकेले कहाँ जा रहे हैं?" दादाने उत्तर दिया—"कामिल्ल्याके उत्सवमें जा रहा हूँ, विशेष कामसे दूसरे गाँव गया था, इसीसे देर हो गयी।" इस प्रकारके अलौकिक कार्य सिद्ध पुरुषोंके लिए असम्भव नहीं हैं।

श्रीदादाके असंख्य अनुगत भक्तों, शिष्यों और प्रशिष्योंमें शिक्षित व धनी महाजनोंकी संख्या कम नहीं है। चटगाँवके प्रसिद्ध धनी जमींदार और व्यापारी श्रीयुक्त अमरकृष्ण राय (जो बङ्गालमें षष्ट धनी बोलकर प्रसिद्ध थे), ब्राह्मण बेड़ियाके जमींदार महाजन श्रीहरचन्द्र व नवद्वीपचन्द्र राय, बरीशाल वासण्डाके जमींदार श्रीकिरण कुमार रायचौधरी, प्रसिद्ध व्यवसायी व जमींदार श्री गोविन्दचन्द्र राय, ब्राह्मण-बेड़ियाकी हाई स्कूलके भूतपूर्व हेडमाष्टर श्रीविधुभूषण सरकार बी०ए०, जमींदार श्रीरञ्जनीकान्त राय, श्रीप्रकाशचन्द्र प्रतापचन्द्र घोष, कामिल्ल्याके प्रसिद्ध धनी महाजन श्रीअक्षयकुमार राय व बिहारीलाल राय, एवं बहु उच्च शिक्षित वकील शिक्षक, प्राध्यापक, प्रभृति बसन्त दादाके बहुतसे शिष्य एवं एकान्त अनुगत भक्त थे। श्रीदादाके उपयुक्त स्मृतिचिन्ह बनाये रखनेके लिए ये लोग अवश्य ही यत्नवान होंगे इसमें सन्देह नहीं।

श्रीदादाके एकान्त अनुगत भक्त श्रीविधुभूषण सरकार एक विशिष्ट वैष्णव साहित्यिक हैं। उनकी लीला-कथा लिखनेका भार उन्हींको सौंप कर हम लोग चले आये।

दादाकी अवस्था ६८ वर्षकी हो गई थी। उनके दोनों पुत्र कालाचाँद और निशिकान्त परम भक्तिमान एवं श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवानिष्ट हैं। वे अपने पूज्य पिताजीके अनुरूप ही साधु पुरुष हैं, वे अपने पितृदेवके नामकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे इसकी मुझे पूरी आशा है।

२९ भाद्रपद शनिवारके दिन गौर-धामगत बसन्त साधुका श्राद्धादि-कर्म त्रिशमें यथाविधि बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। बसन्त दादाके अनुगत भक्त-वृन्द जहाँ-जहाँ थे, वहाँ सर्वत्र अखण्ड कीर्त्तनादिके द्वारा उनका तिरोभाव महोत्सव मनाया गया। उस दिन मैंने श्रीदादाके अनुगत श्रीयुत् नगेन्द्रनाथ सेन गुप्तके घर पर कलकत्तेमें इस अवसर पर उपस्थित रहकर कीर्त्तनमें योगदान किया था।

बसन्त दादाके कुछ पत्रोंका संकलन

[श्रीमहाप्रभुजीने श्रीनित्यानन्दजीको आज्ञा दी थी कि वे गौड़ देशमें जाकर प्रेम-भक्तिका प्रकाश करें। वर्तमान समयमें श्रीनित्यानन्दजीने पहिले यह कार्य श्रीशिशिरकुमार घोष द्वारा करवाया था। इनकी काव्य रचना का उपनाम था 'बलरामदास'। बसन्त साधुको अपनी विवाहिता पत्नीमें मातृभाव धारण करनेकी प्रेरणा करते हुये उन्होंने जो पयार छन्द उनको लिखकर भेजा था उसके अन्तिम चरणमें लिखा था—"कि भय तोमार आमि तव भाइ, 'बलरामदास' जानिओ निताई।" श्रीहरिदासजीके कुलके ठाकुर भी श्रीनित्यानन्दजी थे। उन्होंने अपने 'श्रीगंभीराय विष्णुप्रिया' ग्रन्थके निवेदनमें यह स्पष्ट किया है कि इन सब रचनाओंका कृतित्व अक्रोध परमानन्द अवधूत श्रीनिताई चाँदकी अयाचित कृपा-कणकी अपूर्व महामहिमाका एवं उनके पतित पावन नामकी अद्भुत महिमाका है। पूर्व बंङ्गालमें यह कार्य करवाया त्रिपुरा जिलेके त्रिश गाँवके श्रीबसन्तकुमार देके द्वारा। उनके द्वारा श्रीहरिदासजी गोस्वामीको लिखे गये पत्रोंसे पता चलता है कि श्रीगौर-विष्णुप्रिया सेवा धर्मका प्रचार किस भाँति हो रहा था। उन्हीं कुछ पत्रोंका संकलन यहाँ दिया जा रहा है।]

१. त्रिपुरा जिलाके गोपालपुर निवासी श्रीकुलचन्दराय तथा उनकी पत्नीने २०वीं बैशाखको श्रीगौरविष्णुप्रियाकी सेवा ग्रहणकी। दो दिनके उपरान्त ही उनकी पत्नी रात्रिको स्वप्न देखकर विह्वल होगईं। उनकी आर्तता देखकर घरके सभी लोग उसके पास चले आये। सान्त्वना पाने पर भी वे कुछ बोल न सकीं।

उन्होंने देखा कि श्रीविष्णुप्रिया देवीकी परम उज्ज्वल मूर्त्ति उनको कह रही है कि "तुमने आज रक्तवर्ण फूल द्वारा पूजाकी है, ऐसा फूल अब नहीं देना, सफेद गन्धयुक्त, पुष्पसे श्रीगौराङ्गकी सेवा की जाती है'। स्वप्न टूटने पर भी उनके रूपकी ज्योतिकी चकाचोंध प्राणों और आंखोंसे दूर नहीं हुई। उनकी इस प्रकारकी अवस्था देखकर अनेक लोग आश्चर्य चकित और मोहित हो गये। उससे वहाँके अनेक लोग श्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा ग्रहण करनेको व्याकुल हो रहे हैं।

२. चान्दपुर पाइकपाड़ा स्कूलके हेड-पण्डित श्रीयुक्त गोकुलचन्द्र कर छुट्टियोंके दिनोंमें गत आश्विन मासमें कई भक्तोंके साथ यहाँ आये थे। वे कोई भक्तिभाव लेकर नहीं आये थे, बल्कि त्रिशमें क्या कुतुहल है इसको देखने आये थे। संध्याके आरती और कीर्त्तन सुनते-सुनते वे विह्वल हो गये और फिर उन्मादीकी भाँति नृत्य करते रहे। कुछ समयके वाद चेतना हुई तव देखा गया कि उनके मुखपर उज्ज्वल कान्ति है, चक्षु टलमल कर रहे हैं, किसीसे कुछ बोल नहीं रहे हैं। उन्हें रात्रिको निद्रा भी नहीं आई। प्रातःकाल मुझे और विधुबाबूको एकान्तमें लेकर बोले कि कल जब मैं आरती और कीर्त्तनके दर्शन कर रहा था उस समय कृष्ण वर्णका एक बालक आकर बोला 'तुम मुझे नहीं जानते ? मैं कृष्ण हूँ और यहाँ विष्णुप्रियाके साथ गौर-लीला कर रहा हूँ। इस घरके लोगोंकी अवज्ञा नहीं करना।' (गोकुल पण्डितने बादमें स्वयं अपने मुँहसे बताया था कि यहाँ आकर उनको कोई श्रद्धा-भक्ति नहीं हुई थी, यहाँ तक कि उन्होंने ठाकुरजीको प्रणाम भी नहीं किया था) इतना बोलते-बोलते उन्होंने उच्च स्वरसे क्रन्दन करना आरम्भ कर दिया, उस समय वे जिन-जिनके पास गये उसीके पास लोट पलोट होने लगे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर सभी विस्मयापन्न हो गये।

३. फेणीके विधुबाबूकी गौर-विष्णुप्रिया-सेवा देखकर किसी एक नाजिरकी एक विधवा कन्याने गौर-विष्णुप्रिया-सेवाव्रत ग्रहण किया। उसकी अवस्था २०-२१ वर्षकी होगी। उसका नाम है दुःखीकी मां। उसके दो वर्षकी अवस्थाकी एक पुत्र सन्तान थी। सेवाव्रत ग्रहण करनेके कुछ समय बाद ही उनका पुत्र मर गया, तब तो वास्तव में वह दुःखीकी मां हो गई। ठाकुरजीकी इच्छासे इस बालिकाने पुत्र-शोकका अधिक अनुभव नहीं किया। उसकी भक्ति और भी दृढ़ होगई। उसके स्वामीका घर विक्रमपुर रसुनिवा ग्राममें है। पुत्रके मर जानेके बाद उसके देवर और जेठ उसकी ओरसे और उसके ठाकुरजीकी ओरसे बहुत विरक्त हो गये। गत आषाढ़ मासमें दुःखीकी मां युगल-ठाकुर श्रीगौर-विष्णुप्रिया-विग्रह लेकर स्वामीके घर गई। नाव रसुनिया ग्राम

पहुँचतेही उसके देवर और जेठ लाल-आँखें करके कहने लगे कि ठाकुरजीको लेकर अपने पितृ-गृहमें रहो या ठाकुरजीको जलमें फेंककर हम लोगोंके घर चलो। दु:खीकी मां ठाकुरजीको लिए हुए नौका पर रोने लगी। अन्तमें घरमें एक छोटी-सी कोठरी ठाकुरजीके लिए देनेकी बात हुई। वहाँ ठाकुरजी विराजमान किये गये। दूसरे दिन ठाकुरजीको भोग राग देना होगा— सुनकर फिर उपद्रव खड़ा हो गया। कोई बोला—'ठाकुरजी थोड़े ही हैं ? हम लोगोंके सामने यदि खावें तो विश्वास करें। तुमने हविष्यके बहाने दोनों वक्त अच्छे-अच्छे खाद्य पदार्थ अपने खानेके लिए उपाय रचा है।' कोई बोला—'कायस्थकी लड़की होकर ठाकुरजीके लिये भात व्यञ्जन राँधेगी ऐसी बात तो आज तक सुनने में नहीं आई, इसी पापसे तो पुत्र मर गया, और न जाने क्या क्या होगा।' जो हो, रन्धन शेष होने पर अन्न-व्यञ्जन और दूधकी कटोरी सजाकर ठाकुरजीके निकट रखी गई और उनमें तुलसी-दल देकर कपाट बन्द कर दिए गए। दु:खीकी मां बाहर आकर दण्डवत होकर पड़ी रही। अनेक लोग बाहर कौतूहल-वश चारों ओर खड़े रहे। दो तीन मिनटके बाद कपाट खोलकर देखा गया कि अन्न व्यञ्जन और दुग्धके सभी पात्र खाली थे, ठाकुरजीने समस्त ग्रहण कर लिया था। मेरे दयालु ठाकुरने भक्तकी महिमा बढ़ानेके लिये इस प्रकारकी अलौकिक घटना दिखाई। इस प्रकारकी अलौकिक घटनाएँ अक्सर प्रकाशित होती रहती हैं। चार पाँच बी० ए० उपाधिकारी सुशिक्षित व्यक्तियोंके बीच इस प्रकारकी अप्राकृतिक घटना हुई है। ये सब देखकर लोग स्वयं ही श्रीश्रीनदिया-युगल-सेवामें आकृष्ट हो रहे हैं।

४. १६वीं चैत्रसे २२वीं पर्यन्त ब्राह्मणबाड़ियामें उत्सव हुआ था। ढाका, फरीदपुर और बरीशालसे अनेक शिक्षित युवक आये थे। अबकी बार ब्राह्मणबाड़ियामें श्रीयुक्त जगत बाबूके घरमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीविग्रहके दर्शन करकर आपामर सभी विमोहित हुये थे। चाँदपुरके एक विशिष्ट व्यक्ति इस उत्सवमें आये थे। वे जातिके कायस्थ थे, उनका व्यवसाय था आयुर्वेदिक चिकित्सा। पहिले वे अनेक सम्प्रदायोंमें गये लेकिन उनको कहीं भी तृप्ति नहीं हुई। ब्राह्मणबाड़ियामें क्या होता है इसीको देखने वे आये थे। एक दिन कीर्त्तनमें

वे लोट-पलोट होने लगे, तबसे चार दिन पर्यन्त वाह्य ज्ञान शून्य रहे, बीच-बीचमें 'कैसी लीला, कैसी लीला' बोल उठते थे। इस अप्राकृत भावमें ही उनके संङ्गी उनको घर ले गये। दादा ! प्रभुके जो लीलाखेल हो रहे हैं उनको कहाँ तक लिखूँ ?

एक घटना और सुनिये। शुविल स्कूलके हेडमास्टर तारक बाबूने मुझसे प्रश्न किया—'नवद्वीप रस उन्नत और उज्ज्वल है, व्रजलीलामें जैसे राधारानीकी मान-लीला देखनेमें आती है नवद्वीपमें उस प्रकारकी प्रियाजीकी मानलीला कुछ है क्या ?' मैंने उत्तर दिया—'निश्चय ही है। वह किस प्रकारकी है यह मैं तुमको एक सप्ताहके भीतर-भीतर बताऊँगा।' उसके दूसरे ही दिन प्रातः काल श्रीहरिचरण आचार्यने (जिनका गुरुदत्त नाम रघुनाथ है) नरसिंहदीसे आकर श्रीमती विष्णुप्रियाके मान-भञ्जनका एक प्रबंध मेरे हाथमें दिया। तारक बाबूके साथ मेरी जो बात हुई उसको दूसरा कोई नहीं जानता। केवल प्रियाजीके निकट मैंने निवेदन किया था। श्रीहरिचरण आचार्यने भावमें जो लीला देखी वह कवितामें लिखकर मुझे दी। आपके आस्वादनके लिये वह कविता भेज रहा हूँ।

(यह कविता खोजने पर भी नहीं मिल पाई)

५. ब्राह्मणबाड़ियाके श्रीमान् नवद्वीप राय पुरीधाम गये थे। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें गरुड़स्तम्भके पास जिस स्थान पर खड़े होकर प्रभु जगन्नाथ-दर्शन किया करते थे, जगन्नाथजीके सन्मुख उसी दीवालपर श्रीजगन्नाथजीकी इच्छासे श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका चित्र अंकित हुआ है। श्रीमान् नवद्वीप राय अपनी आँखोंसे उसके दर्शन करकर आये हैं। इसकी छानबीन करनेसे पता लगा कि एक चित्रकारने अपने आप श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके इस चित्रको अंकित किया है। पुजारी, पण्डा या मैनेजर किसीने भी उसको इस प्रकारका आदेश नहीं दिया था। चित्रकारने अपने आपही दीवाल पर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल चित्र अंकित किया यह बड़े रहस्यकी बात है।

(बसन्त दादाने प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीको बहुतसे पत्र लिखे थे। उनमेंसे जो सर्वप्रथम लिखा था उसका उद्धरण तो अप्रत्यक्ष मिलन परिच्छेदमें आ गया। कलेवर बहुत न बढ़ जाय इसलिये और पत्रोंका समावेश इसमें नहीं किया जा रहा है। बसन्त दादा अपने पत्रोंमें प्रायः तिथि नहीं लिखा करते थे इसलिये यह पता नहीं लगता कि कौनसा पत्र कब लिखा गया। प्रभुपाद श्रीहरिदासजीने कभी अपने लिखे पत्रोंकी नकल नहीं रखी इससे उनका

कोई अनुसन्धान नहीं मिलता। श्रीदादाके भक्त श्रीविधुभूषण सरकार द्वारा या और किसी भक्त द्वारा सङ्कलित बसन्त दादाकी जीवन-कथाका पता चला और उसको हिन्दीके पाठकोंके समक्ष रखनेका अवसर आया तो उसमें उन पत्रोंका समावेश कुछ किया जा सकता है।

अपने प्रत्येक पत्रमें प्रायः बसन्त दादा अपना भाव स्वरचित पदोंमें व्यक्त किया करते थे। श्रीहरिदासजीने एक स्थानपर लिखा था कि उन पद्यावलियोंका संग्रह हो रहा है, लेकिन अभी तक उनका कोई अनुसंधान नहीं मिल पाया है।)

पूर्व बङ्गालमें श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया-युगल-सेवा-प्रकाश

•

[पूर्व बङ्गाल की प्रथमयात्रा प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी द्वारा लिखित]

नरसिंहदीमें पुष्प-डोल उत्सव

२४वीं वैशाख, बंगाब्द १३३२ साल,

गौराब्द ४३६ के दिन श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया सेवा-प्रकाश और नाम-संकीर्तन-प्रचारमें श्रीपाद नृत्यगोपालजी गोस्वामी तथा श्रीखंडके ठाकुर परिवारके श्रीयुत् किशोरानन्दजीके साथ नरसिंहदी (ढाका) में नवद्वीप-रस-रसिक, श्रीश्रीनदिया युगल-भजन-निष्ठ, गौर-भक्त प्रवर श्रीहरिचरण आचार्यके घर में पुष्प-डोल उत्सवमें सम्मिलित हुआ। रास्तेमें नारायणगंजमें श्रीउपेन्द्रनाथ सेनके श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया मन्दिरमें कई घण्टे विश्राम किया और प्रसाद पाया। (उपेन्द्रबाबूके घरमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवाकी परिपाटी तथा वैष्णव-सेवाके आग्रहातिशय्यको देखकर परम आनन्दित हुआ।) यह नरसिंहदीका समारोह वार्षिक महोत्सवका रूप ग्रहण कर चुका था। उक्त अवसर पर बहुतसे भक्तोंका समागम हुआ करता था, प्रेम आनन्दकी तरंगें लहराया करती थीं। हम लोगोंके भाग्यमें इसका दर्शन-लाभ इस बार ही लिखा था। चट्टगाँवके श्रीअमरकृष्ण राय और तारकचन्द्र सिंह महाशय नारायणगंजमें हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। हमारे साथ-साथ ही वे भी उसी दिन नरसिंहदी उत्सवमें आये।

दो वर्ष पूर्व त्रिशके बसन्त साधु (श्रीदादा) के आकर्षणसे झूलनोत्सवके उपलक्ष्यमें इधर आना हुआ था, उस समयका "श्रीदादा" के महा-प्रयाणका, उत्सवके हर्ष विषादमय विवरणका उनके देह त्यागके उपरान्त भी नौका द्वारा सशरीर उत्सवमें शामिल होनेकी घटनाका एवं कामिल्लामें अक्षय कुमार रायके घर श्रीश्रीगौर-विष्णु-प्रिया-युगल-विग्रह-प्रतिष्ठाका वर्णन पहले आ चुका है।

सर्व प्रथम त्रिशके पाण्डव वर्जित देश कामिल्लामें बसन्त साधुकी अक्षय-कीर्ति स्वरूप श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा-प्रकाश व नाम-कीर्त्तन देखकर मन-ही-मन अन्यान्य

स्थानोंमें प्रतिष्ठित नदिया-युगल-सेवा दर्शनकी अभिलाषा जाग्रत हुई थी। वह अभिलाषा प्रभु व प्रियाजीने आंशिक भावसे आज पूर्ण की।

ढाकाके नरसिंहदी गाँवमें श्रीहरिचरण आचार्य द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीनदिया-युगल श्रीमूर्त्तिके अपूर्व दर्शन हैं। यहाँके श्रीविग्रह-युगल पद्मासनपर रत्नसिंहासनके ऊपर दण्डायमान श्रीमूर्त्ति है। श्रीविश्वम्भर और विष्णुप्रियांका अपूर्व मिलन है। यहाँके श्रीविग्रहकी पूर्वकी लीला-कथा लिखी जाय तो एक उपादेय भक्ति-ग्रन्थ बन जाय।

पूर्वबङ्गमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-सेवा नरसिंहदी ग्राममें ही सर्वप्रथम प्रतिष्ठित हुई। तत्पश्चात् त्रिपुरा जिलेके त्रिश ग्रामके बसन्त साधुके घरपर इस सेवाकी प्रतिष्ठा हुई। वृद्ध श्रीहरिचरण आचार्यका कथन है कि प्रभुने पूर्वबङ्गमें भ्रमण करते समय इस स्थानको भी अपनी चरण-धूलिसे धन्य किया था। यह बात उन्होंने एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थमें देखी थी। शायद इसीलिये नरसिंहदीमें श्रीश्रीगौर-विष्णु-प्रियाका आविर्भाव माना जाता है, और इतना प्रभाव भी है। यह स्थान आजकल वैष्णव-तीर्थके रूपमें परिणत हो गया है। प्रतिवर्ष पुष्प-डोलके अवसर पर वैशाख मासमें यहाँ महामहोत्सव होता है।

त्रिपुरा महाराजके मन्त्री गौरधामगत, वैष्णव-अग्रगण्य, स्वनामधन्य श्रीराधारमण घोष महाशय बहुत दिन पूर्व यहाँ आकर श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रहके दर्शन करकर परम-आनन्दित हुए थे। हरिचरण आचार्य महाशयसे उनका बन्धुत्व सम्बन्ध उसी समयसे चला आ रहा है।

पहले श्रीगौराङ्ग प्रभु यहाँ अकेलेही प्रतिष्ठित थे। कुछ दिनोंके बाद वे प्रियाजीके साथ इस स्थानमें विराजमान हुए। इस घटनाका एक इतिहास है जिसका वर्णन करनेसे प्रबन्ध बहुत बड़ा हो जायगा। त्रिशसे श्रीविष्णुप्रिया देवीकी श्रीमूर्त्ति लाकर बसन्त साधुने बड़े समारोहसे नरसिंहदीमें श्रीगौरसुन्दरके साथ देवीका शुभ-विवाह उत्सव सम्पन्न किया था। त्रिशसे नौका द्वारा बहुतसे लोग इस शुभ-विवाहका द्रव्यसंभार लेकर कन्या व वर-यात्रीदल बनकर नरसिंहदीमें आकर एकत्रित हुए थे। श्रीचैतन्य-भागवतमें वर्णित श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी निम्नलिखित वाणी—मानो यहाँ प्रत्यक्ष घटित हो गयी थी।

"जाँहार मूर्त्तिर बिभा देखिले नयने।
सर्व्वपापयुक्त जाय वैकुण्ठ भुवने॥
से प्रभुर बिभा लोक देखये साक्षात्।
तेञि ताँर नाम दयामय दीननाथ॥"

श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी श्रीमूर्त्तिके शुभ-विवाहके उपलक्ष्यमें इस स्थानमें उस समय जो महा-महोत्सव सम्पन्न हुआ, जन-साधारणका संघट जिस प्रकार एकत्रित हुआ और भक्तोंके हृदयमें प्रेम-आनंदका जैसा अविरल श्रोत प्रवाहित हुआ, वैसा

कहीं भी देखनेमें नहीं आया। राज-पुत्रके विवाहकी तरह इस विवाहके शुभकार्यमें अपार धन-राशि व्यय हुई थी। इस अपूर्व परम-आनन्दकी कथाको प्रत्यक्षदर्शी आज भी जब वर्णन करते हैं तो श्रोता भक्तगण सब प्रेममें आत्म-विस्मृत हो जाते हैं। इस प्रेम-आनन्दमय महा-महोत्सवका सम्पूर्ण वृत्तान्त लिखा जाय तो एक परम उपादेय भक्ति-ग्रन्थ बन जायगा।

नरसिंहदीके उत्सवमें इस बारभी परम-आनन्दकी तरङ्गें उठीं। हरिचरण दादा काठकी पुतलीके समान आँगनमें एक ओर खड़े-खड़े आनन्द-मग्न हो रहे थे। न जाने कहाँसे सैकड़ों-हजारों आदमी आकर उनका सारा कार्य कर रहे थे, और नाना प्रकारके द्रव्योंसे घरका भण्डार भर रहे थे। वे धनी पुरुष नहीं हैं, सालमें गौराङ्ग लीलाके काव्यको गा-गाकर जो कुछ उपार्जन करते हैं, इस वार्षिक उत्सवमें वह सब पूराका पूरा व्यय कर देते हैं।

महेशचन्द्रपाल यहाँके एक विशिष्ट व्यापारी हैं। वे भी गौर-विष्णुप्रिया भजन-निष्ठ हैं। उनके घरपर भी श्रीयुगल-विग्रहकी सेवा होती है। वे भी इस उत्सवमें विशेष सहयोग प्रदान करते हैं।

अष्टप्रहर नामसंकीर्त्तन मैंने अनेक स्थानोंमें देखा है। पारिश्रमिक लेनेवाले गायकों और मृदंग-वादकोंके द्वारा प्रायः यह कार्य सम्पन्न होता रहता है। परन्तु यहाँका अष्टप्रहर नामसंकीर्त्तन-यज्ञ एक अपूर्व वस्तु है—नितान्त स्वाभाविक कृत्रिमता विहीन। भाड़ेके गायक और वादककी तो गन्ध भी नहीं है। लोक-संग्रहकी चेष्टाका भी सर्वथा अभाव है। भक्तगण स्वयं ही गायक और वादक हैं।

क्या दिन और क्या रात्रि, किसी भी समय इस अष्टप्रहर कीर्त्तनमें सैकड़ों आदमियोंसे कम लोग नहीं होते, बल्कि कभी-कभी तो बहुत ही अधिक लोग एकत्रित हो जाते हैं। भक्तोंके बीच भाव और दशाकी कोई सीमा नहीं है। कीर्त्तनकी मधुर ध्वनि सर्व-चित्ताकर्षक है। पशु-पक्षी एवं कीट-पतंग पर्यन्त मानों चकित एवं पुलकित हो रहे हैं। दशों दिशायें मुखरित हैं। भक्तप्रवर महानन्द आचार्य और सुरेन्द्रनाथके मधुर कीर्त्तनसे पाषाण भी विगलित हो जाते हैं। जाति-भेदके बिना सभी लोग इस महासंकीर्त्तनमें योगदान करते हैं। बहुतसे लोग प्रतिदिन महाप्रसाद भी पाते हैं। अन्तिम दिन हजारों लोगोंको नानाप्रकारके महाप्रसादके द्वारा भर पेट भोजन कराया जाता है। अष्टप्रहरके बाद जब भक्तगण नगर-कीर्तनके लिये बाहर निकलते हैं तो वह भी अपने आपमें एक अपूर्व दृश्य होता है। इस प्रकारका निरुपाधि*

---

* भाड़के लोगोंके बिना भक्तों द्वारा सम्पादित नितान्त स्वाभाविक और कृत्रिमता विहीन कीर्त्तन निरुपाधि कीर्त्तन कहा जाता है।

अष्टप्रहर एवं नगर कीर्त्तन वास्तवमें देखनेकी वस्तु है। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी यह प्रेम-सेवा-परिपाटी एवं उनका यह निरुपाधि नाम-कीर्त्तन हम लोगोंके लिये शिक्षाका विषय है, यह मैं निःसन्देह कह सकता हूँ।

श्रीश्रीयुगल-विग्रहकी संध्या आरती प्रायः यहाँकी गृह-लक्ष्मीगण किया करती हैं। किसी-किसी जगह पुजारीगण भी करते हैं। श्रीश्रीनदिया-युगलकी सप्त-घृतदीप द्वारा संध्या-आरती और उसके साथ मधुर आरती गाई जाती है। वह बड़ा अपरूप व अपूर्व दृश्य होता है। सन्ध्या आरतीका इनका पद इस प्रकार है :—

आरती कीजे नदीया नागरी।
काञ्चनादि सखि देय आयोजन करि॥
शंख बाजे घंटा बाजे बाजये काँसरि।
मधुर मृदंग बाजे बोले गौरहरि॥
विशुद्ध गो-घृत ढालि, सप्त प्रदीप ज्वालि,
श्रीमुख हेरत मन प्राण भरि॥
सुगन्ध चन्दन निये, धूप गुग्गुल दिये,
आरती कीजे नदीया नागरी।
शंख भरि-सुशीतल, सुवासित गंगाजल,
श्रीअङ्ग धोयायत सुयतन करि॥
अंचल धरिया करे, कत ना सोहाग भरे,
श्रीअङ्ग मुछाओत अति धीरि धीरि।
मल्लिका मालती जूंथि, सुचिकन माला गांथि,
सखिगण सजाओत किशोर किशोरी॥
फूल आनि राशि-राशि, सखिगण हासि हासि,
चारि दिके छड़ाओत बोले गौर हरि॥
सखिगण हासि हासि, प्रेमानन्दे भासि भासि,
चामर ढुलाओत जाइ बलिहारी॥

श्रीश्रीनदिया-युगलका भोगराग अति उत्तम भावसे दिया जाता है। श्रीविग्रह-युगलके धारण करनेके लिये बहुमूल्य वस्त्र हैं, सर्वाङ्ग स्वर्णालङ्कारसे भूषित हैं; शयनके लिये उत्तम पलङ्ग, तथा उसपर सुसज्जित अत्युत्तम शैया-रचना है। स्थान-स्थानपर ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा देखनेमें आई है।

इस प्रकारकी प्रेम सेवाके द्वारा सब भक्तवृन्दोंने प्रभु व प्रियाजीको अपना निज जन बना रखा है। प्रीतिके भजनके अनोखेपनके कारण ही प्रभु व प्रियाजी यहाँ अलौकिक लीला-रङ्गप्रदर्शन करते रहते हैं और भक्तोंके साथ कभी तो स्वप्नमें,

कभी साक्षातमें कथा-वार्त्ता कहते हैं। सारे ही प्रेमसेवानिष्ठ भक्तवृन्दोंका अभाव-अभियोग वे सुनते रहते हैं और अपना भी अभाव, जिज्ञासा व मनोभाव आकारसे, इंगित और स्वप्नमें उनको जताते रहते हैं। भक्त और भगवानका इस प्रकार प्रेम-प्रीतिका आदान-प्रादन और नैसर्गिक सुख-शान्ति इनके घरोंमें सदा विराजती हैं। किसी वस्तुका अभाव तो मानो है ही नहीं, सभी जैसे आनन्दकी एक-एक मूर्त्ति ही बन गये हों। गृह-लक्ष्मीगण अलग ही सदानन्दमयी और हास्यमयी बनी हुई हैं।

सभी अपना-अपना काम करते रहते हैं, किसीके भी मुँह पर उत्सवके अतिरिक्त और दूसरी बात नहीं। किसीकी भी त्रुटि विच्युतिके लिये कोई शोरगुल नहीं, वे सभी मानों क्षमा और धैर्यके एक-एक अवतार हैं। ऐसे एक मात्र सुख-शान्तिदाता बसन्त साधुको वे 'श्रीदादा' कहकर सम्बोधित करते हैं एवं निज जन जानकर उन्हें ही परम गुरुके आसनपर बिठाये हुए हैं। अन्य कोई उस आसन पर अधिकार नहीं कर सकता। इन भक्तोंके मन्त्रदाता पूर्व-गुरु भी हैं; पर उनका कोई भी असम्मान नहीं। पूर्वजोंके उपास्य देवता भी हैं, उनका भी यथा रीति पूजा भोग होता है किन्तु युगानुवर्त्ती भजन इन्होंने बसन्त-साधुसे ही ग्रहण किया है, उनसे हरिनाम महामन्त्र और गौर-विष्णुप्रियाकी युगल-सेवा ग्रहणकी है।

साटिरपाड़ा और ब्राह्मणबेड़ियामें

उत्सवके बाद हम लोग नरसिंहदीके समीप साटिरपाड़ा ग्राममें श्रीलालमोहन मोदकके घर वार्षिक-उत्सवमें सम्मिलित हुए। यहाँ भी पूर्ववत् प्रेमानन्दोत्सव, अष्टप्रहर-कीर्त्तन और वैष्णव-भोजन सम्पन्न हुआ। यहाँ भी श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रहकी सेवा घरकी गृह-लक्ष्मियों द्वारा परम प्रेम और विधि-पूर्वक होती है। यहाँ अष्ट-प्रहर नाम कीर्त्तनसे जो प्रेम-आनन्दका श्रोत प्रवाहित हुआ उसके घात-प्रतिघातसे आस-पासके बहुतसे ग्रामोंके असंख्य लोगोंके हृदयमें प्रेम-आनन्दकी तरङ्गे लहरा उठी थीं। नौकाके द्वारा कलकत्तासे गंगाजल मँगाकर यहाँ श्रीविग्रह और वैष्णवोंकी सेवा हुई थी। गौर भक्तवर लालमोहनका घर मानों लक्ष्मीका भण्डार था। घरके स्त्री, बाल, वृद्ध, युवा सभी सेवानिष्ठ एवं भक्तिमान थे। यहाँके कीर्त्तन और इष्ट-गोष्टीमें हरिचरण आचार्य भी सम्मिलित हुए थे।

बसन्त साधुके प्रिय-भक्त श्रीतारकचन्द सिंह महायशने अपने उद्दाम-नृत्य-कीर्त्तन व मधुर पदावली गान द्वारा भक्तवृन्दके प्राणोंको अपार प्रेम-आनन्द प्रदान किया था। जब उन्होंने कमर डुलाते हुए कीर्त्तन-आँगनमें अपूर्व-प्रेमनृत्य किया था, उस समय उन वृद्ध भक्तशूरके लाखों सफेद बाल और दाढ़ी मूँछ देखकर हमारे गौर आना गोसाईं (श्रीअद्वैताचार्य) की याद पड़ी। दुर्जय पुत्रशोकको तृणवत् समझकर ये गौरभक्त महा-पुरुष प्रेम-आनन्द और नृत्य-कीर्त्तनमें सतत विभोर रहते हैं। गत वर्ष विजयादशमीके

दिन इनके सुयोग्य दो पुत्र नाव डूबनेकी दुर्घटनामें अकालमें ही गौरधाम चले गये थे। इतने पर भी एक दिनके लिये भी इनके मुँह पर किसीने विषादकी छाया नहीं देखी। वास्तवमें गौरभक्तके वास्तविक लक्षण तारकचन्द्रमें दीख पड़े।

साटिरपाड़ा उत्सव देखकर हम त्रिपुरा ब्राह्मणबेड़ियामें श्रीहरचन्द्ररायके घर आये। हरचन्द्र हमारे साथ ही थे। ये तीन भाई हैं—हरचन्द्र, जगच्चन्द्र एवं नवद्वीपचन्द्र। इनके प्रसिद्ध कारबारका नाम टी० सी० राय एण्ड कम्पनी है। ये प्रसिद्ध व्यवसायी और धनी पुरुष हैं। इनके कारोबारका तारका पता "श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" है। इनकी गृहस्थी और कारोबारके **कर्त्ता और गृहिणी श्रीगौराङ्ग विष्णुप्रिया हैं**। एक कामके लिये श्रीगौराङ्गको दस हजार रुपयों की जरूरत है, श्रीविष्णुप्रिया-भण्डारसे श्रीविष्णुप्रिया रुपया भेज रही हैं। इनके घरमें ही श्रीमन्दिर है, सामने एक अत्यन्त सुरम्य नवीन पुष्करिणी है। बीस हजार रुपये लगाकर उसकी खुदाई और बंधाई की गयी है। उसका नाम है श्रीविष्णुप्रिया-कुण्ड। दोनों ओर पक्के सुन्दर घाट बने हैं। नाम है श्रीगौराङ्ग घाट तथा श्रीविष्णुप्रिया घाट। पुरुष श्रीगौराङ्ग घाट पर एवं स्त्रियाँ श्रीविष्णुप्रिया घाट पर स्नान करती हैं। इस पुष्करणीमें स्नानके सिवा और कोई कार्य नहीं करने दिया जाता। पुष्करणीके ऊपरी भागमें एक सुन्दर बगीचा है, जिसका नाम "श्रीविष्णुप्रियाबाटिका" है।

यहाँके श्रीयुगल-विग्रह परम सुन्दर हैं। सेवाका भार स्वयं मालिक हरचन्द्रके हाथमें है। वे परम गम्भीर और सर्व-समाधानकारी सेवानिष्ठ गौरभक्त हैं। मैंने अतिथि और वैष्णव सेवामें उनकी परम प्रीति देखी। अति उत्तम व्यञ्जनोंके द्वारा प्रभु और प्रियाजीका भोग लगता है।

चट्टग्राममें

परम आनन्द पूर्वक वहाँ दो दिन इष्ट गोष्ठी करके हम चट्टगाँवके लिए रवाना हुए। हम लोगोंके साथ तारक दादा सपत्नीक थे। वे अपनी कर्म-भूमि चट्टगाँवमें आये। चट्टगाँवके प्रसिद्ध धनी जमींदार और व्यवसायी श्रीअमरकृष्ण राय भी केवल ब्राह्मणबेड़ियाके अतिरिक्त बराबर हमारे साथ-साथ थे, किसी विशेष कार्यसे वे एक दिन पहले चट्टगाँव चले गये थे। चट्टगाँव स्टेशनसे बड़े समारोहके साथ हमें श्रीअमर बाबू एवं नवद्वीप बाबू स्वयं अपने घर ले गये। हम लोग चट्टगाँवमें तीन दिन ठहरे। इन तीन दिनोंमें हम लोग दोनोंके यहाँ बारी-बारीसे अतिथि रहे।

चट्टगाँवमें चौदह आने मुसलमान और दो आने हिन्दू थे। दो स्थानोंमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया युगल-विग्रह प्रतिष्ठित होकर बड़े समारोहसे विधि-पूर्वक पूजित और सेवित हो रहे थे। श्रीनवद्वीपचन्द्र रायके अपने घर ब्राह्मणबेड़ियामें उनके श्रीयुगल-विग्रहकी

सेवाकी बात पहले कही जा चुकी है । यहाँ पर उनके आश्रममें श्रीतारकचन्द्र सिंह द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रहकी सेवाकी जा रही है (ये श्रीविग्रह उनके अपने घरके ही हैं)। गृहस्थी श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी है। आश्रम परम सुन्दर है, और रमणीय है। अतिथि-अभ्यागत वैष्णवोंके प्राण शीतल करने लायक स्थान है । नवद्वीप बाबू वैष्णव शास्त्रके सुपण्डित है । चैतन्यचरितामृतपर उनका विशेष अधिकार देखनेमें आया । वैष्णव-धर्मके आधुनिक जटिल प्रश्नोंका जिस प्रकार वे सुसिद्धान्त समाधान करते हैं उससे ऐसा लगता है मानों वे कोई कृपासिद्ध गौरभक्त हैं ।

श्रीअमरकृष्ण रायके घर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-विग्रह उनकी दो मंजिली अट्टालिका पर प्रतिष्ठित है । वे बङ्गालके एक प्रख्यात धनी हैं। उनके घर श्रीविग्रहकी सेवा भी उनके वैभवके अनुरूप बड़े लाड़-चावसे सम्पन्न होती है । ६-७ हजार रुपयेके खर्चसे निर्मित स्वर्णके थाली, कटोरा, गिलास आदिमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाको नित्य भोग लगाया जाता है । श्रीयुगल-विग्रहके श्रीअङ्ग बहुमूल्य स्वर्णाभरणसे विभूषित हैं । श्रीमस्तकपर स्वर्णका मणिमय मुकुट सुशोभित है । अति सुन्दर गठनके ये दारु विग्रह रत्नसिंहासनपर विराजित हैं। श्रीश्रीनदिया-युगलकी छटा शोभा यहाँ अपरूप और न्यारी ही है। रत्न-खचित पलङ्गपर बहुमूल्य शैया एवं दिव्य वस्त्र परिधान हैं। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया दोनोंही अभय दानकी मुद्रामें हैं ।

जितने श्रीविग्रहोंकी कथा इसके पूर्व आयी है सभीके गठन और भावमें कुछ पार्थक्य है । इन सब मूर्त्तियोंके निर्माता भास्कर (शिल्पी) पूर्वी बङ्गालके ही हैं। बसन्त साधुके विशेष तत्वावधानमें उस भाग्यवान भास्करने श्रीमूर्त्ति निर्माणकी विशेष कला सीख ली है ।

अमरबाबूके श्रीविग्रहका निखूत सौन्दर्य एवं उनकी माधुरीकी परिपूर्णता देखकर हमलोगोंको परम आनन्द हुआ । भोगरागकी व्यवस्था तो अति सुन्दर थी ही। निरुपाधि नाम-कीर्त्तन हृतकर्ण रसायन था ।

चट्टगाँवमें अमरबाबूके घरमें 'श्रीविष्णुप्रिया बालिका-विद्यालय' की छात्राओंने मत्प्रणीत 'श्रीविष्णुप्रिया-नाटक' का आंशिक अभिनय दिखाकर हम लोगोंको खूब रुलाया था । सरलमति भक्तिप्राणा बालिकावृन्दका अभिनय अति सुन्दर हुआ था।

अमरबाबू अति गम्भीर प्रकृतिके तेजस्वी वैष्णव थे । उनमें वैष्णवीय दैन्य भी यथेष्ट मात्रामें था । इतने बड़े धनिक और कर्मवीर होकर, सामान्य दीन-हीनकी तरह, प्रति उत्सवमें नाना स्थानोंमें भक्तोंके घर जाकर साधारण भावसे सम्मिलित होते, सब भक्तगणोंके साथ एकत्र-वास करते और प्रसाद पाया करते । विलासिताका तो उनमें लेशाभास भी नहीं था, बड़प्पनका चिन्ह भी लक्षित नहीं होता था। वैष्णवीय दैन्य व तेजोमयताके एक अपूर्व मिश्रण थे अमरबाबू । उनके साथ मेरा सर्वप्रथम

साक्षात्कार त्रिशमें बसन्त साधुके आश्रममें दो वर्ष पूर्व हुआ था। इसके बाद टाटानगरके उत्सवमें लौटते समय वे भक्तवृन्दके साथ श्रीधाममें मेरे कुटीरमें भी पधारे थे। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्जमें सबने मिलकर कीर्त्तन किया था; उससे सबोंको बड़ा आनन्द मिला था। अमर बाबूसे परिचय होनेसे लेकर आजतक उनके साथ विशेष रूपसे कोई बातचीत करनेका अवसर नहीं मिला था। अबकी बार उत्सवमें उनके साथ इष्ट-गोष्ठी होनेसे एवं उनके अतिथि होनेसे उनको समझने का प्रचुर सुयोग प्राप्त हुआ। इतने दिनों पश्चात हम लोगोंके सामने उनका मुँह खुला। उन्होंने निर्भीक भावसे वर्त्तमान वैष्णव-धर्मके प्रति व्याप्त ग्लानिके मूल कारणों पर प्रकाश डालते हुये वैष्णवाचार्योंकी स्वार्थ-परता व प्रतिष्ठा-लाभकी चेष्टाका तीव्र प्रतिवाद कर जिस रूपसे अपना स्वाधीन मत हम लोगोंके सामने प्रतिपादित किया उससे विदित हुआ कि वे एक स्वाधीनचेता, सत्साहसी, सजग एवं शिक्षित प्रकृतिके वैष्णव हैं। ऐसे गुरुगौरनिष्ठ एवं श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके एकनिष्ठ भजनपरायण भक्तके साथ, हमारे जो कई एक दिन परम आनन्दमें बीते वे सचमुच जीवनके विशिष्ट दिन प्रतीत हुए। कर्मवीर अमर बाबूकी कीर्त्ति अनन्त है। उनकी गुप्तदानकी शक्ति, सुतीव्र गुरुनिष्ठा, स्वभावसिद्ध अकपट-सरलताका यथेष्टपरिचय पाकर हम लोग तो मुग्ध हो गये। वे कहा करते थे कि उनके लिये तो गुरु-बलही श्रेष्ठ बल है। 'श्रीदादा' और 'श्रीमां' की कृपासे उनमें क्या क्या परिवर्तन आ गये—वे क्या थे और क्या हो गये इसका विचार करते ही उनके नयनोंसे प्रेमाश्रुकी धारा बहने लगती।

सच बात तो यह है कि बसन्त साधुके प्रकटकालमें उनको पहचाननेकी लोगोंने चेष्टा ही नहीं की या जानकर भी पहचान नहीं पाये। जिन्होंने पहचाना उन्हें तो जैसे सौभाग्य ही मिल गया; उनके गुणोंसे आकृष्ट होकर उनको गुरुपदसे वरण करकर वे कृतार्थ होगये। जो कुबुद्धिवश या कुतर्क-जालमें फँसकर उनके सङ्गलाभसे वंचित रहे, उनके परितापकी अब सीमा नहीं। सच भी है, दाँत रहते दाँतोंकी मर्यादा कोई नहीं समझता। अब बसन्त साधुके अप्रकट होनेके बाद उनका आध्यात्मिक प्रभाव, उनका प्रकृत माहात्म्य सर्वत्र परिव्याप्त हुआ है और हो रहा है। उनके जीवन-सर्वस्व-धन श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका सेवाप्रकाश व उनका नाम-कीर्तन सर्वत्र पूर्वापेक्षा अधिक प्रचरित हो रहा है। उनके प्रकटकालमें जो काम असम्पन्न रहा वह अब सुसम्पन्न हो रहा है। अपने अनुगत भक्तोंके बीच सूक्ष्मदेहसे प्रकट होकर वे उनको सर्वदा विशेष भावसे उत्साहित करते रहते हैं। कीर्त्तनमें उनका आविर्भाव होता है; सचेतन आँखों वाले उन्हें सर्वदा देख पाते हैं। जहाँ भी श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका नामकीर्त्तन होता है, वहाँ वे अवश्य आते हैं, क्योंकि उनकी आत्मा श्रीगौरविष्णुप्रियाके नामसे जड़ित है। यहाँ वियोग विच्छेद विरह आदि है ही नहीं; केवल मिलन ही मिलन है, मधुर मिलन,

भक्त भगवानका नित्यमिलन। नाम-नामी जैसे अभेद-तत्व हैं वैसे ही भक्त और भगवान भी अभेद तत्व हैं।

टाटानगरकी बात

सुननेमें आया कि टाटानगरके उत्सवमें अँग्रेज, मुसलमान, पारसी, ईसाई, हिन्दू, अहिन्दू सभीने सम्मिलित होकर न केवल उन्मुक्त कीर्त्तननृत्य किया था बल्कि उसके पश्चात सभीने धूलि-धूसरित, कर्दम सने शरीरसे नदीमें स्नानभी किया था। यहाँके एक उच्च-पदस्थ रेलवे कर्मचारी मुसलमान युवक जिनका नाम मुहम्मद नूरुल्ला है—बहुत दिनोंसे सस्त्रीक वैष्णव-धर्ममें दीक्षित होकर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी पटमूर्त्तिकी सेवा कर रहे हैं। टाटानगरमें योगेन्द्रचन्द्र घोषके गौराङ्ग-आश्रममें उत्सव होता है वहाँका आंशिक व्यय-भार भी इन्होंने ही वहन किया था। उस उत्सवमें ये सस्त्रीक सम्मिलित भी हुए थे। वहाँ के एक और पदस्थ मुसलसान कर्मचारी वैष्णवधर्म ग्रहण करनेको प्रस्तुत हुये हैं। उन्होंने तारक दादाको जो पत्र लिखा उसे देखनेसे विदित हुआ कि सचमुचही वे आर्त्त हैं एवं वैष्णव-धर्म ग्रहण करके श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके भजनके निमित्त उत्सुक हैं। यह सब देख-सुनकर ऐसा लगता है कि श्रीचैतन्य भागवतकी महावाणी—

"अन्थेरे कि दाय विष्णु द्रोही जे यवन।
ताहाराओ ए जनार भजिबे चरण॥"

क्रमशः सचमुच सफल हो रही है।

चट्टगाँवके बाद

चट्टगाँवसे हमलोग सीताकुण्ड आये। यहाँ गौरभक्त श्रीनिवारणचन्द्रके वंश द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौर-गोविन्द आश्रम देखकर मन परम प्रसन्न हुआ। भूतपूर्व 'श्रीगौराङ्ग' और 'सेवा' के सम्पादक श्रीयोगेन्द्र मोहन घोष आदि प्रमुख गौरभक्तोंके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौराङ्ग आश्रम अब लुप्त हो गया है। अब यहाँ पर 'शनि बाड़ी' है। निवारण बाबूका आश्रम नया बना है, विस्तृत भूखण्डमें एक सुन्दर पुष्करिणी और नाना प्रकारके फल-फूलसे परिशोभित सुरम्य उद्यानमें एक श्रीमन्दिरमें श्रीश्रीराधा-गोविन्दकी श्रीमूर्त्ति श्रीगौर-गोविन्दकी पटमूर्त्तिके साथ पूजित और सेवित होती है। यहाँ श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी सेवा-प्रतिष्ठापित होने वाली है, उसकी व्यवस्था हो रही है।

यहाँ पर परम गौरभक्त श्रीत्रिपुराचरण भट्टाचार्यके साथ परिचय लाभकर मुझे अतीव हर्ष हुआ। ये वैष्णव शास्त्रके सुपण्डित एवं परम-सेवानिष्ठ श्रेष्ठ-भक्त हैं। इस आश्रममें एक दिन परम आदर सहित प्रसाद पाकर हम लोग धन्य हुए।

सीताकुण्डसे उच्च पर्वत शिखरपर चन्द्रनाथ, विरुपाक्ष उनकौटि शिवलिङ्ग, ज्योतिर्मयलिङ्ग, व्यासकुण्ड, वड़वानल कुण्ड, सहस्त्रधारा, सूर्य कुण्ड, गुरु धुनी आदिका दर्शन करके फरीदपुर राजबाड़ी होते हुए २० दिनके बाद हम लोग श्रीधाम लौटे।

चट्टगाँवमें (दक्षिण हस्तार्द्ध) देवी-भवानी पीठ और भैरव चन्द्रशेखर शिवलिङ्गके दर्शन करके भी हम कृतार्थ हुए थे। इसको चन्द्रशेखर-तीर्थ कहते हैं। आदिनाथ-तीर्थ गिरिराज मैनाक पर्वतके ऊपर, समुद्रके भीतर महेशखाली द्वीपमें अवस्थित है। चट्टगाँवसे समुद्रके मार्गसे जहाजके द्वारा वहाँ जाना पड़ता है। वृष्टिकी आशंकासे हमको वह तीर्थ देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

बरिसालके जमींदार श्रीकिरणकुमार रायके घरका उत्सव

श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका अष्टप्रहर नाम-कीर्त्तन प्रायः सर्वत्र ही हुआ करता था। वासण्डा (बरिसाल) के जमींदार श्रीयुक्त किरण कुमार राय महाशयके घरमें तारीख १३वीं ज्येष्ठसे २१वीं पर्यन्त ५६ प्रहरका नाम-संकीर्त्तन महा-महोत्सव हुआ। हम लोग उस उत्सवमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सके। चुपाई (ढाका) निवासी श्रीयुक्त शशिकान्त चक्रवर्ती महाशयने अपने छात्रवर्गके साथ श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका निरुपाधि नाम-संकीर्त्तन-यज्ञ एक वर्ष तक अनुष्ठित किया था।

भक्तवर श्रीकिरणकुमार रायने इस कीर्त्तन महोत्सवका विवरण-पत्र भेजा था। उनकी ही मधुर भाषामें इसका विवरण पढ़िये—

'श्रीश्रीचरण कमलेषु,

कृपया मेरा दण्डवत् प्रणाम ग्रहण करें। आपका कृपा-पत्र पाकर अनुग्रहीत हुआ।

आपके कृपा-आशीर्वादसे छप्पन प्रहरका श्रीनाम-संकीर्त्तन महायज्ञ महासमारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ। इसका विस्तृत विवरण देने योग्य मेरी भाषा नहीं है। आपका आदेश प्रतिपालनार्थ संक्षेपमें कुछ लिखता हूँ।

गत १३वीं ज्येष्ठ अधिवासके दिन १० बजेके समयसे विभिन्न जगहोंसे भक्तगण कीर्त्तन लेकर आने लगे। विभिन्न स्थानोंसे समागत भक्तगणोंकी विभिन्न रंगकी पताकाएँ थीं। अतः दूरसे ही पताकाका रंग देखकर पहचाना जा सकता था कि किस जगहके भक्तगण आरहे हैं। नदीके किनारे दूरसे ही उनकी पताका देखकर और कीर्त्तन-ध्वनि सुनकर प्रियाजीके आंगनसे स्थानीय भक्तगण कीर्त्तन गाते हुए उन लोगोंका सम्वर्द्धन करके ले आते हैं। अनेक स्थानोंसे भक्तगण कीर्त्तन करते हुए पैदल ही आते हैं; इस पद-यात्राका मुख्य उद्देश्य है भुवन मंगल गौर-नामकी कीर्त्तन ध्वनिसे चतुर्दिकको मुखरित करना।

कौटाली पहाड़से यहाँ आनेके लिये नावसे एक दिनका मार्ग है, फिर भी वहाँके भक्तगण पैदल चलकर तीन दिनमें यहाँ पहुँचे। वे लोग पैदल चलकर आने वाले ८६ व्यक्ति थे, एक श्वान भक्तको लेकर ८७ जन हुए। उनकी पताका थी पीत वर्ण। गौरनामकी पताका उड़ाते हुए कीर्तन ध्वनिसे ग्राम-ग्रामान्तर मुखरित करते हुए जब वे लोग श्रेणीवद्ध होकर नदीके उसपार खड़े हुए और नदीके इस पार प्रायः एक सौ भक्त कीर्त्तन लेकर उनकी अभ्यर्थना करनेको आये तब वह एक अपूर्व दृश्य था। इसके उपरान्त परस्पर मिलनमें जो आनन्दकी तरङ्गें उमगीं वे तो और भी अपूर्व थीं। नयनोंसे प्रेमाश्रुधारा, उर्ध्वबाहू होकर अपूर्व कीर्त्तन, उद्दण्ड नृत्य, भूमिलुण्ठन इत्यादि सभी अपूर्व अप्राकृत थे।

रात्रिको प्रायः ९ बजेके समय अधिवास आरम्भ हुआ। उस समयका पद यों है।

शचीमा डाकिया कहे निताइ श्रीवास।
कालि कीर्त्तन कर एसे अभागिनीर वास॥
अद्वैत आचार्य्य मोर प्रणति विशेष।
सपार्षदे आसेन जेन सङ्गे हरिदास॥
नरहरि, गदाधर, मुरारि, मुकुन्द।
निमाइ लइया कर कीर्त्तन नर्त्तन॥
शचीमार आदेशे निताइ श्रीवास।
अहोरात्र संकीर्त्तनेर करेन अधिवास॥
छापान्न प्रहर हवे कीर्त्तन-मङ्गल।
शुनिया भकत सबे प्रेमेते पागल॥

अहोरात्र संकीर्त्तनका, अधिवासका पद 'श्रीदादा' का है। शेषकी दो पंक्तियाँ नयी दी गई हैं। वास्तवमें ७ दिन पर्यन्त भक्तगण प्रेममें पागल हो रहे थे। न तो मैं भक्त ही हूँ और न मुझमें प्रेम ही है, तथापि सङ्गके प्रभावसे दिशाहारा सा हो रहा था। प्रतीत होता है मेरी ऐसी स्थिति देखकर ही मेरे ५ वर्षके शिशुने अपनी मांसे कहा था—'बाबा कुछ पागल हो गये है।' अगंगाका जल गंगाजीमें पड़नेसे गंगाजल ही हो जाता है।

सात सम्प्रदाय बनाई गईं थीं, जैसे—नित्यानन्द, मुकुन्द, सीतानाथ, गदाधर, वासु घोष, मुरारि व नरहरि। प्रत्येक सम्प्रदायमें ४ मृदंग वाले, ८ जोड़ा करताल और इसके अतिरिक्त १३ जन गायक होते थे। इतना तो निर्दिष्ट था, इसके अतिरिक्त भी बहुतसे लोग प्रत्येक सम्प्रदायमें सम्मिलित होते थे। प्रथम सम्प्रदायके नेता थे श्रीयुत् किरणचन्द्र वैद्य, द्वितीयके श्रीयुत क्षीरोदचन्द्र आचार्य, तृतीयके श्रीधर, चतुर्थके श्रीगुरुनाथ राढी, पञ्चमके श्रीआशु घोष गुह ठाकुर, षष्ठीके पण्डित प्रतापचन्द्र राय और सप्तमके श्रीमान् रमणीमोहन चक्रवर्ती। सब सन्प्रदायोंके चालक थे श्रीयुवत राइचरण चक्रवर्ती।

भक्तगण अपने-अपने भावके अनुरूप विभिन्न सम्प्रदायोंके अनुगामी बने। इस प्रकार अधिवासके दिन पच्चीस-पच्चीस व्यक्तियोंकी एक-एक टोली गठित हुई थी किन्तु अधिवासके दिन शेष रात्रि व्यतीत होते-होते विभिन्न स्थानोंसे इतने कीर्तन-सम्प्रदाय (टोलियाँ) पहुँचने लगे और इन पूर्व गठित सम्प्रदायोंमेंसे किसी न किसीमें अन्तर्भुक्त होना चाहने लगे। इस तरह प्रत्येक सम्प्रदायमें ५० जन निर्दिष्ट गायक हो गये और कभी-कभी तो एक-एक सम्प्रदायमें सौसे भी अधिक लोग सम्मिलित हो गये। इसके अतिरिक्त भी बीच-बीचमें बहुतसे स्थानोंसे अन्य कीर्तन सम्प्रदाय भी आ रहे थे। हजारों-हजारों लोग हो जानेसे कीर्त्तनके भिन्न-भिन्न आंगन करने पड़े।

ये सात सम्प्रदाय कभी-कभी अपने-अपने भावानुरूप सुरतानके संयोगसे पृथक-पृथक भावसे कीर्तन किया करते, कभी सब सम्मिलित होकर एक साथ कीर्तन करते। किन्तु प्रत्येक सम्प्रदायका यह एक ही पद था—

'जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदीया विहारी॥'

इसी पदको विभिन्न भावसे, विभिन्न सुरमें गाया गया था, जैसे नरहरिके गणोंने गाया नागरी सुरमें, इन्होंने पैरोंमें नूपुर भी बाँधे थे। सुर-तान, कीर्त्तन-नर्त्तन, सभी विभिन्न भावके थे। ये सब देखकर सभीके मनमें आया कि विभिन्न सम्प्रदायोंके कर्त्ता—यथा नित्यानन्द, मुकुन्द, सीतानाथ, गदाधर, वासु घोष, मुरारि, नरहरि अपने-अपने सम्प्रदायोंमें स्थित भक्तगणोंके मनमें अपना-अपना भाव सञ्चार कर रहे थे, इसीसे भक्तगण उसी-उसी भावसे विभावित होकर कीर्त्तन-नर्त्तन कर रहे थे। वे सब कर्त्तागण स्वयं भी तन्मय हो गये थे और दूसरोंको भी उसी प्रकार मुग्ध कर रहे थे। जब सब कीर्त्तन मण्डलियाँ सम्मिलित स्वरसे **'विष्णुप्रियार प्राण गौर'** ध्वनिसे दिक्मंडलको गुञ्जायमान कर रही थीं तब श्रोताओंमें एक अपूर्व विद्युद्-प्रवाह-सा सञ्चारित हो रहा था। दादा! वह कीर्त्तन, वह नृत्य, वह भाव भाषामें व्यक्त नहीं कर सकता। दुःख यही रहा कि आपके साथ इसका आस्वादन नहीं कर सका।

चौथे दिन पुरुष भक्तगणोंका कीर्तन इसी रूप भावसे होने लगा। इसके अतिरिक्त मेरे घरके भीतर दोतल्लेके ऊपर एक बड़ा कोठा (हॉल) है जिसके चारों ओर बरामदा है। उस कोठेमें चार-पाँच सौ महिलायें मिलकर अष्टप्रहर यही—

"जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदीया बिहारी।"

पद कीर्त्तन कर रही थीं। महिलाओंके इस अष्टप्रहर कीर्त्तनका यथाविधि अधिवास हुआ था, अर्थात् तीसरे दिन रातको प्रायः दस बजेके समय आठ बालिकाओंने

पहिले तो श्रीसार्वभौम कृत श्रीगौराङ्ग स्तोत्र, उसके बाद श्रीविष्णुप्रिया स्तोत्र और उसके बाद नदिया-युगल स्तोत्र हारमोनियमके साथ गाया था। इसके बाद महिलाओंने अधिवास कीर्तन आरम्भ किया। उस समय यह पद सभी महिलाओंने गाया :—

शचीमाता कहे शुन काञ्चना सुन्दरी।
कालि कीर्त्तन कर सबै नदीया नागरी॥
श्रीमालिनी, श्रीसीतादेवी, देवी सर्व्वजया।
सकेले आसेन जेन करुणा करिया॥
आमार निमाइचाँदे सबे भालवासे।
बालिका युवती वृद्धा सबे जेन आसे॥
कीर्त्तन मङ्गल कर वउमा लइया।
नाचुक निमाइ आमार कीर्त्तन शुनिया॥
शचीमायेर आदेशे कञ्चना अमिता।
कीर्त्तनाधिवास करे हये हरषिता॥

'हरि बोल', 'हरि बोल'—(भुवन मङ्गल हरिनाम इत्यादि), यहाँ छः टोलियां (सम्प्रदायें) बनाई गई थीं, जैसे—काञ्चना, अतितप्रभा, कदलिका, इन्दुमति, वसन्त-मञ्जरी, हेमन्तमञ्जरी। वहाँ छः मृदङ्ग बजाने वाले बालक थे। मृदङ्ग बजानेमें दक्ष आठ-दस बर्षकी आयु वाले बालक इससे अधिक नहीं मिले। केवल इन ६ बालकोंने वहाँ प्रवेशाधिकार पाया था। अन्य किसी पुरुषका प्रवेशाधिकार वहाँ नहीं था। नीचे सीढ़ीके दरवाजेपर कड़ा पहरा था। अतः वहाँके कीर्त्तन-दर्शनका सौभाग्य हम लोगोंको नहीं मिल सका। समय समय पर नीचेसे ही केवल मात्र सुललित कण्ठ-ध्वनि सुनाई देती थी। (इस वास्ते वहाँका वर्णन नहीं दिया जा सका) करताल महिलाओंने स्वयं ही बजाई थी।

प्रभु, सात दिनों तक सात वेशोंमें सुसज्जित होकर भक्तगणोंके नयन-मनका रञ्जन करते रहे। प्रथम दिन तो वे सजे थे रसिकनागर, दूसरे दिन नागर राय, तीसरे दिन कीर्त्तन विहारी, चौथे दिन नदिया विनोद, पांचवें दिन नागरीवल्लभ, छठे दिन रासविहारी और सातवें दिन रसराज महाभावके अनुरूप।

कीर्त्तनकुञ्ज अर्थात् श्रीआंगन सातों दिन पत्र पुष्पों द्वारा नवीन वेशसे सजाया गया। इसका भार लिया था रसिक भक्त श्रीउपेन्द्रनाथ सेन ठाकुरने। छः दिनों तक तो श्रीआंगन एक वेशमें सजाया गया। सातवें दिन सविशेष परिवर्त्तन किया गया। उस दिनका वह सर्वचित्ताकर्षक परिवेश सेन ठाकुर महाशयके हृदयकी रसिकताका परिचायक था।

घरके बाहरकी तरफ छप्पन प्रहरमें प्रति प्रहर छप्पन रागिनीमें नौबतमें रसनचौकी बजाई गई। किसी-किसीका कहना है कि इस रसनचौकी वाद्यका अर्थ यह है कि भक्तगण जिस आंगनमें श्रीगौराङ्गके सहित जिस कीर्त्तन-रसका रस प्रकट करते वह प्रति प्रहर विभिन्न रागिनीमें चौकी द्वारा सबको जताया जाता था। इसीलिये इस वाद्यका नाम रसनचौकी पड़ा। वास्तवमें रसनचौकी वाद्यकी सार्थकता यहीं हुई।

प्रतिदिन दोनों समय एक हजारसे भी अधिक भक्त प्रसाद पाया करते। प्रसाद पानेके समय भी पद-कीर्त्तन व प्रेमध्वनि चलती रहती। ८-९ दिनोंकी गौरनाम-प्रेमकी वाढ़में सभी आप्लावित से लगते थे। बड़ी आशा थी कि आप शुभ पदार्पण करेंगे और आपके साथ मैं इस आनन्दका उपभोग करूँगा लेकिन शायद भाग्यमें वह नहीं बदा था। मेरा अपना पात्र ही कितना-सा है, उसमें मैं कितना आस्वादन कर सकता? आप होते तो अपार रस पाते। दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें।"

मेरा दुर्भाग्य है कि इस महामहोत्सवमें मैं सम्मिलित नहीं हो सका, लेकिन मेरा मन इन कई दिनोंमें वहीं पड़ा रहा। नाना कारणोंसे शरीर असमर्थ होरहा है, किन्तु परम दयालु जीवन-सर्वस्व-धन श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग अभी भी प्राणोंमें नये-नये उत्साहका सञ्चार करते रहते हैं। श्रीमान् किरणकुमार मेरे श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके चिन्हित दास हैं। मेरे प्रभु व प्रियाजीकी सेवा व नाम कीर्तनमें ही वे दिन रात मग्न रहते हैं। उनकी अतुल सम्पत्ति सब कुछ श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके सेवाकार्यके निमित्त उत्सर्गीकृत है। वे 'श्रीदादा' और 'श्रीमां'के विशेष कृपा-पात्र हैं। दैन्यके अवतार वैष्णव-चूड़ामणि श्रीमान् किरणकुमारजी को मैंने केवल एकबार ही देखा था। तभीसे न जाने कैसे एक अनोखे प्रेम-बन्धनमें बँध गया हूँ। वे परम रूपवान युवक ऐश्वर्यकी गोदमें लालित-पालित होकर भी परम प्रेमिक और अतिशय दीन-हीन हैं। श्रीदादाकी कृपासे अब वे श्रीश्री-गौरविष्णुप्रियाकी युगल सेवामें उन्मत्त हैं और गौर-प्रेममें पागल हैं।

पूर्व बङ्गालकी द्वितीय यात्रा

•

[श्रीअमृतलाल दत्त द्वारा वर्णित]

(बङ्गाब्द १३३३, गौराब्द ४४० की वैसाखी पूर्णिमाके पुष्पडोल उत्सवपर पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुने फिर पूर्व बङ्गालकी यात्राकी थी। इस यात्रामें उनके साथी थे श्रीविष्णुप्रिया परिवारके श्रीपाद नृत्यगोपाल गोस्वामी प्रभु, ढाका दक्षिणके महाप्रभुजीके पितृव्यवंशी श्रीपाद रामदयाल मिश्र महाशय एवं श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-पत्रिकाके कार्याध्यक्ष श्रीअमृतलाल दत्त और उनके सहकारी श्रीगोकुलचन्द धर। इस यात्राका वृत्तान्त श्री अमृतलाल दत्तका लिखा हुआ है जो यहाँ दिया जा रहा है।)

पुनः नरसिंहदीमें

हमलोग भक्तवर श्रीहरिचरण आचार्य महाशयके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौर-विष्णु-प्रियाके मन्दिरके वैसाखी पूर्णिमाके पुष्पडोल उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये कलकत्तासे ढाकामेलसे चलकर अधिवासके दिन रात्रिमें लगभग १० बजेकी गाड़ीसे पहुँचे। स्टेशन पर बहुतसे भक्त-वृन्द आये थे और यथायोग्य सम्मान सहित प्रभुद्वयको पुष्पमालासे विभूषितकर मोटरगाड़ी द्वारा श्रीमन्दिरमें लाकर महासंकीर्त्तन आरम्भ किया गया। **'जय गौर विष्णुप्रिया—प्राणगौर विष्णुप्रिया'** की ध्वनिसे दिगन्त मुखरित हो उठा।

वासण्डा (वरिसाल) के सुविख्यात जमींदार भक्तवर श्रीकिरणकुमार राय स्वयं कीर्त्तनिया थे। जैसा उनका सुकण्ठ है वैसे ही वे प्रेमिक-भक्त हैं। गम्भीर रात्रिमें उनके अपने सुरमें श्रीगौर-विष्णुप्रिया नाम कीर्त्तनकी कैसी मधुवृष्टि हुई—वह देखे-सुने बिना किसीकी समझमें नहीं आ सकती। कलकत्ता विश्वविद्यालयके उच्च-शिक्षित युवक श्रीमान् रमणीमोहन महानन्द और देवेन्द्रनाथके मधुर कण्ठसे अलग मधुवर्षा हो रही थी। उच्च नामकीर्त्तन द्वारा इन सब गौर-विष्णुप्रिया भजन-निष्ठ तरुण युवकोंने उपस्थित भक्तवृन्दके मनमें अपूर्व प्रेमानन्दका सञ्चार करते हुए कीर्तांङ्गनको वैकुण्ठमें परिणित कर दिया।

श्रीहरिचरण आचार्य महाशयके ज्येष्ठ भ्राता श्रीगुरुचरण आचार्यको 'श्रीदादा' ने सनातन मिश्र नाम देकर नरसिंहदीके श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया विवाह-उत्सवमें बहुत दिन पूर्व जो लीलाकी थी मानो उसका अब पूर्ण विकास हो रहा है। गुरुचरण आचार्य इस समय वृद्ध हो गये हैं। उनकी एक परमभक्तिमती कन्या है, श्रीहरिचरण दादाके श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रह सेवाका भार उसी पर है। उनकी और एक कन्या है। उसका नाम है श्रीमती विष्णुप्रिया देवी। निमाई पण्डित उनके जामाता हैं। 'श्रीदादा' उनको यही सम्बन्ध दे गये हैं। श्रीगुरुचरण दादाको निमाई पण्डितके श्वशुर और श्रीमती विष्णुप्रिया देवीके पिता होनेका अभिमान है। यही उनका भावपूर्ण भजन है। वे गौराङ्ग मन्दिरमें आकर जामाताको प्रणाम नहीं करते। कभी-कभी जामाताको अपने घर निमन्त्रण देकर उत्तम प्रकारसे भोजन कराते हैं। पिछले दिनों पत्नी-वियोगपर चतुर्थीके दिन श्राद्धके लिये सबके समक्ष श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीको श्राद्ध-मण्डपमें बिठाकर उन्हींके द्वारा मातृश्राद्ध क्रिया सम्पन्न कराई, उनकी अपनी कन्या प्रतिनिधि रूपमें उपस्थित थी।

श्रीपाद हरिदास गोस्वामीके पधारने पर उन्हें आदरपूर्वक अपने घरले जाकर श्रीगुरुचरणदादाने उनके साथ इष्ट-गोष्ठी की। उनको वे बोले—"श्रीदादा कैसा पुतलीका खेल कर गये? जिसको वे जो भाव दे गये उसी भावके भजनसेही उसको निश्चित प्राप्ति हो रही है।"

ये अपूर्व भावाविष्ट गौरभक्त साधक-श्रेष्ठ कुछ दिनों पूर्व श्रीधाम नवद्वीपमें आकर अपने जामाताके मन्दिरमें रात्रिको देर तक बैठे रहे थे। किसी प्रकारका रहने आदिके स्थानका प्रबन्ध नहीं करेंगे, इसी अभिप्रायसे बैठे रहे क्योंकि वे जामाताके घर आये हैं, जामाताही सब बन्दोबस्त कर देंगे। इसी आशासे गुरुचरण श्रीमन्दिरमें रात्रिको अकेले बैठे हुए थे, ऐसे समयमें महाप्रभुके सेवाइत श्रीपाद षष्ठीदास गोस्वामी प्रभु उनको परम आदरसे अपने घर लेजाकर निवास और भोजनादिकी सुव्यवस्था करके श्रीमन्महाप्रभुके सम्बन्ध-सूत्रको दृढ़से दृढ़तर बना दिया। इसके बाद जब राधारमण चरणदास बाबाजीके मठमें श्रीललितादासीके पास गये तब गुरुचरणको पता लगा कि स्वप्नमें निमाई पण्डितने श्रीललिताजीको बताया था—"उनके श्वशुर आयेंगे, उनका सम्मान और प्रबन्ध करना।" ललितादासीने गुरुचरणको पाकर प्रेमानन्दमें प्रेमाश्रु विसर्जन करके उनकी यथायोग्य आदर सम्वर्द्धना की थी। भावग्राही श्रीगौर भगवान भक्तके सभी भाव ग्रहण करते हैं। श्रीदादाके कृपासिद्ध ऐसे अनेक भावुक भक्त हैं जिनके सङ्ग मात्रसे परम आनन्द मिलता है। हम लोगोंके परम सौभाग्यसे गुरुचरण दादाका सङ्गलाभ हुआ था।

कीर्त्तनमें 'श्रीदादा'के आविर्भावका दर्शन करके श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु प्रेम-विह्वल हो गये। उस विचित्र अवस्थाका वर्णन करनेके लिये कोई भाषा सक्षम

नहीं है। भक्तवर विधुभूषणका मधुर प्रेम-नृत्य, तारकचन्दका उद्दण्ड-नृत्य, कीर्त्तनियोंके मधुर कण्ठकी मधुधारा, मधुर-मधुर मृदङ्ग-ध्वनि मानो उपस्थित सभी भक्तवृन्दोंके हृदयोंमें कलसके कलस मधु उड़ेलने लगी। अर्द्धरात्रि तक इस प्रकारके अपूर्व कीर्त्तनानन्दसे सहस्त्रों लोग आत्मविस्मृत होकर मत्त हो रहे थे। इस प्रकारका विशुद्ध कीर्त्तनानन्द पश्चिम बङ्गालमें कठिन है क्योंकि वहाँ भाड़ेके गायक और वादकोंके प्रादुर्भावसे प्रेमानन्दकी उत्कर्षताका लाभ सम्भव नहीं।

दूसरे दिन सभी प्रभुपादगण सपरिकर और भक्तवृन्द सहित नगरकीर्त्तनके लिये बाहर निकले। साटिरपाड़ाके श्रीलालमोहन मोदक द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-श्रीविग्रह प्राङ्गणकी प्रदक्षिणा करके, नरसिंहदी घूम आनेपर महामहोत्सवकी पूर्णाहुति दी गयी—कादा महोत्सव (कर्दम महोत्सव) व जलकेलि रङ्गमें भक्तवृन्द मत्त हो गये।

इस वार्षिक उत्सवमें सर्व साधारणको प्रसाद वितरण 'दीयतां भोज्यतां' भावके अनुष्ठानमें कोई त्रुटि नहीं थी। श्रीहरिचरण दादाकी आर्थिक अवस्था अच्छी न होनेपर भी वे गत बीस वर्षोंसे यह उत्सव महासमारोहके साथ सम्पन्न करते आ रहे हैं। 'भक्तका भार श्रीभगवान वहन करते हैं।' कहाँसे यह विपुल द्रव्य-सम्भार आता है, इसकी शायद ही किसीको कोई सच्ची कल्पना हो।

इस वर्ष नरसिंहदीके उत्सवके समय पूर्ण कुम्भका योग हुआ था। सब भक्त-गणोंके शुभ-आगमनसे अबकी बार महामहोत्सवकी शोभा व समृद्धिमें भी अधिक वृद्धि हुई थी।

हिन्दू-मुसलमानके झगड़ेके कारण इस वर्ष श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुको पूर्व बङ्गाल जानेके लिये बहुतसे लोगोंने निषेध किया परन्तु उन्होंने किसीकी बात नहीं मानी। एक अपूर्व-लीला द्वारा श्रीगौरसुन्दरने गोस्वामी प्रभुकी आत्म-रक्षाका और गौर-निष्ठाका परिचय दिया। पूज्यपाद गोस्वामी प्रभु अपने स्वजनोंके साथ जब नरसिंहदी स्टेशनपर सर्व प्रथम उतरे तब एक भद्र श्रेणीके मुसलमान युवक उनके दर्शन करके आकृष्ट हुए और किस प्रकार उनसे साक्षात्कार हो—इसका उपाय करने लगे। गोस्वामी प्रभु कौन हैं और वे कहाँ जायेंगे—इसकी जानकारी उन्होंने ले ली। दूसरे दिन दोपहरको नरसिंहदीमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया मन्दिरके निकट बैठे हुए जब वे भक्तगणोंके साथ इष्ट-गोष्ठी कर रहे थे, उस समय वही युवक एक नारियल और एक उत्तम केलेकी छड़ हाथमें लिये वहाँ पहुँचे और सबके देखते हुए गोस्वामी प्रभुके आसनके सन्मुख बैठकर दोनों हाथोंसे उनसे दोनों चरण स्पर्श करते हुए उनकी वन्दना की। गोस्वामी प्रभुने स्नेहपूर्वक उनके मस्तकपर हाथ रखा और उनको उठाकर पूछने लगे—"बाबा!

तुम कौन हो, और मेरे पास किस उद्देश्यसे आये हो।" मुसलमान युवकने उत्तर दिया "आप हिन्दू पीर और महात्मा हैं—यह मैंने जान लिया है। अपनी मस्जिदके मुल्ला साहबसे पूछकर मैं आपकी शरण आया हूँ। आपके ग्रहण कर लेनेसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।"गोस्वामी प्रभुने परम सम्भ्रमके साथ उनसे कहा—"मैं हिन्दू हूँ, तुम मुसलमान हो, मेरे द्वारा तुम्हारा क्या उपकार हो सकता है, मैं नहीं जानता। तुम किसलिये मेरा अनुग्रह चाहते हो ?" तब उस मुसलमान युवकने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"मैं बहुत विपत्तिमें पड़ा हूँ। आपकी शरण आया हूँ। एक सम्पत्ति घटित दलीलके मुकद्दमेमें मेरा सर्वनाश होनेकी तैयारी हो रही है। मुझे विश्वास है कि आपकी कृपाहो जायगी तो मैं वह मुकदमा जीत जाऊँगा। आप मुझपर प्रसन्न होकर दुआ दें।" इतना कहकर वह फिर गोस्वामी प्रभुके चरण पकड़ने लगे। गोस्वामी प्रभुने उनको उत्तर दिया "मैं तो कुछ जानता नहीं। लेकिन मेरे सर्वस्वधन पीरोंके पीर श्रीगौराङ्ग प्रभुके चरणोंमें तुम्हारी कार्यसिद्धिके लिये मैं निष्कपट प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें।" यह बात सुनते ही मुसलमान युवकके मुँहपर हँसी दिखायी दी और संतुष्ट होकर उन्होंने पुनः गोस्वामी प्रभुकी चरण वन्दना करके विदाकी अनुमति माँगी। वहाँ उनके साथ कई और मुसलमान उपस्थित थे और बहुतसे भक्तवृन्द भी थे। गोस्वामी प्रभुने कहा—"तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जाय तो मुझे नवद्वीपमें एक पोस्टकार्ड द्वारा समाचार दे देना।" मुसलमान युवकने हाथ जोड़े हुए कहा—"मैं स्वयं नवद्वीप आकर आपके श्रीचरणोंके दर्शन करूँगा।"

नरसिंहदी उत्सवमें बहुतसे मुसलमानोंको सम्मिलित होते देखा था। कोई गोलमाल नहीं हुआ। कई मुसलमानोंने प्रसाद भी पाया था। वहाँ श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे हिन्दू-मुसलमानोंमें कोई विद्वेष भाव देखनेमें नहीं आया।

श्रीपाद हरिदास गोस्वामी कीर्त्तन-श्रान्त होकर जब श्रीमंदिरके प्राङ्गणमें एक तरफ आसन पर बैठे हुए थे और बहुतसे भक्तगण उनके श्रीचरणकी रजकी प्रार्थना करते हुए बहुत गण्डगोल कर रहे थे, उसी समय एक भाग्यवान कुत्ता उस लोक-संघटको भेदकर उनके चरण तले उपस्थित हुआ। उन्होंने उसको प्यार करते हुए उसके मस्तकपर हाथ रखते हुए कहा—"कृष्ण कहो।" इतनेमें ही वह कुत्ता दोनों पैर ऊपर उठाकर प्रेमानन्दमें अपनी भाषामें कुछ बोलने लगा, और किसी प्रकार भी गोस्वामी प्रभुके चरणोंसे अलग नहीं हुआ। जब वे अपने निवास स्थान पर आये तब भी वह कुत्ता साथ-साथ आकर उनके चरणोंमें बैठा रहा। उनको प्यार करके 'कृष्ण कहो' कहते ही वह प्रेमानन्दसे दोनों पैर उठाकर अपने भावोंमें कई प्रकारकी अङ्गभंगी करने लगता और कितनी बातें बोलने लगता। यह अपूर्व दृश्य देखकर उपस्थित भक्तवृन्दने प्रेमानन्दसे **'जय गौर-विष्णुप्रिया'** ध्वनिसे उस स्थानको गुँजा दिया।

पुनः साटिरपाड़ा ग्राममें

नरसिंहदी उत्सवके बाद सब भक्तगण वहाँके निकटवर्ती साटिरपाड़ा ग्राममें श्रीलालमोहन मोदकके घर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके वार्षिक उत्सवमें पहुँचे। यहाँपर भी वैसा ही अष्टप्रहरी नामसंकीर्तन, वैसा ही प्रेमानन्दका निर्झर, वैसी ही प्रेम-तरङ्गें उसी प्रकारका लोकसंघट, उसी प्रकारकी प्रसाद वितरणकी सुव्यवस्था देखकर हम लोगोंके प्राण प्रेमानन्दसे भर उठे।

अष्टप्रहरके नामकीर्तनमें सब जगह उसी तरह असंख्य लोगोंका समागम था। इसके लिये कहीं कोई आदर अभ्यर्थना, अनुनय-विनयकी आवश्यकता नहीं थी। बिना बुलाये कहाँसे इतने सब लोग इस निरुपाधिक महासंकीर्तनमें सम्मिलित होते हैं, इसको कोई नहीं जानता था। **'जय गौर विष्णुप्रिया, प्राण गौर विष्णुप्रिया'** की गगन-भेदी ध्वनिसे दशों दिशायें गुन्जार रही थीं। उदण्ड प्रेमनृत्यसे भूकम्प-सा हो रहा था। प्रचण्ड करताल व मृदङ्ग वाद्य द्वारा प्रत्येक नर-नारीके हृदयसे जो एक प्रकारकी अभूतपूर्व प्रेमानन्दकी तरङ्ग उठ रही थी, उसके वर्णनके लिये भाषा नहीं है।

भक्त लालमोहनकी गोष्ठी आदर्श वैष्णव सेवककी गोष्ठी थी। श्रीविग्रहकी सेवाका भार प्रायः सर्वत्र ही नारायणी-शक्ति वैष्णव-गृहिणीगणोंके हाथोंमें था। वे ही अष्टकालीय सेवा और मंगल व सन्ध्या आरती आदि किया करतीं। ये सब देखकर गौरआना गोसाईं श्रीअद्वैत प्रभुकी महाप्रभुके पास की हुई बर प्रार्थना याद आई :—

अद्वैत बलये यदि भक्ति विलाइबा।
स्त्री शूद्र आदि जत मूर्खेरे से दिबा॥
विद्या धन कुल आदि तपस्यार मदे।
तोर भक्त तोर भक्ति जे जे जन बाधे॥
से पापिष्ट सब देखि मरुक पुड़िया।
आचण्डाल नाचुक नाम गुण लइया॥

(श्रीचैतन्य भागवत)

इस अपूर्व प्रार्थनाका वास्तविक फल पूर्व बङ्गालमें ही सुफल हुआ है। इन उत्सवोंको देखकर हमलोगोंको भी पूर्ण विश्वास हुआ कि श्रीअद्वैतवाक्य पूर्णभावसे फलीभूत हुआ है पाण्डव वर्जित देशमें पूज्यपाद कविराज गोस्वामीजीकी अभय वाणी—

"नीच शूद्रेर द्वारा धर्म्मेर प्रकाश"

देशके इस संपूर्ण भागमें प्रत्येक वर्णमें फलीभूत हो रही है। 'नीच' शब्दका उच्चारण करनेमें भी इस समय लज्जाका बोध होता है। श्रीगौराङ्ग युगमें ऊँच-नीच और

ब्राह्मण-शूद्रमें कोई भेद नहीं, जो भक्तिमान है वही ऊँच है, वही पूज्य है, जो भगवत सेवा परायण है वही श्रेष्ठ है—इस बातको साधु वैष्णवोंके मुँहसे सुना है और ग्रन्थोंमें पढ़ा है लेकिन अब उसको अपनी आँखोंसे देखकर नयनोंको सार्थक किया।

साटिरपाड़ासे विदाईका दृश्य बहुत ही करुण रसात्मक था। भक्तवृन्दने दोनों प्रभुओंके चरण प्रेमाश्रुजल द्वारा धोकर विदा दी।

साटिरपाड़ासे कई विशिष्ट भक्तोंके साथ हमलोगोंने त्रिपुरा जिलेके उजानचर ग्रामके लिये यात्रा की।

उजानचर ग्राममें

भक्तवर प्रेममय कुञ्जमोहन दादा एवं गोस्वामी प्रभुके अनुगत प्रिय शिष्य रसिकचन्द्र दादाके अनुरोधसे उजानचरके प्रेमकुञ्जमें स्थित श्रीविष्णुप्रियागौर मन्दिरमें जानेको रातको स्टीमर (जहाज) द्वारा हमलोगोंको सादर ले जाया गया। पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुका यह विशेष नियम है कि आगे कहाँ जानेका कार्यक्रम है, पहलेसे निश्चित करके नहीं बताते। तीन दिनसे रसिक दादा एवं कुञ्जदादा उनके पीछे पड़े हुए थे "प्रभु ! आपको उजानचर जाना ही होगा, कब जायेंगे, कौन-सा समय निश्चित किया जाय ?" गोस्वामी प्रभुके शिष्य हैं लेकिन वे उनके घर नहीं जाते। कभी कहीं जाना हो तो वे आदर अभ्यर्थनाका अवसर नहीं देते। शेष मूहूर्तमें संध्याकालके ठीक पूर्व बोले—"चलो, आजही उजानचर चलेंगे।" उसी समय यात्राका सब प्रबन्ध हो गया।

दूसरे दिन जहाजके स्टेशन श्रीमद्दिसे नाव द्वारा चलकर करीब ९-१० बजेके समय हम लोग उजानचरमें प्रेमकुञ्ज घाटपर आ पहुँचे। जब जलमार्गका दो मीलका रास्ता बाकी रह गया था, वहींसे कुञ्जदादा और रसिकचन्द्र नावसे उतरकर पैदल चले, जिससे कि कुछ पहिले पहुँचकर स्वागत-सत्कारका कुछ प्रबन्ध किया जा सके, किन्तु यह बात उन्होंने बतायी नहीं।

प्रेमकुञ्ज घाटपर नाव लगते ही देखा गया कि बहुतसे लोग संकीर्तन, वाद्यभाण्ड और पालकी सहित पताका हाथोंमें लिये खड़े हैं। गोस्वामी प्रभुद्वयको नावपर खड़े देखते ही सभीने प्रेमानन्दसे **'जय गौर विष्णुप्रिया'** की ध्वनि की, जिससे दशों दिशायें गूँज उठीं। कुञ्जदादाने आकर उन लोगोंको पुष्पमालाओंसे विभूषित किया और नये वस्त्रसे आच्छादित मार्ग द्वारा संकीर्तनके साथ घाटके ऊपर स्थित प्रेमकुञ्जके श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया मन्दिरमें ले गये। ग्रामवासी कुल-वधुओंकी शुभ हुलुध्वनिके साथ मृदङ्ग और करतालकी मधुर ध्वनि सम्मिश्रित होकर, अपूर्व प्रेमानन्दकी वृष्टि करने लगीं। मार्गमें पुष्पोंकी और धानके लावाकी वृष्टि हो रही थी। साथ-साथ वाद्यभाण्डभी चल

रहे थे । सुसज्जित पालकीभी प्रस्तुत थी । संक्षेपमें इतने अल्प समयमें प्रभुद्वयके स्वागत-सत्कारके लिये सब प्रबन्ध कर लिया गया ।

प्रेमकुञ्जमें प्रेममय कुञ्जदादा द्वारा प्रतिष्ठितप्रेमकी अपूर्व मूर्ति श्रीश्रीनदिया-युगल श्रीविग्रहके दर्शनकर गोस्वामी प्रभुद्वयने प्रेम विगलित चित्तसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और संकीर्तनमें सम्मिलित हुए । उस समय वहाँ प्रेमका तूफान उठ खड़ा हुआ, बहुत लोगोंका संघट जम गया ।

कीर्तनके उपरान्त किञ्चित विश्राम करके पूज्यपाद हरिदास गोस्वामीको पहले पालकीपर बिठाकर प्रेमकुञ्जसे गाँवके बाजारमें होते हुए संकीर्तन और वाद्यभाण्डोंके साथ, उनके शिष्य रसिकचन्द्र दादा द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके मन्दिरमें ले जाया गया । रास्तेमें ग्रामवासिनी कुलवधूगणोंकी शुभ हुलुध्वनि और नागरिकगणोंकी उच्च हरिध्वनिसे उजानचर ग्राम गूँज उठा ।

हरिदास प्रभुको श्रीमन्दिरमें छोड़कर इसी प्रकार संकीर्तनके साथ पालकीपर चढ़ाकर फिर नृत्यगोपाल गोस्वामी प्रभुको यथायोग्य सम्मानके साथ वहाँ ले आया गया ।

दोनोंको विचित्र कारीगरीके पीढोंपर खड़ा करके यथारीति गुरुपूजनका आयोजन किया गया । धान्य, दूर्वा, पुष्प, चन्दन आदिसे चरण पूजा करनेके बाद रसिक दादाकी गृहिणीने सप्तदीप द्वारा श्रीगुरुदेवकी मंगल आरती की । संकीर्तन पूर्ण मात्रामें चालू था । बीच-बीचमें हरिध्वनिके साथ कुलकामिनीगणकी अपूर्व श्रुति-मधुर शुभ हुलुध्वनि सुनी जा रही थी । धूप धूनाकी सुगन्धसे प्राङ्गण आमोदित होरहा था । **'जय गौर विष्णुप्रिया'** नामसे दिक्मंडल गूँज रहा था। श्रीगुरुपूजाका ऐसा आयोजन, ऐसी रीति पूर्व बङ्गालमें ही देखनेको मिली । पश्चिम बङ्गाल वालोंके लिये यह सब शिक्षणीय है । भक्तिमती वैष्णव गृहिणीगण एवं उपस्थित भक्तवृन्दने गोस्वामी प्रभुद्वयका पादोदक पान किया और बालक-बालिकाओंको वितरण किया । इसके उपरान्त उपयुक्त स्थानपर विभिन्न आसनोंपर उनको बिठाकर लोग सेवा-कार्यमें लग गये ।

रसिकमोहन दादाके घर श्रीश्रीनदियायुगल-श्रीपट्टमूर्तिकी सेवा प्रतिष्ठित हुए केवल एक वर्ष ही हुआ है । गत वर्ष नरसिंहदीके उत्सवके समय रसिक दादा सस्त्रीक दीक्षित हुए थे । एक वर्षमें ही उनकी दीक्षाके फलसे गोष्ठीमें जो प्रेमभक्तिका उदय हुआ उसको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ । पूज्यपाद हरिदास गोस्वामीसे पूछनेपर पता लगा था कि नावमें बैठे-बैठे रसिक दादाको दीक्षा देकर वे चले आये और उन्हें कुछ पता नहीं ।

प्रभु व प्रियाजीके श्रीमन्दिरमें उत्तम पलंग, बिछावन, आलमारी, दो नयी कुर्सियाँ, दर्पण, सुगन्धित तेल, उत्तम वस्त्र, आसन, भूषण आदि सब कुछ यथारीति संग्रह करके रखे गये हैं। भोगका आयोजन बहुत चमत्कारपूर्ण था। बालभोगमें घनावृत दुग्ध अन्दाज तीन सेर, दधि, क्षीर, उत्तम आम्र, मर्तवान केला, धानका लावा, चिउड़ा, चीनी संदेश आदि—किसी भी वस्तुका अभाव नहीं, यद्यपि रसिकचन्द्र दादाकी अवस्था उतनी अच्छी नहीं थी, उनका परिवार भी सामान्य नहीं था। श्रीश्रीगौरप्रियाजीकी कृपासे उनकी गृहस्थीमें किसी वस्तुका अभाव नहीं था।

कुञ्जदादा अब वृद्ध हो गये थे। उनकी पत्नी नहीं थी। श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया सेवाही उनका प्राण था। वे 'श्रीदादा' के सविशेष कृपापात्र थे। उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीनदियायुगलकी प्रेमकुञ्जमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी निभृत कुञ्जसेवा अनुष्ठित होती थी। उजानचरमें श्रीदादाके अनेक कृपापात्र थे। लेकिन उन सबमें प्रधान एवं शिक्षा-गुरु स्थानीय कुञ्जमोहन दादा ही थे। रसिकचन्द्र दादा एवं अन्य कई लोगोंके वे शिक्षा-गुरु थे। वे परम भक्तिरसपात्र एवं शान्त प्रकृति थे। वे स्थानीय उच्च अँग्रेजी विद्यालयके हेड (प्रमुख) पण्डित थे। गौर कथा सुनते हुए उनके नयनोंसे झर-झर प्रेमाश्रुकी धारा वर्षा होती थी। उनका वैष्णवोचित दैन्य व आर्त्ति देखकर हमलोग बहुत आनन्दित हुये थे। इस प्रान्तमें उनका नाम सुपरिचित था और श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा प्रचारके वे सर्व-प्रधान उद्योगी थे।

उजानचरमें पूज्यपाद गोस्वामी प्रभु पधारे हैं, यह समाचार बिजलीकी तरह सर्वत्र फैल गया। निकटवर्त्ती ग्रामोंसे बहुतसे शिक्षित लोग और धनी जमींदार आ-आकर दोनों प्रभुओंके साथ सत् समागम करने लगे। स्थानीय जमींदार भगवान बाबू भी उपस्थित थे। इस छोटे-से गाँवकी खुली जगहमें ऐसी असह्य गर्मीके दिनोंमें वृक्षके नीचे कुछ बिछाकर पूज्यपाद श्रीहरिदास गोस्वामी और श्रीनृत्यगोपाल प्रभु बहुतसे शिक्षित लोगोंके साथ अलग-अलग बैठकर जब सत्-समागम करने लगे, तब गौर-कथाका सर्व प्रिय प्रसङ्ग चल पड़ा। युक्ति, तर्क, शास्त्रालोचन, विचार, सिद्धान्त सभीकी चर्चाएँ हुईं। उपस्थित सब लोग मन्त्र-मुग्ध हो गये। यहाँ पर क्षेत्रमोहन बाबू बी०ए० बी०टी० हाई-स्कूलके हेड-माष्टर, गुरुचरण बाबू हाई-स्कूलके पण्डित आदि १६-१७ शिक्षित व्यक्ति गौर मन्त्रसे दीक्षित हुए। क्षेत्रबाबूने श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-सेवा ग्रहण की।

दो दिन उजानचरमें रहकर घर-घरमें कीर्तनानन्दका दान करते हुए, सगोष्ठि रसिकचन्द्रको रुलाकर, भक्तोंके प्राण-मन हरण करके, पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुने स्वगण सहित नाव द्वारा माथाभाङ्गाके लिये प्रथान किया, जहाँ ज्योतिर्विशारद श्रीमहिमाचरण आचार्यके घर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाका उत्सव हो रहा था। नावमें कुञ्जमोहन दादा और रसिकचन्द्र दादा आदि अनेक भक्त हम लोगोंके साथ जा रहे थे।

उजानचरसे मेघना नदी पारकरके माथभाङ्गा जानेका आठ घंटेका मार्ग था । कीर्तनानन्द और गौरकथाके रसरङ्गमें मग्न हुए, आनन्द पूर्वक हम सबने प्रभुद्वयके साथ अपने गन्तव्यकी ओर जानेके लिए प्रस्थान किया ।

इसी समय रसिक दादाके घरसे आकर किसीने समाचार दिया—"उनके घरकी दशा बड़ी शोचनीय है । श्रीगुरुदेवको विदा देकर उनकी भक्तिमती स्त्री व अन्यान्य स्त्रीवर्ग एवं बालक-बालिकायें सभी पड़ी रो रही हैं । किसीके भी मुँहसे कोई बात नहीं निकलती, मानो समस्त घरको एक गंभीर विषादकी छायाने घेर लिया है । श्रीविग्रहका मुखचन्द्र भी मलीन दिखायी दे रहा है ।" गुरुभक्तिका सच्चा परिचय यहाँ मिला । सच्ची गुरु-सेवाका फल यही है । श्रीगुरु-कृपाका वास्तविक निदर्शन भी यही है ।

पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुसे यदि कोई जिज्ञासा करता है—"प्रभु ! दीक्षा ग्रहण करूँगा, क्या लगेगा ?" तो वे मृदु मधुर हास्यके साथ उत्तर देते हैं—"एक फल संकल्पके लिये और एक फूल दक्षिणाके लिये रख लेना, इतना यथेष्ट है, और कुछ नहीं चाहिये ।" यह बात सुनकर बहुतोंको आश्चर्य होता है, लेकिन कुछ कह नहीं सकते । भक्तवृन्दके लिये श्रीधाममें भी उनके श्रीमन्दिरका द्वार खुला है । दीक्षा प्रार्थी शिष्योंके लिये सब जगह उनकी एकही बात होती है । इसीसे वे गौरभक्तोंके इतने प्रिय हो गये हैं । बड़े लोग और दरिद्र सभी उनकी आँखोंमें एकसे हैं । सभीके प्रति उनकी समदृष्टि है ।

माथाभाङ्गामें

हमलोग तारीख १६वीं ज्येष्ठकी रात्रिको लगभग ९-१० बजे नाव द्वारा माथाभाङ्गा गाँव पहुँचे । भक्तगण नदीके तट पर एकत्रित तो थे ही, दोनों गोस्वामी प्रभुओंको यथायोग्य सम्मान प्रदान कर संकीर्तनके साथ श्रीयुक्त महिमाचरण ज्योतिर्विशारदकी ठाकुरवाड़ीमें ले गये । यहाँपर भी श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया नाम संकीर्तन चल रहा था । हम लोग जब श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें पहुँचे तब कीर्तन प्रचण्ड गतिसे चल रहा था । २-४ भक्त मूर्छित-निश्चेष्ट (वाह्य-ज्ञान-शून्य) होकर प्राङ्गणमें भूमिपर पड़े थे । अन्य कुछ भक्तगण उनकी सेवामें नियुक्त थे । ज्येष्ठ महीनेकी भीषण गर्मीमें पसीनेसे तर भक्तगण (वाह्य-ज्ञान-शून्य) होकर प्रेमानन्दसे उद्दण्ड कीर्तन कर रहे थे और मृदंग-करतालसे दिगन्त गूँज रहा था । लोक-संघटकी छटा देखकर मनमें आया कि इस सुदूर पाण्डव वर्जित देशमें श्रीगौराङ्ग भक्तोंका अभाव नहीं है । इसीसे उनकी सच्ची गौर-भक्तिका परिचय मिलता है ।

माथाभाङ्गा गाँव एक उन्नतशील गाँव है । वहाँ प्रायः तीन सौ भद्र परिवार निवास करते हैं, लेकिन उनमें बसन्त साधुके अनुगत एकमात्र श्रीयुक्त आचार्यको छोड़कर श्रीगौराङ्ग चरणाश्रित वैष्णव एक भी नहीं है । उन्हींके घरमें

श्रीश्रीनदियायुगलकी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई है। महिमाचरणने अपने महिमागुणोंसे और श्रीश्रीदादाके आशीर्वादके फलस्वरूप इस वैष्णव विहीन स्थानमें श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया सेवाका प्रकाश करके अपने वैष्णवत्वका सच्चा परिचय दिया है और गौरधर्म-प्रचारकी सुदृढ़ नींव स्थापित की है। श्रीदादाने कहा था कि माथाभाङ्गा (सिरफोड़) गाँवमें श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके समय सिर फूट सकते हैं। इस प्रकारका अवैष्णव स्थान है यह माथाभाङ्गा गाँव, और ऐसे वैष्णव द्वेषी बहिरङ्ग लोगोंका वास है यहाँ। किन्तु अब देखा गया है कि माथाभाङ्गा निवासी आबालवृद्ध जन साधारण सभी इस महासंकीर्तन नाम यज्ञमें सम्मिलित हैं। स्थानीय जमींदार पार्वती बाबू अक्लांत परिश्रम द्वारा अभ्यागत भक्तोंके अतिथि-सत्कारमें सब प्रकारसे संलग्न हैं। इस कार्यमें उनका आन्तरिक उत्साह और उद्योग देखकर हमलोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुके कीर्तनमें सम्मिलित होनेपर तत्काल सबलोगोंने एक प्रकारके नये भावसे भावित होकर नये उत्साहसे फिर कीर्तन यज्ञमें योगदान दिया। भक्तवर श्रीतारकचन्द्र सिंहने सस्त्रीक पहले दिन आकर अधिवासादि-शुभक्रिया समापन की। नरसिंहदीके भक्त कविवर हरिचरण आचार्य महाशय अपनी मण्डली सहित आये थे। उजानचरके प्रेमकुञ्जके प्रेममय कुञ्जमोहन दादा तो प्रभुद्वयके साथ ही आये थे। श्रीदादाके अनुयायी प्रायः सभी आये थे।

महिमाचरण दादाने भक्ति-गद्‌गद् चित्तसे अधिवासके समयकी एक अलौकिक घटना बताई। तारकदादाने अधिवासके समय माथाभाङ्गा पहुँचते ही सबसे पहले वाद्यभाण्डकी (बैंड-बाजे) बात उठाई और बोले कि प्रभु-प्रियाजीके शुभ अधिवासमें बाजा-गाजा होना चाहिये। महिमाचरण दादाने कहा "उसका तो प्रबन्ध नहीं है, बहुत दिन पहले बहुत दूरवाले एक ग्रामके बाजेवालोंको मैंने केवल एक बार कहा था कि मैं बहुत दरिद्र हूँ, पैसे-कौड़ी देनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है, यदि दया करके मेरे ठाकुरके प्रतिष्ठाके दिन आकर बाजा बजा दो तो मुझे बड़ा सुख मिलेगा।" इतना कहकर वे मानों दुःखसे विह्वल होने लगे। इसके जरासी देरके बाद ही वही अंग्रेजी बाजेका दल अधिवासके समय आ उपस्थित हुआ। जब बाजा बजने लगा तब सब प्रेमानन्दमें निमग्न हो गये। भगवान भक्तकी मनोवाञ्छा पूर्ण करते हैं—उसका यह श्रेष्ठ दृष्टान्त है।

माथाभाङ्गा गाँवके इस महासंकीर्तन-यज्ञ एवं महामहोत्सवमें किसीका माथा भङ्ग नहीं हुआ। इस माथाभाङ्गा गाँवके जो माथा (सिरमौर) हैं, वे जमींदार पार्वती-बाबू श्रीपाद हरिदास गोस्वामीके साथ प्रेमभावसे कितनी इष्ट-गोष्ठि करते थे। उनको अपने घरमें निवास देकर उन्होंने उनकी सेवा-परिचर्या की, उनके साथ कितनी ही गौरकथा और तत्वकथाकी आलोचना की। उनका हृदय बड़ा सरल था। निश्छल

होकर मनकी सभी बातें उन्होंने कहीं। उनके अपने घरमें भी कीर्तनके प्रति अद्भुत अनुरक्ति थी। श्रीगौराङ्गचरणमें उनकी प्रीति है। "प्रभु और प्रियाजी उनको अपनावें" यही आशीर्वाद देकर पूज्यपाद हरिदास प्रभु वहाँसे आये थे।

प्रभु व प्रियाजीके विशेष कार्यमें व्यस्त रहनेके कारण श्रीहरिदास गोस्वामी प्रभु माथाभाङ्गामें एकही दिन ठहरे। इसी एक दिनमें माथाभाङ्गा और वहाँके निकटवर्त्ती बहुतसे लोग उनके दर्शन करके उनके चरणोंमें आकृष्ट हुए। कई भाग्यवान्-शिक्षित लोग उसी दिन श्रीमन्दिरमें बैठकर दीक्षित हुए।

महिमाचरण दादाकी महिमासे सुदूर माथाभाङ्गा जैसे स्थानमें श्रीश्रीनदिया-युगलकी श्रीमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई, श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी युगल सेवाका प्रचार हुआ, श्रीदादाकी मनकी वासना उन्होंने पूर्ण की, धन्य हैं वे।

महिमाचरण दादाने पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुको पत्रमें लिखा था—"माथाभाङ्गामें इस कङ्गालके घर उत्सवमें पधारकर अबकी बार जो लीला, खेल और कृपाका प्रकाश कर गये, उसके समझ पानेकी क्षमता भी इस अधममें नहीं है। आप हमारे प्रेममय श्रीदादाके अभिन्न कलेवर हैं। आप इस बार श्रीदादा स्वरूपमें माथा-भाङ्गाके माथे पर अपने दोनों अरुण चरणोंका स्पर्श कराकर उसको पवित्र कर गये हैं।"

माथाभाङ्गाके उत्सवकी विशेषता यही थी कि महिमाचरण दादा जैसे दरिद्र गृहस्थके इस उत्सवमें जो उद्योग आयोजन हुआ और जो खर्च किया गया, वह दरिद्र जैसा नहीं था। तीन दिन तक सब लोगोंने प्रसाद पाया। सम्मिलित होने वाले लोगोंकी संख्या भी अत्यधिक थी। सारा महोत्सव जैसे किसी अदृश्य नियंता द्वारा संचालित हो, स्वयमेव सम्पन्न हो रहा था।

विख्यात भास्कर (शिल्पी) श्रीयुक्त क्षीरोदचन्द्र आचार्यने स्वभाव-सिद्ध अपने भावसे श्रीविग्रहका गठन किया था। श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-विग्रह-गठनकर्त्ता भास्कर पूर्व बङ्गालमें एक मात्र ये ही हैं जिन्हांने नाना स्थानोंमें विभिन्न भावके बहुतसे श्रीश्रीनदिया-युगल विग्रहोंका निर्माणकर ख्याति प्राप्तकी थी। इनके अपने घरमें भी स्वहस्त निर्मित श्रीनदिया-युगल-विग्रह-सेवा प्रतिष्ठित है।

महिमाचरण दादाके श्रीश्रीनदिया-युगल-श्रीविग्रहकी माधुरी अनुपम है। श्रीप्रभु और प्रियाजी उनके प्राणोंसे बढ़कर धन हैं, हृदय सर्वस्वधन हैं। वहाँ उनके मनके अनुसार ही श्रीविग्रहका प्राकट्य हुआ है। उस दिन सन्ध्याकालके समय जब उनकी भक्तिमती स्त्रीने श्रीश्रीनदिया-युगलकी अपूर्व संध्या आरती की, उस कीर्तनमें एक अपूर्व भावकी तरङ्ग उठी। महिमाचरण दादा स्वयं कीर्तन कर रहे थे। बहुतसे

भक्तगण उनके पीछे-पीछे दोहरा रहे थे । मधुर-मधुर मृदङ्ग और करताल ध्वनिसे कीर्तन-प्राङ्गण गूँज उठा । श्रीमन्दिर धूप-धूनाकी सुगन्धसे आमोदित हो उठा । कहींसे सुगन्धित पुष्पोंकी गन्ध चारों ओर फैल गयी । श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु बीचमें खड़े कीर्तन रसमें मतवाले हो रहे थे । बगलमें खड़े नृत्यगोपाल गोस्वामी प्रभु उनकी कमरमें हाथ दिये उनको सम्हाल रहे थे और स्वयं भी मृदु-मन्द प्रेम नृत्यावेशमें कीर्तनमें उन्मत्त हो रहे थे । उपस्थित भक्तवृन्द सभी प्रेमोन्मत्त भावसे प्रभुद्वयके प्रति दृष्टि किये हुये थे । इसी समय प्रेममय तारक दादाने आकर कीर्तनमें योग दिया । उनका प्रेम-नृत्य अपूर्व था । कमर डुलाते हुए, सफेद केश और मूँछ दाढ़ीधारी वृद्धका वह नृत्य गौर-आना गोसाईं श्रीअद्वैताचार्यके नृत्यकी याद दिला रहा था । उनके इस स्वभावसिद्ध प्रेमनृत्य कीर्तनसे कीर्तन-प्राङ्गणमें मानो प्रेम-सलिला ही प्रवाहित हो चली हो । तब उद्दाम कीर्तन आरम्भ हुआ । इस कीर्तनमें 'श्रीदादा'का आविर्भाव उनके किसी-किसी भाग्यवान निजजनने अपनी आँखोंसे देखा और बहुतसे अन्य लोगोंने अनुभव किया । श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुने नरसिंहदी उत्सवमें जो देखा था वही यहाँपर भी देखा । वे **'चकिते चले गेल विद्युतेर न्याय'** (निकल गये अति शीघ्रतासे विद्युतकी भाँति) । श्रीदादाकी वही प्रेममय अपूर्व मूर्ति बहुत दिनोंके बाद लौकिक लोचनोंको गोचरीभूत हुई । गोस्वामी प्रभु प्रेमावेशमें अवश होकर बाहर बेंचपर आकर बैठे । जिन्होंने उनके श्रीमुखका भाव देखा, सभीने जान लिया कि वे प्रकृतिस्थ नहीं हैं, प्रेमानन्दमें विभोर हैं । इसके बाद भाव-सम्वरण करके किञ्चित विश्रामके बाद उन्होंने भक्तोंके साथ इष्ट-गोष्ठी की ।

माथाभाङ्गाके विदाईका दृश्य वड़ा हृदय-विदारक था । जमींदार पार्वती बाबू शेष पर्यन्त गोस्वामी प्रभुद्वयकी सेवा-परिचर्या-कार्यमें नियुक्त थे । उनके घरके स्नान करनेके पक्के घाटसे नावमें बैठकर जब गोस्वामी प्रभुद्वयने भक्तोंसे विदा ग्रहणकी उस समयका दृश्य बड़ा ही करुण था । सभीके नयनोंमें प्रेमाश्रुधारा थी । सभी विषण्ण-वदन थे । महिमाचरण दादा वस्त्रसे मुँह ढककर क्रन्दन कर रहे थे । भक्तगण नीरव झूर रहे थे । **'जय गौर विष्णुप्रिया'** ध्वनिसे दिगन्त गुञ्जायमान करती हुई हमारी नावने माथाभाङ्गा छोड़ा । उस समय रातके दस बजे होंगे । भयंकर प्रवाहवाली मेघना नदीके वक्षपर प्रेमिक भक्तोंसे भरी हुई **'जय गौर विष्णुप्रिया'** नामकी प्रेमतरणी उस अर्द्धरात्रिमें गगनभेदी नाम-गायनका पाल उड़ाकर गन्तव्य स्थानकी ओर अग्रसर हुई। नावमें गौरकथाकी तरङ्गें उठने लगीं । उन तरङ्गोंके झोंकोंसे भक्त-हृदयोंमें भी प्रेमकी हिलोरें उठने लगीं ।

हमलोग प्रातःकाल श्रीमद्दि स्टेशनसे रेलगाड़ीमें चलकर नारायणगंजमें श्रीदादाके परम प्रियपात्र भक्तवर श्रीयुक्त विधुभूषण सरकार बी० ए० हेड-माष्टरके

यहाँ अतिथि हुए। वहाँ पर वासण्डा (वरिसाल) के जमींदार गौर-विष्णुप्रिया भजन-निष्ठ श्रीयुक्त किरणकुमार रायचौधरी आदि भक्तगण भी थे। गोस्वामी प्रभुद्वयको पाकर वे सगोष्ठि प्रेमानन्दसे मत्त हो गये। वहाँ भी गौरकथाकी चर्चा प्रारम्भ हो गयी। प्रेममय विधु-दादाका मुँह गौर कथाका अजस्र श्रोत है। जैसी उनकी प्रेम-सेवा-निष्ठा है वैसे ही वे रसिक भक्त हैं। उनके सङ्गसे हमलोग कृतार्थ हो गये।

पूर्व-बङ्गालकी तृतीय यात्रा

[श्रीमहेन्द्रलाल बसु द्वारा वर्णित]

(पहले जब श्रीनिवास आचार्य, ठाकुर नरोत्तमदास और श्रीश्यामानन्द प्रभुने वृन्दावनमें बैठकर भजन करनेका निश्चय करके अपने गुरु-चरणोंमें अनुमति माँगी थी तो एक वाक्य में उनको यही आदेश प्राप्त हुआ कि—

"बड़ धर्म हय बापू धर्म-प्रचारण ।
सभार आज्ञाय गौड़े करह गमन ।।"

(प्रेम-विलास)

स्वयं श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुने श्रीमुखसे ठाकुर हरिदासको कहा था—

"आपनि आचरे केह ना करे प्रचार।
प्रचार करये केह ना करे आचार ।।
आचार प्रचार नामेर कर दुइ कार्य्य ।
तुमि सर्व्व गुरु तुमि जगतेर आर्य्य ।।"

"कोई स्वयं आचरण करता है, प्रचार नहीं करता; और कोई प्रचार करता है, आचरण नहीं करता। तुम तो जगतमें श्रेष्ट हो, सबके गुरु हो। नामके आचार और प्रचारका दोनों काम करो।"

(चैतन्य-चरितामृत)

इसी आदेशवाणीके आगे मस्तक अवनत करके, भक्तोंके मानभरे प्रेमके आग्रह—'यदि आप सम्मिलित न होंगे तो उत्सव-कार्य नहीं होगा'—के सन्मुख पराजय स्वीकार करके वृद्ध-जर्जर एवं अशक्त होते हुये भी पूज्यपाद श्रीहरिदास गोस्वामी प्रभुको गौर-धर्म-प्रचार-कार्यमें यात्रा करनी पड़ती थी।

बङ्गाब्द १३३४, गौराब्द ४४१ वैसाखी पूर्णिमाके पुष्पडोल उत्सवपर पूज्यपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुको फिर यात्रा करनी पड़ी । इस यात्रामें उनके साथ थे श्रीविष्णुप्रिया परिवारके संगीत गायक श्रीयुक्त सुधामय गोस्वामी एवं श्रीयुक्त अनङ्गमोहन सरकार, श्रीमहेन्द्रलाल वसु और कई सेवक-सेविकाएँ। इस यात्राका वर्णन श्रीमहेन्द्रलाल वसुने लिखा था जिसको संक्षेपमें यहाँ दिया जा रहा है ।)

यात्रा-वर्णन

नरसिंहदीके गौर भक्तवर कवि-गायक श्रीहरिचरण आचार्य महाशयने गोस्वामी प्रभुको लिखा था कि यदि वे इस उत्सवमें नहीं पधारेंगे तो उत्सव ही नहीं मनाया जाएगा। इतनी मनुहार और प्रेमाकर्षणके सामने गोस्वामी प्रभुको झुक जाना ही पड़ा। अपने सैकड़ों कार्य छोड़कर प्रभुपाद नरसिंहदीके उत्सवमें सम्मिलित हुये।

प्रतिवर्षकी तरह खूब धूमधामसे उत्सवका सारा कार्यक्रम हुआ। सुधामय गोस्वामी प्रभुके सुधाकण्ठके मधुमय सुरके योगसे कीर्तन और भी अधिक मधुमय बन गया। सुधामय प्रभु नवयुवक होनेपर भी उनकी गौराङ्ग-प्रीति, गौरकीर्तन-प्रीति, गौरभक्त सङ्ग-लालसा, गौरकथा श्रवण-लालसा वास्तवमें प्रसंशनीय थी।

नरसिंहदीसे साटिरपाड़ा होकर उजानचर जाते समय भक्तगण श्रीगोस्वामी-प्रभुको भुलावा देकर वान्छारामपुरमें भक्तवर महेन्द्रनाथदासके श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग-कुन्जमें लेगये। वहाँ श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रहकी अपूर्व शोभा थी, सेवाकी सुन्दर परिपाटी थी। ग्राम छोटा-सा होकर भी यहाँ शिक्षित लोगोंका निवास था। इस ग्रामकी शोभा श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग-मन्दिर एवं "श्रीविष्णुप्रिया पाठशाला" थे।

भक्तवर महेन्द्रनाथदासकी विधवा भ्रातृवधुका नाम था नीरदा सुन्दरी दासी। इनके गौरधामगत स्वामीका नाम था मनमोहनदास। नीरदा सुन्दरी सुशिक्षित और परम भक्तिमती थीं। श्रीविष्णुप्रिया पाठशालाकी प्रतिष्ठिात्री यही विधवा रमणी थीं। इन्होंने "श्रीविष्णुप्रिया" नामकी एक छोटीसी पाठ्य पुस्तककी रचनाकी थी। इस पुस्तककी भूमिकामें नीरदा सुन्दरीने इस प्रकार अपना निवेदन लिखा है—

"मेरे स्वामीकी अपने जीवनकालमें श्रीगौरविष्णुप्रिया भजनमें अत्यधिक आसक्ति थी, परन्तु उनके भक्तिहीन आत्मीय जनोंके हृदयमें श्रीगौराङ्गमें विश्वास नहीं था। वे (मेरे स्वामी) कहा करते कि 'कब श्रीगौरविष्णुप्रियाकी लीला माधुरीका आस्वादन कर मैं अपना हृदय शीतल करूँगा ? कब श्रीश्रीनदिया-युगल-रूपके दर्शनकर नयन सार्थक करूँगा ?' विवाहके दो वर्षके बाद ही उन्हें यह सुयोग मिल गया, सामान्य पीड़ा भोगकर ही वे नित्य गौर-धाममें चले गये। उनके अभाव जनित शोकमें हम लोग अधीर हो गये। अचानक मानों उन्होंने हम लोगोंको श्रीगौराङ्गके पवित्र भजन-पथकी ओर खींचकर लगा दिया। घटनाके तीन दिनके बाद उनकी छोटी बहिन श्रीमती सरस्वतीको उन्होंने स्वप्नमें आदेश दिया—

"तुम अपनी भाभीको श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया भजन करनेको और श्रीविष्णुप्रियाकी लीला माधुरीके संबंधमें पुंस्तक लिखनेको कहो। मैं भी अब महा आनन्दपूर्वक श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाकी अर्चना कर रहा हूँ, आजसे अनन्त दुःख

समूहके जीवनमें चिरशान्ति प्राप्त कर सकूँगा और सदाके लिये भव-क्लेशसे छुटकारा पाऊँगा।"

इसी स्वप्न आदेशको पाकर बालविधवा नीरदा सुन्दरी गौरविष्णुप्रिया भजनमें प्रवृत्त हुईं और उन्होंने यह छोटीसी पुस्तक लिखी। गोस्वामी प्रभु इस भक्तिमती रमणीके साथ परिचय प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए, उनको श्रीविग्रह-सेवाके संबंधमें नाना प्रकारका उपदेश दिया और उनको इस प्रकारकी प्रेमसेवाका आदर्श सब जगह प्रचलित होनेका प्रयोजन समझाया।

यहाँसे उजानचर होकर गोस्वामी प्रभु मण्डली सहित कामिल्लाकी ओर पधारे। रास्तेमें दौलतपुर और रामचन्द्रपुरके श्रीश्रीनदिया-युगल-भजननिष्ठ कई भक्त साथ हो लिये। रामचन्द्रपुरके पोष्टमाष्टर श्रीमान् रोहिणीकुमार दास एवं श्रीनवीनचन्द्र गोस्वामी महाशयके साथ इष्ट-गोष्ठी हुई। अचानक गोस्वामी प्रभुको पाकर वे उनको अपने घर ले जाये बिना नहीं माने। रामचन्द्रपुरमें प्रातःकृत्य करके उसी दिन मध्यान्हमें कामिल्ला पहुँचे।

श्रीपाद हरिदास प्रभुका चार वर्ष पूर्व यहाँ पदार्पण हुआ था। यहाँके प्रसिद्ध धनी भक्तवर अक्षयकुमार राय महाशयके घर श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-श्रीविग्रह प्रतिष्ठा कार्य (विषादयुक्त महासमारोहके साथ) सम्पन्न किया था। उस समारोहके साथ युक्त मर्मवेदनापूर्ण स्मृति जाग्रत हो उठी। श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठाके दिन गम्भीर आर्तनादसे श्रीमन्दिर परिपूर्ण हो उठा था। इसी स्थान पर श्रीश्रीनदिया-युगल-विग्रहकी प्रतिष्ठाके अधिवासकी रात्रिको असंख्य भक्तवृन्दोंको रुलाकर **'जय गौर विष्णुप्रिया, प्राण गौर विष्णुप्रिया'** ध्वनि करते हुए बसन्त साधु अन्तर्धान हुए थे।

इन सब स्मृति चित्रोंके स्मरणसे गोस्वामी प्रभुका मन व्याकुल हो उठा। वे उदास हो गये। उस घटनाका वर्णन करते-करते वे आत्म-विस्मृत हो उठे और उनके नयनोंसे अश्रुप्रवाह होने लगा। वही मन्दिर है, वही श्रीनदिया-युगलका-श्रीविग्रह है, वही सुन्दर फूलके बगीचे, श्यामल क्षेत्र परिवेष्ठित सुरम्य-प्राकृतिक-दृश्य हैं वही सब सुन्दर वस्तुएँ हैं, नहीं हैं तो केवल 'श्रीदादा' (बसन्त साधु) और श्रीविग्रह प्रतिष्ठाता अक्षयकुमार राय। गोस्वामी प्रभुने बताया कि भक्तवर अक्षयकुमार राय वृद्ध और अन्ध थे, किन्तु वे बड़े भाग्यवान थे एवं बसन्त साधुके विशेष कृपापात्र थे। श्रीश्रीनदिया-युगल-सेवा-प्रतिष्ठा कार्यमें उन्होंने मुक्त हस्तसे काम किया था। बसन्तसाधुके अन्तर्धानपर उस उत्सवकी पूर्णाहुति उन्होंने नयनजल द्वारा की थी।

कामिल्लाके इसी राय परिवारके हरेन्द्रनाथ राय हम लोगोंके साथ आये थे। अबकी बार नरसिंहदीमें उन्होंने गोस्वामी प्रभुकी कृपा प्राप्त की थी। पहलेसे समाचार पहुँच गया था कि गोस्वामी प्रभु दल बल सहित पधार रहे हैं। उनके स्वागत सत्कारकी

सभी तैयारियाँ हो चुकी थीं । श्रीमन्दिरमें पहुँचते ही श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया नामसंकीर्तनका अपूर्व संयोजन प्रारंभ हुआ । दोपहरका समय हो गया था। ज्येष्ठ मासकी प्रचण्ड धूप थी, बहुत लोगोंका संघट था, सभी पसीनेसे तर थे ।

अनेक ग्राम्य बालक कीर्तनमें उद्दाम नृत्य करते हुए उन्मतप्राय होकर गोस्वामी प्रभुको घेरकर कीर्तन करने लगे, उस समयका दृश्य बड़ाही मनोरम एवं अपूर्व था । बालकोंके गुटका यह अपूर्व नृत्यकीर्तन देखकर प्रेमदादा निमाईचाँदकी स्मृति मनमें उदय हुई । ये सब प्रेमोन्मत्त भक्त बालकवृन्द नृत्यावेशमें भूमि-विलुण्ठित होकर गोस्वामी प्रभुके श्रीचरण पकड़ते उनकी चरण-पूजा करते एवं प्रेममय गोस्वामी प्रभु प्रत्येक बालकको हाथमें लेकर उठाते तथा उनके मस्तकपर श्रीहस्त रखकर आशीर्वाद देते। यह अपूर्व दृश्य भाषा द्वारा वर्णनातीत है; जीवनमें कभी भुलाया नहीं जा सकता।

वैष्णव जगतमें कीर्तनका आनन्द ही परमानन्द है एवं कीर्तनमें ही आनन्द-लीला-रसमय-विग्रह श्रीश्रीनिताई-गौरका आविर्भाव होता है । उस दिनके कीर्तनमें श्रीश्रीनिताई गौरका आविर्भाव सुस्पष्ट अनुभूत हुआ था।

उस दिन श्रीअक्षयकुमार रायके परिवारके सभी लोग गोस्वामी प्रभुसे दीक्षित हुए। उस दिन वहाँ खूब महोत्सव हुआ। सभीने परम आनन्दसे प्रसाद पाया ।

सन्ध्याके पूर्व हम लोगोंने धनपतिखोला जानेके लिए नाव द्वारा प्रस्थान किया । नावमें रातका समय गौरकथामें ही कट गया। साथमें प्रेममय कुन्जमोहन दादा भी थे। उनके सङ्गलाभसे हमलोग धन्य हो गये ।

दूसरे दिन प्रातःकाल हमलोग धनपतिखोला पहुँचे । इस ग्राममें भक्तवर द्वारकानाथ सरकार महाशय रहते हैं । उनके घरमें श्रीश्रीनदिया-युगल विग्रह सेवा है। वे सस्त्रीक गोस्वामी प्रभुसे श्रीश्रीगौराङ्ग-युगल मंत्रसे दीक्षित हैं । उनकी भक्तिमती स्त्री श्रीमती सरला यह प्रेमसेवा करती हैं ।

गोस्वामी प्रभुको यथोचित आदर-सत्कारके साथ वे लोग अपने घर ले गये । इस स्थानका प्राकृतिक दृश्य अतीव मनोरम है । उन्मुक्त शस्य-श्यामल क्षेत्रके बीच एक सुन्दर वृक्षलता परिवेष्ठित मनोहर कुन्जमें श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गकी चित्रपट-मूर्ति प्रतिष्ठित है। आज अपने पूज्यपाद गुरुदेवको अपने घरमें पधारे देखकर सरकार दम्पत्तिके आनन्दकी सीमा नहीं है । कहाँ तो श्रीधाम नवद्वीप और कहाँ इतनी दूर त्रिपुरा जिलेका यह क्षुद्र गाँव। गोस्वामी प्रभुका यहाँ पदार्पण हुआ है । अति कष्ट स्वीकार करके वे इस प्रान्तमें पधारेंगे—इसका स्वप्नमें भी किसीको ख्याल नहीं था। इस देशमें इतने कष्टोंको झेलते हुए इतने दिनों उनका पर्यटन करना उनके भक्तवात्सल्य भावका पूर्ण परिचायक है । श्रीश्रीनदियायुगल सेवा परिदर्शनके आनन्दमें वे सब

कष्टोंको भूल जाते हैं । ऐसे दैहिक कष्टपूर्ण भ्रमणमें उनको देहानुसन्धान भी नहीं रहता—इसको हम लोगोंने अपनी आँखोंसे देखा है ।

यहाँ महाधूमधामसे कीर्तन-महोत्सव एवं प्रसाद वितरणका कार्य सम्पन्न हुआ। गोस्वामी प्रभुकी गौरकथासे उपस्थित भक्तवृन्दको परम आनन्द मिला। द्वारिका दादा और उनकी भक्तिमती स्त्री श्रीमती सरला देवीकी अतिथि-सत्कारप्रियताकी तुलना नहीं ।

यहाँ बहुतसे भक्त एकत्र हुए थे । अब्दुल्लापुरके रासबिहारो चौधरी, निशिकान्त चन्द, ढाकाके हेमचन्द्र सेन, पण्डित गौरपद घोष आदि भक्तगण उपस्थित हुए थे । गोस्वामी प्रभुकी कृपा प्राप्त करनेके लिये रामचन्द्रपुरके पोष्टमाष्टर महाशय पैदल दौड़े-दौड़े आये थे । यहाँपर भी ५-६ भक्तोंने गोस्वामी प्रभुसे दीक्षा ग्रहण की ।

दूसरे दिन दोपहरके बाद नाव द्वारा हमलोगोंने अब्दुल्लापुरके लिये प्रस्थान किया । द्वारिका दादा और उनकी भक्तिमती स्त्री हम लोगोंके साथ ही चल पड़े । अब्दुल्लापुरके अस्सी वर्षसे भी अधिकके वयोवृद्ध रामकुमार चौधरी महाशय द्वारिका दादाके श्वशुर हैं, उन्हींके घर गोस्वामी प्रभु जा रहे थे । इसलिये उनके जामाता भी सस्त्रीक अपने गुरुदेवके साथ-साथ गये । रामकुमार चौधरी महाशयने बहुत दिनों पूर्व स्वप्नमें गोस्वामी प्रभुसे श्रीगौराङ्गयुगल-मंत्र प्राप्त किया था । उनकी बड़ी अभिलाषा थी कि एक बार वे उनके घर पदार्पण करें । रामकुमार चौधरी महाशयके घर श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग युगल-विग्रह प्रतिष्ठित है, अति सुन्दर प्रेम-सेवा होती है । होनहार पुत्रको खोकर वृद्ध चौधरी महाशय श्रीगौराङ्ग प्रभुको ही अपना पुत्र मानकर उनकी वात्सल्य प्रेम-सेवा करते हैं। शिष्यवत्सल गोस्वामी प्रभु इन्हीं चौधरी महाशयके आकर्षणसे उनके घर पधार रहे हैं ।

यथारीति आदर और सम्मानके सहित गोस्वामी प्रभुको ले जाकर रामकुमार चौधरी महाशयने अपने घरमें ठहराया ।

अब्दुल्लापुरमें दो गृहस्थोंके घरमें श्रीश्रीनदियायुगल-विग्रह प्रतिष्ठित है। रामकुमार चौधरी और अविनाशचन्द्र आदित्य चौधरी दोनों महाशय श्रीयुगल विग्रह सेवक हैं। दोनोंके घरमें ही प्रेमसेवा होती है। यहाँके दोनों श्रीविग्रह बड़े सुन्दर हैं।

अविनाशचन्द्र आदित्य चौधरी महाशयके श्रीमन्दिरमें अति सुन्दर कीर्तन हुआ । वहाँ भी महोत्सव हो रहा था ।

यहाँ चन्द्रकुमार चौधरी महाशयके घर चित्र-पट-सेवा प्रतिष्ठित है । गोस्वामी प्रभुको जगह-जगह सेवा-परिदर्शन करके परम आनन्द हुआ ।

यहाँ भी चार-पाँच लोगोंने दीक्षा ग्रहणकी । हमलोगोंके दो दिन अब्दुल्लापुरमें बड़े आनन्दसे कटे । भक्तोंका सङ्ग और कीर्तनकी धूम बराबर ही बनी रही ।

गौरधामगत, गौर-भक्तवर वैकुण्ठनाथ दे रचित ब्रह्मचारी भणितायुक्त एक श्रीविष्णुप्रिया स्तोत्रका अति सुन्दर भावसे वहाँके भक्तोंने खोल करतालके साथ कीर्तन किया। ये महापुरुष बसन्त साधुके अनुगत थे। इन्होंने घर छोड़कर ब्रह्मचर्य आश्रमको ग्रहण किया था। ये एक अच्छे कवि थे। उनके रचित बहुत से पद 'लीलामृत' नामके एक वृहद् ग्रन्थमें उनके भक्तोंने प्रकाशित करवाये हैं। गोस्वामी प्रभुके साथी प्रसिद्ध सङ्गीत गायक सुधामय गोस्वामी प्रभुने इनके साथ मिलकर यहाँ भी गौर-कीर्तन किया।

ब्रह्मचारी महाशय-रचित व उनके शिष्यगण द्वारा गायित उस श्रीविष्णुप्रिया स्तोत्रको नीचे दिया जाता है :—

श्रीश्रीविष्णुप्रिया स्तोत्र

रक्त कोकनद रातुल श्रीपद,
नटवरमण्डल पूर्णिमार चान्द,
शीतल कौमुदी उजले अवनी,
देहि श्रीचरण गौराङ्गघरणी ॥१॥

सुवलित रामरम्भा जिनि उरु,
सुनितम्ब गुरु कटिदेश सरु,
कम्बुकण्ठस्वर पिककण्ठ जिनि,
देहि श्रीचरण नदे पाटराणी ॥२॥

सुधांशु वदन वात्सल्य पूरित,
स्मित ओष्ठाधर अमिय जड़ित,
त्रिताप-सन्ताप-विनाशिनी वाणी,
देहि श्रीचरण जगतजननी ॥३॥

महामाया मिश्र सनातन सुता,
शचीमाता वधु त्रिलोक पूजिता,
कलि कलुषित-जीव निस्तारिणी,
देहि श्रीचरण आश्रित रञ्जनी ॥४॥

महाभाव सिन्धु गोरा द्विजमणि,
हृदिसर माझ फुल्ल कमलिनी,
गोरा ध्यान रता दिवस रजनी,
देहि श्रीचरण गोरा आदरिणी ॥५॥

राज राजेश्वरी गोरा मनोहरा,
धैरज तितिक्षा जिनि वसुन्धरा,
भकति मुकति प्रेम प्रदायिनी,
देहि श्रीचरण पतितपावनी ॥६॥

युग धर्मयुता सनातन सुता,
जीवदुख शोके परम पीड़िता,
गोरा गरविनी गोरा काङ्गालिनी,
देहि श्रीचरण मातः सुकल्याणी ॥७॥

दिव्य चिन्तामणि धाम नदेपुरी,
गौर पुरन्दर परम ईश्वरी,
देवी विष्णुप्रिया त्रिलोक वरेण्ये,
देहि श्रीचरण महामाया कन्ये ॥८॥

जगतेर अश्रु मुछाते जननी,
विलाइया दिले हृदयेर मणि,
ए जीवन तरे गोरा भिखारिणी,
देहि श्रीचरण गोरा-विरहिणी ॥९॥

गोरा नाम गुण श्रवण भूषण,
मलिन वदन भूतले शयन,
नयन कमल शत सुरधुनी,
देहि श्रीचरण योवने योगिनि ॥१०॥

त्रिपहर व्यापी करि संकीर्तन,
नाम संख्या सम तण्डुल ग्रहण,
ताहा निवेदन जीवन धारण,
देहि पति प्राण युगल चरण ॥११॥

आदेशे स्वपन श्रीमूर्ति स्थापन,
नवद्वीपे गौरसेवा प्रवर्त्तन,
जगत तारिछ एइ छल करि,
देहि श्रीचरण नदीया ईश्वरि ॥१२॥

विषम विरह-विदरित चित्त,
नयन युगल धारा अविरत,
श्रीमूर्ति अङ्गते लुकाले आपना,
देहि श्रीचरण गौरङ्गेर प्राण ॥१३॥

प्रेम महायज्ञ गोरा-प्रवर्त्तन,
आपनाके दिले आहुति अर्पण,
शोधन ना हल तबू ब्रह्मचारी,
देहि पदरेणु शिरेर उपरि ॥१४॥

गौरमण्डल-यात्रा

•

[प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी द्वारा लिखित]

श्रीपाट श्रीखण्ड और वहाँके श्रीविग्रह

उदयति प्रति वर्षं यत्र गौराङ्गचन्द्रो
प्रिय नरहरिदासस्योत्सवे कार्तिकस्य ।
असितक दशमीमेकादशीं द्वादशीञ्च
प्रभवति बड़डाङ्गा नामधेया धरित्री ॥

सरकार ठाकुर महाशयका सुमधुर 'नरहरि' नाम जब जब स्मरण होता है तब तब न जाने क्यों विपुल प्रेम-आनन्दसे सर्वाङ्ग पुलकित हो जाते हैं, अदम्य प्रेमावेशमें शुष्क नयनोंसे प्रेमधारा प्रवाहित होने लगती है, अस्फुट गद्गद् भाषामें निरन्तर उनका नाम और गुणगान करनेकी इच्छा होती है। नरहरिके नाम और गुण गाते गाते 'शचीमांके दुलालिया, गदाधरके प्राणबन्धुया' की नवद्वीप लीलाकी दिव्य स्फूर्ति हृदयमें स्वतः ही जागरूक होने लगती है तथा 'नरहरिके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राणगोरा' नव नटवर नदियानागर वेषमें उसी समय मानस-पटपर प्रकट हो जाते हैं, ध्यान-पूजा, भजन-साधनकी कोई आवश्यकता ही नहीं होती।

खण्डवासी ठाकुर नरहरिके नामकी जैसी महिमा है वैसा ही अपूर्व माहात्म्य उनकी लीला-स्थली श्रीपाट श्रीखण्डका है। 'नरहरिके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राणगोरा' की नवद्वीप लीलाकी स्फूर्ति होते ही शचीनन्दन गौरहरिके भुवन-मनमोहन अपरूप रूपकी कथा सबसे पहिले मनमें आती है। उनकी यह 'नदिया वधू-नयन-आमोद' अपरूप रूप राशिकी कथा मनमें आते ही उनकी वही त्रिभुवन मङ्गल 'रसानुमोदधुरम् कन्दर्पवेशोज्ज्वलम्' श्रीअङ्गलावण्यकी सुधातरङ्गें हृदय समुद्रमें एक एक करके आकर अनिर्वचनीय प्रेमोल्लाससे अनवरत घातप्रतिघात करने लगती हैं। यह अज्ञात प्रेम-सुख-सम्पद कहांसे और क्यों आती है उसको समझनेकी शक्ति यदि होती

तो इस विषय-कीट जीवाधाम लेखकको ठाकुर नरहरिके श्रीपाट श्रीखण्डके दर्शन सौभाग्यसे इतने दीर्घकाल तक वञ्चित नहीं रहना पड़ता।

खण्डवासी ठाकुर गोष्ठीके प्रबल आकर्षणसे इस वर्ष (बङ्गाब्द १३३३, गौराब्द ४४० कार्तिक) के इस उत्सवके उपलक्ष्यमें मैं सपरिवार श्रीपाट श्रीखण्डके दर्शन सौभाग्यको प्राप्तकर कृतकृत्य हुआ। परम श्रद्धास्पद खण्डवासी श्रीपाद राखालनन्द ठाकुर, प्रमुख ठाकुर, नरहरिके अन्तरङ्गगणोंके आदर एवं अतिथि सत्कारसे मुझे परम सन्तोष प्राप्त हुआ। मैं मन ही मन अपनी अयोग्यताके कारण बहुत लज्जित हुआ और ऐसा अनुभव किया कि खण्डवासी ठाकुर गोष्ठीकी कृपा-कटाक्ष हुए बिना 'नरहरिके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राणगोरा' की कृपा प्राप्ति सचमुच दूर की वस्तु है। इसलिये सबको समझानेकी चेष्टा करता हूँ कि श्रीधामवासीकी कृपासे वञ्चित होकर श्रीधामेश्वरकी कृपाप्राप्ति असम्भव है। ज्यों व्रजवासीकी कृपासे व्रजेन्द्रनन्दनका दर्शन लाभ संभव होता है त्यों ही नदियावासीकी कृपासे श्रीश्रीनवद्वीप-चन्द्रका दर्शन हो सकता है। इसी प्रकार खण्डवासी ठाकुर गोष्ठीकी कृपाके बलसे अपूर्व रसराज मधुर मूर्ति नदियानागर किशोर गौराङ्गका दर्शन लाभ होता है।

श्रीपाटमें सभी जगह श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा है। सभीकी कुछ न कुछ विशिष्टता है। यही विशिष्टता श्रीविग्रहके नित्यत्वकी पूर्ण परिचायक है। यही अपूर्व प्रेमपरिपूर्ण प्राचीन ध्यानानुगत परिस्फुट भाव श्रीखण्डके श्रीगौर विग्रहकी विशिष्टता है। और यही विशिष्टता ठाकुर नरहरिके साक्षात नटवर नदियानागर गौर-किशोर श्रीमूर्त्ति दर्शनके फल-प्रसूत अपनी अभिज्ञताकी पूर्ण परिचायक है। श्रीमन्महाप्रभुका वह प्राचीन ध्यान नीचे उद्धृत है :—

श्रीमन्मौक्तिक दामवद्ध चिकुरं सुस्मेर चन्द्राननं,
श्रीखण्डागुरु चारुचित्र तिलकं स्रग्दिव्यभूषाञ्चितम् ।
नृत्यावेश-रसानुमोद मधुरं कन्दर्पवेशोज्ज्वलं,
गौराङ्गं कनकद्युतिं निजजनैः संसेव्यमानं भजे ।।

जिनकी अलकावली जूड़ेके रूपमें मोतियोंकी लड़से बँधी हुई है, जिनके चन्द्रविम्ब सदृश मुखमण्डलपर सुन्दर मुस्कान खेल रही है, जिनके ललाट पर अगरु और चन्दनका सुन्दर रंग-विरंगा तिलक सुशोभित है, जो गलेमें फूलोंका हार और शरीर पर दिव्य आभूषण धारण किये हैं, जो नृत्यके आवेश (उमङ्ग) से होने वाले आनन्दमें विभोर होनेके कारण परम मनोहर दिखाई देते हैं, जो कामदेवका सा आकर्षक वेष धारण किये जगमगा रहे हैं और अपने पार्षदों द्वारा भलीभाँति सेवित हैं, उन स्वर्णकी सी कान्तिसे विभूषित गौर सुन्दरका मैं आश्रय करता हूँ—ध्यान करता हूँ।

यह ध्यान किस प्राचीन गौरभक्त महात्मा द्वारा रचित है, यह मुझे पता नहीं, किन्तु यही अति प्राचीन ध्यान है एवं इसीके द्वारा ही श्रीमन्महाप्रभुकी श्रीमूर्त्ति, चाहे वह संन्यासमूर्ति हो, चाहे बालमूर्त्ति, गौरगोपाल हो, अति प्राचीन कालसे सर्वत्र पूजित व उपासित होती आ रही है। श्रीपाट श्रीखण्डकी श्रीगौराङ्ग मूर्त्तिमें यही ध्यानानुयायी परिपूर्ण भावकी अविकल स्फूर्ति स्फुटित हुई देखकर मेरे मनमें आया कि यह ध्यान पद ठाकुर नरहरि द्वारा ही रचित है।

परम सुन्दर नव नटवर नदियापुरन्दरकी यह अपूर्व रसराज श्रीमूर्त्तिके दर्शन करके हमलोग गोष्ठी सहित परानन्दमें मग्न हो गये थे। इस मधुर सर्व चित्ताकर्षक श्रीमूर्त्तिका ध्यान अब तक मन ही मनमें किया करता था, इतने दिनोंके बाद पुण्य भूमि श्रीपाट श्रीखण्डमें अब मानों वे प्रत्यक्षीभूत हो गये, ऐसा प्रतीत हुआ। मेरी भक्तिमती कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरीदेवीने इस अपूर्व श्रीमूर्त्तिके दर्शन करके 'नरहरिर-पराण पूतली' शीर्षक निम्न कविताकी रचना बड़ाडांगा तम्बूमें बैठकर की थी।

नरहरिर-पराण पूतली

ए आदर चुमा बाहु बाड़ाइया वक्षे धरा,
ए पराण ढाला स्नेहगला शत सोहाग करा।
नितिरस नव नव,
ए जे निते ह'वे तब,
ए जे जीवनेर वेदना साधना रोदन भरा,
प्राण आकुलिया पथ चाओया आँखि अश्रु झरा ॥१॥

जगत जीवेर अनायास वास से वासुदेवे,
ए नवनीसर बाड़ाइया कर केमने नेवे ?
ए नयन अनिमेष,
कोथा पा'वे उद्देश ?
आँखिर कलस कोन सरोवरे पूरिया देवे ?
मोहन मूरति ना धरिबे यदि एमन भेवे' ॥२॥

नव नव भाव उच्छल-जल-कल्लोलिनी,
पाथार ताहार ना पाइले कोथा जाय वाहिनी ?
ए क्षुधा मिटिबे केन ?
सुधा ना पाइले हेन,
प्राणभरा रूपे बुक भरा प्रेम-तरङ्गिनी,
हाते हाते धरा ना दिले केमने लइबे चिनि ॥३॥

पीरित-क्षरित पराण पूतलि नयन तारा,
त्रियामा यामिनी जागिया पोहाइ तन्द्राहारा।
वक्ष कोटरे रहे,
प्राण से तो बड़ नहे,
बाहुर दोलाय दोलाइ तोमाय पागल पारा-
अपलके हेरि नरहरि प्राण पुतुलि गोरा ॥४॥

दीरघ कणक केतकी आँखिते सजल दिठि,
बिम्ब बाँधुलि अधरे मधुर मृदु हासिटि।
आदरे कि गद गद,
श्रीचरण कोकनद,-
बाड़ा'ये नृत्य रस तरङ्गे चलेछ हाँटि,
सोनार अङ्गे सोहाग ना धरि झरिछे फाटि ॥५॥

नरहरि-हृदि-पद्मदलेर मत्त अलि,
प्रेम-सरोवरे रसावेशे भेसे पड़िछ ढलि।
सकल अङ्ग भरि
कि माधुरी पड़े झरि',
जेन पराणेर पराण मथिया नवनी तुलि',
प्रेम छा'चे ढेले गड़े तुले निल प्राण पुतुलि ॥६॥

ठाकुर नरहरिकी एकान्त भजनस्थली पुण्य भूमि बड़डांगा, श्रीखण्ड ग्रामकी सीमाके अन्तवाले एक सुरम्य विस्तृत आम्रकाननके बीच अवस्थित है। श्रीखण्डके श्रीगौराङ्ग मन्दिरमें अति प्राचीन कालसे श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-युगल मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। नदिया युगलकी यह मूर्त्ति श्रीमन्महाप्रभुके पुत्राधिक प्रियतम ठाकुर रघुनन्दनके आदेशसे उनके प्रियपुत्र ठाकुर कान्हाईने प्रतिष्ठा की थी।

इन्हीं ठाकुर रघुनन्दन द्वारा सेवित श्रीखण्डके गोपीनाथ श्रीविग्रहने प्रेमवश बालक रघुनन्दनके हाथसे लड्डू खाया था। ये भी श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग मूर्त्तिके साथ उसी श्रीमन्दिरमें अभी भी विराजमान है और उनके साथ साथ ठाकुर नरहरिके पूर्वजों द्वारा सेवित श्रीश्रीराधामदनमोहन श्रीमूर्त्ति भी बहुत कालसे सेवित व पूजित होती आ रही है।

ठाकुर नरहरिका विरहोत्सव

खण्डवासी ठाकुर नरहरिका विरहोत्सव प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्णा दशमी, एकादशी और द्वादशी तिथियोंके दिन महासमारोहके साथ सम्पन्न होता है। बड़डांगाके इस उत्सवमें केवल मात्र श्रीगौराङ्ग व गोपीनाथ श्रीविग्रहद्वय श्रीमन्दिरसे वहाँ पधारते हैं।

गौरवक्ष विलासिनी श्रीमती विष्णुप्रिया देवी इन दिनों श्रीमन्दिरमें अकेली ही रहती हैं। कीर्तन लम्पट नरहरिके चित्तचोर अपनी वक्षविलासिनीको अकेली छोड़कर यहाँ भक्तोंके साथ तीन दिनों तक उन्मत्त रहते हैं। उनको श्रीमन्दिरमें जानेका अवकाश नहीं मिलता। विरहिणी विष्णुप्रियाजीने इस दुःखसे श्रीअङ्गके अलङ्कार आदि सब खोलकर फेंक दिये हैं, यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। उनके दर्शन करनेसे ही ऐसा प्रतीत हुआ कि वे मानो किञ्चित कुपिता व अभिमानिनी होकर अपने प्राणवल्लभके शुभ-आगमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। ऐसा लगा मानो वे अपनी अन्तरङ्गा सखी काञ्चनाको कह रही हैं—

सखि ! आज हल तीन दिन
प्राणेश्वर सङ्गहीन,
एकाकिनी आछि मुञि
कि करिया बाँचे मोर प्राण ।
अनन्त भकत सङ्गे,
नाचे गोरा बड़डाङ्गे
शुनि उच्च हरिध्वनि
बाड़े नाकि मोर अभिमान ?

मैंने ठाकुर राखालनन्दको प्रियाजीके मनकी वेदनाकी बात कही। आभरण शून्य गात्रकी बात कहनेपर मृदु मुस्कानके साथ उन्होंने उत्तर दिया—"विष्णुप्रियाके प्राण-गौर केवल नरहरिके चित्तचोर ही नहीं हैं, 'वे प्रियाजीके अलङ्कारचोर' भीहैं। प्रियाजीके समस्त अलङ्कार चुराकर उन्होंने स्वयं धारण कर लिये हैं। प्रियाजीके अलङ्कार पहिनकर उन्हें बड़ा सुख होता है।" उनका यह सिद्धान्त सुनकर मुझे हँसी जरूर आयी, लेकिन नरहरिके चितचोरापर कुछ नाराजी भी हुई। पूर्व युगके 'प्रियाजीके कान्तिचोर' यदि इस युगमें 'प्रियाजीके अलङ्कारचोर' न हों तो लोग उन्हें 'चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि' कैसे कहें ? चोरका स्वभाव कहाँ जायगा ?

बड़डाङ्गाके इस महामहोत्सवमें प्रतिवर्ष बहुतसे लोगोंका समागम होता है। राढ़भूमिमें उच्च नामकीर्तन द्वारा प्रेमका तूफान सा उठ खड़ा हो जाता है। 'जय नरहरिर प्राणगौर' ध्वनिसे दिशायें गूँज उठती हैं, बड़डाङ्गा प्रकम्पित होने लगता है।

प्रतिदिन १८-२० मन चावलोंका प्रसाद भोग होता है। ठाकुर गोष्ठी प्रतिवर्ष ५-६ हजार रुपये इस महोत्सवमें व्यय करती है। ठाकुर किशोरानन्दसे इस व्ययकी बात पूछने पर मृदु हँसीके साथ मेरा हाथ पकड़कर वे बोले—"भाई ! यही आशीर्वाद करो कि जिससे भगवानको लेकर व्यवसाय नहीं करना पड़े, भगवानका नाम लेकर अर्थ-उपार्जन नहीं करना पड़े।" कैसी सुन्दर भक्ति है उनकी, कैसी सुन्दर सेवानिष्ठा है ?

सभीने बताया कि अबकी बार सम्मिलित होने वालोंकी संख्या कुछ अधिक ही थी। स्वनामधन्य रामदास बाबाजी महाराज अपने दल-बलके सहित बड़डाङ्गाकी खुली जगहमें तम्बू लगाकर ठहरे थे। वे अपने हृतकर्ण-रसायन पाषाण-द्रवण और कीर्तन द्वारा उपस्थित भक्त-मण्डलीके मन-प्राणका भक्ति रससे सिंचन कर रहे थे। सुप्रसिद्ध कीर्तनीया गणेश और अवधूत वन्द्योपाध्याय महाशयके कीर्तनसे रसिक भक्तवृन्दको परम आनन्द मिलता था। उपस्थित भक्तवृन्दने सर्वत्र ठाकुर नरहरि सरकार महाशयकी लीलाकथा प्रसङ्गकी चर्चा और उसका आस्वादन करके परम तृप्ति लाभ की थी। ठाकुर वंशीय श्रद्धास्पद गौराङ्ग एकनिष्ठ गौरगुणानन्द ठाकुर महाशयके गौरकीर्तनसे भक्तवृन्दके मनोंमें गौर-प्रेमकी तरङ्गें उछलने लगी थीं। ठाकुरके गौरगुणानन्द नामकी सार्थकता वास्तवमें प्रमाणित हुई। उन्होंने गौरगुणके आनन्दमें प्रेमोन्मत्त होकर उत्सवमें 'नरहिरके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राण गोरा' के नागरी भावके रूपोल्लासका जब पदकीर्तन किया और गौर-विरहमें विह्वल होकर नरहरिके गौर-विरह-सङ्गीतका सङ्कीर्तन किया, उस समय उपस्थित विपुल भक्तसंघने प्रेमानन्दसे उत्फुल्ल होकर 'ठाकुर नरहरिकी जय' का तुमुल घोष कर जीवनको सार्थक अनुभव किया था। रामदास बाबाजीके मधुर कण्ठसे नदिया नागरी भावकी मधुर पदावली भी भक्तवृन्दके कानोंमें मधुवर्षा कर रही थी। इन सबका स्वयं श्रवण किये बिना वास्तविक रसास्वादन का अनुमान भी कठिन है।

श्रीगौराङ्ग सुन्दरके नागरी भावके भजन विरोधी दलमें से वहाँ कोई उपस्थित था या नहीं, पता नहीं। यदि उनका यह सौभाग्य होता, तो वे समझ पाते कि ठाकुर नरहरि सरकार महाशयके भजन बलका कितना महान प्रभाव है, कैसा अपूर्व माहात्म्य है, कैसी चित्ताकर्षक असीम शक्ति है। उनकी भजन पद्धतिका अनुसरण करके यदि नरकमें जाना पड़े तो वह भी परम श्रेय है। ठाकुर नरहरिके गण नरकका उद्धार करने में पूर्ण समर्थ हैं।

'रसराज गौराङ्ग स्वभाव' ग्रन्थके लेखक, ठाकुर नरहरिके कृपासिद्ध महापुरुष श्रीविश्वम्भर बाबाजी महाशयने अयाचित मेरे तम्बूमें आकर मुझे दर्शन देकर कृपा की, उससे मैं बहुत कृतार्थ हुआ। उनकी सुधा-मधुर प्रकृति, उनके श्रीमुखकी मधुर हँसी, उनका सहज-सरल अपूर्व गौर-नागरी भाव दर्शन करके मनमें आया कि जिन लोगोंने ऐसे निष्किचन वैष्णवके सम्बन्धमें गत वर्ष अभक्त द्वारा परिचालित साधारण समाचार-पत्रोंमें नाना प्रकारका व्यंग परिहास व कुत्सा निन्दा आदि झूठी रटना करके व्यर्थका वितण्डावात उठाया था, उनके महापापका प्रायश्चित तभी हो सकता है जब वे बड़डाङ्गामें रहकर छिन्न कोपीन व कन्थाधारी, कुटीरवासी एकान्त-भजननिष्ठ श्रीगौराङ्ग सुन्दरके इन रसिक भक्तकी पर्णकुटीरमें गौर-गदाधर व नरहरिके चित्रपटकी सेवा करें और गदाधर व नरहरिके भावसे भावित होकर रसराज गौराङ्गकी उपासना

करें। उनके प्रत्यक्ष सङ्गसे उनका मर्म कुछ-कुछ समझमें आना सम्भव है। उनके सङ्ग गुणसे वास्तविक नवद्वीप रसका अनुसन्धान मिलता है । जिनका ऐसा भाग्य हो, वे निश्चय ही भाग्यवान हैं।

श्रीविश्वम्भर बाबाजी महाशयने हँसते-हँसते कहा कि उनके नरहरिके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राण गोराके शत्रु पक्षवालों ने उनका विरोधी बनकर विशेष उपकार ही किया है; उनको कलङ्किनी बताया इससे वे सन्तुष्ट हैं, कारण श्रीराधिकाजीका भी कलङ्किनी भूषण था; उन लोगोंने उनको जेलखानेमें भेजना चाहा था। बाबाजीने कहा कि यदि ऐसा हो जाता तो अच्छा ही होता। नरहरिके चितचोरा, विष्णुप्रियाके प्राण गोराके जेलखानेमें अनुसन्धान करनेकी उन्हें भी जरूरत थी जो बाकी रह गया, इसका उन्हें अत्यन्त दुःख है। जेलखानेमें शुद्ध सरसोंका उत्तम तेल प्रस्तुत होता है—ऐसा उन्होंने सुना था। कैदियोंको घानी चलानी पड़ती है—यह भी उन्होंने सुना था। श्रीखण्डमें सरसोंके शुद्ध उत्तम तेलका बड़ा अभाव है। श्रीविष्णुप्रियाके प्राणवल्लभ, नरहरिके चितचोरा, गदाधरके प्राणधन संन्यासी होकर घर छोड़कर भाग गये हैं, नाना देशोंमें भ्रमण करनेसे उनके कोमल पदतलियोंमें कुशांकुर चुभनेसे पीड़ा हो गई है। नरहरिके चितचोरा चोर निश्चित हैं ही; उन चोराग्रगण्य महापुरुषका जेल जाना कोई असम्भव बात नहीं। जेलखानेका अच्छी प्रकार अनुसन्धान करनेसे सम्भव है वे पकड़ाई में आ जाते। जेलके सरसोंका शुद्ध तेल उनके कोमल पैरोंकी तलियोंमें मलनेका सौभाग्य नहीं मिल पाया—यही बाबाजी महाशयको दुःख है।

नरहरिके कृपासिद्ध ऐसे बाबाजी महाराजके श्रीअङ्गकी वायुके स्पर्श मात्रसे कलिहत जीवोंके पाप-ताप दूर हो जाते हैं। उनके सङ्गलाभसे क्या हो जाय, कहा नहीं जा सकता।

बड़डाङ्गा स्थान अति मनोरम है। चारों ओर आम्र काननसे सुशोभित है। सामने विस्तीर्ण श्रीगौराङ्ग सरोवर है। ठाकुर नरहरिकी इस एकान्त भजनस्थलीपर बड़डाङ्गामें चारसौ वर्ष पूर्व जाकर श्रीगौराङ्ग पार्षदगण भक्तमहात्माओंने प्रेमानन्दपूर्वक नृत्य कीर्तन किया था। उन गौरभक्त महात्माओंकी पद-रज-सिक्त इस पुण्यभूमिपर आजतक ठाकुर सन्तानगण ठाकुर नरहरिकी तिरोभाव तिथिको उनका परम पवित्र स्मृति चिह्न मानकर जिस भावसे समारोह पूर्वक मनाते आ रहे हैं वैसा कहीं अन्यत्र देखनेको नहीं मिला। ठाकुर नरहरिकी श्रीगौराङ्ग भजनपद्धतिमें किसी प्रकारकी विशृंखलता नजर नहीं आती। श्रीपाट श्रीखण्डके आबालवृद्धवनिताके प्राण श्रीगौराङ्गमें हैं। वे उनके सर्वस्व धन हैं। श्रीविष्णुप्रिया देवी उनकी गृहलक्ष्मी हैं। उनके घरमें और किसी देव-देवीकी पूजा नहीं है। षष्ठी, मनसा, चण्डी, दुर्गा, काली,

लक्ष्मी, सरस्वती सभी कुछ उनकी श्रीविष्णुप्रिया ही हैं। वे सब प्रकारसे गौराङ्ग नामकी महिमाकी रक्षा कर रहे हैं। यहाँ तक कि बालिकाओंके आपसमें प्यारके सख्य भावके नाम सृजन भी गौर नामके द्वारा ही होते हैं। मेरे साथ मेरी पत्नी और कन्या भी थी। उनको ठाकुरवाड़ीके अन्तःपुरमें निवास स्थान मिला था। उन्होंने मुझे बताया कि ठाकुरवाड़ीकी एक रमणीने अन्य रमणी को सम्बोधन करते हुए कहा—"अरी गौरधूलि ! इनको बैठनेको आसन दो"। यह 'गौरधूलि' प्रथमोक्त रमणीकी सखीका प्यारका नाम था। पूछनेपर मेरी स्त्रीको पता लगा कि ये लोग सब भावसे सब कामोंमें गौर नामका इसी प्रकार प्रयोग करते हैं।

खण्डवासी ठाकुर गोष्ठीका आतिथ्य सत्कार सबको विदित है। एकनिष्ठ गौरभक्तोंके प्राण शीतल करनेका स्थान है ठाकुर नरहरिका पाट श्रीखण्ड, और गौर प्रेमके भण्डारी हैं ठाकुर-गोष्ठी। गौर कथा छोड़कर वे दूसरी कोई बात नहीं जानते। ऐसी गौर-गोष्ठीका निन्दावाद सुननेसे प्राणोंपर बड़ी चोट लगती है, तथा कठोर बात भी बोलनी पड़ती है।

श्रीखण्डके प्राचीन भक्तोंने बताया कि सिद्ध चैतन्यदास बाबाजीके साथ खण्डवासी ठाकुर-गोष्ठीका एक विशिष्ट सम्बन्ध था। नागरी भावके अन्तिम महात्मा सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी महाशय थे। ठाकुर नरहरिकी गोष्ठीके सदस्यगण श्रीगौराङ्ग सुन्दरके रसिक भक्त हैं, श्रीगौराङ्ग सुन्दरका वे मधुर भावसे भजन करते हैं। वे गौर नागरी भावसे विभावित हैं। इसीलिए सिद्ध चैतन्यदास बाबाजीके साथ श्रीखण्डका इतना घनिष्ट सम्बन्ध है। यह भी सुना गया है कि सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी महाशय जब श्रीपाट श्रीखण्ड गये तब वहाँ नव नागरीको भोग देकर पीछे प्रसाद पाया करते।

श्रीखण्डसे विदा ग्रहण करके हम लोगोंने श्रीपाट काटोया (कण्टकनगरी) के दर्शनके लिये प्रस्थान किया।

कण्टक नगरी

काटोया (कटवा) का नाम शुद्ध 'कण्टकनगरी' है। यह बड़ा कठोर स्थान है। जैसा कर्कश और कठिन नाम है वैसा ही धाम है।

नदियावासियोंका जीवन सर्वस्वधन, विष्णुप्रियाके प्राणवल्लभ, शचीमाताके अञ्चलकी निधि, नरहरि गदाधरके प्राणानाथने इसी स्थान पर आकर शिखा-सूत्रका विसर्जन किया था। उनके भ्रमर सदृश कृष्ण एवं चिकने घुंघराले केशदाम यहीं अन्तर्धान हुए थे, यहीं उनकी समाधि है। वही गङ्गातीर, वही यज्ञवेदीका स्थान, वही केशव भारतीकी कुटीर और सर्वोपरि श्रीमन्दिरके सन्मुख एक अस्वस्थ वृक्षके मूलमें यात्री वृन्दके मुण्डित मस्तककी विक्षिप्त केशराशिका संग्रह। आज पर्यन्त वह

हृदय विदारक प्राचीन सब कठिन स्मृति श्रीपाट दर्शक भक्तवृन्दके प्राणोंमें दारुण शैलके समान तीव्र प्रहार करती है। ये वस्तुएँ उनके मनमें उस समयकी काष्ठ पाषाण गलानेवाली संन्यास लीलाकी पूर्व स्मृति जाग्रत करती हैं। इसीलिए मैंने इस स्थानको कठोर (निष्ठुर) बनाया, यह तीर्थ सचमुच कठोर (निर्मम) तीर्थ है।

जब मैं नीलाचल क्षेत्र गया था तब वहाँ गम्भीरा मन्दिरमें महाप्रभुजीके व्यवहृत छिन्न कन्थाका जीर्णांश दर्शन करके मेरे क्षुद्र प्राणोंको बड़ा ही आघात लगा था। दुर्जय पुत्रशोकसे अधीर होकर जिस प्रकार स्त्रियाँ उच्च स्वरसे चिल्ला-चिल्लाकर नाना प्रकारसे क्रन्दन करती हैं उसी तरह जोर-जोरसे प्राण खोलकर जी भरकर सबके सामने मैं भी बहुत देर तक रोया था और रो-रोकर अपने मनके दुःख तापको कुछ हल्का कर सका था। किन्तु श्रीपाट काटोयामें आकर उसकी अपेक्षा भी अधिक असह्य आघात प्राणोंमें लगा, हृदयमें पीड़ा शूल सी चुभने लगी; एक जगह स्थिर बैठकर एकान्तमें बहुत देर तक रुदन करता रहा। प्राणोंकी व्यथा प्राणोंमें ही रह गयी। मुँह तो नहीं फटा लेकिन हृदय विदीर्ण हो गया। इस विदीर्ण हृदयकी असीम गम्भीर वेदना मेरी सङ्गिनी चिर दिनकी हो गयी।

विष्णुप्रिया वल्लभ हे! शचीनन्दन हे! नदियावासियोंके प्राणगोपाल हे! इस जीवाधमकी तुम्हारे श्रीचरणकमलोंमें यही प्रार्थना है कि विदीर्ण हृदयकी इस चिर वेदनाको लिए हुए ही तुम्हारे श्रीचरणोंमें स्थान पाऊँ। मेरे जीवन-मरणके साथी हे! मेरे प्राणोंकी गम्भीर मर्म व्यथाके रूपमें तुम मेरे हृदय राज्यमें अनन्त काल तक राज्य करो, मेरे हृदयके दुःसह ताप रूपसे तुम मेरे गौर-विरह-ताप-दग्ध प्राण-समुज्ज्वल करो और गौर-विरह-अनलके आलोकसे आलोकित करो। मेरे प्राणरमण हे! रसराज गौराङ्ग हे! गम्भीर हृदय-वेदनाके द्वाराही मैं तुमको पाऊँ, तुम्हारी अपार करुणाका ठीक अनुसन्धान पाऊँ। तुमको प्राणोंकी मर्मवेदनाकी दो बात कहता हूँ, सुनो। दुःख-तापके मर्मान्तक उत्पीड़नके बीच तुम्हारे चिरशान्ति-पूर्ण कोमल-चरण-स्पर्शके मृदु मन्द स्पन्दन अनुभव करूँ, प्राणोंके गुरुतर आघातके बीच तुम्हारी करुणाकी दिव्य छवि मेरे ऊषर हृदयमें परिस्फुटित होती रहे। इसीलिये निजजन निठुर विष्णुप्रियावल्लभ हे! बहुत दिन पूर्व एक दिन मैंने लिखा था—

दुखेर आशाय रयेछि बसिये
दाओ दुख प्रभु आरो।
सुख पेये तोमा गिये छिनु भूले
दाओ दुख जत पारो॥

श्रीपाट कण्टनगरीके दर्शनसे जो दुःख मिला, जिस तापसे मेरे इस हृदयको दग्ध करके श्रीमान् महाप्रभुजीने मेरा ठीक-ठीक शोधन किया वही गौर विरह

जनित दुःख और ताप मेरे जीवनका लक्ष्य हो, उसी दुःख तापसे मेरी साधनाकी सिद्धि हो, वही दुःख ताप मेरे जीवनमरणका साथी हो, जीवनके अन्तिम कालमें यह दुःख ताप ही मुझे गौर-नाम-गानमें उद्‌बुद्ध करदे, दुःख, शोक, उत्पीड़न, निंदासे मेरा हृत्‌पिण्ड भुवन मङ्गल गौर-नाम कीर्त्तन करते-करते फट जाय और विष्णुप्रिया वल्लभ हे ! वही छिन्न-विच्छिन्न हृत्‌पिण्ड तुम्हारे युगल चरण तले निपतित होकर प्रेम-आनन्दसे तुम्हारा यही नाम गान करे—

जय जय श्रीगौराङ्ग विष्णुप्रिया नाथ।
जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टि पात ॥

(श्रीचैतन्य भागवत)

सच्चे गौर भक्तके लिए इसकी अपेक्षा ऊँची और कोई प्रार्थना नहीं।

भावके श्रोतमें पड़कर बहुत दूर आ गया। कृपामय पाठकवृन्द जीवाधम लेखकके वातुल ज्ञानके लिए क्षमा करें। मेरे पगले निताईका बोल 'गौरहरि, हरि बोल' ने मुझे उन्मत्त कर दिया, इसमें मेरा दोष कुछ नहीं है।

श्रीपाट काटोयाके श्रीविग्रहके दर्शन किये। श्रीविग्रहके दर्शनोंसे मनको जैसा आनन्द होता है वैसा नहीं हुआ। बड़े दुःखसे राग व अभिमानसे महाप्रभुके श्रीकेशके समाधि मन्दिरके निकट गोष्ठी सहित बैठा रहा, प्राणोंमें शान्ति नहीं; वेदनासे बोझिल हृदय, खारे आँसुओंसे भरे नेत्र, उदास मन-प्राण, कैसे कुछ अच्छा लगता ? किसी प्रकार दोपहर तकका समय व्यतीत हो गया। गृहिणी और कन्याके अतिरिक्त श्रीनिवास आचार्य परिवार, श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया भजन-निष्ठ श्रीआशुतोष त्रिवेदी महाशय भी साथ थे।

श्रीपाट एकचक्रा दर्शन

•

[प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी द्वारा लिखित]

जीवनकी साध

"बड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।
चैतन्य देखाय जारे से देखिते पारे ॥"

जीवनकी एक बड़ी अभिलाषा थी कि मेरे कुलके ठाकुर श्रीनिताईचाँदकी जन्म-लीला-स्थली श्रीपाट एकचक्राके एक बार दर्शन करके जीवन सार्थक करूँ! इस विषयके कीट मुझ जीवाधमके दग्ध भाग्यमें परम दयालु निताईचाँदने यह सौभाग्य लिखा है अथवा नहीं, इसका मेरे मनमें बड़ा संदेह था। किन्तु मेरे पाखण्डी-दलन-बाना निताईचाँदकी करुणाधारा ऐसी है, मेरे पगले निताईचाँदकी इतनी अपार अहेतुकी दया है कि अबकी बार उन्होंने अपने शुभ-जन्मोत्सवके उपलक्षमें अपने प्रिय भक्त द्विज बलरामदास ठाकुरके पवित्र वंशके कुलाङ्गारको गलेमें डोरी बाँधकर, केश पकड़कर खींचते-खींचते अपने पुण्यधाम जन्म-लीला-स्थली श्रीपाट एकचक्राकी अपूर्व शोभा व अनुपम महिमाकी सच्ची अनुभूति एवं विभूति दिखाकर 'कुलके ठाकुर' नामका यथार्थ परिचय दिया। महाजन कवि भावावेशमें मनकी बात एक पदमें यों व्यक्त कर गये हैं:—

"कानुरामदास बले कि बलिब आमि।
ए बड़ भरसा मोर कुलेर ठाकुर तुमि ॥"

मेरे कुलके ठाकुर निताईचाँद परम दयालु हैं। यदि कुलके ठाकुर न होते तो इतनी दया क्यों करते? गत वर्ष श्रीपाट दर्शनके लिये जाते समय मैं विशेष कारणवश रोक दिया गया था। केश पकड़कर कुसङ्गीका सङ्ग त्याग करवाकर अपने अयोग्य और अनधिकारी इस दासानुदासको उस समय अटकाकर रखा—उसके रहस्यका अब अनुभव कर रहा हूँ और रो-रोकर उनके गुण गा रहा हूँ। अबकी बार निताईचाँदकी कृपासे सच्चे साधुसङ्गका लाभ हुआ।

मार्ग-दृश्य

गौर भक्तवर महेन्द्रलाल वसु हमलोगोंके साथ थे। उनके सङ्ग गौर-कथा रसका सगोष्ठी आस्वादन करते हुए हमलोग रामपुर हाट होकर श्रीनित्यानन्द प्रभुके शुभ जन्मोत्सवकी तिथि द्वितीय फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी बङ्गाब्द १३३३, गौराब्द ४४० के दिन वीरभूम जिलाके श्रीपाट एकचक्रा ग्राम पहुँचे थे। इस ग्रामका दूसरा नाम वीरचन्द्रपुर है। श्रीनित्यानन्द आत्मज श्रीवीरचन्द्र प्रभुके परम पवित्र नामकी पुण्य-स्मृति-स्वरूप इस ग्रामका नाम वीरचन्द्रपुर हुआ।

श्रीधाम नवद्वीपसे चलकर पहले दिन कण्टकनगरी होते हुए अनुमानतः साढ़े चार बजेके समय हमलोग रामपुर हाट पहुँचे और वहाँ श्रीपाद निशानाथ गोस्वामीके घर रात्रिनिवासकर बहुत तड़के लगभग ३ बजे श्रीपाट एकचक्राके लिये प्रस्थान किया। रामपुर हाटसे एकचक्रा १२ मीलका मार्ग है। रास्ता अच्छा नहीं, बीचमें एक नदी पड़ती है, बैलगाड़ीके सिवाय आने-जानेका दूसरा साधन नहीं। तीन गाड़ियोंमें हमलोग १० आदमी थे।

अरुणोदयके समय रास्तेके दोनों ओरके दूर दूर तकके शस्य श्यामल क्षेत्र दृष्टिगोचर थे। उषाकालमें मृदु मन्द स्निग्ध पवन वह रही थी। राढ़भूमिका सारा नैसर्गिक स्वरूप बड़ा ही मधुर लग रहा था। दीख पड़नेवाली प्रत्येक वस्तु मधुर, सुन पड़नेवाले प्रत्येक शब्द मधुर—यानी सभी कुछ मधुर था। मेरे मधुर मूर्ति निताईचाँदकी लीला-स्थली मधुरातिमधुर थी। इस देशके ग्रामीण पथ ऊँचे-नीचे क्षेत्रोंके बीच टेढ़े-मेढ़े रूपमें ग्रामोंके बीच होकर जा रहे थे। मोहिनी मिट्टीके सब ग्राम्य-गृह व कुटीर, टूटे-फूटे रास्तोंके पासके स्थान, ऊँचे-नीचे भूमि-खण्ड, मार्गके दोनों ओरके धानके लहलहाते खेत, खुले स्थानोंके बड़े-बड़े वटवृक्ष, छोटी छोटी पुष्करिणियोंके किनारेके ताल वृक्षोंके समूह, गन्नेके खेतके लम्बे-लम्बे ईक्षुदण्डके हिलते पत्ते, ग्राम्य पुष्करिणियोंके पङ्किल सलिलमें पड़े वृक्ष-पत्र समूह, यत्र-तत्र खेतमें खेलते हुये गायोंके बछड़ोंके हाम्बारव, ग्राम्यवासिनी स्त्रियों तथा पुरुषोंका उषाकालके समय सलज्ज भावसे खेतकी तरफ गमन, उषाकालीन पवन-आन्दोलित वृक्ष-शाखाओंकी पत्रराजि, वृक्षोंपर बैठे हुए पक्षीकुलका सुमधुर कलरव, सभी मधुर, सभी सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। रूपके सागर, गुणके नागर अवधूत मेरे निताईचाँदकी अपरूप रूपराशि वृक्षकी शाखामें, तरुके तनेमें, पक्षियोंके कलरवमें, नरनारियोंके सुघड़ मुँह और सलोनी आँखोंमें, ग्राम्य-पथकी कठोर कंकरीली भूमिपर, सुशोभित कोमल हरी-भरी दूर्वामें, पथमें, घाटमें, सब स्थानोंमें, सब जीवोंमें, स्थावर जङ्गममें प्रस्फुटित होकर प्रकाशित हो रही है। मानो, नित्यानन्दमयी राढ़ धरित्री सौन्दर्य भावसे नित्य आनन्दमें चिरमग्ना है, और नैसर्गिक सौन्दर्यकी अभिव्यक्ति मानों सर्व भूतोंमें प्रस्फुटित हो रही

है। नित्यानन्दमयी परम पवित्र इस नित्यानन्द भूमिको देखकर सर्व भूतोंमें निताई-दर्शनका लाभ हुआ। हरि हरि ! उस समय एक महाजनी पदकी स्मृति मनमें आई—

"वन्द प्रभु नित्यानन्द, केवल आनन्द कन्द,
झलमल आभरण साजे"

परम दयालु निताईचाँदके गुण गाते-गाते, उनके अपरूप रूपका ध्यान करते-करते जब हमलोग उस राढ़ देशके कंकरीले कठिन मार्गपर कभी शकट (बैलगाड़ी) में, कभी पैदल चलते हुए आगे बढ़े जा रहे थे, उस समय मनमें आया कि एक समय मेरे निताईचाँद अपने जीवन सर्वस्वधन श्रीगौराङ्ग सुन्दरके साथ उनके संन्यासके बाद ही इस राढ़ भूमिमें तीन दिन तक बिना आहार-निद्राके उन्मत भावसे "कहाँ कृष्ण कहाँ कृष्ण" रटते हुए उच्च स्वरमें रोदन करते-करते दिशा ज्ञानशून्य होकर भ्रमते फिरे थे, कठिन कंकरीली भूमिसे विद्ध उनके कोमल चरणकमलोंको कितना कष्ट हुआ होगा—इस लीलाका स्मरण होनेसे हमारे अति ऊषर हृदय भी मथित हो गये। राढ़ प्रदेशकी कठिन कंकरीली भूमिकी अपेक्षा अधिक कठोर हमारे पाषाण हृदय भी द्रवित हो गये और नीरस व शुष्क आँखोंमें भी वारिविन्दु दिखाई दिये। हा निताई ! हा गौराङ्ग ! बोलते हुए पथपर चलते चलते श्रीपाट एकचक्रा ग्रामके श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा प्रतिष्ठित श्रीबंकिमचन्द्रके श्रीमन्दिरका अग्रभाग दृष्टिगोचर होने लगा। लगभग ९॥–१० बजेका समय हो गया था। 'विष्णुप्रियाके चितचोरा' 'निताई पागलकरा गोरा' इस राढ़ भूमिमें मेरे निताईके साथ प्रेमावेगमें उन्मत्तकी तरह भटकते फिरे थे। मेरे जीवन सर्वस्व निताई-गौरके चरण-स्पृष्ट इस परम पवित्र राढ़ तीर्थ क्षेत्रके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे इस ६० वर्षकी अवस्थामें हुआ—इसका ध्यान आते ही प्राण परम आनन्दसे भर उठे, प्रेमानन्दसे निताई-गुणगानमें मन प्रमत्त हो गया। श्रीबंकिमचन्द्रके श्रीमन्दिरके चूड़ाका दर्शन करके परम प्रेमपूर्वक प्रणाम किया।

श्रीबंकिमचन्द्र दर्शन

पैदल चलकर हमलोग श्रीमन्दिरके द्वारपर आ उपस्थित हुए। पर तत्काल श्रीविग्रहके दर्शन हमलोगोंके भाग्यमें नहीं थे, क्योंकि श्रीमन्दिरके पट उस समय बन्द हो चुके थे। जो हो, हम लोग निवास-स्थान ठीक करके स्नानादि करके आये और श्रीबंकिमचन्द्रके श्रीमुखके दर्शन करके कृतार्थ हुए।

दारुविग्रह श्रीबंकिमचन्द्रके रूपकी तुलना नहीं। त्रिभङ्ग भावसे वंशीधारी रूपमें श्रीमन्दिर आलोकित करते हुए श्रीनिताईचाँद द्वारा प्रतिष्ठित ये अपूर्व श्रीमूर्ति यहाँ विराज रही हैं। दोनों ओर दो शक्ति मूर्ति हैं। उनमेंसे एक दारुमूर्ति और दूसरी धातुमूर्ति है। सेवा करनेवाले वृद्ध ब्राह्मणने बताया कि जब श्रीनिताईचाँद अन्तर्धान हुए, तब वे अपने सेवित श्रीबंकिमचन्द्रमें लीन हुए थे। ये दो शक्तिमूर्तियाँ वसु,जाह्नवा

श्रीबंकिमचन्द्रमें लीन अपने प्राणवल्लभ श्रीनिताईचाँदके दोनों बगलमें विराज रही हैं। इन मूर्तित्रयकी कुछ रहस्य कथा है। भ्रातृवधूके सहित श्रीबंकिमचन्द्र और श्रीनित्यानन्दचन्द्र दोनोंकी ही प्रणयासक्ति भावकी लीलाकथा ही परम रहस्य है। इसलिये बहुत कालसे किम्वदन्ति है—"भौजीके सहित श्रीश्रीबलराम एवं श्रीश्रीबंकिमचन्द्र यहाँ लीला कर रहे हैं"। मधुर रसकी यह कथा सुनकर हमलोग जी भरकर हँसे। रसिकशेखर ठाकुरद्वयकी रसमय लीला-रङ्गका अपूर्व वैचित्र्य देखकर मनमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीबंकिमचन्द्रको यथासाध्य भोग चढ़ाकर हमलोगोंने वहीं प्रसादका प्रबन्ध किया और फिर श्रीनिताईचाँदके गर्भवासके दर्शन करने निकले।

श्रीपाट एकचक्रा परिक्रमा आरम्भ

श्रीबंकिमचन्द्र के दर्शनकर हम लोगों ने श्रीपाट एकचक्राकी परिक्रमा आरम्भ की। दोपहरका समय हो गया था।

पहले कदम्बखण्डी पहुँचे। अब यहाँपर एक भी कदम्ब वृक्ष नहीं है। किसी समयमें वहाँ बहुतसे कदम्ब थे इसीलिये उस स्थानका नाम पड़ा कदम्बखण्डी। यहाँ श्रीगौर-निताईकी श्रीमूर्ति प्रतिष्ठित हैं। सेवा-भार दो महात्माओंके हाथमें है।

किम्वदन्ति है कि यहाँ बगलमें श्रीयमुनाजी प्रवाहिता थीं। ऐतिहासिकगण राढ़देशमें श्रीयमुनाजीके प्रवाहकी बातपर विश्वास नहीं करेंगे, किन्तु भक्तोंके लिये अविश्वासका कोई कारण नहीं। अभिन्न गौरगोविन्द मूल संकर्षणावतार श्रीनिताई-चाँदका जहाँ आविर्भाव हो, वहाँ सर्व तीर्थोंका समावेश हुए बिना उस तीर्थका श्रेष्ठत्व सूचित नहीं होता। गङ्गा, यमुना, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी आदि सर्वपुण्यतोया नदनदी सबका आविर्भाव राढ़ देशमें एकचक्रा ग्राममें श्रीनिताईचाँदके शुभ-आविर्भावके कालमें हुआ था—यह वैष्णव सिद्धान्त है।

उसी यमुनाके घाटका स्मृति चिह्न अभी भी वर्तमान है। कथित किम्वदन्तिके अनुसार इस यमुनाके घाटपर एक नीमका वृक्ष देखकर श्रीश्रीनिताईचाँदने उसी दारुखण्डसे श्रीबंकिमचन्द्र श्रीविग्रहका निर्माण कराकर एकचक्रामें प्रतिष्ठा की। स्वयं श्रीनिताईचाँदके प्रतिष्ठित यह अपूर्व बंकिमचन्द्र अभी भी उसी स्थानपर विराजे हुए हैं।

इसके बाद हम लोगोंने आधे रास्तेपर अपूर्व प्राचीन श्रीमदनमोहनजीकी श्रीमूर्तिके दर्शन किये। एक वृद्ध बाबाजीके हाथमें इस श्रीमूर्तिकी सेवा थी। उन्होंने बताया कि इसके निकट ही एक जगह गौराग्रज श्रीमद्विश्वरूप प्रभुका विश्राम स्थान हैं। उस स्थानपर एक वेदी संस्थापित है। किम्वदन्ति है कि संन्यास ग्रहणके उपरान्त श्रीमद्विश्वरूप प्रभु एकचक्रा ग्राममें पधारे थे। यहाँका प्रवाद है कि श्रीमद्विश्वरूप प्रभु ही हाड़ाई पण्डितके घर अतिथि होकर श्रीनिताईचाँदको सङ्ग ले गये थे। यह प्रवाद

ऐतिहासिक हिसाबसे प्रमाण सापेक्ष है। महात्मा शिशिरकुमार घोषने इस विषयपर कुछ विचार किया है। जो भी हो, हमलोग परम भक्तिके साथ गौराग्रज श्रीमद्विश्वरूप प्रभुकी परम पवित्र विश्राम स्थलीके निकट जाकर प्रणाम व वन्दना करके धन्य हुए।

जन्मलीला-स्थलीका गर्भवास

इसके उपरान्त हम लोग श्रीनिताईचाँदकी गर्भवास नामसे प्रसिद्ध परम पवित्र जन्म-लीला-स्थलीके पुण्य स्थान पर उपस्थित हुए। स्थान परम निर्जन था। श्रीनित्यानन्दके जन्मोत्सवके दिन भी वहाँ मूर्तिमान् नीरवताका पूर्ण परिचय मिल रहा था। राढ़ देशके सभी मार्ग प्रायः शस्य क्षेत्रके ऊपरसे जाते हैं। दोपहरकी प्रचण्ड धूपमें खुले मस्तकपर सूर्यके प्रखर तापको सहने, कठोर पगडण्डियों पर चलते-चलते हम लोग जब गर्भवासके निकट पहुँचे, तब सुनील मध्याकाश चुम्बित एक अति प्राचीन वटवृक्षकी शाखा दीख पड़ी। हम लोगोंके पथ-प्रदर्शक एक वृद्ध सज्जनने बताया कि यही गर्भवास है, यही निताईचाँदका जन्म-स्थान है। उस समय हमारे प्राणोंमें जो अद्भुत प्रेमानन्दकी तरङ्गें उठीं, मनमें जो अभूतपूर्व नित्यान्दकी स्फूर्ति हुई, प्राणोंमें प्राणाराम नित्यानन्द नामकी जो अपूर्व महिमा जाग्रत हुई, उसका भाषाके माध्यमसे वर्णन असम्भव है।

गर्भवासके श्रीमन्दिर द्वारकी रज-स्पर्शके सुख और आनन्दसे विभोर होकर हम लोगोंने भीतर प्रवेश किया। वहाँ जो अभूतपूर्व दृश्य देखा, अद्भुत प्राचीन सब स्मृति चिह्न देखे, इस प्राकृत चर्म-चक्षुओंसे हमारे कुलके ठाकुरने जो दिखाया, दोनों नयन भरकर प्राणोंके आवेगमय भावावेशमें जो कुछ देखा, वह जीवन में फिर कभी कहीं देखनेको नहीं मिला। काशी, गया, वृन्दावन, पुष्कर, जयपुर, नाथद्वारा, द्वारिका, प्रभास, सुदामापुरी, पुरुषोत्तमक्षेत्र, हरिद्वार, अमरावती, अमरकण्टक, रामटेक, वैद्यनाथ, प्रभृति पुण्यस्थानोंमें तीर्थभ्रमण किया, किन्तु मेरे निताईचाँदकी जन्म-लीला-स्थली एकचक्राकी तरह नैसर्गिक सौन्दर्य परिपूर्ण, प्राचीन पुण्यस्थानके समान परम पवित्र निर्जन-स्थान और कहीं नहीं देखा। यह मेरे हृदयकी बात है कि अपने कुलके ठाकुरकी जन्म-लीला-स्थलीका दर्शन करके मुझे बहुत सुख और आनन्द मिला, इसीलिये जी खोलकर निष्कपट होकर ये सब बातें लिख रहा हूँ।

गर्भवासका प्राचीन वटवृक्ष, जिसके पादमूलमें बैठकर निताई-जननी पद्मावती-देवीने मेरे कुलके ठाकुर निताईचाँदको बाल्यकालमें स्तन-दुग्ध-पान कराया था, वही परम भाग्यवान प्राचीन वटवृक्ष जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें उस गौरवमय अतीतकी परम पवित्र स्मृति गौर भक्तवृन्दके मनमें सहज जागृत करता है। कहा जाता है कि इसी सिद्ध वट वृक्षके मूलमें श्रीनिताईचाँदकी षष्ठी पूजा हुई थी। उसके बगलमें ही एक थोड़ा ऊँचा प्राचीन श्रीमन्दिर है जिसका संस्कार हो चुका है। श्रीनिताईचाँदके सूतिका

गृहके ऊपर यही श्रीमन्दिर प्रतिष्ठित है, यहीं श्रीनिताईचाँदकी नाड़ी (नाल) गड़ी है। इस प्रकारकी प्राचीन किम्वदन्ति बहुत कालसे चली आ रही है। सामनेके मन्दिरमें श्रीश्रीगौरनित्यानन्दकी श्रीमूर्ति हैं जो दो साधु सेवकों द्वारा-नित्य पूजित व सेवित होती हैं।

श्रीनित्यानन्द जन्मोत्सवपर इस श्रीमन्दिरमें कोई वाह्याडम्बर नहीं है, कीर्त्तनका भी कोई प्रबन्ध नहीं है। हम लोगोंके साथ हमारे महेन्द्रलाल थे, निशानाथ गोस्वामी थे, करताल थी। हमलोगोंने स्वयं ही श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें बैठकर "निताई गौराङ्ग, निताई गौराङ्ग" नामकीर्त्तन प्रारम्भ किया। कई एक बाबाजी वहाँ अवस्थित थे, लेकिन उनको कीर्तनमें योग देते नहीं देखा। कीर्तनानन्दसे विभोर होकर हम लोगोंने वहीं बैठे हुए अपने नेत्रोंके जलसे हमारे कुलके ठाकुर श्रीनिताईचाँदका अभिषेक किया और अपने साथ लाये हुए सामान्य फल-फूल मिष्ठान्नका श्रीनिताईचाँदको भोग अर्पण किया। इसके बाद वहाँ कितनी ही देर तक श्रीनिताईचाँदकी जन्म-लीला-कथाका आस्वादनकर कृतकृत्य हुए। हमारे पगले निताईचाँदके बोल 'गौरहरि हरिबोल' कीर्तनके बाद 'श्रीनिताईचाँदकी जय' घोष करके गर्भवासके भीतर जाकर वहाँ निताईकुण्डके परम पवित्र जलका स्पर्शकर धन्य हुए।

यहाँसे और कहीं जानेको मन नहीं करता था। मनमें आता था कि यहीं बैठकर हमारे कुलके ठाकुर श्रीनिताईचाँदका आजीवन गुण गाता रहूँ। भजन-साधन, ध्यान-धारणाकी तो सामर्थ्य और शक्ति है नहीं, हा निताई! हा निताई! रटते हुए यदि रोनेकी शक्ति मिल जाय तो अपने आपको परम धन्य समझूँगा। श्रीनिताईचाँद ऐसा सौभाग्य इस जीवाधम कुलाङ्गारको देंगे क्या? यही मेरी चिन्ता और ध्यान था।

(प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी कन्या श्रीमती सुशीलासुन्दरी देवीने गर्भवासके दर्शन करके जो कविता वहाँ लिखी थी वह नीचे उद्धृत है)

कइ हे हाड़ाइ कइ श्रीनिताइ'
देखाओ देखाओ, खोला दुयार।
प्राणपण आशे एइ 'गर्भवासे'
आसियाछि देखा लइते ता'र॥
बहुदूर ह'ते बन्धुर पथे
भ्रमिते भ्रमिते आसियाछि हे।
देखाओ तोमार प्राणेर कुमार
चाँद चेपे आर रेखोना गृहे॥
एइ 'एकचाका' केन फांका फांका
केन से बलाइ लीलाविलासी

ए 'बकुलमूले' 'यमुनार' कुले
केन आसि' देखा देय ना हासि' ?
कइ त खेले ना दोल की झुलना
राखाल-राजार बाल्य-लीला–
अभिनय कोथा ? सेइ चपलता
हेरि' हेरि' दरवित जे शिला ॥
मागो पद्मावती ! नमि नमि सति!
तोमार पावन पदाम्बुजे ।
ओमा एकबार देखाओ तोमार
नृत्य निताइ उर्द्ध भुजे ॥
ओ जे अवतार मूर्त्त दयार
आदोष दरशी कलुषहारी ।
ओ जे गो आमार बड़ आपनार
(ताइ) दरसन आशे एसेछि तारि' ॥

सिद्ध वकुल

उसके बाद हमलोग सिद्ध वकुल दर्शन करनेको आगे बढ़े । श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें सिद्ध वकुलके दर्शन किये थे, यहाँके सिद्ध वकुलका नाम भी सुना था । अति प्राचीन वकुल वृक्षकी वही पुरानी स्मृति उदय हो गयी । कुछ दूर चलने पर तरु गुल्मलता परिवेष्ठित, प्राकृतिक सौन्दर्य विभूषित, आडम्बर शून्य, परम पवित्र आश्रम दृष्टिगोचर हुआ । दूरसे ही उस आश्रममें स्थित उस सिद्ध वकुल वृक्षको हमलोगोंने भक्तिभावसे प्रणाम किया । इसी वृक्षके नीचे हमारे कुलके ठाकुर निताईचाँदने बाललीलाकी थी । निताई-पद-कमल-सेवित यह वही वकुलवृक्ष रूपी प्राचीन श्रेष्ठ महाजन है, यह मेरे पगले निताईचाँदकी वही बाल्यलीला स्थली है—यह बात मनमें आतेही प्राणोंमें मानो प्रेमानन्दका विद्युत प्रवाह फूट चला, मनमें एक प्रकारका प्रेम चाञ्चल्य भावका उदय हुआ, हृदयमें एक प्रकारकी अपूर्व भाव-तरङ्गें रङ्ग-भङ्गीके साथ नृत्य करने लगीं । हम लोगोंने 'जय निताई' घोषके साथ आश्रममें प्रवेश किया ।

प्राचीन वैष्णव-तीर्थस्थानका यह प्राचीन वकुल वृक्षरत्न चारसौ वर्षोंसे आज पर्यन्त मेरे पगले निताईचाँदकी बाल्य-लीला स्थलीका समुज्वल परम पवित्र स्मृति चिह्न स्वरूप विराजमान है । किन्तु इस अपूर्व वृक्ष तलको ईंटोंके आवृतसे बाँधनेका सौभाग्य आज तक किसीको प्राप्त नहीं हुआ—यह सोचकर मनमें बड़ा दुःख हुआ । राढ़देशकी उसी कंकरपूर्ण लालवर्णकी मृत्तिकासे इस सिद्ध वकुलका तला अति सुन्दर भाव से बाँधा हुआ था और उसके साथ इसी रूपकी दो एक मृण्मय वेदियाँ भी निर्मित

थीं। इससे प्राचीन लीला स्थलीके प्राचीनत्वकी रक्षा हो रही थी। प्राचीनत्व ही वैष्णव तीर्थका गौरव है। जहाँ इस प्राचीनत्वकी रक्षा हो रही है, उसी स्थानपर वैष्णव तीर्थके वास्तविक गौरवकी रक्षा हुई है—यह सोचकर मनमें बड़ा सुख हुआ।

दो-तीन साधु महात्मागण इस पवित्र आश्रमके रक्षाकर्त्ता हैं, इनमेंसे एक पुराने वैष्णव इस आश्रममें स्थित श्रीश्रीराधाकृष्ण श्रीविग्रहके सेवक हैं। मृत्तिका निर्मित एक परिष्कार और क्षुद्र कुटीरके भीतर श्रीविग्रह विराजित हैं। ये श्रीविग्रह भी प्राचीन बताये जाते हैं। हमलोगोंने परम आनन्द पूर्वक श्रीविग्रहके दर्शन करके परम भक्ति-भावसे प्रणाम किया।

वृद्ध वैष्णव बाबाजी महाशयके साथ इन सिद्धवकुल वृक्ष रूपी प्राचीन महाजनके सम्बन्धमें हमने चर्चा आरम्भ की। उन्होंने बताया कि इसी सिद्धवकुल वृक्षके तले श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने बाल सहचरोंके साथ कृष्णलीला अभिनय किया करते थे। गौराग्रज श्रीनिताईचाँदकी ये सब बाल्य-लीला-कथा अति सुन्दर भाषामें श्रीचैतन्य भागवतमें वर्णित है। इस स्थानके प्राचीन वैष्णवोंसे यह किम्वदन्ति बहुत दिनोंसे सुनी जाती है कि एक दिन श्रीनिताई जननी पद्मावती देवीने अपने प्राणापेक्षा प्रियतम पुत्र रत्नको नाना स्थानोंमें अन्वेषण करनेपर भी न पाकर इस वकुल वृक्षके नीचे आकर देखा कि वे अपने बाल सहचरगणके साथ यहाँ बाल्य-क्रीड़ा-रङ्गमें उन्मत्त हैं। मध्यान्ह भोजनका समय हो जानेपर भी, भूख प्यास भूलकर निताईचाँद उस स्थानपर बालकोंके साथ कृष्णलीला अभिनय कर रहे हैं। तब माता पद्मावती देवीने कहा—"वत्स मेरे! क्षुधा तृष्णासे तुम्हारा मुँह सूख गया है, चलो बेटे, घर चलो, भोजनका समय हो गया है।" तब निताईचाँदने हँसते-हँसते अपनी स्नेहमयी जननीकी इस बातका उत्तर देते हुए कहा—"मां! कृष्णलीलाका एक अभिनय बाकी रह गया है—कालीय दमन लीला—उसको सम्पूर्ण करके मैं आता हूँ।" मां पद्मावतीदेवीने फिर कहा—"बेटा! सर्पके बिना कृष्णकी कालीय दमन-लीलाका अभिनय किस प्रकार करोगे।" निताईचाँदने हँसते हुए फिर उत्तर दिया—"मां! इस वकुल वृक्षकी शाखा पत्र तोड़कर उन्हें सर्पाकार बनाऊँगा और उसीसे हमलोगोंका अभिनय कार्य सम्पन्न होगा।" इतना कहकर मेरे कुलके ठाकुर श्रीनिताईचाँदने इस सिद्धवकुल वृक्षकी एक शाखा अपने हाथसे तोड़कर उसे सर्पाकार बनाया और निकटस्थ सरोवरमें उसको रखकर उसके ऊपर जलके बीचमें त्रिभङ्गी भावसे खड़े हो गये। उनके सङ्गी बालकगण सरोवरके तीरपर नागवधूगणकी तरह खड़े होकर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। यह अपूर्व लीलारङ्ग समाप्त करके निताईचाँद बालसखाओंको साथ लेकर जननीके सहित अपने घर गये।

इस अद्भुत प्राचीन वृक्षकी शाखा प्रशाखा अनेक प्रकारसे विस्तृत हैं और एक तरफ निम्नगामी है। अभी भी एक-दो बड़ी शाखायें सर्पाकृतिसे इस प्राचीन वृक्षमें

विराजमान हैं। इसको हमलोगोंने अपनी आँखोंसे देखकर उन्हें सार्थक किया है। वृद्ध महात्माजीने अपने आश्रममें इस वृक्षकी यत्नपूर्वक रक्षित, चन्दनसे भूषित सर्पाकारकी दो-एक छोटी शाखाएँ हमलोगोंको दिखाईं और बोले—"वृक्षकी ये सब शुष्क शाखाएँ हैं, जो अपने आप टूटकर गिरी थीं और हमको इसी रूपमें मिली थीं।"

श्रीचैतन्य भागवतमें वर्णन मिलता है कि श्रीनिताईचाँदकी बाल्य-लीलाके खेल सभी भागवत सम्बन्ध सूचक थे और विशेषत: श्रीकृष्ण विषयक थे।

इस सिद्ध वकुल वृक्षके द्वारा यह पवित्र आश्रम सुशीतल बना रहता है। इस प्राचीन महान आत्मा स्वरूप सिद्ध वकुल वृक्षको प्रेमके आवेगमें प्रेमालिङ्गन करके हमलोगोंने अपने तप्त हृदयको शीतल किया और हा निताई बोलकर प्रेमावेशमें शुष्क नयनोंको द्रवित किया। हमारे साथी गौरभक्तवर महेन्द्रलाल एक वृक्ष शाखाका आलिङ्गन करके बहुत देर तक रोते रहे, उनकी अवस्था देखकर मुझे द्वेष हुआ।

यहाँसे निकट ही पञ्च पाण्डव जिस विप्र-गृहमें ठहरे थे, वह स्थान था। हमारे साथी उस प्राचीन स्थानके दर्शन करनेको जानेके लिये व्यग्र थे। किन्तु श्रीनिताईचाँदकी इस बाल्य-लीला-स्थलीके मधुर दृश्यको छोड़कर और कहीं जानेको मेरा मन नहीं करता था। सङ्गीगण भक्तवर महेन्द्रलालके साथ उस प्राचीन स्थानके दर्शन करने चले गये और मैं इस सिद्ध वकुल वृक्षकी मूलमें माला लेकर एकान्तमें जप करने बैठ गया और 'नित्यानन्द' मन्त्रका जप करने लगा। श्रीनित्यानन्द जन्मस्थलीमें बैठकर और किस मन्त्रका जप करता? नामनामी अभेद होते है। बोलते हुए सब अङ्ग सिहर उठते हैं, हाथ काँपने लगते हैं—मेरे परम दयालु श्रीनिताईचाँद अपनी नित्य लीला स्थलीमें मेरे जैसे जीवाधमको नाम रूपसे साक्षात्कार हुए, एक क्षणमें तड़ित प्रभाकी तरह अपूर्व प्राणाराम श्रीनित्यानन्द मूर्ति मेरे ध्यानमग्न मुदित नयनोंके सन्मुखसे अपूर्व नृत्य करती हुई चटसे निकल गयी। मेरे हाथकी जप माला हाथमें रही, किन्तु जप और नहीं हो सका, निष्पन्द भावसे जड़वत मैं उसी सिद्ध वकुल वृक्षमूलमें बैठा रहा, किसी प्रकारकी वाह्यानुभूति नहीं रही, इसी समय भक्तवर महेन्द्रलाल मेरी स्त्री व कन्या और अन्य साथियोंके साथ वहाँ आकर मुझे उस अवस्थामें देखकर बिना कुछ बोले निकट ही खड़े रहे। मुझे इसका कुछ पता नहीं। उन्होंने जो बताया वह लिख दिया। इसके बाद उन्होंने प्रकृतिस्थ किया, मुझे वाह्यज्ञान होते ही और कुछ दिखाई नहीं दिया। निताई-विरहसे मेरे प्राण आकुल-व्याकुल होने लगे। ये सब बतानेसे कोई विश्वास नहीं करेगा, यह मैं जानता हूँ तो भी अपने मनका भाव छिपा नहीं सका। यह मेरा दोष है या गुण, यह मैं नहीं जानता, इसीसे निष्कपट भावसे सब कुल बोल-लिख देता हूँ। जिनकी विश्वास करनेकी प्रवृत्ति हो वे करें, न हो वे न करें, इसमें मेरा हानि-लाभ कुछ नहीं।

इसके बाद हमलोग जिस स्थानपर श्रीनिताईचाँद अन्तर्धान हुए थे उस स्थानके लिये चले। सब रास्ते भर प्रेमके आवेगमें भरा हुआ ग्रहग्रस्तकी तरह चल रहा था, श्रीनिताईचाँदके उसी अपरूप रूपकी बात स्मरण हो रही थी, मुँहका भाव गद्‌गद् हो रहा था, नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। सभीकी यह दशा हो रही थी, इसी प्रकार एकके भावसे दूसरा सञ्चारित हो रहा था। हमारे दलके सभी आत्मविस्मृतसे हो रहे थे, विशेषकरके हमारे महेन्द्रलाल। भक्तवर महेन्द्रलालके सङ्गगुणसे मुझे जो लाभ हुआ उसके भागी हुए सभी लोग।

सिद्ध स्थानमें बैठकर भजन करनेके आदर्शका सच्चा मार्ग प्राचीन महाजन गण दिखा गये हैं। यहाँ बैठकर एक घंटाके जपमें जो हुआ वैसा मेरे जीवनमें कभी नहीं हुआ। निर्जन भजनका अधिकारी होकर, निर्जन वासका भाग्य प्राप्त करना कोटि लोगोंमेंसे किसी एक निष्किञ्चन भक्तके भाग्यमें होता है। मेरे जैसे विषयके कीटके लिये ऐसा भाग्य असम्भव है। कारण मेरे साथ ५-६ मन श्रीग्रन्थ होंगे ही, उनके लिये ग्रन्थागार होना जरूरी है, टेबुल कुरसी हुए बिना मेरा लिखना पढ़ना नहीं हो सकता। अतः मेरे कुलके ठाकुर निताईचाँदने इस जन्ममें मेरे लिये एकान्तवास नहीं लिखा।

(प्रभुपाद श्रीहरिदासजीकी स्थिति देखकर उनकी कन्या सुशीलादेवीने वहाँ एक कविताकी रचनाकी थी जो नीचे उद्धृतकी जा रही है)

ओइ कि ओइ कि ? देखि देखि देखि
चपला चमकि चलिल फिरे ?
जाम्बुनदे कि चाँद माखामाखि
आर एक बार देखाओ फिरे॥
(जेन) स्वर्ण कमले बिजलि उजले
गले गले बाहु, नाचिया एलो,
युगल चाँदेर पाद पद्मेर
परागे नयन भरिया गेल॥
देखिते देखिते लुकाल चकिते
निमेष फेलिते आर ना कि देखि।
अपरूप पुन करुणा निपुण
चाँद निता'येर रङ्ग ए कि ?

अन्तर्धान-लीलास्थली

इसके बाद हमलोग श्रीनित्यानन्द प्रभुकी अन्तर्धान-लीलास्थलीका दर्शन करने पहुँचे। निताईचाँदके अन्तर्धानकी बात मनमें आते ही ऐसा लगा मानो हृदय फटकर

सौ टुकड़े हो गये, मनके टुकड़े-टुकड़े हो गये, प्राण अगाध विषाद सागरमें मग्न हो गया। बहुत कष्टसे आत्म संवरण किया। रास्ते भर मौन भावका अवलम्बन किये रहा। साथियोंको मनका भाव नहीं ज्ञात होने दिया। लेकिन भक्तवर महेन्द्रलालने मेरे मुखके विषादपूर्ण भावको देखकर जिज्ञासा की—"प्रभु! रौद्रके तापसे और पथश्रान्तिसे आपको बहुत कष्ट हो रहा है, चलिये घर लौट चलें।" मैंने कहा—"नहीं।"

श्रीनिताईचाँदकी अन्तर्धान-लीला-स्थलीके चिह्न स्वरूप मैदानके बीच एक छोटी-सी पुष्करिणीके मध्य स्थलमें एक छोटा-सा देवी मन्दिर प्रतिष्ठित है। उस पुष्करिणीका एक घाट पक्का बँधा हुआ है। उसके निकट एक छोटा-सा मन्दिर है। श्रीपाट एकचक्रा ग्रामवासीके मुँहसे किम्वदन्ति सुनी कि इसी स्थानपर श्रीनित्यानन्दप्रभु गार्हस्थ्य लीलाके समय राढ़की उर्वरा भूमिखण्डमें १२ बीघा जमीनमें खेती किया करते थे। राढ़देशके निवास कालमें देशवासी विप्रगणकी तरह कुछ काल तक कृषक रूपमें उन्होंने लीला की थी। एक दिन निताईचाँदने निश्चय किया कि १२ बीघा धानके खेतकी सफाई वे अकेले ही करेंगे। किसकी शक्ति थी जो इच्छामय श्रीनित्यानन्द प्रभुकी इच्छाशक्तिके कार्यमें बाधा डाले। उन्होंने अपनी गृहिणी जाह्नवा देवीको कहा—"खेत जा रहा हूँ, कुछ प्रसाद दो, जिससे भोजन करके काम पर जाऊँ।" लेकिन उस समय घरमें कुछ भी प्रसाद नहीं था, अतः श्रीनित्यानन्द घरणी अपने प्राणवल्लभके इस सेवा-सुखसे वञ्चित रही। इधर अक्रोध-परमानन्द श्रीनिताईचाँद प्रसाद न पानेसे क्रोधमें भरकर किसीसे कुछ कहे बिना, अकेले ही खेतपर चले गये। संसार लीला रङ्गमें इस प्रकारका अभिनय अति मधुर होता है। स्वामी बिना भोजन किये चले गये, पत्नी अत्यन्त खिन्न एवं चिन्तित हुई। शीघ्रतासे बंकिमचन्द्रके लिये भोग रन्धन करके दोपहरके पहिले ही ठाकुरको भोग लगाकर, मां जाह्नवाने खेतसे अपने प्राणवल्लभको घर बुला भेजा। किम्वदन्तिमें कहा गया है कि श्रीनिताईचाँदके भाई उनको घर बुला लानेके लिये गये। अक्रोध परमानन्द मेरे पगले निताईचाँदका क्रोध उस समय तक भी शान्त नहीं हुआ, वे तब भी घर नहीं गये और कुछ क्रोधाभासके साथ बोले—"मैं और घर नहीं जाऊँगा' यहीं बैठता हूँ और उठूँगा ही नहीं।" यह कहते-कहते वे भूगर्भमें प्रवेश करने लगे, वहाँ जितने उपस्थित लोग थे वे सब मिलकर भी श्रीअनन्त रूपी निताईचाँदको पकड़कर रख नहीं सके। वहाँ हाहाकारकी उच्च चीत्कार ध्वनि बोल उठी, बहुत लोगोंका संघट जमा हो गया। देखते-देखते श्रीनित्यानन्द प्रभु अवलीलाक्रमसे भूगर्भके बीच अन्तर्धान हो गये। श्रीअनन्तदेवकी अनन्तलीला इस पुण्य क्षेत्रमें इस प्रकार सम्पन्न हुई। किम्वदन्ति है कि वे इसी भूगर्भके बीचसे अपने इष्ट श्रीबंकिमचन्द्रके श्रीमन्दिरमें उठकर श्रीविग्रहमें लीन हो गये। इसीलिये इस अन्तर्धान लीला स्थलीसे लेकर श्रीबंकिमचन्द्रके मन्दिर पर्यन्त एक सुरंग है। किसी-किसीका कहना है कि श्रीनिताईचाँद श्रीपाट खड़दहमें श्रीश्यामसुन्दरके

श्रीविग्रहमें लीन हुए थे। ठीक ठीक वैष्णव इतिहासके अभावमें इस कथाकी यथार्थताका निर्द्धारण असम्भव है।

इस पुण्य स्थानका दर्शन करके सभी लोग शोकसे अभिभूत हुए उदास हो रहे थे, सभीके नेत्रोंमें अश्रुविन्दु देखे गये, लेकिन मेरे दग्ध चक्षुओंमें अश्रु नहीं आये, मेरा मौन स्तम्भित भाव ही रहा।

तीसरे पहरके समय परिश्रान्त होकर श्रीबंकिमचन्द्रके श्रीमन्दिरमें लौटते समय कदम्बखण्डीके श्रीगौरनिताई श्रीविग्रहके पुनः दर्शन करके हमलोग कृतार्थ हुए।

उस दिन हमलोगोंने श्रीबंकिमचन्द्रके मन्दिरमें प्रसाद पाया। श्रीनिताईचाँदकी जन्म-लीला-स्थलीमें बैठकर दो ब्राह्मण कुमारोंकी मन्त्र दीक्षा हुई, एकका नाम था श्रीनिशानाथ गोस्वामी और दूसरेका श्रीअधरनाथ मुखोपाध्याय। उनके सौभाग्यकी सीमा नहीं।

रामपुर हाट होकर हमलोग दूसरे दिन श्रीधाम नवद्वीप लौट आये। मेरे कुलके ठाकुर निताईचाँदकी जन्म-लीला-स्थलीके दर्शनका दिन मेरे जीवनका एक बड़ा शुभ दिन है। इस शुभ दिनकी स्मृति रक्षार्थ यह प्रबन्ध लिपिबद्ध किया गया। 'जय निताई जय निताई'।

(एकचक्रा भ्रमणके बाद श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीने वहीं एक कविता लिखी थी जो नीचे उद्धृत की जा रही है)

नमो नमो ग्राम एकचक्रा नाम
नमो निताइएर जन्म भूमि।
नमो धाम-धूलि शिरे लइ तुलि
अभाजने कृपा करिले तुमि॥
नमो भक्तिमय शक्ति निलय
साधिले हेथाय निमेष चारि।
कोटि जन्मेर साध्य-घनेर
सिद्धिरतन पाइते पारि॥
जय जय राढ़ एक मुखे आर
महिमा तोमार कहिब कि हे!
अगणन जत गौर भकत
उदित तोमार पल्ली गृहे॥
तोमार कठिन माटिर कि ऋण
आजो जाते बांधा निताइ गोरा।
आजो ए माटिते हांटिते हांटिते
भाव अनुभवे हइनु मोरा॥

श्रीवंशीदास बाबाजीसे इष्ट-गोष्ठी

•

[प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी द्वारा लिखित]

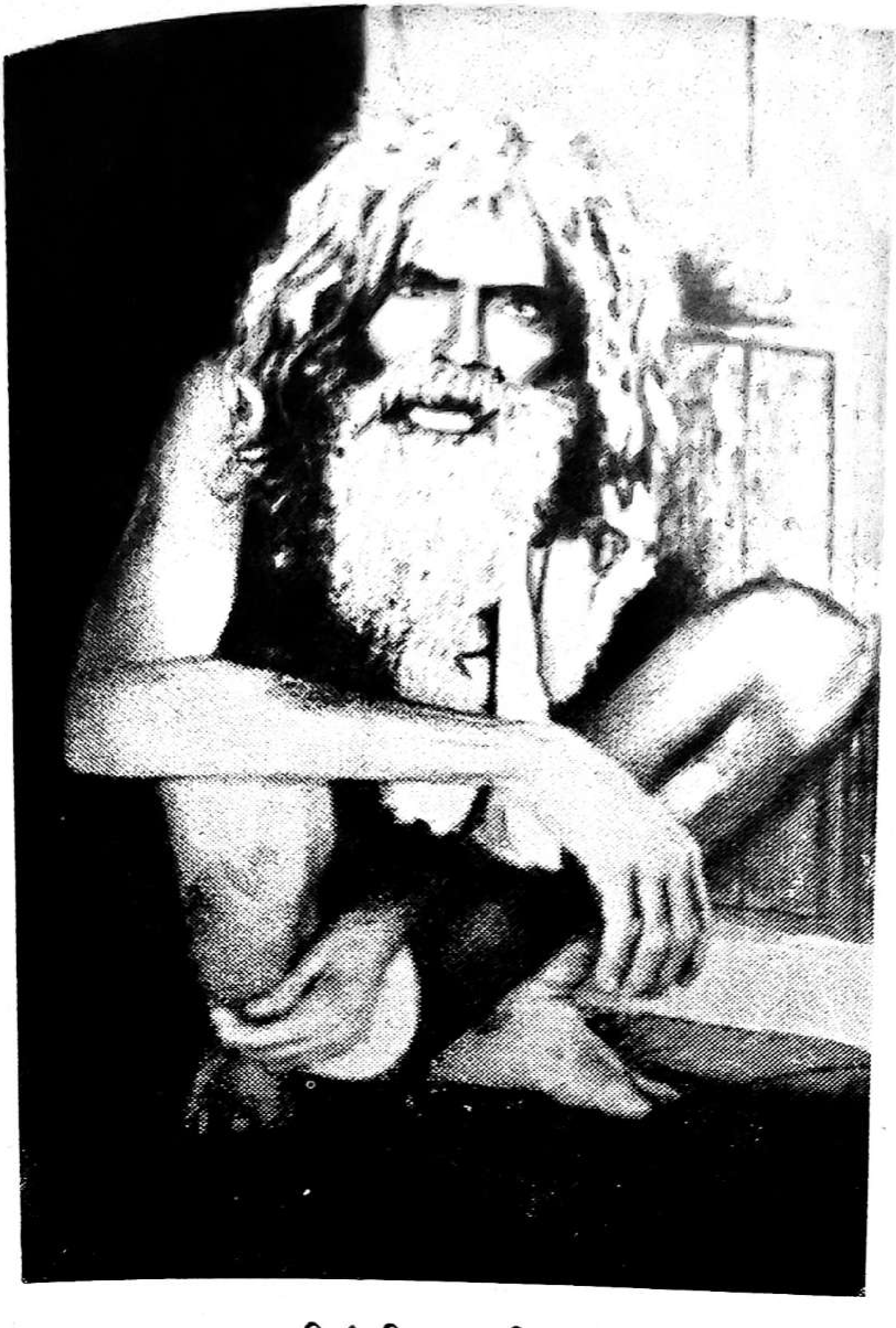
संक्षिप्त परिचय

श्रीधाम नवद्वीपमें एकमात्र श्रीवैष्णव सिद्ध पुरुष वंशीदास बाबाजी ही प्रकटरूपमें श्रीधामकी शोभा वृद्धि कर रहे थे । वे वहाँ अनुमानतः गौराब्द ४२० के लगभग से थे । श्रीधामके निवासी सभी लोग उनके प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रखते थे । आगन्तुक गौर-भक्त उनका दर्शन करके अपना जीवन सार्थक किया करते थे ।

वंशीदास बाबाजीकी जीर्ण भजन-कुटी गङ्गाके गर्भमें बड़ाल घाटके सन्निकट उन्मुक्त भूखण्डके ऊपर थी जहाँ वे अपने प्राणधन-जीवनसर्वस्व गौर-गदाधर श्रीनिताईचाँदके विग्रहको लेकर उनकी सेवाके आनन्दमें सर्वदा मग्न रहते । उस कुटीरमें इन तीन दारु मूर्ति श्रीविग्रहके अतिरिक्त एक गोपालकी धातुमूर्ति तथा श्रीश्रीराधा-कृष्णकी मूर्ति भी थी । इतनी मूर्तियोंका छोटा-बड़ा सब प्रकारका सेवाकार्य वे दिन-रात विधिपूर्वक स्वयं अपने हाथों करते रहते थे । अकिञ्चन वैष्णवके लिये यह श्रीविग्रह-सेवा कितना कष्ट-साध्य है, इसे सेवा-निष्ठ भक्तजन सहज ही समझ सकते हैं । उनके इस कार्यमें कोई शिष्य सहायक नहीं था, क्योंकि अब तक उन्होंने किसीको शिष्य ही नहीं बनाया था । वे किसीसे भी किसी कार्यके लिये नहीं कहते थे । वे वृद्ध हो गये थे, सूखे काठके समान उनका शरीर था, एक जीर्ण कोपीन धारण किया करते थे और शरीरपर सौ पैवन्द लगा एक कंथा रहता था । उनकी भजन-कुटीरमें श्रीविग्रह-सेवाकी सामग्रीके रूपमें कतिपय मिट्टीकी हाड़ी, घड़ा, पाकके लिये दो-एक पीतलकी छोटी पतीली, एक थाली, तथा दो-एक छोटी कटोरी आदि थीं ।

जीर्ण कुटीर

मैं २३ पौष रविवार बङ्गाब्द १३३४ सालके दिन गौर-भक्त श्रीमान महेन्द्रलाल वसुके साथ प्रातःकाल गङ्गाके किनारे भ्रमण करता हुआ उनकी भजन-कुटीके द्वारपर



बाबा श्रीवंशीदासजी महाराज

गया । उनका दर्शन करके प्रणाम किया और कुछ देर तक खड़ा होकर उनके श्रीविग्रहकी सेवा देखने लगा। उस समय वे ठाकुरकी सेवाके वासन माँज रहे थे, इसलिये अपनी शुभ दृष्टिसे हमलोगोंको केवल मात्र देखा ही, कोई बात नहीं की ।

उनकी भजन-कुटीका छप्पर भग्नावस्थामें था । छप्परमें खड़ नहीं थी, केवल जीर्ण बाँसकी धरनके ऊपर पेटारीकी छान अति जीर्णावस्थामें झूल रही थी । उसीपर कई जरा-जीर्ण कन्था झूल रहे थे । छप्परके नीचे एक अपरिष्कृत तुलसी कानन और पासमें एक छोटा कटहलका पौधा था तथा उसके पास एक छोटा इमलीका पेड़ था । उसके नीचे एक छोटा अमरूदका वृक्ष था ।

श्रीमहेन्द्रलाल मेरे अनुगत तथा अति सज्जन और सरल गृहस्थ वैष्णव हैं । वंशीदास बाबाकी इस कुटियाकी जमीन तथा उससे सटी हुई चार कट्ठा जमीन महेन्द्रलालने ही खरीद दी है । उस समय बाबाजी महाराजके प्राणकृष्ण ब्रह्मचारी नामके एक भक्त थे, उन्हींके हाथमें रुपया सौंपा जाता था । उन्होंने यह जमीन अपने नामपर खरीदी थी । अब वे इस संसार में नहीं हैं । कानूनसे उनका नाबालिग पुत्र इस भजन-स्थलीका उत्तराधिकारी होता है । रानी रासमणि इस जमीनकी जमींदार हैं । बाबाजी इन बातोंपर ध्यान नहीं देते, देनेकी आवश्यकता भी नहीं है । परन्तु एक दिन यह बात मेरे सुननेमें आई, इसीसे श्रीमहेन्द्रलालको लेकर यह स्थान देखनेके लिये मैं आया था ।

इस भजन-स्थलीकी रजिष्ट्रीकी दस्तावेज जो प्राणकृष्णके पास थी, चोरी हो गयी और हरेकृष्ण नामके किसी दुष्ट व्यक्तिके हाथ लग गई । वह उसे देना नहीं चाहता था । फलतः खजाना (जमीनका कर) चुकाया नहीं गया । शिशु बाला नामकी एक स्त्री कह रही थी कि उन्होंने खजाना चुकाकर जमींदारसे रसीद ले ली है । जमींदारके गुमास्तेसे परामर्श करके इस जमीनके पुनरुद्धारकी चेष्टा हो रही थी । इसमें बड़ी गोलमाल थी । मैं विषयी जीव हूँ । विषयको लेकर ही मेरा सब काम-काज होता है । इसीलिये श्रीप्रभुने मुझे इन निष्किञ्चन वैष्णवकी भजन-स्थलीकी रक्षा करनेका आदेश दिया है, इसीसे इसका सब हाल वर्णन करना पड़ा । सिद्ध वैष्णवकी यह भजन-स्थली गौड़ीय वैष्णवोंकी विशिष्ट सम्पत्ति है, इस स्थानके रज-कण भी परम पवित्र हैं । इसके संरक्षणका भार स्वयं श्रीगौर सुन्दरने अपने भक्तगणोंके ऊपर छोड़ा है । यह पैतृक सम्पत्ति या कन्याकी सम्पत्तिसे भी बड़ी चीज है ।

वंशीदास बाबाजी किसीके साथ विशेष बातचीत नहीं करते । वे निर्जनमें बैठकर दिन-रात अपने जीवन-सर्वस्व-धन गौर-गदाधर और निताईचाँदसे बातें करते रहते हैं। रात-रात भर ईंटके आसनपर बैठकर श्रीगौराङ्गके साथ न जाने क्या-क्या रसकी बातें करते रहते हैं, परन्तु जन-समाजमें वे प्रायः मौन रहते हैं ।

पहले दिन मैंने उनसे कोई बात सुननेकी धृष्टता नहीं की । परन्तु अपने हृदयकी एक अभिलाषा मैंने श्रीमहेन्द्रलालजी द्वारा उनके श्रीचरणोंमें निवेदन कर दी ।

मैं चाहता था कि बाबाजीकी भजन-कुटीके बाहरकी छत मरम्मत करदी जाय। ईंटके खम्भे देकर ऊपरसे टीनका छाजन करके एक वरामदे जैसा बना देनेसे उनकी भजन-कुटीकी एक शोभा हो जायगी और सेवा-कार्यमें कुछ सुविधा होगी। मैंने उनको भजन-कुटीके भीतर बैठकर वासन माँजते देखा, यह कार्य बाहर हो सकता था। भजन-कुटीके सामने खुले स्थानमें बाबाजीके व्यवहृत छिन्न कन्थे आदि पड़े रहते हैं, वरामदेमें रहनेपर वे सुरक्षित रहेंगे यह सोचकर तथा गौर-भक्तगण वहाँ बैठकर दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकेंगे, इस विचारसे यह कार्य करा देनेकी प्रेरणा मेरे मनमें श्रीप्रभु और प्रियाजीके द्वारा हुई।

'कन्था-करङ्ग' वाले अकिञ्चन वैष्णव हमारे प्रभुके अत्यन्त प्रिय होते हैं। इसी कारण प्रभुके प्रियजनकी कुछ सेवा करनेकी वासना मनमें उदय हुई। मेरे भाग्यक्रमसे यह वासना पूर्ण होगी या नहीं, इसमें घोर संदेह था। इसके अनेक कारण थे। मैं विषयी नराधम हूँ। ये सर्वत्यागी निश्किचन विरक्त वैष्णव हैं। सुना था कि धनी मारवाड़ी लोग उनके लिये पक्का दालान और श्रीमन्दिर तैयार करना चाहते थे, परन्तु बाबाजीने अस्वीकार कर दिया। कोई कुछ देता है तो वह कुछ कहते नहीं, परन्तु सबकी दी हुई वस्तु ग्रहण नहीं करते। किसी एक व्यक्तिने ठाकुर सेवाके लिये कुछ गन्ने दिये थे। वे बाहर पड़े ४-५ दिनमें सूखकर नष्ट हो गये। उन्होंने उसको ठाकुर सेवाकार्यमें नहीं लिया।

मैंने डरते-डरते अपना प्रस्ताव श्रीमान् महेन्द्रलालके द्वारा उनके सामने रखवाया; परन्तु वह कुछ भी नहीं बोले। हम उनको प्रणाम करके चले आये। किसी साधु-सन्तके दर्शनोंको जाकर या उनके सेवाकार्यमें सहायताका अभिप्राय जनाकर ही चुप नहीं हो जाना चाहिये। साधु वैष्णवने बातें नहीं कीं, कुछ अपना अभिप्राय प्रकट नहीं किया, अतएव उनके पास जानेसे क्या होगा—यह विचार मनमें लेकर जो साधु-दर्शनके लिये जाते हैं, उनकी कार्य-सिद्धि नहीं होती है। साधु वैष्णवने बातें नहीं कीं तो क्या हुआ, उन्होंने शुभ दृष्टिपात तो किया—यही परम लाभ है, ऐसा सोचकर मनको प्रबोध देना चाहिये। साधु-वैष्णव यदि किसी प्रकारकी सहायता लेनेके लिये तैयार नहीं होते तो इससे क्या? उनका फिर दर्शन करूँगा, रो-रोकर अपने हृदयकी बातें उनके चरणोंमें निवेदन करूँगा, वह अवश्य दया करेंगे--यही भाव लेकर उस दिन हम घर लौटे।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं और महेन्द्रलाल गङ्गाके किनारे-किनारे भ्रमण करते हुए पुनः वंशीदास बाबाजीकी भजन कुटियामें गये तो देखा कि सेवाकार्यसे उनको कुछ अवसर मिला है। मैं प्रणाम करके खड़ा हो गया; महेन्द्रलालने पुनः मेरी अभिलाषा उनके चरणोंमें निवेदन की। उन्होंने प्रसन्न मनसे उत्तर दिया—"गौरकी इच्छा।" तब मुझको साहस हुआ। उसी दिन शरत मिस्त्रीको बुलाकर यह कार्यभार उसके जिम्मे किया।

दूसरे दिन फिर मैं अकेला अन्दाज १० बजे रात मजदूरोंका काम देखने वहाँ गया, उस समय राजमिस्त्री शरत मजदूर लेकर कामपर लगा हुआ था । बाबाजी महाराजने मुझे देखकर प्रफुल्ल मुखसे अपने मनके भाव व्यक्त किये कि किस प्रकार काम होना चाहिये—बरामदेके बीच तुलसी काननमें अन्य वृक्ष जो जहाँपर हैं, वैसे ही रहें, शिशु कटहल, इमली व अमरूदके वृक्ष भी रहें, किसीको कोई अङ्ग-हानि न हो । बरामदेके सम्मुख एक आता (सीताफल, शरीफा) का छोटा-सा पौधा है उसपर उन्होंने विशेष ध्यान रखनेको कहा । मैंने स्वयं वहाँ बहुत देर तक उपस्थित रहकर उनके आदेशानुसार कार्य हो, इसका प्रबन्ध मिस्त्री व मजदूरोंको समझाकर कर दिया ।

तीन दिनमें सब कार्य पूर्ण हो गया । इस कार्यसे बाबाजी महाशयने शुभेच्छा और संतोष प्रकट किया—यह मेरा परम सौभाग्य है ।

प्रारम्भिक इष्ट-गोष्ठी

इस (कुटियाकी मरम्मतके) कार्यके निमित्तको लेकर ३-४ दिन मेरे जैसे विषयी जीवाधामके साथ वंशीदास बाबाजी सरीखे, नीरव, निष्किञ्चन, विरक्त, सिद्ध-वैष्णवकी जो इष्ट-गोष्ठी हुई, उसका कुछ-कुछ प्रसाद गौर-भक्त-वृन्दको प्रेमोपहारके रूपमें देनेके लोभका सम्वरण नहीं कर पा रहा हूँ । यह मेरा दोष है या गुण, मैं नहीं जानता और न मैं समझता ही हूँ । उत्तम वस्तु स्वयं खाकर मुझे सुख नहीं होता, दूसरेको खिलानेसे सुख होता है, यही मैं जानता हूँ । इससे अधिक और कुछ जानना भी नहीं चाहता । यही तो मेरी सुख-सम्पत्ति है, उससे मैं वञ्चित न हो जाऊँ—यही श्रीगुरु गोसाईं और वैष्णव-चरणोंमें मेरी कातर प्रार्थना है ।

इष्ट-गोष्ठीके पहले दो दिनोंमें श्रीमहेन्द्रलाल मेरे साथ थे । एक दिन मेरे अनुगत गौर-भक्त षष्ठीधर लाहिड़ी भी साथ थे । बादके दो दिनोंमें मेरे साथ बाबाजी महाशयकी अकेले ही इष्ट-गोष्ठी हुई थी । सभी कहते हैं कि वंशीदास बाबाजी महाशय इस प्रकारकी इष्ट-गोष्ठी नहीं करते, मुझे पता नहीं, मेरे साथ तो उन्होंने निस्संकोच अनेक बातें की ।

वंशीदास बाबाजी ठाकुर नरोत्तमदासके परिवारके विरक्त वैष्णव हैं । पहले ही उन्होंने प्रश्न किया कि उनके श्रीगुरु घरानेके रेतिलाके गोस्वामीगणमें कोई श्रीधाममें इस समय हैं या नहीं । मैंने कहा कि मुझे ज्ञात नहीं, पता लगाकर बतलाऊँगा । इसके बाद उन्होंने एक पयार श्लोक पढ़कर सुनाया :—

"रूपेर वैराग्य काले, सनातन वन्दीशाले पश्चाते अगाध जल, दुइ पार्श्वे दावानल सम्मुखे दांड़ाये व्याध, मारिवार तरे ।"	"श्रीरूप गोस्वामीके वैराग्य कालमें श्रीसनातन गोस्वामी बन्दीगृहमें हैं । पीछे अगाध जल है, दोनों पार्श्वमें दावाग्नि लहरा रही है, और सामने व्याध मारनेके लिए शर-सन्धान किये खड़ा है ।"

यह पयार छन्द उच्चारण करते-करते बाबाजी महाराजकी दोनों आँखोंसे प्रेमाश्रुधारा बह चली । श्रीरूप गोस्वामीके वैराग्यकी बात उठाकर मानो अपने वैराग्यको तुच्छ सिद्ध करनेकी चेष्टा की । अधिक कुछ बोल न सके । प्रेम-गद्गद भावमें दो-एक बातें कहते-कहते चुप हो गये ।

भीषण वर्षाकालमें, भाद्रमासमें भरी गङ्गाकी धाराके जलमें जब उनकी यह भजन-कुटी अर्द्ध-मग्न हो जाती है, उस अवस्थामें भी वहाँ रहकर वे ठाकुर-सेवा किया करते । अपने जीवन-सर्वस्वधन गौर-गदाधरको कुछ हो न जाय इस भयके कारण वे उन्हें गोदीमें लेकर नाना विपदजनक जल-जन्तुओंसे भरे इस भीषण गङ्गा गर्भमें रहकर भजन किया करते । उस समयकी दुरवस्थाकी कुछ बातें उन्होंने सुनायीं, जिसे सुनकर हृदय सिहर उठा ।

मेरा वंश परिचय पाकर उन्होंने पूछा कि श्रीपाट दोगाछिया कितनी दूर है । तैर्थिक विप्रके साथ बालगौराङ्गकी लीला-कथा सुनकर परमानन्दसे गौर लीलारसार्णवमें नितान्त निमग्न हो गये । मुँहमें कोई शब्द नहीं—एकटक मेरे मुखकी ओर देखते हुए बालगोपाल उपासक तैर्थिक विप्रके सौभाग्यकी कथा सुनने लगे । चुपचाप कुछ सोचकर सहास्य वदन मेरे मुखकी ओर एक बार कृपा-कटाक्ष-पात करके वे कहने लगे—

"जे वैष्णव दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम ।
निश्चय जानिया सेइ वैष्णव प्रधान ॥"

इतना कहकर उन्होंने एक गाना गाया—

"ओ चाँद गौर हे ! दीनानाथ दीनवन्धु डाकि हे !
आमार ठेकाइले मायाजाले गौर हे
आमार दाओ देखा काङ्गाल जेने गौर हे !
गौर-प्रेमे जे डुबे छे हे ।
ओ तार कुल मानेर भय कि आछे ?
रसेर गौर हे ! आमार ठेकाइले मायाजाले हे ।"

हे गौर चन्द्र ! हे दीन-नाथ, हे दीनबन्धु ! मैं तुझे पुकार रहा हूँ । हे गौरप्रभु ! तुमने मुझे मायाजालमें डाल दिया है । हे गौर ! कङ्गाल जानकर मुझे दर्शन दे जाओ । जो गौर-प्रेममें डूब रहा है, उसको कुल और मान-सम्मानका क्या भय है ? हे रसरूप गौराङ्ग ! तुमने मुझे मायाजालमें डाल दिया है ।

गाना समाप्त होनेपर करुण रुदनके स्वरमें प्रेम गद्गद् कण्ठसे मुझसे बोले—"इस वृद्धावस्थामें भिक्षाके सिवा और कोई सम्बल नहीं है, शरीरमें सामर्थ्य नहीं है, अब क्या मेरे द्वारा अच्छी-अच्छी पूजा सामग्रीसे ठाकुरकी सेवा सम्भव है ? उन

(गौर-गदाधर) को इतनी भी समझ नहीं। मैं कहता हूँ, तुम लोगोंको सनातन गोसाईंका अलौना (बिना नमकका) अन्न-भोग अच्छा लगता था और मेरा भिक्षा-लब्ध चनेका शाकान्न और इमलीके पत्तेका अम्ल रस क्यों नहीं अच्छा लगता ? इससे अधिक मैं नहीं दे सकूँगा। मैं और कुछ नहीं कर सकता, तुम लोग जो कर सकते हो, करो।" इतना कहकर बाबाजी फिर रोने लगे । उनकी इस दुःखपूर्ण सेवाकी बात सुनकर अत्यन्त धीरे-धीरे मैंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"बाबाजी ! यदि कोई आपकी इस ठाकुर-सेवामें सहायता करे, यदि आपको इसके लिये भिक्षा करने बाहर न जाना पड़े, तो क्या आपकी साध पूर्ण होगी ?" बाबाजी धीर-गम्भीर स्वरमें बोले—"प्रेम-सेवा, मन, वचन कार्यसे स्वयं करनी पड़ती है, स्थूल भिक्षा वैरागीके लिये निषिद्ध है, विषयीका अर्थ या अन्न विष-तुल्य है, ये वस्तुएँ वैरागीकी प्रेम-सेवामें विघ्न हैं, इनमें कोई भी ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, अब मेरे कितने दिन हैं, इसीप्रकार कट जायेंगे—यही गौरकी इच्छा है, मैं क्या कर सकता हूँ ।" इसपर मुझे कुछ और कहनेका साहस नहीं हुआ ।

वंशीदास बाबाजी महाशयके बाल-दाढ़ी हैं । महेन्द्रलालने मुझे बताया कि पूर्वकालमें एक बार उन्होंने क्षौरकार्य करवानेकी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु आदेश हुआ था कि यदि मधुनामका कोई क्षौर-कार्यकर्ता हो तो उसीसे यह कार्य करवाऊँगा, नहीं तो नहीं। इसका मर्म यह है कि श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास कालके समय कटवामें मधु नाईने उनका केश मुण्डन किया था। वे भी उसी भावसे मस्तक मुण्डन करायेंगे। मैंने डरते-डरते यह बात बाबाजीके पास फिर उठाई, तब वे हँसते-हँसते सनातन गोस्वामीके भद्र होनेकी लीला-कथा कहने लगे—महाप्रभुजीकी सनातनजी की मोट-कम्बलपर पड़ी तीक्ष्ण दृष्टिकी रहस्य-कथाका उद्‌घाटन करके प्रेमानन्दमें कुछ देर गौर-कथा कहते रहे, किन्तु अपने भद्र होनेकी कोई इच्छा प्रकट नहीं की। मैं भी और कुछ नहीं बोला ।

दूसरे दिन राज मजदूरोंका काम देखने जब मैं गया तो उस समय छोटे-से इमलीके वृक्षपर लताकी तरह लिपटे हुए एक क्षुद्र अमरूदके पेड़की डालमें दो पके हुए अमरूदके फल देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । इस प्रकारके छोटे से पेड़में इस प्रकारका फल लगना असम्भव सा है । सिद्ध वैष्णवके आश्रमके श्रीविग्रहकी सेवाके लिये यह क्षुद्र वृक्ष रूपी कोई महापुरुष पके हुए फल हाथमें लिये खड़े हैं—ऐसा बोध हुआ।

उस दिन बाबाजी महाराजका भाव बड़ाही सुन्दर, बड़ाही मधुर दीख पड़ा। मैंने सदैन्य वचनोंसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"मैं विषयी, राजसेवी, गृही हूँ। आप मेरे प्रति इतनी कृपादृष्टि रखते हैं, मैं इसके लिये सम्पूर्ण अयोग्य हूँ । वंशका कुलाङ्गार हूँ, अंग्रेजी लिख-पढ़कर पण्डित हो गया हूँ, शास्त्रका मुझे कोई ज्ञान नहीं है,

मैं मूर्ख हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करें।" बाबाजी महाराजने प्रत्युत्तरमें एक हँसीकी कथा सुनाई जो इस प्रकार है—

"निमाई भी पण्डित थे, किन्तु काजीके पुत्र यवन हरिदासके साथ उनका बड़ा भाव था। वे उनकी भजन-कुटीमें आया-जाया करते। इस बातको लेकर नदियाके ब्राह्मण पण्डितगणोंने एक दिन जगन्नाथ मिश्रको बुलाकर क्रुद्ध होकर कहा—'ए मिश्र पुरन्दर ! तुम्हारा बेटा निमाई काजीके पूत हरिदासके घर आता-जाता है, उसके साथ एकत्र उठता-बैठता है, यह कार्य पण्डितके लड़केके लिये नितान्त अनुचित है। तुमको बता दिया है, तुम अपने बेटे निमाईपर कड़ाई करो।' जगन्नाथ मिश्र शान्त, शिष्ट, भीत एवं निर्विवादी दरिद्र ब्राह्मण पण्डित थे। उन्होंने बहुत डरकर अपने प्राण सर्वस्व पुत्र-रत्नको एक दिन यह बात बताई। निमाईने उत्तर दिया—'पिताजी ! उनसे पूछकर मुझे बताइये कि क्या करनेसे उन्हें सन्तोष होगा, हरिदासका सङ्ग तो मैं छोड़ नहीं सकता और उनको भी असन्तुष्ट नहीं रखना चाहता।' मिश्र पुरन्दरने तब नदियाके पण्डितोंको यह बात बताई। उन्होंने व्यवस्था दी कि हमारी समस्त पण्डित मण्डलीको इच्छा मुताबिक भोजन देना होगा और एक पतीली भरकर स्वर्णदान करना होगा। मिश्र पुरन्दरने आकर यह बात निमाईको बताई। निमाईने हरिदाससे परामर्श करके नदियाके ब्राह्मण पण्डित वैष्णवोंको कुछ ऐश्वर्य दिखानेकी व्यवस्था की। ब्राह्मण पण्डितोंके लिये एक विराट भोजन स्थलीका निर्माण हुआ, उसके बीच अनेक प्रकोष्ट बनाये गये जिनमें भरपूर नाना प्रकारके भोजन-द्रव्य, फल-फूल, दूध-दही, घी-शक्कर प्रभृति सामग्री रखी गयी। ब्राह्मण पण्डितोंको अपने हाथोंसे पाक तैयार करना था। वे सब भोजन स्थलीमें आकर द्रव्य संभार देखकर बड़े आनन्दित हुए। एक पतीली भरी स्वर्ण दक्षिणा देखकर बड़े आनन्दके साथ पाकशालामें पाक-आरम्भ करने गये, लेकिन अग्नि नहीं जला सके, बहुत चेष्टा करनेपर भी चूल्हा नहीं सुलगा सके। निमाईने हरिदासको अलगसे बता दिया था कि इस ब्राह्मण मण्डलीके भोजन व्यापारको देखनेको मैं और तुम दोनों रहेंगे। मैं पीछे पहुँचूंगा, तुम आगे जाकर दूर बैठे रहना। ब्रह्म हरिदासको उन्होंने यह भी बताया कि आज ब्राह्मणोंसे अग्निका हरण कर लिया जाय। इधर ब्राह्मण पण्डितगण किसी प्रकार भी चूल्हा न जला सकनेपर निरुपाय होकर हरिदासके निकट आकर विनीत भावसे कहने लगे कि तुम अग्नि सुलगा दो। हरिदासने तुरन्त जाकर चूल्हेंमें अग्नि प्रदान किया तब ब्राह्मण पण्डितोंने वहाँ पाकादि सम्पन्न करके भोजन किया और स्वर्णपूर्ण पतीली हाथमें लेकर घर गये। तबसे ब्राह्मण पण्डितोंकी हरिदासपर श्रद्धा बढ़ गयी। तबसे हरिदासकी थाली और बधना परम पवित्र माना जाकर महोत्सवमें व्यवहृत होता है। इनका वैष्णवी नाम पड़ा 'रामथाली व रामकोड़ा।' लाल वर्ण मृतिका पात्र यह रामथाली एवं रामकोड़ा आज पर्यन्त महोत्सवमें काम आता है।"

बाबाजी महाशयके श्रीमुखसे यह रामथाली व रामकोड़ाकी कथा एवं एक पतीली स्वर्णदानकी बात सुनकर मैं मन ही मन खूब हँसा। मेरी तो दुष्ट-बुद्धि है। मैंने बाबाजीसे जिज्ञासाकी कि ग्रन्थोंमें तो यह देखनेमें आया है कि निमाई अपनी दुःखिनी मातृदेवी शचीमांको कभी-कभी स्वर्ण मुद्रा लाकर दिया करते थे लेकिन एक पतीली स्वर्ण दक्षिणाकी बात तो किसी ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आयी। बाबाजी महाराज हँसकर बोले कि मैंने तो ग्रन्थादि देखे नहीं लेकिन प्राचीन वैष्णवोंके मुँहसे यह बात सुनी थी।

उस दिन इस प्रकार कई हँसीकी बातें होती रहीं। अवधूत निताईचाँदकी बात चली कि मुसलमानको शिक्षा-दीक्षा देनेके कारण ही उनका नाम अवधूत पड़ा वे मुसलमानकी मस्जिदमें जाया करते, उनको मुसलमान लोग पीर कहा करते। इस प्रकार नाना प्रकारकी बातोंमें दोपहर हो चली, मैं बाबाजी महाशयको प्रणाम करके घरकी ओर लौटा। वंशीदास बाबाजीने अपने पूर्वाश्रमकी कोई बात नहीं बताई। उनके मन्त्र दीक्षा गुरुका नाम हरिलाल व्रजवासी और संन्यास दीक्षा-गुरुका नाम रामानन्द व्रजवासी था।

हरिदास चौकीदार

(श्रीहरिदासजी प्रातःकाल नित्य गङ्गाजीके किनारे भ्रमण-परिक्रमा करने जाया करते तब नियमपूर्वक वंशीदास बाबाजीके दर्शन किया करते। वंशीदास बाबाजी उस समय प्रायः नित्य ही ठाकुर-सेवाके बर्तन माँजते हुए पाये जाते। कभी भावमें विभोर होकर इस काममें लगे होते तो हरिदासजीकी ओर दृष्टि नहीं जाती, कभी प्रकृतस्थ होते तब उन्हें देखते ही 'जय शचिनन्दन' कहकर आशीर्वाद देते और उनका अभिवादन करते। और कहते 'चौकीदार हरिदास फुकारे घने घन।' नीचे २५ पौष मङ्गलवार वङ्गाब्द १३३४ के दिनका श्रीहरिदासजी स्वलिखित वर्णन पढ़िये)

प्रातःकाल लगभग ६॥ बजे सर्वप्रथम वंशीदास बाबाजीकी भजन-कुटीके द्वारपर उपस्थित हुआ। प्रणाम करने पर वे 'जय शचिनन्दन' कहकर आशीर्बाद देते हुए हँसते-हँसते एक पयार श्लोकांश मधुर स्वरमें पढ़ गये—

"चौकीदार हरिदास फुकारे घने घन"

मेरा प्रातः भ्रमणका वेश चौकीदारके ही समान था। मस्तक पर प्रकाण्ड पगड़ी, शरीर पर पट्टूका कोट, पैरमें मोजे और जूते, हाथमें लाठी—मैंने समझा कि बाबाजी महाराज मेरी पोषाक देखकर ही मुझे चौकीदार कह रहे हैं। मैंने निर्लज्ज होकर उनसे पूछा—"बाबाजी महाराज! यह बात आप क्यों बोले? मुझको बता दीजिये।" वह हँसते हँसते मधुर वचन बोले—"यह हाट पत्तनका पयार है"। फिर कहने लगे—

"चैतन्येर घाटे नोका चापिल जखन ।
हाट् पत्तन निताइचाँद रचिल तखन ।।
घाटेर उपरे हाट् थाना बसाइल ।
पाखण्ड दलन बलि निशान गाड़िल ।।
चारिदिके चारि रस कुठारि पूरिया ।
हरिनाम दिला तार चौदिके बेड़िया ।।
चौकीदार हरिदास फुकारे घने घन ।
हाट करि बेचा केना जार जेइ मन ।।"

"चैतन्यके घाटपर जब नौका चढ़ गयी, तब निताईचाँदने हाट-बाजार लगवायी । घाटके ऊपर हाट-थाना बनाया, और पाखण्ड-दलनके लिये झण्डा गाड़ दिया । चारों ओर चार रसकी कोठरी भरकर हरिनामके वेड़ेसे चारों ओरसे घेर दिया । हरिदास चौकीदार रह रह कर पुकारते हैं, जिसकी जो इच्छा हो हाटमें खरीद-बिक्री करे ।"

जब बाबाजी महाराज मेरी ओर एक टक देखते हुए मुझे उद्देश्य करके ये पयार श्लोक प्रेममें भरकर अति मधुर स्वरसे बोलने लगे उस समय मानों वहाँ मधु-वृष्टि होने लगी । उनके शुभ दृष्टिपातसे मेरा सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा । इस इंजेक्शनके साथ साथ मेरे बहुत कालके सभी मानसिक रोग एक दम शान्त हो गये—ऐसा बोध हुआ ।

इसके बाद पुनः बाबाजी महाराजने मेरे मुँहकी ओर ताककर कहा—

"पाखण्डी दलन वाना नित्यानन्द राय ।
लौह दण्ड हाते करि नगरे वेड़ाय ।।"

यह कहकर वे मेरे हाथके डण्डेकी ओर बारम्बार देखने लगे । मैंने भयसे डण्डा पीछेकी ओर छिपा लिया । बाबाजी महाराज और कुछ नहीं बोले, अपने ठाकुर सेवाके वर्तन माँजने लगे । उस वक्त धूप हो गयी थी, भजन-कुटीरके बरामदेमें बाहर भी धूप आ गयी थी तो भी दारुण शीतमें वे तो भजन-कुटीरके भीतर बैठकर ही सेवा-कार्य अपने हाथसे करते जा रहे थे और अपने जीवन-सम्बल सर्वस्व धन गौर-निताई-गदाधरके चन्द्रवदनके दर्शन करते जा रहे थे । मैं उनके भजनानन्दमें और विघ्न डालनेका साहस नहीं कर सका और प्रणाम करके द्रुत गतिसे गङ्गाके किनारे-किनारे भ्रमण करने निकल गया ।

ठाकुर-सेवामें स्वयंकी विशेषता

एक दिन प्रातःकाल वर्तन माँजते हुए अपने गौर-निताई-गदाधरके श्रीमुखकी ओर निहारकर मृदु एवं करुण क्रन्दनके स्वरमें वंशीदास बाबाजी कहने लगे—"तुमलोगोंकी मुझसे कुछ सेवा तो बन नहीं सकती, सिर्फ बर्तन माँजने, फूल चुनने और भिक्षा करनेमें सारा दिन निकल जाता है । क्या करूँ ? जरा-जरा-सा करके सारा दिन व्यतीत हो जाता है । पहिले मैं स्वयं सभी काम कर लिया करता था, अब शक्ति नहीं रही । क्या करूँ । गौर-निताईने मुझे एकदम मायामें फँसा दिया है ।" इतना

कहकर वे क्रन्दन करने लगे। उस क्रन्दनसे काष्ठ-पाषाण द्रवित हो जाते हैं, केवल मेरा पाखण्डी हृदय द्रवित नहीं हुआ। मैं चुपचाप बाबाजीका प्रेमाश्रुपरिप्लुत वदनचन्द्र निर्निमेष नयनोंसे देखता रहा और सोचता रहा कि क्या करनेसे इनका दुःख दूर हो। मैं ठहरा विषयका कीट, मेरी सेवा-बुद्धि भी विषयके साथ चिपटी हुई है। मैंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"बाबाजी महाराज ! मैं गोस्वामी-सन्तान हूँ, मेरे यहाँ भी ठाकुर-सेवा है। सेवा-योग्य कोई वस्तु यदि मैं ला दूँ तो आपके ठाकुरजी ग्रहण कर लेंगे क्या ?" एक अक्षरमें उत्तर मिला—"ना"। कुछ देरके बाद बाबाजी फिर बोले—"मेरे ठाकुरजीकी सेवाके लिये मैं भिक्षा माँगकर द्रव्यादि संग्रह करूँगा, स्वयं रन्धन करूँगा, प्रेम-सेवा दूसरेके द्वारा नहीं कराई जाती। मैं और कुछ नहीं कह सका। थोड़ी देर बाद प्रणाम करके चलनेके समय निर्लज्ज होकर फिर बोला—"बाबाजी महाराज ! कुछ सामान्य फल आपके ठाकुरजीके लिये लग सकते हैं क्या ?" वे बोले—"गौरकी इच्छा।" मुझे कुछ साहस हुआ। मैं बाजारमें जाकर दो संतरे और दो मर्तवान कदली फल खरीदकर लाया और लौटकर उनको दिये और उन्होंने प्रेमपूर्वक अपने पात्रमें ले लिए। मैं प्रणामकर चला आया, उन्होंने 'जय शचिनन्दन' कहकर आशीर्वाद दिया। (इस तरह श्रीहरिदासजी प्रायः नित्य ही कुछ फल ठाकुर सेवाके लिये अर्पित किया करते थे।)

बाबाजी महाशयके लिए पूजाके वास्ते थोड़े-से पुष्प चयन करना मेरा प्रति दिनका काम था। इसके लिये उनसे मिलकर गङ्गातीर भ्रमण करनेको निकल पड़ता। लौटते समय मैं थोड़ेसे पुष्प संग्रहकरके उनकी कुटीरमें जाकर देता। वे उन्हें सानन्द ग्रहण करते। लेकिन दूसरे ही दिन अपने एक साथी सज्जनके मुँहसे सुना कि वे (वंशीदास बाबाजी) उस दिन २॥ प्रहरके समय स्वयं पुष्प चयन करने गये थे। उन सज्जनने जब उन्हें देखा तो बाबाजी महाशयसे जिज्ञासा की कि आप पुष्प-चयन करने क्यों आये हैं ? उत्तरमें उन्होंने कहा कि प्रेमसेवा समुदय अनुष्ठान अपने हाथोंसे करनेसे ही सुख होता है।

श्रीपाद नृत्यगोपाल गोस्वामीके साथ एक दिन राणीचड़ाके चन्द्रकान्त घोषके घरसे वंशीदास बाबाजीके ठाकुरजीके लिये पहिले ही बड़े-बड़े गेंदेके फूल लेकर बाबाजी महाराजकी भजन कुटीरमें आकर मैंने कहा कि आपके ठाकुरजीके लिये फूल लाया हूँ, आज आपको और फूल लेने नहीं जाना पड़ेगा। बाबाजी महाराज चुपचाप अपने वर्तन माँजते रहे, कुछ भी नहीं बोले। हम लोगोंको खड़े-खड़े आधा घण्टासे ऊपर हो गया होगा तब मैंने फिर कहा कि फूल कहाँ रखूँ। अबकी उन्होंने गम्भीर भावसे उत्तर दिया—"तुमने अपने ठाकुरजीके लिये फूल चुने हैं, तुम्हीं ले जाओ, मेरे ठाकुरजीके लिये मैं ही फूल चुनूंगा।" वास्तवमें गेंदेके बड़े-बड़े फूल देखकर पहले मैंने अपने ठाकुरजीके लिये ही संग्रह किये थे। बाबाजी महाराज अन्तर्यामी महापुरुष हैं,

यह इसी बातसे जाना गया । इसमें एक भाव और भी है, बाबाजी अपनी ठाकुर-सेवाका सारा काम स्वयं करते हैं, किसी पर भी किसी कार्यका भार नहीं डालते। कोई व्यक्ति कोई काम कर भी दे तो वे उसको पसन्द नहीं करते । प्रेमसेवाकी रीति ऐसी ही होती है ।

बाबाजीका भोग-रन्धन

एक दिन अपराह्नमें मेरी गृहिणी, जेष्ठा बहिन और कन्या, मेरे अनुगत श्रीमान् षष्ठीधर लाहिड़ी महाशय और उनकी पत्नीके साथ बाबाजी महाराजके दर्शन करने गयीं थीं । सुना था कि सभीने कुछ-कुछ भेंट चढ़ाई थी । उस समय लगभग ४॥ बजे होंगे ; तब भी बाबाजी ठाकुरजीके लिये रन्धन-कार्य कर रहे थे। वंशीदास बाबाजीके ठाकुरजीका भोग इतनी देरसे होता है, देखकर सभीको विस्मय हुआ । प्रश्न करने पर कोई उत्तर नहीं मिला । उन लोगोंने बाबाजी महाराजकी रन्धन-परिपाटी देखकर बहुत प्रशंसा की थी। उन्होंने लौटकर मुझसे कहा—"तुम्हारे वंशीदास बाबाजीने हमसे कोई बात नहीं की । तुम उनसे पूछना कि वे ठाकुरजीको भोग देनेमें इतनी देर क्यों करते हैं ?" मैंने कहा कि उनके चरणोंमें यह बात अवश्य निवेदन करूँगा ।

दूसरे दिन नित्य नियमानुसार प्रातः भ्रमणके लिये बाहर निकलकर श्रीधामकी शोभा दर्शन करके अनुमानतः ९ बजे मैं बाबाजी महाराजकी कुटियापर पहुँचा । उस दिन वे उसी समय ठाकुरजीका भोग रन्धन कर रहे थे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । मेरे विस्मयका कारण हमारे घरमें हुई पूर्व दिनकी बातचीत थी कि उसका फल बिना वाद-विवादके ही हो गया (अर्थात् ठाकुरजीका भोग सवेरे ही तैयार हो रहा है) । मुझे कुछ भी कहने या करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी, कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा और कार्य सिद्ध हो गया । यही मेरे एक साथ विस्मय और आनन्दका कारण था । जो भी हो, मैं दुष्ट-बुद्धि आदमी हूँ । मैं बाबाजीको छोड़ने वाला नहीं। पूर्व दिन इतनी देरसे ठाकुर भोग देनेका कारण पूछते ही उन्होंने तीव्रभावमें उत्तर दिया—"मरे, भूखों मरे, मुझसे और नहीं होता, मैं और कितना करूँ ? जैसा कर्म वैसा फल । मैं अकेला आदमी, यह शीतकालका समय, क्या करूँ, क्या करूँ, क्या करूँ ?" इतना कहकर वे मानो गौरानुरागमें गद्‌गद् होकर प्रेमके आवेगसे क्रन्दन कर उठे । ये बातें उनकी ऊपरकी बातें हैं, मनकी नहीं । बड़े दुःखसे उन्होंने दुःखिनी जननीकी पालित सन्तानके प्रति वात्सल्य भावोचित ये बातें कहकर अपने हृदयकी मर्म-व्यथाको प्रकट किया ।

वास्तवमें उनको अपने हाथों सब प्रकारका सेवा कार्य करके भिक्षाके लिये जाना होता है । इससे दोपहरके बाद कुटीमें आकर सब सामग्री एकत्र करके,

मसालादि पीसकर, तरकारी बनाकर, ३-४ व्यञ्जन बनाये बिना ठाकुरजीको भोग नहीं दिया जा सकता। अलग-अलग वस्तुओंके रन्धनकी अलग-अलग परिपाटी भी है। बड़ी तेलमें भूजनी होती है। इन सब कामोंमें बहुत समय लग जाता है। किसी दूसरेकी सहायता वे लेते नहीं। प्रेमसेवा अपने हाथसे ही करनी होती है। बाबाजी महाराजकी उपर्युक्त बातका और मैं क्या उत्तर दूँ? चुपचाप खड़ा हुआ उनकी रन्धन परिपाटी देखता रहा और मन ही मन विचारता रहा--धन्य हैं बाबाजी महाराज! धन्य है उनकी प्रेमसेवा! धन्य है उनका सङ्कल्प और शक्ति।

कुछ देरके बाद सुयोग देखकर मैं डरते-डरते बोला--"बाबाजी महाराज! इसी प्रकार सबेरे-सबेरे नित्य भोग बन जाया करे तो अच्छा हो।" यह बात सुनते ही बाबाजी बहुत गरम हो उठे, उनकी आँखें लाल हो गईं। क्रोध और अभिमानसे गद्‌गद् होकर वे कहने लगे—"अबेरे सबेरे मुझसे नहीं होगा, उनके भाग्यमें जो है सो हो, मेरा भजन साधन सब चला गया, मैं क्या उनके बाबाका नौकर हूँ या रसोइया ब्राह्मण? गदाधर राँधा करे और अपने गौरको खिलाया करे; निताई अवधूत है उसकी जाति पाँति नहीं है, जहाँ-तहाँ जाय और खाया करे; मेरे गोपालके लिये कोई चिन्ता नहीं। एक दूधवाली गाय आकर यहाँ दूध दे जाती है, मेरा गोपाल दूध पीकर ही रह जायगा; चिन्ता है तो केवल मेरे राधा-कृष्णकी, कारण नवद्वीपमें उनकी जो सेवा है, वह गौर सेवा ही है, गौर उनका भोग खा डालता है। इसलिये उनके लिये तो दो शाक और भात राँधना ही होगा। नहीं तो खानेको न मिलनेके कारण वे वृन्दावन चले जायेंगे और वहाँ मधुकरी करेंगे।" मैंने ये बातें कानोंसे सुनी जरूर, लेकिन उनका मर्म समझनेकी शक्ति उस समय मुझमें नहीं थी, कारण बाबाजी महाराजके रक्त-वर्ण नेत्र देखकर मैं डरके मारे काँप रहा था। जब बाबाजी चुप हुए तब मेरा भय कुछ कुछ दूर हुआ। उन्होंने मेरी ओर प्रसन्न मुद्रासे जब शुभ दृष्टिपात किया तब कहीं जाकर मैं निर्भय हो सका। उस दिन और कोई बात किये बिना दण्डवत् प्रणामकर मैंने विदा ली और उन्होंने 'जय शचिनन्दन' कहकर आशीर्वाद दिया। रास्तेमें विचार करता जा रहा था कि बाबाजीके शब्दोंका एक भाष्य लिखना होगा।

वैराग्य

एक दिन मैं बोला—"बाबाजी महाराज! एक दिन आपकी इस भजन-कुटीरमें हमलोग महोत्सव करेंगे, कीर्तन करेंगे, आपको भी नाचना होगा।"

उन्होंने मुस्कराते हुए वदनसे उत्तर दिया—"गौरनिताईने मुझे खूब नचाया है, अब शक्ति नहीं रही, खूब महोत्सव प्रसाद खाया है, अब कहीं नहीं जाता। महाप्रभुके प्राङ्गणमें फटा कन्था लपेटकर खूब नाचा हूँ, पङ्गतमें खूब प्रसाद खाया है, अब सामर्थ्य नहीं रही।" महाप्रभुके आंगनकी बात उठाकर वे फिर बोले—"अब वहाँ जानेको मन

नहीं करता, श्वेत पत्थर लग गये हैं, रज नहीं रही। डर लगता है, गिर पड़नेसे सिर फट जायगा।" महोत्सव प्रसाद खानेके सम्बन्धमें वे कहने लगे—"मैं बढ़िया माल खाऊँगा—मेरे गौर-गदाधर क्या खायेंगे ?" इतना कहकर वे फिर बोले—

"मठ मन्दिर ना करिबे।
भाल ना खाइबे—भाल ना परिबे॥"

यही महाप्रभुजीका उपदेश है।

दूसरे दिन फिर बाबाजी महाराजने गौर-कथा आरम्भकी—"जगन्नाथजी जाकर भी हरिदास ठाकुर एवं सनातन गोस्वामीने जगन्नाथजीके दर्शन नहीं किये। श्रीमन्दिरके भीतर जानेसे कहीं जगन्नाथजीके सेवकोंका अङ्ग स्पर्श न हो जाय—वे अपनेको नीच अस्पृश्य मानते थे।" इससे उन्होंने आभास दिया कि इसी कारणसे वे भी धामेश्वर श्रीगौराङ्ग-मन्दिरमें अब और नहीं जाते।

मैं दुःसाहसिक और दुष्ट प्रकृतिका आदमी हूँ, बोल उठा—"एक बार हमारे 'श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्ज' में पदार्पण करें।" वे बोले—"बहुत दूर है, अब शक्ति नहीं रही, क्या करूँ ? निकटके दो-तीन घरोंसे भिक्षा कर लाता हूँ। गौर, निताई और गदाधरको अकेले छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। क्या करूँ ?" "क्या करूँ—?" ये दो शब्द उनकी बातोंकी मात्रा बन गये।

मैं निर्लज्ज बेहयाकी तरह फिर बोल पड़ा—"बाबाजी महाराज ! पौषकी संक्रान्तिके दिन आपके ठाकुरजीको मिठा पुली खिलानेकी मेरी बड़ी इच्छा है। मैं घरमें बनाकर स्वयं लाकर दूंगा। आप भोग लगाकर प्रसाद पावें।" कुछ देरीके बाद वे बोले—"पूर्वकालमें मैंने स्वयं कितने मिठा पुली तैयार करके ठाकुरजीको भोग लगाया है अब और शक्ति नहीं रही। ये चावल हैं और गुड़ पड़ा है। क्या करूँ, इनके भाग्यमें और नहीं लिखा। बहुत खिलाया है, अब और शक्ति नहीं रही, क्या करूँ ?" यह कहकर क्रन्दनके स्वरमें "गौर हे" बोलते हुए एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी।

मैंने बाबाजी महाराजको कुछ फूल संग्रह करके पूजाके निमित लाकर दिये तब वे प्रसन्न होकर बोले—"आज और फूल लेने नहीं जाना पड़ेगा।" इसके बाद वे भिक्षाके लिये निकले। मैं भी साथ था। बड़े निर्लज्ज भावसे बोला—"बाबाजी महाराज ! बड़ी सर्दी पड़ रही है, एक कम्बल होता तो अच्छा होता।" उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा—"सनातनके वैराग्यकी बात स्मरण आ रही है, मोट कम्बलके प्रति महाप्रभुकी दृष्टि पड़ी थी, मुझे कम्बल नहीं चाहिये।" मैंने कहा—"फटी चट्टी कोई हो तो ईंटपर बिछाकर बैठा जाय, इस शीतमें आपके कुटीरमें ईंटकी शैया बड़ी कष्टप्रद है।" पर बाबाजीको इस संबंधमें किसी प्रकारका लेश मात्र भी दुःख नहीं है। वे बोले—"सनातनके वैराग्यकी बात मनमें आते ही मैं अपना दुःख व कष्ट भूल जाता हूँ।"

वंशीदास बाबाजी ठाकुर नरोत्तमदासके परिवारके हैं। ठाकुर महाशयके वैराग्यकी बात छेड़कर बोले—"देवसेवाके लिये जलकी भरी हुई कलसी मस्तकपर रखकर लाते-लाते उनके मस्तकमें घाव हो गया जिसमें कीड़े पड़ गये। भूमिपर गिर जानेपर वे उन कीड़ोंको 'ये स्थानभ्रष्ट हो गये हैं' कहकर उठाकर फिर मस्तकपर रख लेते।" यह बात कहते-कहते वे व्याकुल हो गये श्रौर प्रेम पूरित भावसे फूट-फूट कर रोने लगे।

वंशीदास बाबाजी बहिर्वस्त्रका उपयोग नहीं करते, केवल मात्र एक जीर्ण कोपीनका व्यवहार करते हैं। मेरे हाथ जोड़कर जिज्ञासा करनेपर उन्होंने उत्तर दिया :—

"महाप्रभुजीने जब ठाकुर नरोत्तमको दर्शन देकर कृतार्थ किया था उस समय ठाकुर महाशयके परिधानमें बहिर्ववस्त्र नहीं था। केवल करङ्ग, कोपीन श्रौर कन्था थे। यही तीन 'क' लेकर उन्होंने महाप्रभुजीके दर्शन पाये थे। मैं भी उसी श्राशामें 'क' लेकर ही रहता हूँ। ये तीन 'क' ही वैराग्यके वास्तविक चिह्न हैं। 'ब' में निश्किञ्चन वैष्णवकी प्रीति नहीं होती। 'क' में कृष्ण अर्थात् कृष्ण-सेवानुकूल वैराग्यसूचक करङ्ग, कोपीन व कन्था हैं। महाप्रभुजीको कोपीनधारी कन्था करङ्गिया गौड़िया बहुत प्यारे लगते थे। 'ब' बहिरङ्ग सब वस्तुएँ हैं। **'बहिरङ्ग सङ्गे कर नाम सङ्कीर्तन।'** कोपीन श्रन्तरङ्ग वस्तु है। **'श्रन्तरङ्ग सङ्गे कर रसास्वादन॥'** वैरागी वैष्णवको बहिर्वस्त्र वहिरङ्ग सङ्ग ला देता है। मेरे गौरने मुझे बहिर्वस्त्र पहननेसे निषेध कर दिया है।"

ये बातें सिद्ध बाबाजी महाराजके मनकी बातें हैं, बड़ी निगूठ और रहस्यपूर्ण—इनके मर्मको मर्मीगौरभक्तगण समझ सकेंगे। मैं श्रधम इन बातोंके मर्मको क्या समझूँ ?

निष्किञ्चन वैष्णव

एक दिन मैंने प्रार्थनाकी—"आप मुझपर कृपा करेंगे। मैं बड़ा पाखण्डी हूँ।" बाबाजीने हँसकर उत्तर दिया—"मैं कङ्गाल हूँ, कङ्गालके ठाकुर कृपा करेंगे"। तब मैंने कहा—"श्राप तो कङ्गाल नहीं हैं, महाराज चक्रवर्ती हैं, आप गौड़ीय वैष्णव जगतके बाबाजी महाराज हैं। श्रापका ऐश्वर्य ही वैराग्य है। महाप्रभु अपने कन्था-करङ्गधारी साधु-वैष्णव वैरागियोंसे बहुत प्रसन्न रहते थे।" आप मुझपर प्रसन्न होइए वाली बातका कुछ उत्तर न देकर उन्होंने दूसरी ही बात उठायी। वे श्रपने दुःखकी बात कहने लगे—"मैं सेवा कैसे करूँ ? श्रपने हाथसे श्रब सेवाकार्य नहीं कर पाता, इतना दुःख क्यों देते हैं, श्रौर वे पाते ही क्या हैं ?" इतना कहकर रोने लगे। मैंने कहा—"द्रौपदी श्रौर पञ्चपाण्डवोंकी सेवासे तुष्ट होकर श्रीकृष्ण भगवानने जब कुन्तीको वर देना चाहा तो कुन्तीदेवीने दुःखकी याचना की। कारण,

दुःखसे ही वे प्राप्त होते हैं, और सुखमें जीव उनको भूल जाता है। आपका जो यह दुःख है, वही कृष्ण-प्राप्तिका कारण है ?" बाबाजीने बात तो सुन ली, परन्तु इस भावका कोई उत्तर न देकर वैष्णव-सेवाकी बात उठायी। वे बोले—'श्रीकृष्णने एक दिन द्रौपदीको वैष्णव-सेवा करनेकी आज्ञा दी। द्रौपदीने पूछा—'मैं वैष्णव कहाँ पाऊँगी ?' श्रीकृष्णने कहा—'मैं ला दूँगा।' द्रौपदीने अपने हाथसे नानाप्रकारके व्यञ्जन तैयार करके दिव्यासन लगाकर वैष्णव-भोजन करानेका आयोजन किया। श्रीकृष्ण मोचीराम नामक एक छिन्न कन्थाधारी अकिञ्चन वैष्णवको निमन्त्रित करके ले आये। मोचीराम पहले आसनको हटाकर भोजन करने बैठे। उन्होंने सब प्रकारके व्यञ्जनोंको एकत्र मिलाकर प्रसाद पाया। यह देखकर द्रौपदी श्रीकृष्णसे बोली—'मैंने अति कष्टपूर्वक नानाविधिसे भोजन द्रव्यादिके पृथक-पृथक उत्तम पकवान तैयार किये, पर इन वैष्णवने सब कुछ एक साथ मिलाकर भोजन किया। इससे तो उनको किसी भी वस्तुका स्वाद नहीं मिला।' श्रीकृष्णने मुस्कराकर उत्तर दिया—'द्रौपदी! तुम वैष्णवके मर्मको नहीं जान सकतीं तुम्हारे मनकी गड़बड़ी है।' द्रौपदी और कुछ न बोल सकी।

'फिर दूसरे दिन एक बार और उसी अकिञ्चन वैष्णवको निमन्त्रण देनेके लिये श्रीकृष्णसे अनुरोध किया। उस दिन पूर्ववत् वैष्णव-भोजनकी लीला देखते-देखते द्रौपदीने देखा कि दूधका कटोरा सामने रखकर उनका अतिथि अकिञ्चन वैष्णव प्रेमावेशमें सुखसे नींद ले रहा है। द्रौपदीने तब उस निद्रित वैष्णवके मुँहमें कटोरेका दूध थोड़ा-सा दिया, पर वह भूमिपर गिर पड़ा। उस समय भी उनका प्रेमावेश नहीं छूटा, निद्रा भङ्ग न हुई। तब द्रौपदी श्रीकृष्णके पास गयी और देखा कि वह भी सो रहे हैं, और उनके श्रीमुखसे वही दूधकी धार गिर रही है। यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ, और समझ लिया कि निष्किञ्चन भक्त और भगवान एक ही वस्तु हैं। निष्किञ्चन विरक्त वैष्णव जिह्वाकी लालसा नहीं रखता, उनकी जिह्वा रसके वशीभूत नहीं होती।" यह कहानी कहते-कहते बाबाजीकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बहने लगा।

श्रीवृन्दावन निष्किञ्चन विरक्त वैष्णवोंका स्थान है—यह बात पहिले किसी एक दिन उन्होंने कही थी। क्यों ? इस प्रश्नके उत्तरमें बताया—"यहाँ नवद्वीपमें मठ-मन्दिरवासी वैष्णवोंकी संख्या अधिक हो गयी है। निष्किञ्चन वैष्णवका यहाँ आदर नहीं रहा।"

पाखण्डी-दलन सम्बन्धमें आलोचना होनेपर वे बोले—"वह मेरे पाखण्डीदलन निताईचाँदका काम है।"

वे उपदेश देते हुए बोले :—

"वैष्णव देखिया जे जाति बुद्धि करे।
ताहार समान पापी नाहिक संसारे॥

वैष्णवेर देखि जेह पापी निन्दा करे ।
शत शत पाप आसि सेइ पापीरे घरे ।।"

श्रीश्रीविष्णुप्रिया तत्वके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर बाबाजी महाराज बोले—"मैं वह नहीं जानता । वह बड़ा निगूढ़ तत्व है । गौर-गदाधर तत्व समझते-समझते ही मैं बूढ़ा हो चला, तब भी समझ नहीं पाया––तत्व सभी समान हैं । सेवा बुद्धि हुए बिना तत्वज्ञान नहीं होता । आगे सेवा उसके बाद तत्व—सेवा करनेसे ही तत्वज्ञान होता है । सेवा लीलाका अङ्ग है—सेवा करो, तत्व समझमें आ जायगा ।"

एक दिन वे बोले कि वैष्णव कौन हैं ? वैष्णव पहिचानेंगे कैसे ?

"जाँहाके देखिले मुखे आइसे कृष्ण नाम ।
ताँहाके जानिबे सबे वैष्णव प्रधान ।।"

बाबाजी महाराजने कहा कि वैष्णव पहचाननेका यही उपाय है । यह महाप्रभुजीका आदेश वाक्य है ।

वंशीदास बाबाजी महाराजके श्री अङ्गमें तिलक-छाप आदि मैंने नहीं देखे । वे सिद्ध पुरुष हैं, उनकी बात ही न्यारी है । वास्तवमें वैष्णव वेश देखकर ही वैष्णवकी पहचान नहीं होती ।

संक्रान्तिके दिन

पौष महीनेके उत्तरायण संक्रान्ति पर्वमें प्रातः बहुत-से लोग गङ्गा-स्नान करने जा रहे थे, प्रत्येक घाटपर भीड़ थी—स्त्रियोंकी संख्या ही अधिक थी । भगवानने मुझे गङ्गा-स्नान करनेका अधिकार और सौभाग्य नहीं दिया । मैं दूरसे ही दर्शन करके पवित्र पतित पावनी सुरसरिको प्रणाम कर लेता हूँ । आज प्रातः बाबाजी महाराजके लिये भिक्षाके निमित्त एक छोटी-सी पोटलीमें कुछ द्रव्य लिये हुए उनके भजन-कुटीरके द्वारपर खड़े होकर ज्योंही उनको प्रणाम किया "जय शचिनन्दन" कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया । वे उस समय सेवाकार्यमें व्यस्त थे, भिक्षा-द्रव्यको द्वार देशपर रखनेकी आज्ञा दी । शीतकालमें दारुण शीतके समय अग्निपर चढ़ानेसे जली हुई पतीली और बर्तन अपने हाथोंसे उनको माँजते देखकर मैंने पूछा—"बाबाजी महाराज ! यदि अनुमति प्रदान करें तो एक सेवकका प्रबन्ध हो जाय, आपके बर्तन माँजनेका कार्य सेवक कर दे तो अच्छा हो ।" इस बातका कोई उत्तर न देकर प्रेमविह्वल भावसे दो-एक बार युधिष्ठिरका नाम लेकर वे प्रेमाश्रुपात करते-करते बोले––"पञ्च पाण्डवोंमें प्रधान मेरा ममेरा भाई युधिष्ठर, ब्रह्मपुत्रके किनारे जमालपुर एगारसिन्दुरमें कृष्ण भजन कर रहा है और मैं वैरागी होकर क्या कर रहा हूँ, पता नहीं ।" इतना कहकर वे रोते-रोते आकुल हो उठे । इसके बाद उन्होंने मेमनसिंह जिलेके कई स्थानोंका नाम लिया, जैसे जमालपुर, हुसेनपुर, एगारसिन्दुर,

प्रभृति । मैंने अनुमानसे समझा कि वंशीदास बाबाजीको पूर्वाश्रमकी कथा याद आ गई है । मैंने डरते-डरते पूछा––"क्या युधिष्ठिर कभी नवद्वीप आये थे ?" उत्तर मिला––"बहुत दिन पहिले, सिर्फ एक बार ।" फिर बाबाजी महाराजके दोनों नयन छल-छल हो आये । अनुमानसे मैंने समझा कि पूर्वाश्रममें ये भाग्यवान युधिष्ठिर इनके बड़े प्रिय पात्र होंगे । कुछ देरके बाद मैंने युधिष्ठिरका पता पूछनेका प्रयत्न किया, पर बाबाजीने उनकी उपाधि तक नहीं बतायी । पूर्वाश्रमकी बात छिड़ जानेसे उन्हें कुछ संतप्त-सा पाया ।

नदियाके स्त्री-पुरुष सभी उनके दर्शन करने आया करते । सभीके लिये उनके आश्रमका द्वार खुला था । एक दिन एक भद्रवंशीया सुन्दरी सधवा स्त्रीने थोड़ेसे तिलोंकी पोटली बाबाजीको देते हुए कहा––"वंशीदास ! ये अपने ठाकुरजीको देना ।" बाबाजीको 'वंशीदास' कहकर सम्बोधन करने वाली उक्त महिलाके सौभाग्यकी मन ही मन सराहना करते हुए मैंने उनको प्रणाम किया ।

नदिया-नागरी भाव

प्रातःकाल कड़ाकेके जाड़ेमें काँपते हुए बहुतसे लोग गङ्गा-स्नान करने जा रहे हैं । मेरा गङ्गा स्नान तो है श्रीवंशीदास बाबाजीके दर्शन । महाप्रभुने हरिदास ठाकुर से कहा था—

"क्षणे क्षणे सर्वतीर्थे कर तुमि स्नान"

मुझे विश्वास है कि सच्चे वैष्णव साधुका दर्शन करनेपर केवल गङ्गा-स्नान ही क्यों, सर्वतीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता है ।

"गङ्गार परशे हय पश्चात् पावन ।
दर्शने पवित्र कर ए तोमार गुण ।।"

साधु वैष्णव दर्शन गङ्गा स्नानकी अपेक्षा भी अधिक फलदायक है । (गङ्गा तो स्पर्श करनेके पश्चात् पवित्र करती है, पर वैष्णव सन्त तो दर्शन मात्रसे ही पापीको पावन बना देते हैं ।)

उस दिन प्रातः वंशीदास बाबाजीके द्वारपर जाकर मैंने उनको प्रणाम किया । उन्होंने अति प्रसन्न मनसे आशीर्वाद देते हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'जय शचिनन्दन' कहा । मैंने भी उनके सुरमें सुर मिलाकर हाथ जोड़कर उच्च स्वरसे कहा––

"जय शचीनन्दन जय गौर हरि ।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदिया विहारी ।।"

उन्होंने मुस्कराते हुए मेरी ओर देखा । उनकी शुभ दृष्टिसे मानो मेरे सारे शरीरपर अमृत वर्षा हुई । शरीर पुलकित हो उठा । उस समय प्रभातकाल था,

बालरवि अरुण स्निग्ध रश्मियाँ गङ्गातटको समुद्भासित कर रही थीं। पूर्व दिशाका आकाश अनुपम लोहित वर्णसे सुरञ्जित था। बाबाजीकी कुटियाके भीतर बाल सूर्यकी अरुण आभा झाँक रही थी। पूर्व दिशाका द्वार उन्होंने मेरे अनुरोधसे खोल दिया था जिससे यत्किञ्चत धूप आने लगी थी। उस समय गङ्गातटका दृश्य बड़ा ही नयनाभिराम लग रहा था।

इस दारुण शीतमें भी स्नानार्थी जन प्रातः स्नान करने जा रहे थे। भक्तिमती कुल लक्ष्मियाँ नानावर्णके चित्र चित्रित शीत वस्त्रोंसे शरीर ढके स्नान करके लौट रही थीं। वयोवृद्ध साधुगण एवं वृद्धामातायें शीतके कष्टसे सिहरते अस्फुट स्वरमें हरिनाम गान करते करते अपने अपने भजनाश्रममें प्रेमानन्दपूर्वक लौट रहे थे। ऐसे मधुमय समयमें बाबा वंशीदासजीके भजन-कुटीरके द्वारपर अकेला खड़ा था। उन्होंने प्रेमावेगमें नदिया-नागरी भावके एक गीतका सुर पकड़ा—

"नयने लगेछे गोरा ना जाय पासरा। जलेर भीतरे डुबि सेथा देखि गोरा॥"	गौर आँखोंमें लगा रहता है, भूला नहीं जाता। जलके भीतर डूबती हूँ तो वहाँ भी उसे देखती हूँ।

बाबाजी महाराजके मधुर कण्ठसे तथा सुललित स्वरमें निसृत यह पदांश मानो मधु वर्षा करने लगा। वे प्रेमावेशमें गान कर रहे हैं। बीच-बीचमें मेरी ओर शुभ दृष्टिपात कर रहे हैं। आँखोंसे आँखें मिलते ही अवनत मुख हो जाते हैं। मैं बेसुध होकर उनके मधुर कण्ठसे मधुर रसकी गौराङ्ग-भजन-गीति सुन रहा हूँ। मेरा सारा शरीर प्रेमसे पुलकित हो रहा है। प्रेमावेशमें कभी-कभी अवश हो जाता हूँ। मैं अब खड़ा न रह सका, वहाँ ही बैठ गया। बाबाजी महाराजने मेरी तात्कालिक अवस्था देखकर पुनः मेरी ओर अश्रुपूर्ण दृष्टिसे देखकर मानो मुझको ही लक्ष्य करके नदिया-नागरी भावका एक और मधुर सुर पकड़ा—

"आमि करि कि ओगो नागरि ! गौरप्रेम जे लुकाते नारि॥"	अरी नागरी ! मैं क्या करूँ ? गौर-प्रेम छुपाया नहीं जाता।

मेरा अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ने लगा, सारा शरीर प्रेमावेगसे काँपने लगा। मुझे सुधि न रही कि मैं कहाँ हूँ। सर्वज्ञ बाबाजी महाशयने मेरी अवस्था देखर गान बन्द कर दिया और अपने आप कहने लगे—"गौर, नदिया नागरीके साथ तो मौज करते हैं और वंशीदाससे केवल काम कराते हैं। मौजके लिये नागरी और कामके लिये वंशी"—यह कहकर तमाखू सजाने लगे। इसके बाद तमाखूका सेवन करते-करते और भी दो-एक स्वरचित नदिया-नागरी भावके पद गाये, उनकी अब याद नहीं रही। यह गान मुझे लिखानेको वे सहमत नहीं हुए। जब भी मैंने कागज पेंसिल उठाये उन्होंने निषेध कर दिया।

सब लोग जानते हैं और मैं भी जानता था कि वंशीदास बाबाजी सख्य-रसके साधक हैं। वे अपने गौर-निताई-विग्रहके साथ सख्य-भावसे जो रसालाप करते हैं, वह अति मधुर होता है। बाहरसे उनका सख्य-भाव है, और भीतरसे मधुर भाव। मधुर भावमें नदिया नागरी जिस प्रकार गौराङ्ग-भजन करती हैं, वे भी उसी प्रकार करते हैं। परन्तु वह सर्वसाधारणको दृष्टिगत नहीं होता।

आज मेरे मनमें बड़ा आनन्द है। बाबाजी महाराजके कुटीरके द्वारपर मैं और वे हैं। वहाँ और कोई नहीं है। एकान्तमें हमलोग रसालाप कर रहे थे, ऐसे समय वहाँ जटिला कुटिला आ पहुँचे। दो भद्र वेशधारी शिक्षित व्यक्तियोंने आकर हमारी एकान्त इष्ट-गोष्ठीका रस भङ्ग कर दिया। कुछ देरके बाद जब वे चले गये तो मैंने बाबाजी से पूछा—"आपके ये स्वरचित नदिया-नागरी भावके पद संग्रह करनेकी मेरी बड़ी इच्छा है।" लेकिन उन्होंने किसी प्रकार भी इसकी स्वीकृति नहीं दी। मैंने भी अधिक आग्रह नहीं किया। मैं श्रुतिधर नहीं हूँ इसलिये मेरे मनकी इच्छा मनमें ही रह गयी। घर आकर अपनी कन्या सुशीलाको ये बात बतायी तो वह बोली—"बावा! मुझे साथ ले चलना, मैं एक बार सुनकर स्मरण रख सकूँगी।" उसमें यह क्षमता है, इसका मुझे पता है। लेकिन बाबाजी महाराज उसके समक्ष नागरी भावके गीत गायें, इसमें घोर संदेह है।

बाबाजी महाराजको दण्डवत् प्रणाम करके घर लौटा। एक प्रहरसे अधिक समय हो गया था। रास्तेमें सोचता आ रहा था कि नदिया नागरी भावके भजन लोग बुरे भावसे क्यों ग्रहण करते हैं? सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी और वंशीदास बाबाजीके भाव देखकर ये भजन ही सर्वश्रेष्ठ भजन लगते हैं। ये सर्वश्रेष्ठ भजन नरहरि ठाकुर, वासु घोष प्रभृति बहुतसे महाजनगण कर गये हैं। उनके भजन-पथका अनुसरण करनेसे यदि नरकमें वास करना पड़े तो भी हमारे लिये परम मङ्गल है। कुलोगोंकी कुकथा सुननेसे हमको क्या मतलब? जटिला कुटिलाका दल जल भुन मरे—हम तो प्रेमानन्दमें सिद्ध चैतन्यदास बाबाजीके सुरके साथ सुर मिलाकर बोलें :—

"गौरेर कान्ता आमि,
कान्त आमार गौरा।
आमार भजन हल सारा॥"

× × ×

एक दिन बाबाजी अपने ठाकुरके बासन माँज रहे थे, और गुन-गुन अपने आप प्रेमावेशमें गा रहे थे :—

"केन गिये छिलाम गङ्गातीरे ग्रो नागरी।
नयान कटाक्ष वाणे गौर कैल मन चुरी ।।
ग्रामि एखन कि करि ग्रो नागरी कि करि ।।"

"ग्ररी ग्रो नागरी ! मैं गङ्गा-तट क्यों गयी ? गौरने कटाक्ष-वाणीसे मुझे घायल करके मेरे मनको चुरा लिया । मैं ग्रब क्या करूँ ? ए नागरी ! क्या करूँ ?"

ये सब गीत बाबाजी महाराजके स्वरचित हैं । वे भावावेशमें तत्काल पद रचना करके गान करते हैं। परन्तु ये गीत कदापि लिखने नहीं देते । कागज-पैंसिल साथ रहने पर भी मैं बाहर निकालनेका साहस नहीं करता। एक दिन ऐसा किया लेकिन उन्होंने लिखनेके लिये निषेध कर दिया।

वंशीदास बाबाजीका कण्ठ-स्वर मधुर है । वे जब नागरी-भावमें विभावित होकर मधुर-स्वरसे गान करते हैं, तब उनकी दृष्टि इधर-उधर न जाकर एकमात्र ग्रपने प्राणवल्लभके श्रीमुखकी ओर रहती है। वे गाते रहते हैं और ग्राँखोंके झर-झर ग्राँसुग्रोंसे ग्रपना वक्ष भिगोते रहते हैं। मैं दूर आड़में खड़ा होकर बाबाजीको देखता हूँ ग्रौर उनके श्रीमुखसे निःसृत मधुर नवद्वीप-रसका गान सुनता हूँ । मैंने उनको प्रणाम किया है। मैं द्वारपर बगलमें खड़ा हूँ—इसकी उनको सुध नहीं है। वे अपने भावमें ग्रात्मलीन हो रहे हैं।

उपरोक्त नदिया-नागरी भावके पदका शेषांश मुझे स्मरण नहीं । शेषांश ग्रधिकतर मधुर एवं रसिक भक्तोंका प्राण-स्पर्शी था।

यह गान समाप्त हो जानेपर पूजाकी घण्टी ग्रादि माँजते-माँजते मेरी ओर एक बार तिरछी नजरोंसे देखकर ग्रौर ग्राँखें फेरकर ग्रपने प्राण-वल्लभके श्रीमुखकी ओर देखकर पुनः एक गानका सुर पकड़ा।

"गङ्गातीरे गोरा नेचे जाय।
कोटि चाँदेर माला गले,
पथे चले हेले दुले,
ग्रो नागरी तोरा देखबि यदि ग्राय।
पराण गौराङ्ग ग्रामार नेचे चले जाय ।।"

बाबाजी महाराजके मुख-नाक-ग्राँखें तथा सारे ग्रङ्गोंमें मानो मधुर नवद्वीप-रसकी प्रबल तरङ्गें उठ रही हैं, प्राणोंमें नदिया-नागरी भावका ग्रशेष स्रोत उमड़ रहा है, मनमें मानो प्रेमानन्दका प्रबल तूफान उठ रहा है। मैं चित्र-पुत्तलिकाके समान कुटीके द्वारपर खड़ा हूँ। मेरे समस्त शरीरमें मानो बिजली दौड़ गयी । मैं कहाँ हूँ, इसका ज्ञान लुप्त हो गया। बाबाजी महाराजकी वक्र दृष्टिसे मेरी यह दशा हुई।

× × ×

वंशीदास बाबाजी महाराजके प्राणमें आज गौर-प्रेमका प्रबल तूफान उठा है। उन्होंने पुन: एक नदिया-नागरी भावके पदका दूसरा स्वर पकड़ा—

"सजनि आमि कि करि उपाय।
दंशिल गौराङ्ग-नागे कि करे ओझाय ।।
कोथा वा जाइ आमि कि करि उपाय।
विषे हिया झाला-पाला, गौराङ्ग रूपेर डाला—
आचार्य-गरिमा-विषे प्राण मोर जाय।
लाजे ना करिते पारे मन जाहा चाय ।।"

यह पद 'सनातन' भणिता-युक्त है। इसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ मुझे याद नहीं हैं। इस पदमें कुछ विशेष रहस्य है। 'आचार्य-गरिमा-विषे प्राण मोर जाय'—बाबाजी महाराजके हृदयकी उक्ति है। इसका मर्म समझनेके लिये किसी रसिक भक्तको विद्या-बुद्धिका प्रयोजन नहीं है। प्रभु-सन्तानको नदिया-नागरी भाव आँखोंमें शूलके समान चुभता है। वैष्णवाचार्य श्रीगौराङ्ग-प्रभुको नागर कहनेमें कुण्ठित होते थे, इसी कारण 'आचार्य-गरिमा-विष' की रचना हुई है। इसके बादके छन्दमें बाबाजीका भाव और भी अधिकतर प्रस्फुटित हुआ है।

जिस समय यह नदिया-नागरी भावका गान हो रहा था, उस समय वहाँ केवल मैं और बाबाजी थे। उन्होंने नदिया-नागरी भावके ये तीन गीत बहुत देर तक गाये।

(प्राय: वंशीदास बाबाजी, श्रीहरिदासजी गोस्वामीके समक्ष अकेलेमें नागरी-भावके गीत गाते-गाते विह्वल हो उठते थे। श्रीहरिदासजीने स्मरण रखकर जो गीत "श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग" पत्रिकामें प्रकाशित किये और मिल सके, उनमेंसे कुछ नीचे उद्धृत हैं।)

ओ रसना गौर बल ना।
गौर गौर गौर बल ना ।।
नागरीर मन चोरा, नरहरिर चित-चोरा,
शची मातार नयनतारा गौर बल ना।
नदे वासीर प्राणगोरा, विष्णुप्रियार मनचोरा,
गौर गौर गौर बल ना।
ओ रसना गौर बल ना ।।

× × ×

बल गो नागरी गौर कल्लेन कि ।।
गृह गेल कुल गेल मन केल चुरी।
सजनि ! एखन आमि कि करि ।।
नयन कोने, काने काने, गौर कल्लेन कि।
आमि जे प्राण मरि गौर कल्लेन कि ।।

× × ×

देख्लो नागरी,
नवद्वीप उदय गौर हरि ।
प्रसर वक्ष क्षीण कटि, पराने कोपीन घटी,
मुखे सदाइ बले हरि हरि ॥
नागरीर प्राण धन, कि भावे ह'ल एमन,
संन्यासी हइया करे नानीर मन चुरी ।
वंशीदासेर बड़ आशा, श्रीगुरु चरण भरसा,
नारी पुरुषे सबे भज गौर हरि ॥

× × ×

आय सजनी ! नाइते जाइ यमुनार जले ।
कालाचाँद बाजाय वांशी रेते नारि कुले ॥
(नदेर) गंगा यमुना हलो, कालाचाँद गौर हल ।
हरि ध्वनि श्यामेर वांशि, मधुर मधुर बुले ॥
(करे) नागरीर पराण चुरि भाङ्गे कुलेशीले ।
वंशी बले (ऐ) वंशी ध्वनि भजाल नारी कुले ॥

सख्यभाव

एक दिन मैं कुटीर पर खड़ा खड़ा गुनगुना रहा था—

"अद्यापियो सेइ लीला करे गोरा राय ।
कोन कोन भाग्यवाने देखिबार पाय ॥"

यह पयार श्लोक सुनते ही बाबाजीने मधुर स्वरमें स्वरचित गान प्रारम्भ किया—

"गङ्गा तीरे तीरे जाइ ।
बलि जय गौराङ्ग जय निताइ ।
वृन्दावन देखिते पाइ ।
यमुना देखिते पाइ ।
जय गौराङ्ग जय निताइ ॥"

इस गानके पश्चात् वे बोले—"वही लीला अब भी गौर करते हैं, परन्तु मेरे सङ्ग बड़ी छेड़खानी करते हैं। शची मांके भण्डारकी वस्तुएँ चावल, दाल, तेल, घी मूँग आदि पदार्थ नष्ट करके बाल्यकालमें गौर जैसी लीला करते थे, वही लीला-रङ्ग उन्होंने एक दिन मेरी इस कुटीमें दिखलाया। मैं भिक्षा करने गया था, आकर देखा कि घरमें हांडी फूटी है, भण्डारके सारे पदार्थ अस्त-व्यस्त हैं। चावल, दाल, तर-तरकारी, तेल-घी सब बिखरे पड़े हैं। मैं देखकर अवाक् हो गया। मनमें सोचा कि यह उसी दुष्ट बालक निमाईचाँदका काम है, अब तक उसकी दुष्टता कम न हुई।

अपनी मांके साथ दुष्टता करना तो शोभा देता था। मैं तो भिखारी हूँ, मेरे साथ क्यों इतनी छेड़खानी करता है ? मैं क्या उसकी मां हूँ ? तुम्हीं बताओ—मैं पथका भिखारी कङ्गाल, मेरे साथ क्यों इतनी छेड़खानी करता है यह शचीका पूत;—यह पूत है या भूत ?" मेरी हँसी नहीं रुक सकी। बाबाजी महाराज मेरी तरफ देखकर बोले—"तुमको हँसी आती है, मेरे प्राण निकलते हैं। तुम्हारा नदियाका वामन पूत **'भात दिबार भातार नय, किल मारिबार गोसाञि** ।" इससे मुझे और हँसी आई। बाबाजी महाराज फिर बोले—"नदिया नागरीके प्राण तुम लोगोंके लिये सदा ही सरस हैं, तुम्हारे मुँहपर सब बातोंमें सदा हँसी रहती है, मैं एक सूखा ठूँठ हूँ। तुम लोगोंके साथ मेरा मेल कैसे खा सकता हैं ?" मैं क्या कहता, लज्जाके मारे सिर नीचे किये रहा।

वे आगे कहने लगे—"मुझको बीच बीचमें धक्का देकर गिरा देता है, शरीरमें काँटा चुभो देता है, फूल तोड़नेके लिए पेड़ पर चढ़नेपर नीचे काँटोंमें गिरा देता है, नाना प्रकारसे मुझे पीड़ा देता है। गाड़ीके चक्केके नीचे डालकर पैर तोड़ देता है, शचीके दुष्ट पूतकी दुष्टता वंशीके साथ।"

इतना कहकर बाबाजी महाराज प्रेमाश्रुपूर्ण लोचनोंसे अपनी सारी आत्म-कहानी एक-एक करके बताने लगे :—

मैं जब वैष्णवपाड़ामें तेमाथा रास्तेपर कुटिया बाँधकर रहा करता था तब एक दिन भिक्षामें जा रहा था। रास्तेमें लोगोंकी भीड़ थी। एक दुष्ट बालकने मुझे धक्का देखर रास्तेपर गिरा दिया—वहाँ और कोई नहीं, शचीका पूत यही निमाईचाँद था—मेरे पैरपरसे बैल गाड़ी चली गई, पैर टूट गया, मैं बड़े कष्टमें पड़ गया,—उसने एकबार भी घूमकर मेरी ओर नहीं देखा, कहाँ लोगोंके बीच छिपकर निकल गया, खोजनेपर भी नहीं मिला। अपने आप अति कष्टसे उठकर गौराचाँदके अखाड़ेमें जाकर देखा कि शचीका पूत दुष्ट निमाई भले आदमीकी तरहसे निताईकी बगलमें खड़ा है मानों कुछ जानता ही नहीं। मैंने उस दुष्ट छोकरेको पहचान लिया, कितनी गालियाँ बकीं, चुपचाप सुनता रहा, एक बात भी नहीं बोला। मन्दिरके लोगोंने मेरे पैरमें पट्टी बाँध दी। उस टूटे पैरके कारण बहुत दिनों तक मुझे शैयापर पड़े रहना पड़ा। ऐसी अवस्थामें भी उन्हें भोग राँधकर खिलाया है। शचीके पूतको इतनी भी बुद्धि नहीं है—जिस गाछपर चढ़े, जिस डालपर बैठकर खेले, उस गाछकी उसी डालको काटता है। वंशीको मार डालनेसे उन्हें कौन भिक्षा करकर खिलायेगा—इतनीसी भी बुद्धि जिसको नहीं है उसको लोग पण्डित कहते हैं। निमाई पण्डित बचपनमें बड़ा मूर्ख था। बुद्धि सुद्धि तो थी ही नहीं, दया माया भी नहीं थी। तो भी वंशीदास क्यों उसकी प्रीतिमें पड़ गया सो वही जाने।

इतना कहकर वंशीदास बाबाजी रोने लगे, वह प्रेम क्रन्दन रुकता ही नहीं था। कितनी ही देरके बाद आत्म सम्वरण करकर फिर कहने लगे :—

"एक दिन गौरकी इच्छानुसार उसके लिये चम्पा फूलकी माला गूँथनेको राय महाशयकी पक्की दिवालसे घिरे हुए फूलबगानके घरमें चम्पा फूल तोड़ने पेड़पर चढ़ा था। वहाँ पर भी उसने मेरेसे छेड़खानीकी, ऊँचे पेड़से नीचे गढ़ेमें गिरा दिया। नीचे प्राचीरपर लोहेकी त्रिशूल गड़ी थी, भाग्यसे उसपर नहीं गिरा, नहीं तो उस दिन शूली लग जाती। काँटोंके गढ़ेमें मुझे गिराकर वह पगला मजा देखने लगा। गढ़ेमें बाँस था, उससे कंधा फूट कर रक्त निकलने लगा। क्या करता, किसी प्रकार उस गढ़ेसे अपने आप निकला। इतना होनेपर भी चम्पा फूलोंको नहीं छोड़ा, कारण गौरको वे बड़े अच्छे लगते हैं। वे फूल लेकर मैं कुटीरमें आया और माला गूँथकर गौर निताईको पहनाई। इतनेपर भी वह क्यों मेरेसे छेड़खानी करता है ? मैंने उसका क्या बिगाड़ा है ? कौनसे पक्के धानमें हेंगा दिया है, जिससे कि मुझे शूली देना चाहता है ? गोसाई ! तुम अपने कुलके ठाकुरको एकबार पूछकर तो देखो।"

यह बात कहते कहते बाबाजी महाशयके दोनों नेत्र प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण हो गये। कुछ देरके बाद वे फिर प्रेम-गद्गद् भावसे कहने लगे:—

"मैं एक दिन गौर निताई इन दो छोकरोंके लिये पद्म फूल लेकर कुटीरपर लौट रहा था, ऐसे समय रास्तेमें गौर निताई दोनों जनोंने मेरे साथ बड़ी ज्यादती की। दोनों जनोंने मिलकर मुझे धक्का देकर एक गढ़ेमें गिरा दिया। उस गढ़ेमें बाँसकी शाखा थी। उस शाखाकी चोटसे बगल फूटकर रक्त निकलने लगा। क्या करूँ, फूल छोड़ते नहीं बना। कुटीरमें आकर गङ्गाजलसे धोकर माला गूँथी। जिसके लिये वंशी चोरी करे वही कहे 'चोर'। वंशी बड़ी मुशीबतमें पड़ गया। इतना तो वंशीसे काम लेते हैं तो भी दया मायाकी गन्ध भी नहीं है। वंशी बहुत मूर्ख है जो इतनी मार खाकर भी उनका काम करता है। वंशी बेहया है, उसको मौत भी नहीं आती।"

आज बाबाजी महाशयके मनमें बड़ा आनन्द है। वे अपने मनकी सारी बात खोलकर कह रहे हैं। वहाँ उनके और मेरे सिवाय और कोई नहीं है। प्रेमगद्गद् भावसे कही हुई उनकी बातें मेरे प्राणोंमें मधुवर्षण कर रही थीं। बाबाजी महाशय अभी भी ठाकुरजीके वर्त्तन माँज रहे थे। यही उनका प्रातः कृत्य है। केवल थोड़ेसे जलसे इतने सुन्दर तरीकेसे वर्त्तन माँजनेका कायदा उनके सिवाय और कोई नहीं जानता यह देखनेकी चीज है। वे शंख घण्टादि भी प्रतिदिन माँजकर परिष्कार करते हैं। इन सबमें दो घण्टेसे भी अधिक समय लग जाता है। वे सब समय लीला स्मरण मननमें रहते हैं। उनको माला जप करते मैंने कभी नहीं देखा।

× × ×

एक दिन भद्रवेशधारी एक भक्त आ उपस्थित हुए। वे बाबाजी महाराजको प्रणाम करकर चले जा रहे थे उसी समय बिना पूछे मुझे देखकर उन्होंने वंशीदास बाबाजी महाराजकी एक अपूर्व लीला-रङ्ग-कथा मुझे सुनाई—

"कुछ दिन हुए वंशीदास बाबाजीकी भजन कुटीरसे उनकी ठाकुर सेवाकी पीतलकी पतीली कोई चोरी करकर बाजारमें बेचकर उन पैसोंसे इलिश मत्स्य खरीदकर खा गया । सिद्ध बाबाजी महाराजकी अन्तर्दृष्टिसे उनको यह संवाद मिल गया । बाहरसे वे नित्यानन्द प्रभुके सख्य रसके साधक हैं । एक दिन उक्त भक्तके सन्मुख अपनी कुटीरके भीतर तमाखू सेवन करते हुए अपने सख्य रसके पात्र निताई-गौरसे गाली-गलौज कर रहे थे—"तुम्हारी इलिश मत्स्य खानेकी इतनी इच्छा थी तो मछुएके घर क्यों नहीं जन्म लिया ? बामनके पूत होकर तुम्हारी ऐसी दुर्बुद्धि क्यों हुई ? घरकी पतीली चोरीकर बेचकर इलिश मत्स्य भाजा खानेसे तुम्हारी जाति भ्रष्ट होगई । प्रायश्चित किये बिना मैं तुमको छूऊँगा नहीं' ।" इस प्रकार सख्य रसके साधनमें वंशीदास बाबाजी पारङ्गत हैं । वे अपने गौर निताईके साथ इस प्रकारके कितने लीला-रङ्ग करते हैं उनकी कोई सीमा नहीं ।

× × ×

वंशीदास बाबाजीकी ठाकुरसेवाकी भोग रन्धनकी और वर्त्तन माँजनेकी परिपाटीमें एक अपूर्व चमत्कार है । ये सेवा सिद्ध महापुरुष हैं । अष्टप्रहर गौरलीलाके स्मरण-मननमें लगे रहते हैं । रात्रिको सोते नहीं, नदिया नागरी भावमें गुन-गुन गाते रहते हैं । भजन कुटीरको ताला नहीं लगाते । पूछने पर बताया—"घरका चोर चोरी करे तब ताला लगाकर क्या होगा ? घरके चोरके आगे ताला बन्द कर देनेसे घरमें ही मल-मूत्र त्यागकर अपवित्र कर देंगे । एक तालेकी तीन चाबी हैं जो निताई, गौर, गदाधर—तीन छोकरोंके पास हैं । मैं क्या करूँ ? उनकी जो खुशी हो सो करें ।"

× × ×

एक दिन मैंने देखा कि बाबाजी महाराजके बालगोपालके शरीरपर इस शीतकालमें भी वस्त्र नहीं है । पूछनेपर उनने बताया—"इस बालकका इन्दुर (चूहे) के साथ बड़ा भाव है, शरीरका कपड़ा इसने अपने बन्धु इन्दुरको दे दिया है, मैं क्या करूँ ?" मैंने कहा—"गोपाल बालक है । छोटे बालक इस प्रकार किया ही करते हैं । आप अपने गोपालको एक गात्र वस्त्र और दे देवें ।" उत्तर मिला—"मेरी उम्र बीत गई । जहाँसे ला सके ये अपने शरीरका कपड़ा ले आवे; नहीं तो शीतमें मरे ।" मैंने कहा—"अच्छा मैं दूँगा ।" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं देने नहीं दूँगा ।" मैंने और कुछ कहनेका साहस नहीं किया ।

वे और बोले—"अबकी मेरे गौर चाँदको इन्दुर-दलन-लीला नवद्वीपमें प्रकट करनी होगी । पूर्वलीलामें कालीय-दमन-लीला करके यशोदानन्दनने बड़ी बहादुरी कमाई थी । अबके यह भार शचीनन्दन पर पड़ा है, देखूँ मेरा गौर कैसा बहादुर निकलता है ?" बाबाजी महाराजके भजन कुटीरमें चूहोंका बड़ा उत्पात था । गोपालके गात्र-वस्त्र चूहे नित्य ले जाया करते और सेवाका द्रव्य आदि सब नष्ट कर देते थे ।

× × ×

एक दिन उन्होंने बताया कि निताईने उस दिन मुझे इस बरामदेसे धक्का देकर नीचे गिरा दिया । कैसे गिराया और फिर कैसे उठाकर ठीक वहीं बैठा दिया इसका मुझे कुछ पता नहीं लगा । आश्चर्य यह कि न कहीं चोट लगी और न ही कोई शरीरमें दर्द हुआ । इस प्रकार निताई मुझे तङ्ग करता है । मैं उनकी मायामें फँसा पड़ा हूँ । मेरी कितनी ही लाञ्छना करे तो भी उसको छोड़कर नहीं जा सकता ।

× × ×

मन चोराकी बातका प्रसङ्ग उठाकर एक दिन मैंने कहा—"महाराज! आपका गौर तो चोरोंका शिरोमणि है, लेकिन इस चोरोंके शिरोमणिको भी चोर चुराकर ले गया ।" उन्होंने हँसते हुये उत्तर दिया—"वह मेघमाली एक दिन मेरे गौरको चुराकर ले गया था । मेरे गौर निताई उन दिनों गौर चाँदके अखाड़ेमें रहा करते थे । एक दिन मैं प्रातः भिक्षाके लिये निकला ही था कि एक बालक मेरे गौरको चुराकर लेगया । लौटकर मैंने देखा कि मेरे गौर नहीं हैं । बहुत खोजा, हो हल्ला मचाया तब किसीने बताया कि एक बालक आया था जो गङ्गाजीकी तरफ गया है । टूटे पैरसे लँगड़ाता लँगड़ाता दौड़कर गया तो देखा कि उस बालकके साथ गौर प्रेमसे खेल रहे हैं । मुझे देखकर बालक भयके मारे भाग छूटा । मैं अपने गौरको छातीसे लगाकर ले आया ।" इतना कहकर वे गुनगुनाने लगे :—

अद्यापिओ सेइ लीला करे गौरा राय ।
कोन कोन भाग्यवाने देखिबारे पाय ।।

मेरी वाचालता

एक दिन मैंने पूछा—"बाबाजी महाराज ! पुकारनेसे निताईचाँद पार लगा देते हैं ।" इतना सुनते ही वे हँसते-हँसते प्रेम परिपूरित वाष्पाकुल नयन कोरोंसे मेरी ओर देखते हुए कहने लगे—"पूर्व बङ्गालके लोग निष्कपट भावसे मेरे निताईचाँदको पुकारते हैं, इसीलिये निताईचाँद उनको पद्मा पार कराकर नवद्वीपमें ले आते हैं । जब यहाँ नवद्वीपमें गौराङ्गका आविर्भाव हुआ था तब भी मेरे निताईचाँदने यही काम किया था—यही पार लगानेका काम । चट्टग्राम, श्रीहट्ट आदि स्थानोंसे पद्मानदी पार करा कराकर निताईचाँद बहुत लोगोंको नवद्वीपमें लाये थे, वे अभी भी वही लीला करते हैं । निताईके इस अपूर्व फन्देको कौन समझ सकता है । ये पूर्व बङ्गालसे आकर जितने बङ्गाली नवद्वीपमें घर बनाकर रहते दिखाई दे रहे हैं, पद्मा पार कराकर मेरे निताईचाँद ही उन सबको यहाँ लाये हैं । उन्हींके आदेशसे पद्माका बाँध टूटता है और मेरे निताईचाँद लोगोंके घर-द्वार पद्माके गर्भमें डाल देते हैं । नवद्वीपमें सियाकुलके काँटोंके बहुतसे वन हैं । एक बार ये सब काँटे पूर्व बङ्गालके लोगोंके कपड़ोंमें लगनेपर फिर उनका छुटकारा नहीं, छुटानेपर भी नहीं छूटते । एक बार मेरे निताईके चक्करमें

फँस जानेके बाद छटपटाकर नदियाकी रजमें लोट-पोट होने लगते हैं। निताई खेवैयेकी पुकार और पापाखाली पद्मापार—ये शचीके इस पूतके तमाशे हैं—दुष्ट छोकड़ा बड़ा मतलबी है—बड़ा चालाक है।

मैं बाबाजीकी बातें सुनकर अवाक् रह गया। मुझे और बोलनेकी स्फूर्ति नहीं हुई। देर भी बहुत हो गयी थी। मैं उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बाजार आया और वहाँसे संतरा और केला खरीदकर उनकी कुटिया पर भिक्षा पहुँचा आया। उस समय तक भी बाबाजीका वर्त्तन माँजना समाप्त नहीं हुआ था।

वंशीदास बाबाजीसे एक दिन मैंने गम्भीर भावसे जिज्ञासा की—"बाबाजी महाराज! आपका शिष्य बनकर आपकी सेवा करनेकी मेरी बड़ी इच्छा है। क्या आप मेरी यह इच्छा पूर्ण करेंगे?" बाबाजी यह बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहे मानों कुछ सोच रहे हों। फिर तीन बात बोले—"भय, दुःख-कष्ट और कण्टक।" इसका अर्थ न समझकर हाथ जोड़कर मैंने फिर निवेदन किया कि "इसका अर्थ समझा दीजिये। उत्तर मिला—"इस मार्गमें बड़ा भय है, विषम कष्ट है और पद पद-पर कण्टक हैं।" उन्होंने और जोर दिया—"ये काँटे बबूलके हैं, पद पदपर चुभेंगे तथा सियाकुलके काँटे शरीरको छलनी कर देंगे। निमाई पण्डित कण्टकनगरमें जब सन्यास लेकर वैराग्य साधन करनेमें जो काँटोंके बीच फँस गये थे, उसका विचार आते ही भय लगता है, उनके लिये प्राणोंमें बड़ा दुःख होता है, मनमें बड़ा कष्ट पाता हूँ।"

यह उत्तर सुनकर मैं मन ही मन अपने पापी हृदयके इस कपटपूर्ण प्रश्नकी उपजके लिये मर्मान्तिक कष्ट अनुभव कर रहा था। पर दुर्भाग्य देखिये कि मेरी कपट बुद्धिका अन्त नहीं हुआ।

मैंने उनसे फिर कहा—"बाबाजी महाराज! मुझे कुछ मन्त्र उपदेश दीजिये।" वे फिर गम्भीर हो गये। मैं कपटी और उच्छृङ्खल—वे सरल साधु-पुरुष एवं सहिष्णु। साधु और असाधुके इस विरोधी भावमें सामञ्जस्य करनेकी क्षमता वाला व्यक्ति ही वास्तविक साधु है। वंशीदास बाबाजी इस विषयमें विशेष दक्ष थे। कुछ देरके बाद उन्होंने उत्तर दिया—"लोकनाथ गोस्वामीने नरोत्तम ठाकुरको उनकी गुप्त सेवासे सन्तुष्ट होकर मन्त्रोपदेश दिया था। मलत्याग करनेके मैदानमें खड़े होकर उनके 'हरे कृष्ण' नाम उच्चारण करते ही ठाकुर महाशयने उसीको अपने कानमें मन्त्रोपदेश मान लिया था। इस प्रकार कृपा प्राप्तकर उन्होंने प्रेमानन्दसे उसी मैदानमें खड़े होकर नृत्य किया था।"

बाबाजी महाराजकी सभी बातें निगूढ़ और भाव समाहित होती थीं। वे जो 'जय शचीनन्दन' कहकर आशीर्वाद करते हैं वहीं उनका मुखोद्गीर्ण मन्त्रोपदेश

समझना होगा--यही इसका भावार्थ है। मुझे और कुछ बोलने का साहस ही नहीं हुआ। अपनी वाचालताका यथेष्ट परिचय दे चुका था।

ठाकुरजीका मन्दिर-निर्माण

एक दिन ठाकुरजीके अङ्ग-रागके निमित मालञ्च पाड़ाके पञ्चानन आचार्यका नाम उन्होंने स्वयं लिया। मैंने उत्तर दिया कि उनसे मिलकर पता लगाऊँगा। वे बोले--"ठाकुरजीको कहाँ विराजकर अङ्ग-राग सम्पन्न हो, यही सोच रहा हूँ, क्या करूँ।" इतना कहकर भजन-कुटीरके निकट एक ईटोंकी भरी नींव दिखाई और बोले--"मैंने अपने हाथोंसे इसकी जुड़ाई की है, अब और शक्ति नहीं रही, क्या करूँ।" भाव था कि यदि यहाँ एक छोटी-सी कोठरी बन जाय तो ठाकुरजीको वहाँ ले जाकर अङ्ग-रागका कार्य हो सके। मैं इसके लिये चेष्टा कर रहा हूँ। पर, भजन-मन्दिरके संलग्न भूमि खण्डका जीर्णोद्धार हुये बिना नयी कोठरीसे क्या लाभ होगा? बाबाजीसे जिज्ञासा करनेपर वे बोले--"मुझे तो इसका कुछ पता नहीं।"

अन्य एक दिन विदाके समय मैंने बाबाजीसे कहा--"आपके ठाकुरजीके अङ्ग-रागका सब वन्दोबस्त कर दिया है। आपकी अनुमति होते ही आपके भजन-कुटीरमें ही यह कार्य एक सप्ताह या दस दिनमें सम्पन्न हो जायगा।" वे इस सम्बन्धमें कुछ नहीं बोले, "केवल क्या करूँ, क्या करूँ, क्या करूँ" यही तीन बार कहा। उनकी इच्छा थी कि वर्तमान कुटीरके सामनेकी भूमिमें छोटेसे कुटीरकी ईटोंकी बुनियाद जो उन्होंने अपने हाथोंसे डाली है, वहाँ कुटीर बन जाय तो उसमें ठाकुरजीको ले जाकर अङ्ग-राग हो।

कुछ ईंटें तो किसीने दी हैं; एक गाड़ी ईंट बाबाजी महाशयने स्वयं तीन रुपये देकर खरीदी हैं। ठाकुर-सेवाके वर्तन माँजनेका सौभाग्य जिनको बाबाजीने प्रदान किया है उन महानुभावसे अनुसन्धान करने पर मुझे इस बातका पता लगा। मैंने पूछा कि बाबाजीको रुपये कहाँसे मिले? उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे साथ उज्जयिनीके साधु महाराज आये थे उन्होंने दो रुपये ठाकुरजीके भेंट चढ़ाई थी और दूसरे लोग भी कुछ-कुछ चढ़ा जाते हैं। उन्हींसे ईंटें खरीदी गयीं। कोई सहृदय गौर-भक्त यदि दो-तीन हजार ईंटोंका मूल्य दान दे दे तो बाबाजी महाराजके उस नये कुटीरका निर्माण हो जाय। इसके बिना बाबाजी महाराज अपने ठाकुरका अङ्गराग और पुराने भजन-कुटीरका जीर्ण संस्कार करानेको राजी नहीं होते हैं। अङ्गरागमें भी १०-१५ रुपये खर्च हो जायेंगे।

× × ×

श्रीमन्दिर-निर्माण-कार्य बहुत दूर तक अग्रसर हो गया था। यह व्यय-भार उठाने का सौभाग्य किसको मिला है—यह जाननेकी मेरी इच्छा हुई। मैंने बाबाजी

महाराजसे जिज्ञासाकी तो वे बोले—"बिहारी।" बिहारी कौन ? पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं जानता, राणीरचमें उसका घर है।"

'श्रीपत्रिका' में बाबाजी महाराजकी कथाका प्रचार होनेसे बाहरके लोग उनके दर्शन करने आने लगे। ये ही लोग उनके ठाकुरजीके श्रीमन्दिरके निर्माण-कार्यके लिये स्वेच्छया अर्थ सहायता कर रहे हैं। यह बिहारी भी उन्हींमेंसे कोई एक हैं। बादमें अनुसन्धान करनेसे पता लगा कि इनका नाम श्रीरासबिहारी साहा है। निवास स्थान खुलना जिलेमें दौलतपुरके निकट है। इन्होंने श्रीधाम नवद्वीपमें राणीरचमें एक छोटा-सा घर किया है वहीं कभी-कभी आकर रहते हैं।

सामान कहाँसे आता है ? चूना, सुर्खी, ईंटा, लकड़ी कौन दे जाता है ? बाबाजी इन सबकी खबर नहीं रखते। मैंने पूछा—"सब चीजोंके दाम दे दिये गये हैं ?" उत्तर मिला—"मेरा निताई जाने, मुझे यदि देनदार होकर दिवालिया हो जाना पड़ेगा तो निताई-गौरको खाना नहीं मिलेगा—इसको क्या वे नहीं जानते ?"

विदाके समय डरते-डरते मैंने पूछा—"बाबाजी महाराज ! आपके ठाकुरजीके श्रीमन्दिर निर्माणके लिये विहारीने क्या दिया है ?" उत्तर मिला—"१५०) डेढ़सौ रुपये उसने निताईको दिये हैं, निताई मन्दिर बना रहा है। मुझे कुछ पता नहीं। निताईका काम निताई ही जानें। मैं कुछ नहीं जानता।" बाबाजी महाराज उस (बिहारी) से बात भी नहीं करते किन्तु वे बाबाजी महाराजको संतुष्ट करनेमें सदा व्यस्त रहते हैं। उनके भाई बंकू बिहारी साहाने भी इस मन्दिर निर्माणके लिये १००) सौ रुपये दिये हैं। (श्रीरासबिहारी साहाने २०० दो सौ रुपये बादमें और भी दिये थे)

ठाकुरजीका मन्दिर बाबाजीके अपने विचारके और अपनी योजनाके अनुसार निर्मित हो रहा था। वे स्वतन्त्र पुरुष हैं। वे किसीका कोई परामर्श या युक्ति नहीं सुनते। दातागणोंने रुपया दिया और छुट्टी। वे उनके मतसे कोई काम नहीं करते, उनसे बात पर्यन्त नहीं करते। बीच-बीचमें वे मुझे कहा करते हैं—"ये लोग कागजके टुकड़ेसे मुझे ठगना चाहते हैं क्या मैं कोई बच्चा हूँ ?" मैंने स्वयं देखा है कि नोट और रुपये भजन-कुटीरके बरामदेमें पड़े रहते हैं, लेकिन बाबाजी उधर दृष्टिपात भी नहीं करते। राज-मजदूर व बढ़ई-मिस्त्री कितना ठगते होंगे—उस ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। चूना, सुर्खी, ईंट, लकड़ी आदिका कितना क्या देना बाकी है, उधर उनकी दृष्टि ही नहीं जाती। वंशीदास बाबाजी, चक्रवर्ती महाराजकी तरह लोगोंपर हुक्म कर देते हैं। स्वयं भी अपने हाथसे गङ्गाजीसे माटी काटकर सिरपर टोकरियोंमें ढोकर मन्दिरके सामनेका गड्ढा भरते हैं। रामचन्द्रपुरके एक निष्किञ्चन बाबाजी जगबन्धुदास भी उनके इस काममें योग देते हैं।

जगबन्धुदास एक विरक्त वैष्णव हैं। रामचन्द्रपुरसे नित्य आकर दोनों समय बाबाजी महाराजकी टहल और ठाकुर-सेवामें सहायता करते हैं। वे बड़े परिश्रमी हैं,

बाबाजी महाराजके साथ मन्दिरके प्राङ्गणकी मिट्टी उठाते हैं, रीति अनुसार कुली मजदूरका काम करते हैं, यह मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। भजननिष्ठ विरक्त वैष्णव द्वारा इस प्रकारकी वैष्णव-सेवा देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन वंशीदासजी महाराज उनसे बात तो क्या उनकी ओर दृष्टि भी नहीं करते। जगबन्धुदास एक दिन मुझे बोले—"प्रभु! बाबाजी महाराज मुझसे तो कोई बात नहीं करते, आपसे तो अनेक बातें करते हैं।" मैं क्या उत्तर देता? चुप रह गया। श्रीजगबन्धुदास वृन्दावन वासी विरक्त वैष्णवचूड़ामणि श्रीरामकृष्णदास महाराजजीके मन्त्र शिष्य हैं। वे अपने गुरुके आदेशसे नवद्वीपमें जाकर रहने लगे हैं।

× × ×

मेरे अनुगत श्रीमान् महेन्द्रलाल वसुको भी बाबाजी महाराज बड़ी कृपा-दृष्टिसे देखते हैं। उन्होंने उनके भजन कुटीरका भूमि-खण्ड खरीदकर दिया था।

वंशीदास बाबाजीने स्वयं इस मन्दिरकी नींवकी जुड़ाईकी थी, वह कच्ची जोड़ाई थी, तो भी उसको तोड़ने नहीं देते, उसीके ऊपर पक्की जोड़ाईसे मन्दिरका निर्माण हो रहा है। गङ्गा-गर्भमें इस मन्दिरका निर्माण हो रहा है, वर्षाकालमें यह स्थान डूब जाता है—उधर बाबाजीका भ्रूक्षेप भी नहीं होता। भोगरंधनका घर, श्रीमन्दिर और बगलमें एक महन्त व गोस्वामी खण्ड (वैष्णव खण्ड) बन रहा है। इस खण्डमें (वैष्णव) गोस्वामी और महन्तगण आकर बैठेंगे। बाबाजी बोले कि उनके निताई गौरके मन्दिरका एक नाट्य (नृत्य-कीर्त्तन) मन्दिर भी होगा। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। इन २२ वर्षोंमें उनके ठाकुर इसी नवद्वीपमें कभी वृक्षतले, कभी नालेकी छोटी पुलियाके नीचे, कभी रास्तेमें कूड़ेके स्थानपर, कभी किसी दूसरे मन्दिरके द्वारपर विभिन्न स्थानोंमें भटकनेके बाद अब अपने मन्दिरमें बैठेंगे। वंशीदास बाबाजीके गौर-निताई अब उनकी साध पूर्ण करेंगे। वे भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं। निष्किञ्चन बाबाजीकी एक ओर इस श्रीमन्दिरके निर्माणकी एक मात्र वाञ्छा और दूसरी ओर उनकी अयाचित वृत्ति, दोनों परस्पर बड़ी विरुद्ध बात थीं। किन्तु निताई-गौर भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु हैं, वे असम्भवको सम्भव कर सकते हैं। निष्किञ्चन वैष्णव वंशीदास बाबाजी महाराजके ठाकुर मन्दिरका निर्माण इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है।

× × ×

बाबाजी महाराजके ठाकुरजीका अङ्गरागादि करानेका काम मेरे ऊपर ही था। उसके लिये कुछ रुपये-पैसे भी मेरे पास एकत्र किये हुए हैं। मैं जब भी उनके पास जाकर अङ्गरागादिकी बात उठाता हूँ तभी वे कहने लगते हैं कि अभी झूलन मञ्च, दोल मञ्च, नाट्य मन्दिर होने दो, पीछे अङ्गरागकी बात होगी। उनको रुपये वापस देनेकी बात करते ही वे कहने लगते हैं—"अभी रहने दो, पीछे देखा जायगा।"

बाबाजी महाराजकी आशा किस प्रकार कब और किसके द्वारा पूर्ण होगी सो वे ही जानें, मुझको बहुत सोचने-विचारनेपर भी समझमें नहीं आया। दाता रासबिहारी साहाने तो अर्थ-सहायता करते-करते अपनी असमर्थता जाहिर कर दी है। बाबाजी महाराजको बाजारमें कुछ देना भी हो गया है। इन बातोंकी चर्चा करनेपर वे कहते हैं—"गौर निताईकी इच्छा। काम उनका है मेरा नहीं।"

एक दिन नाट्य मन्दिरकी बात उठानेपर वे बोले—"मुझे नाट्य मन्दिरसे कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो गौर-निताईका नाट्य मन्दिर है, वे अपने आप करेंगे। मुझे तो वैष्णवखण्डसे प्रयोजन है, तुमलोग आते हो, मैं बैठा भी नहीं सकता, खड़ा रहना पड़ता है तुम लोगोंको। इस दुःखसे मेरी छाती फटी जाती है।" इतना कहकर उन्होंने रोना आरम्भ कर दिया। मैं बड़ी मुसीबतमें पड़ गया। मेरे लिये उनको इतना कष्ट! मैं बोला—"बाबाजी महाराज! मैं तो जीवाधम गृहस्थ हूँ, विषयका कीट, भजन-साधनसे हीन हूँ। मैं आपके सम्मुख बैठनेके लिये सम्पूर्ण अयोग्य एवं अनुपयुक्त हूँ। आप मेरे लिये इतने कातर क्यों होते हैं? आपका वैष्णव खण्ड बननेपर भी मैं उसमें वैष्णवोंके साथ बैठनेका अधिकारी नहीं हूँ। मेरा स्थान तो वैष्णवोंके चरण तले है।" वे कुछ देर नीरव रहे, फिर केवल एक बात बोले—"अहो! क्या तुम्हारा दैन्य है, वैष्णव पहचाननेकी शक्ति देवतामें भी नहीं है, तुमलोगोंको पहचानना अति कठिन है।" मैं और क्या कहता, दण्डवत् प्रणाम कर विदा ग्रहण की।

बाबाजीका तीर्थ-भ्रमण

बाबाजी महाराज श्रीधाम नवद्वीपमें आकर कुछ दिनों निवास करनेके बाद एक बार श्रीपार रामकेलि गये और फिर खेतरी भी गये थे। रामकेलि श्रीरूप-सनातन गोस्वामीपादद्वयकी लीला-भूमि है और खेतरी ठाकुर नरोत्तमकी। सबसे पहले प्रियाजीके साथ श्रीगौराङ्ग मूर्ति प्रतिष्ठा खेतरीमें ठाकुर महाशयने की थी, एवं श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग युगल-सेवाका वैष्णव जगतमें प्रचार किया था।

कई वैष्णव मूर्तियोंके साथ बाबाजीने रामकेलिकी यात्रा की थी। सभी पैदल गये थे। बाबाजी महाराजके साथ थे उनके ठाकुर श्रीनिताई-गौर श्रीविग्रह, संवल, करङ्ग-कोपीन एवं एक पतीली और उसीमें ठाकुर-सेवाके लिये उपयोगी कुछ सामग्री थी। शीतकालके दिन थे, छिन्न कन्था ले जाना भूल गये थे। कटवा (काञ्चननगरी) पर्यन्त जानेके बाद बाबाजी अकेले रह गए। गङ्गापार करके वर्द्धमानकी तरफ जानेका संकल्प करके उन्होंने अपने निताई गौरको दोनों बगलमें लिया और हाथमें पतीली लेकर गङ्गाजलमें उतरे। चलकर पार करनेका विचार था, कारण उस समय गङ्गाजीमें जल बहुत कम था। जब वे छाती पर्यन्त गङ्गाजलमें पहुँचे, तब

गङ्गाजीकी धारामें उनके हाथकी पतीली बहनेका ढङ्ग होने लगा। आगे गहरा जल देखकर उन्हें भय होने लगा कि कहीं निताई-गौराङ्गकी रक्षा न हो सके। अब क्या करें—सोचने लगे। तब निताईने कहा—'गौरको सम्हालो' और गौरने कहा—'निताईको सम्हालो'। पतीली बहते-बहते आगे चलने लगी। बाबाजी बोले—"उस समय मैंने दोनों हाथोंमें दोनों ठाकुरोंको उठाकर ऊर्ध्व वाहु होकर 'जय शचिनन्दन' कहना आरम्भ किया। तब निताई कहने लगा कि पतीली सम्हालो। मैं क्या करता, जल्दी-जल्दी जाकर पतीलीके ऊपर निताईको बैठाया। डुबकी मारकर किसी प्रकार गौर निताईको किनारे लाया।"

इसके बाद पैदल चलकर वे काईग्राम आये और वहाँके जमींदार बाबूकी ठाकुरवाड़ीमें रातको आश्रय लिया। शीतकाल था। ठाकुरजीका भी कन्था नहीं था, उनका अपना भी नहीं था। बाबाजीने निताई गौरको छातीसे लगाकर सारी रात ठण्डेमें उसी ठाकुर मन्दिरकी चाँदनीमें काटी। किसीने कोई खबर नहीं ली, दूसरे दिन दोपहर तक भी कोई खबर नहीं ली गयी। बाबाजी महाराजकी अयाचित वृत्ति थी। वे किसीके मुखापेक्षी नहीं होते थे। वे वहाँसे और किसी ग्रामके लिये आगे बढ़े। रास्तेमें कोई एक व्यक्ति उन्हें आदर सहित अपने घर ले गया और एक नया कन्था दिया, जो गौर निताईके लिये शीत वस्त्र हुआ। बाबाजीने प्रेमानन्दसे गद्गद् होकर उनको आशीर्वाद दिया। इसके उपरान्त निकटवर्ती एक अन्य गाँवमें जाकर भिक्षा करके एक वृक्ष तले बैठकर, पाक बनाकर गौर निताईको भोग लगाया। वह रात्रि वहीं बिताकर दूसरे दिन पैदल यात्रा करके गयेशपुर जाकर पहुँचे। यह स्थान श्रीनित्यानन्द वंशीय गोस्वामियोंकी एक गद्दी है। वहाँ जाकर एक गोस्वामीके यहाँ अतिथि बने। निताई गौर गोस्वामी ब्राह्मणोंके दलमें मिलकर उनका अन्न-ध्वंश करने लगे। 'अन्न-ध्वंश' बाबाजी महाराजकी शब्द रचना है, अर्थात् वे भी प्रसाद पाने लगे।

इसके कई दिनोंके बाद अतिकष्टपूर्वक पैदल यात्रा करते हुए बाबाजी महाराज रामकेलि ग्राम पहुँचे। अपने निताई गौरके साथ एक मालती वृक्षके नीचे उन्होंने आसन लगाया। उसी वृक्षके नीचे रात्रिवास, ठाकुरसेवा, भोगरन्धन इत्यादि होने लगा। वह मेलेका समय था। चारों तरफ लोगोंका जमघट था। नित्य पंक्तिभोजन होता था। लेकिन बाबाजी महाराजने कभी पंक्तिमें बैठकर प्रसाद नहीं पाया। वे बोले—"जो प्रेमसेवा करते हैं उनके लिये अपने हाथों रन्धन करके ठाकुरजीको भोग देना कर्तव्य होता है।"

बाबाजी महाराजने बताया कि वहाँ पहुँचते ही जलवृष्टि होने लगी। मेलेके सभी लोग आश्रमोंमें व कुटीरोंमें आश्रय लेने लगे, लेकिन गौरनिताई उस वृक्ष तलेको छोड़कर कहीं नहीं गये। सारी रात ठाकुरजीको छातीसे चिपटाकर उस कन्थेसे ढककर बाबाजीने उसी वृक्ष तले रात्रि काटी।

इस मालती वृक्षके तलेकी एक घोड़ेके उत्पातकी एक और घटना बाबाजीने बताई। वे मेमनसिंह देशवासी बङ्गाली हैं। उनके ऐसे उच्चारण होते हैं कि वहाँके लोगोंकी बात समझनी कठिन होती है। वे बोले—"उस मालती वृक्षके नीचे एक गोरा आया, उसने बड़ा उत्पात मचाया और गौर निताईको गिरा दिया।" मैंने पूछा—"क्या अँग्रेज गोरा साहब ?" तब वे बोले—"ना, ना, चार पैर वाला गोरा, जिस गोराके ऊपर मनुष्य सवारी करता है।" मुझे तो बड़ी हँसी आई, किसी प्रकार मुँह घुमाकर हँसीको रोक सका।

इस प्रकार कुछ दिन रामकेलिमें तीर्थवास करके वे जयदेवका मेला देखने केन्दुविल्व ग्राम गये और दो महीनेके बाद नवद्वीप लौटे।

× × ×

दूसरे वर्ष वे ठाकुर नरोत्तमदासके पाटवाड़ी खेतरी गये। उस साल भी गौर-निताई उनके साथ थे। उन्होंने अकले ही पैदल यात्रा की थी। ठाकुर नरोत्तमदासके पाट श्रीखेतरी जाकर बाबाजी महाराजको बड़ा आनन्द हुआ था, कारण कि वे भी ठाकुरके परिवारके हैं। उन्होंने बताया था कि प्रियाजीके साथ श्रीगौराङ्ग विग्रहके दर्शन करके उन्होंने प्रेमानन्दमें बहुत देर तक नृत्य-कीर्तन किया था। उन दिनोंमें वे खूब कीर्तन किया करते थे। अब भी करते हैं लेकिन अकेले और निर्जनमें।

× × ×

इसके बाद एक बार वे श्रीनित्यानन्द-जन्म-लीला-स्थली श्रीपाट एकचक्रा दर्शन करने गये थे। वहाँ भी उनके साथ गौर-निताई थे। एकचक्रा तीर्थमें जाकर बाबाजी महाराजके प्राणोंको बड़ा आनन्द हुआ था। उस पुण्य-स्थानकी कथा बताते हुए प्रेमाश्रु-धारसे उनका वक्ष भीग गया। श्रीनिताईचाँदकी वही जन्म-लीला-स्थली गर्भवास, वही श्रीवंकिमचन्द्र श्रीविग्रह, वही सिद्ध वकुलवृक्षराज और उसमें सर्पाकृति वृक्षशाखा, कालीय-दमन-लीला-अभिनय, निताईचाँदकी बाललीलाकी सब पूर्वस्मृति, वहाँ सब कुछ विद्यमान हैं। बाबाजी महाराज प्रेमावेशमें एक-एक करके सभी अपने सुधा-मधुर वचनोंमें वर्णन करने लगे। हमारे कुलके ठाकुर निताईचाँदकी लीला-कथा मेरे कानोंमें मधुवर्षण करने लगी। मैं सुध-बुध खोकर सुनने लगा। मन ही मन सोचने लगा कि मेरे सौभाग्यकी कोई सीमा नहीं है। साधु-महाजनोंके मुँहसे श्रीभगवल्लीला कथा-श्रवण करना बड़े भाग्यकी बात है।

वंशीदास बाबाजी महाराज बोले—"जैसे श्रीनित्यानन्द अभिन्न-गौराङ्ग हैं वैसे ही श्रीपाट एकचक्रा भी अभिन्न नवद्वीप है। यह स्थान एकान्त निर्जन भजनका स्थान है। किन्तु दुःखकी बात है कि आधुनिक महात्मागण कोई भी वहाँ जाकर भजन नही करते। कारण, वह कठिन राढ़ देश भूमि है, वहाँ खाद्य सुख नहीं है। एकचक्रा ग्राम नवद्वीपकी तरह शहर नहीं है। इसलिये बैरागी वैष्णवगण वहाँ नहीं जाते। वहाँ

नित्य महोत्सव नहीं होते, मालपुआ भोग नहीं है। भोजनकी परिपाटी खोजने जानेसे भजन नहीं होता। भोजन और भजन बड़े ही विरुद्ध भावापन्न हैं।"

× × ×

बाबाजीने बताया—"एक बार वे अपने प्राण गौर-निताईको नवद्वीपमें छोड़कर मुर्शिदाबाद कान्दिको कीर्तनके लिये गये थे। प्राणगोपाल गोस्वामी प्रभुके मन्दिरमें अपने ठाकुरको रख गये थे। उनकी मां गोस्वामिनीने आरम्भमें इसकी स्वीकृति नहीं दी, लेकिन मैं जबरदस्ती करके छोड़ गया था। कान्दि पहुँचकर कीर्तनमें मस्त हो गया। वहाँ भी गौर-निताई मेरे साथ थे लेकिन विग्रह रूपसे नहीं। बड़ा आनन्द था। लेकिन इतने आनन्दके बीच भी मेरे सेवित विग्रहके लिये मेरे मन प्राण रोने लगे। मैं वहाँसे जल्दी-जल्दी नवद्वीप आया। प्राणगोपाल गोस्वामीकी माता ठाकुरानीने अपने ठाकुरजीको ले जानेके लिये मुझे कहा। मैं कहाँ जाता, गङ्गाजीके उभरे हुए स्थानमें आकर बैठ गया, फिर कुटिया बाँधी और दो पतीलियाँ खरीदीं। दूसरे ही दिन वे पतीलियाँ चोरी हो गयीं। अपने घरके चोरको मैं जानता था। उसको सजा दी गयी। एक दिन खानेको नहीं दिया। गाली देकर भूत उतार दिया। दूसरे ही दिन प्रातःकाल कोई एक पतीली लौटा गया। शासनका ठीक परिणाम हुआ। मैंने देखा कि वह तो निताईकी पतीली है। गौरकी पतीली गौर लावे, नहीं लानेसे उसको और भी उपवास करना पड़ेगा। निताईको खानेको दिया जायगा—गौरको नहीं। मैं जैसा कहता हूँ, वैसा ही करता हूँ। भोग राँधकर निताईको दिया तो गौरका मुँह सूखकर अनमना हो गया। चोरकी कितनी शक्ति हो सकती है? वह चुप करके बैठा रहा, इतनेमें ही एक और आदमी आकर दूसरी बड़ी पतीली भी दे गया। तब दुबारा उस पतीलीमें भोग राँधकर गौरको खानेको दिया। जैसा कर्म वैसा फल। चोरको इसी प्रकार दण्ड देना जरूरी है। इस प्रकार सदा मेरे साथ ये शैतानी करते रहते हैं। कोई ऐसा दिन नहीं आता कि जिस दिन ये कोई न कोई दुष्टता मेरेसे न करें। मैं वृद्ध हो गया। अब मेरेमें शक्ति नहीं रही। ये दोनों दुष्ट छोकरे इसको समझते ही नहीं। मैं क्या करूँ?" इतना कहकर वे परम प्रेमावेशमें डगमग करने लगे।

बाबाजी महाराजकी सख्य भावकी ये निगूढ़ बातें बड़ी मार्मिक हैं। रसिक गौरभक्तोंके लिये यह परम उपभोग्य हैं।

बाबाजीके श्रीविग्रह

मैंने एक दिन प्रश्न किया—"बाबाजी महाराज! आपके सेवित श्रीविग्रह गौर-निताई-गदाधरकी लीलाकथा बताइये जिसको सुनकर मैं कृतार्थ होऊँ।" वे बहुत देर तक चुप रहे। वे प्रायः मौनी रहा करते, कभी-कभी दो-एक बात बहुत संक्षेपमें

कह देते । लेकिन मेरे साथ उनकी जो इतनी बात होती है वह मेरे प्रति उनकी असीम कृपाकी परिचायक है । जो हो, बाबाजी महाराजने मेरे प्रश्नके उत्तरमें कहा —

"आरम्भमें मेरे गौर-निताई दो दारु मूर्तिके छोटे आकारके विग्रह थे। वैष्णवपाड़ाके तिमाथा पथपर जब मेरी भजन कुटी थी तब एक दिन मैं गौर-निताईको अकेले छोड़कर भिक्षाके लिये गया था। इतनेमें ही एक गायने कुटियामें घुसकर सेवाका द्रव्य आदि खा लिया और गौरके साथ लड़ बैठी। उसका हाथ तोड़कर उसको मिट्टीमें गिरा दिया। गौर गोपाल गोमातासे पराजित होकर अभिमानसे भूमि शैयापर सोये थे। भिक्षासे लौटकर गौरकी ऐसी अवस्था देखकर मैं दुःखित हुआ। 'ग' इसके साथ गौरका वड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। गया-गङ्गा, गो-गोप, गुरु-गोविन्द, गदाधरमें गौरकी बड़ी प्रीति है। स्वयं 'ग' है ना, इससे 'ग' के समूहमें मिलना चाहता है। जैसा कर्म, वैसा फल। 'स्वकर्म भुक् पूमान्' उसकी अपनी कही बात है, स्वयं उसपर ही चरितार्थ हो गयी। मैंने पूछा कि इसमें इतना अभिमान क्यों करते हो ? सोये-सोये कातर भावसे उसने उत्तर दिया कि हाथमें मेरे गदा नहीं है, साथमें गदाधर भी नहीं था, इसीसे एक गायने ऐसी दुर्दशा कर डाली। अब मैं स्वयं गदाधर बनूँगा। मैंने कहा कि ठीक तो है, मेरे गौर-गदाधर एक साथ तुम्हीं बनो, राधाकृष्ण एकाङ्गीभूत होकर गौर हुए हैं, अब गौर-गदाधर एकाङ्गीभूत होकर क्या नाम धारण करेंगे ? उसने उत्तर नहीं दिया। मैंने कहा—'एक बार शक्ति-शक्तिमान मिलकर बड़ी मुसीबतमें पड़ गये मालूम होते हैं, अब दुबारा वैसी इच्छा नहीं है।' तब उसने कहा—'तुम मुझे बड़ा करो और मेरी यह मूर्ति गदाधर बने। मैं गदाधर नामसे गदा धारण कर आत्म रक्षा करूँगा।' इसके बाद मैंने आदर-प्यारके साथ गौरको गोदीमें लेकर देखा कि उसका हाथ टूटा नहीं है लेकिन हाथके बाजूके ऊपरका कपड़ा फट गया अर्थात् उसकी त्वचा उखड़ गयी है। मैंने उसके हाथपर दूबके घासका रस लगाकर पट्टी बाँध दी और इसके बाद भास्कर (दारु मूर्ति बनानेवाला शिल्पी) को बुलाकर वहाँका अङ्गराग ठीक करवाया। उसी भास्कर द्वारा एक और बड़ा दारु विग्रह गौर-मूर्तिका निर्माण करवाया। ये हुए मेरे निताई-गौर-गदाधर। इनकी सेवा करते-करते मेरा जीवन चला गया, मैं इनकी मायामें पड़ा हूँ। इन्होंने मुझे अपनी मायामें फँसा रखा है। क्या करूँ, क्या करूँ, क्या करूँ।"

मैं चित्र पुत्तलिकाकी तरह बाबाजी महाराजके श्रीमुखसे यह सब कथा सुनता रहा, मानो मुझे वाह्य ज्ञान नहीं है। वहाँ और कोई नहीं था। मैं परम आनन्दका अनुभव कर रहा था और श्रीविग्रहत्रयके दर्शन अपने भावानन्दमें कर रहा था। मैंने देखा कि सिंहासनपर धातुमूर्ति श्रीश्रीराधा-कृष्ण-विग्रहद्वय और एक गोपाल-मूर्ति है। इनका इतिहास पूछनेपर बाबाजीने कहा :—

"निताई-गौर-गदाधरकी सेवा-प्रतिष्ठा करनेके दो-तीन वर्षके बाद श्रीश्रीराधाकृष्ण और गोपाल सेवा करनेका मुझे लोभ हुआ। गौरधाममें रहकर गौर सेवा किये बिना व्रजकी सेवाका लोभ नहीं होता। बाजारमें जाकर श्रीविग्रह देखते-देखते मोतीसाहाकी दूकानपर ये श्रीविग्रह देखकर मुझे लोभ हुआ। मोती भक्तिमान वैष्णव हैं। उसने ये श्रीविग्रह बिना मूल्य मुझे दे दिये। इस तरह मेरे छः विग्रह हो गए। मैं ठाकुर नरोत्तमके परिवारका हूँ, उनके भी छः विग्रह थे और मेरे भी छः विग्रह हो गये—निताई-गौर-गदाधर, राधा-कृष्ण और गोपाल। मेरी दो राधारानी हैं—एक तो गौर-हृदय-विलासिनी गदाधर, और एक कृष्ण-हृदय-विलासिनी श्रीराधा। मेरे दो ही कृष्ण हैं—गौर-कृष्ण और दो ही गोपाल हैं—निताई गोपाल। मेरे सभी युगल हैं।

× × ×

एक दिन मैंने बाबाजी महाराजके ठाकुरजीके सिंहासनपर एक नयी श्रीमूर्ति देखी। यह श्वेत पत्थरसे निर्मित एक सुन्दर श्रीविग्रह था। मैंने देखते ही उनसे जिज्ञासा की कि यह नया श्रीविग्रह कहाँसे मिला? उन्होंने हास्यमुखसे उत्तर दिया—"यह युगल किशोर हैं, एक वैष्णव साधु कल दे गये थे। (मेरे) ठाकुरजीके जो 'प्राण मोर युगलकिशोर' हैं वे ही ये श्रीविग्रह हैं। एकीभूत एवं प्रेमालिङ्गित श्रीराधामाधवके युगल विग्रह।"

मैंने देखा कि श्रीमूर्ति बहुत सुन्दर है, गठन-सौष्ठवमें मनको बड़ा आनन्द देने वाली है। मैंने कहा—"बाबाजी महाराज! अब तो आपका कार्य और भी बढ़ गया, अब दो जनोंके भोगके लिये और बर्तन चाहिये।" उत्तर मिला—"मैं तो कङ्गाल हूँ। और बर्तन कहाँ मिलेंगे? ये सब एक ही थालीमें आपसमें मिलकर अपना-अपना हिस्सा बाँटकर खा लेंगे। 'पति मोर गौरचन्द्र' एक गौरके भोगमें सबका भोग हो जाता है, पतिके साथ खानेको किस रसवतीकी इच्छा नहीं होगी?" इतना कहकर मेरी तरफ देखकर वे कुछ हँसे, उस हँसीका मर्म समझनेकी शक्ति मेरेमें नहीं है। रसिक भक्तकी रसिकता ही उसका धर्म होता है। इस रसिकतासे ही रसिक-शेखर गौर-कृष्ण वशीभूत होते हैं।

बाबाजीके परिवार और पूर्वाश्रमकी कुछ बातें

एक बार बहुत दिनोंके बाद बाबाजी महाराजके श्रीचरणोंका दर्शन करनेका सौभाग्य मिला। कारण मैं श्रीवृन्दावन चला गया था। कुशल-मङ्गल जिज्ञासा, दण्डवत् प्रणाम व 'जय शचिनन्दन' आशीर्वाद वाणी श्रवण आदि सब यथारीति हुए। बाबाजीकी भजन-कुटीरमें एक अपरिचित व्यक्ति एक तरफ बैठा बर्तन माँज रहा था। एक दो स्त्रियाँ भी दूर खड़ी देखनेमें आयीं।

और एक दिनकी बात है कि ठाकुर सेवाके बर्तन माँजते हुए बाबाजी मेरी तरफ करुणा भरी दृष्टिसे देखते जाते थे और बड़े प्रसन्न नजर आ रहे थे। मुँहमें मानो हँसी भरी थी। मुझसे बोले––"मेरा लड़का आया था, तुमने देखा नहीं ?" मैंने पूछा––"आपका लड़का कौन है ? कब आया ?" उत्तर मिला––"उस दिन इस कोनेमें बैठा जो ठाकुरजीके बर्तन माँज रहा था, वही मेरा पुत्र हरचन्द था। मुझे देखने आया था, उसके भी एक पुत्र हो गया है।" तब मैंने कहा––"तब तो आपके नाती हो गया, आप दादा बन गये।" इसपर वे कुछ हँसे। बड़े प्रसन्न थे वे आज।

× × ×

बाबाजी लोग पूर्वाश्रमकी बात नहीं बताया करते हैं। लेकिन वंशीदास बाबाजी विधि-निषेधके परे हैं। वे फिर कहने लगे––"मैमनसिंह जिलेमें पुरिया ग्राममें मेरे मामाका घर है। वहीं मेरा लालन पालन हुआ था। युधिष्ठिर मेरा ममेरा भाई है, गौरदास और कृष्णठाकुर मेरे देशके लोग हैं। दोनों बड़े वृद्ध थे, बड़े भले आदमी थे। हरचन्द्र जब ९-१० वर्षका था उस समय मैंने संसार त्याग किया था। उस समय मेरी स्त्री भी थी, ५-६ वर्षके बाद उसका देह त्याग हुआ।" ये सब बातें कहते-कहते उनकी आँखें भर गयीं। मेरे पूछने पर और भी कई बातें बताते, लेकिन उनकी हालत देखकर मैंने और कोई बात नहीं की।

दूसरे अवसरोंपर

उन्होंने एक गीत गाया। वे बोले श्रीदाम (अभिराम गोस्वामी) ने आकर नवद्वीपमें गौरको पहचानकर चौड़े किया। साथमें निताई भी थे। इतना कहकर गाना आरम्भ किया।

श्रीदामाकी उक्ति—

राधार वर्णे अङ्ग ठेके लुकाये तोर कालवरण।
एसेछिस् तुइ नादियाते, हये श्रीशचीनन्दन।
तोरे चिनेछि चिनेछि रे।
ओ तुइ नीलमणि यशोदानन्दन।
एखन तोर सोनार अङ्गे धूलि देखि केन।
बल् देखि भाइ, तोर लाइ कोथा।
एखन सोनार वरण तुइ रे,
कोथाय गेल तोर सेकाल वरण,
नदेय एसे तुइ हलि गौरहरि शचिनन्दन।

अहा क्या मधुर स्वर, कैसा कीर्तनका स्वर, कैसी प्रेम भङ्गी ! बाबाजी महाराज मानो मूर्तिमान रसकदम्बस्वरूप हैं। वैष्णवका भजन रसका भजन होता है। वैष्णव

रसिक भक्त होता है। वंशीदास बाबाजी महाराज श्रीगौरसुन्दरके परम रसिक भक्त थे।

× × ×

एक दिन वे ठाकुरजीका घण्टा माँजते-माँजते मुझे देखकर कुटीसे बाहर आये। आज उनके मनमें बड़ी स्फूर्ति दिखाई दी। बरामदेमें बैठकर अपनी स्वाभाविक स्नेहभरी दृष्टिसे मुझे निहाल करते हुए उन्होंने स्वरचित एक गान गाया :—

"ओ चाँद गौर हे !
ओ काङ्गालेर ठाकुर आमार गौर हे !
काङ्गाल बले आमाय दया कर हे !
आमि बड़इ काङ्गाल गौर हे !
गौर प्रेमेर काङ्गाल आमि जे हे !
ओ चाँद गौर हे ! आमार दया कर हे !

यह गीत गाते-गाते प्रेमावेगसे बाबाबाजी महाराजका कण्ठ रुद्ध हो गया। नयनोंसे प्रेमाश्रुधारा गिरने लगी। मैं चुपचाप खड़ा था। बाबाजी महाराजके अमृत कण्ठसे यह मधुर गौर गीत सुनकर मेरे ऊषर हृदयमें भी मानो प्रेम तरङ्गें स्फुरित हो उठीं। कुछ समयके लिये मैं आत्म-विस्मृत-सा हो गया। प्रमोज्ज्वल प्रेमरसपूर्ण बाबाजीकी श्रीमूर्तिके अङ्गोंके प्रति मेरी दोनों आँखें जैसे खड़ी हो गयीं। वह प्रेमाश्रु पुलकाबित प्रेममय श्रीमूर्ति आज भी मेरी आँखोंके सामने भासमान होरही है।

इसके बाद बाबाजीने अपने आप ही आत्मसम्वरण किया और अपने नवद्वीप आनेके समयसे लेकर अबतककी आत्म-कथा एक-एक करके बताने लगे कि किस प्रकार निताई-गौरको लेकर नाना प्रकारके स्थानोंमें रहना पड़ा और नाना प्रकारके कष्ट सहने पड़े। उन सबका वर्णन करनेसे एक बड़ा-सा ग्रन्थ हो जायगा। उन्होंने बताया कि मेरी इस भजन-कुटीरमें निताई गौर सबसे अन्तमें आये हैं, प्राणकृष्ण नामके एक व्यक्तिने यह पक्की कुटी तैयार करवा दी, महेन्द्रलाल वसुने रुपये देकर यह जमीन खरीदी थी— ऐसा सुना था लेकिन दलील किसके नाममें लिखी गयी और वह दलील कहाँ है, इसका मुझे पता नहीं, वे सब बातें निताई जाने।

बाबाजी महाराजके भजन-कुटीरकी जमीनको लेकर जमींदारके साथ कुछ गोलमाल चल रही है, एक शिशुबाला नामकी स्त्री अब खजाना भरती है, जमींदार हैं रानी रासमणि—इन सबका अनुसन्धान चल रहा है। उधर इस जमीनपर नया श्रीमन्दिर निर्माण हो गया है। बाबाजी महाराज इधर ध्यान नहीं देते। वे स्वतन्त्र पुरुष ठहरे।

× × ×

एक दिन बाबाजीने गीत गाया । महाप्रभुजीकी उक्ति :—

ओरे निताइ ! आमि गृह छाड़ि हयेछि दण्डधारी ॥
तोमरा सबे मिले वदने वल हरि ।
एक बार बल बल कृष्ण गोविन्द हरि ॥
जाओ सबार द्वारे द्वारे, (बल) हरे कृष्ण हरे हरे,
हरिदास के सङ्गे लये जाओ निताइ, तोमार हाते धरि ॥
सन्ध्याकाले फिरे एसे, बल्बे आमाय हेसे हेसे,
जगतवासी बल्चे सबे कृष्ण गोविन्द हरि ॥
वंशीदासेर बड़ आशा, (जीवेर) हय ना जे जाओया आसा,
(अकपटे) मुखे बल्ले एक बार श्रीगौराङ्ग हरि ॥

गीत गाते-गाते बाबाजीकी दोनों आँखोंमें प्रेमाश्रु छलछला आये अश्रुओंसे उनका वक्ष भीग गया । वे मेरी ओर देखकर फुफकार मारकर रोने लगे । मेरे जैसा काष्ठ पाषाण हृदय भी द्रवीभूत हो गया । उस दिन मैं भी जी भरकर रोया । बाबाजी महाराज प्रेमावेगसे और कोई बात नहीं बोल सके, मस्तक अवनत करके आँखोंके जलसे भूमितल सिक्त करते हुए अपना सेवाकार्य करने लगे । ऐसी करुण दृष्टिने मेरे जैसे कठिन हृदयवाले जीवाधमके प्राणोंको भी झकझोर दिया ।

उस दिन बाबाजी महाराजने मेरे साथ और कोई बात नहीं की । मैं चुपचाप उनकी प्रेमरसमय श्रीवैष्णव मूर्तिको आपाद मस्तक दर्शन करते-करते मनमें सोचने लगा कि ऐसी परम वस्तुका आदर करना किसीने नहीं सीखा । ये इतने दिनोंसे नवद्वीपमें निष्किंचन भावसे निवास कर रहे हैं तो भी कोई उनको पहचान नहीं सका । यह बड़े दु:खकी बात है । सभी मठ मन्दिर दालान बगीचे लेकर व्यस्त हैं । किसीको एक बार आकर भी इस श्रीवैष्णव विग्रहके दर्शन करनेका अवसर नहीं मिलता । दुर्भाग्य है कलि-जीवोंका । धन्य है कलियुगके प्रभावको । सच्ची वस्तुका आदर नहीं रहा । अब तो सब जगह कृत्रिमताका ही आदर रह गया । महाप्रभुके प्रकट कालमें उनके कन्था-करंगिया वाले साधु महात्माओंका बड़ा आदर था । वे उनको बड़ा प्यार किया करते थे ।

मंदार यात्राका मेरा सङ्कल्प

२५वीं पौष बङ्गाब्द १३३५ साल, ९ जनवरी १९२९ ई० के दिन बाबाजी महाराज महाराज वर्तन माँज रहे थे तब मैंने उनके चरणोंमें कुछ अपनी बात निवेदन करनी चाही कि मैंने सस्त्रीक मंदारके मधुसूदनके दर्शनोंके लिये जानेका संकल्प किया है और उसके लिये आपकी अनुमति लेने आया हूँ । इसको कहनेकी मैं सोच ही रहा था कि उसी समय उन्होंने अपने तीर्थ-भ्रमणकी पूर्व-कथा उठाई और कहा कि वे

भागलपुर जिलेके सुल्तानगञ्ज कहलगाँव आदि स्थानोंमें गये थे, गङ्गागर्भमें सुल्तानगञ्जमें गोपीनाथका मन्दिर है वह दर्शनीय वस्तु है । उन्होंने एक बार श्रीवृन्दावन जानेकी वासना की थी, इसीलिये पैदल सुल्तानगञ्ज तक गये थे । किन्तु वहाँ जाकर उनको नवद्वीपकी और गौर निताईकी याद आ गयी और उनका वृन्दावन जाना नहीं हुआ। ये सब बातें व्योरेवार बताईं । तब मैंने कहा कि इतनी दूर जाकर मंदारमें श्रीमधुसूदनके दर्शन क्यों नहीं कर आये ? तब उन्होंने कहा—"मंदार कहाँ हैं ? मुझे तो पता नहीं, किसीने भी उस समय मुझे यह बात नहीं बतायी । अहा ! मंदार श्रीमधुसूदनके दर्शन करने मेरे गौरचाँद गये थे, वहाँ उन्होंने ज्वर लीला-रङ्ग प्रकट किया और विप्रपादोदककी मर्यादा बढ़ाई । वह मंदार कहाँ है ?

तब मैंने मंदारका विवरण बताकर निवेदन किया कि मैं सस्त्रीक मंदार श्रीमधुसूदनके दर्शनोंके लिये जा रहा हूँ, इस पौष संक्रान्तिपर वहाँ बड़ा मेला होता है, लाखों लोग आते हैं । आप आशीर्वाद करें कि जिससे मञ्चारूढ़ श्रीमधुसूदनका दर्शन हम लोगोंके भाग्यमें हो । उन्होंने उत्तर दिया—"गोसाईं ! तुम भाग्यवान् हो, तुम्हारा भाग्य मेरे जैसा नहीं है । मैं भागलपुर सुल्तानगञ्ज जाकर भी मंदारमें श्रीमधुसूदनके दर्शन नहीं कर सका । मेरा मन्द भाग्य है । गोसाईं ! तुम जाओ और मेरी तरफसे भी दण्डवत् प्रणाम करके मधुसूदनको कहना कि यहाँ भी मेरे गौरको कभी-कभी ज्वर हो जाता है। लेकिन यहाँ वह औषधि नहीं मिलती, आधुनिक नवद्वीपके विप्रगणोंका पादोदक वह पान करना नहीं चाहता मैं क्या करूँ ?" यह कहते-कहते बाबाजी महाराजको महाप्रभुजीकी मंदारकी ज्वरलीलाकी स्फूर्ति हो आयी, उनके दोनों नयन जलसे भर आये । वे प्रेमाश्रुनयनसे मेरी ओर शुभ दृष्टिपात करके गद्गद् वचनसे कहने लगे—"तुम जाओ, तुम्हारे दर्शन करनेसे मेरा भी दर्शन करना हो जायगा ।" मैं लज्जासे अधोवदन किये दण्डवत् प्रणाम करके उस दिन वहाँसे विदा हुआ ।

मंदार-यात्रा

•

[प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी डायरीके आधार पर लिखित]

बङ्गाब्द १३३५ सालकी पौष संक्रान्तिपर श्रीमधुसूदन भगवानके दर्शन करनेको श्रीपाद हरिदासजी गोस्वामी सपत्नीक मंदार गये थे । उनके साथ उनकी भक्तिमती कन्या श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी और बङ्गलाके साहित्य समाजमें सुपरिचिता बहुग्रन्थकर्त्री श्रीमती निरुपमा देवी भी थीं । लूप लाइनसे भागलपुर पहुँचकर, वहाँसे ब्राञ्च लाइनसे मंदार जाना होता है ।

श्रीधाम नवद्वीपसे दिनाङ्क ११ जनवरी सन् १९२९ के दिन रेलगाड़ीसे प्रस्थान करके सब लोग दूसरे दिन सवेरे १०॥ बजे करीब भागलपुर पहुँचे । वहाँ स्नान, पूजा आदिसे निवृत्त हो प्रसाद पाते-पाते दोपहरके दो बज गये । श्रीमती निरुपमा देवी उन दिनों भागलपुरमें रहा करती थीं । श्रीहरिदास गोस्वामी प्रभु उनको साथ लेकर सायंकालकी गाड़ीसे मंदारके लिए चल पड़े । गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी । महिलाओंके डिब्बेमें खाली स्थान देखकर सब लोग उसीमें घुस गये । उन्हें वहाँ देखकर स्टेशन मास्टरने कहा कि या तो घूँघट निकालो या मुँह छिपाकर बैठो । तब वे सचमुच नदियानागरी बनकर रेलगाड़ीके उस डिब्बेमें रह सके ।

रात्रिको लगभग १२ बजे मंदार पहुँचकर श्रीगोपालचन्द्र भट्टाचार्यके यहाँ पहुँचे जिनपर उन्हें क्षितिकण्ठ बाबूने पत्र लिखकर दिया था । लेकिन वहाँ जगह भर जानेसे उन्होंने उनके लिए श्रीचन्द्रशेखर बाबूके यहाँ एक कमरेका प्रबन्ध करके उन्हें ठहरा दिया और बाजारसे कुछ भोजन सामग्री मँगाकर व्यवस्था कर दी । इस तरह रात्रि किसी प्रकार आरामसे कट गयी ।

दूसरे दिन सवेरे श्रीगोपालबाबूके यहाँ जाकर मन्दार पर्वत जानेकी और श्रीमधुसूदन भगवानके दर्शनोंके लिए दो मील बैलगाड़ीमें चलकर जानेकी व्यवस्था की गयी । इसके बाद सारा सामान पण्डाजीके यहाँ रखकर सबने मन्दार पर्वतकी यात्रा की । बहुत भीड़ होनेसे रास्ता भी भुला गया । इस प्रकार दोपहरके बाद लगभग दो

बजे मंदार पर्वत पहुँचना हुआ। सामान आदि यथास्थान रखकर स्त्रियाँ तो पर्वतपर गयीं और श्रीगोस्वामी प्रभु दीदीके साथ नीचे ही रहकर श्रीमन्महाप्रभुका नाम स्मरण करते रहे।

तीसरे पहर लगभग चार बजे हाथीकी सवारीपर श्रीमधुसूदन भगवानकी शोभायात्रा निकली। मञ्चपर विराजमान श्रीमधुसूदन भगवानके दर्शनोंमें भी बड़ी कठिनाई हुई, फिर भी दर्शन अच्छी प्रकार हो गए। और उसी दिन रातको सब लोग भागलपुर आ गये। रात बारह बजे करीब भागलपुर स्टेशनपर गाड़ी पहुँची। उस समय वहाँ कोई सवारी न मिलनेसे मजदूरके सिरपर सामान रखकर सब पैदल ही नये बाज़ारकी ओर चल पड़े। अन्धकारमय गम्भीर रात्रिमें गोस्वामी प्रभु सामान लिए हुए मजदूरके साथ अग्रसर हुए तो पीछे स्त्रियाँ अकेली राह भटकने लगीं। किसी प्रकार गौराङ्गने उन्हें बचाया। रातको नये बाजार पहुँचकर वहाँ विश्राम किया।

दूसरे दिन श्रीराधारमण बाबूके देवालयमें दर्शन किये गये और रात बारह बजेकी गाड़ीसे चलकर अगले दिन दोपहरको नवद्वीप पहुँचे।

श्रीमन्महाप्रभुजीने गया जाते हुए मार्गमें इसी मंदार पर्वतपर श्रीमधुसूदन भगवानके दर्शन किये थे। यहाँपर उन्होंने दो लीलाएँ की थीं। एक तो ज्वरलीला और दूसरी विप्रपादोदक-पानलीला। श्रीचैतन्य भागवतमें इस लीला-कथाका वर्णन है।

श्रीगोस्वामी प्रभुका मंदार जानेका प्रधान उद्देश्य था वहाँ श्रीमन्महाप्रभुजीका कोई स्मृति चिह्न स्थापन करना। भागलपुर जिलेमें बाँका महकमाके लक्ष्मीपुरके जमींदारकी जमींदारीमें यह मंदार पर्वत अवस्थित है और श्रीमधुसूदन भगवानकी सेवाका व्यय भी जमींदार सरकार द्वारा ही होता था। अब यह जमींदारी ऋणकी जगह दरभङ्गा महाराजके यहाँ बारह वर्षके लिए बन्धक थी। श्रीगोस्वामी प्रभु दरभङ्गा महाराजके मैनेजर नदियाके श्रीचाँद दत्त एवं मंदार पर्वत निवासी नवद्वीपवासी श्रीयुक्त गोपालचन्द्र भट्टाचार्य आदि बङ्गालियोंसे मिलकर मंदारमें श्रीमन्महाप्रभुजीके श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा और सेवा सम्बन्धमें परामर्श एवं आलोचना करके आये।

मंदार पर्वतके नीचे बौंसी गाँव है। वहाँ श्रीमधुसूदन देवकी श्रीमूर्तिकी सेवा गरीब पण्डोंके ३०-३५ घरों द्वारा होती है। छोटे-से श्रीमन्दिरमें श्रीमधुसूदन भगवानकी पत्थरसे निर्मित चतुर्भुज विष्णुमूर्ति विराजमान है। ये बहुत प्राचीन विग्रह हैं। शास्त्रोंमें लिखा है कि जिस प्रकार रथारूढ़ श्रीजगन्नाथ देवके दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता वैसेही पौषकी संक्रान्तिके दिन मंदार पर्वतपर मञ्चारूढ़ श्रीमधुसूदनके दर्शनोंसे भी 'पुनर्जन्म न विद्यते'।

इस दिन मंदारमें लाखों लोगोंका समागम होता है। एक बड़ा मेला लगता है। बौंसी गाँवसे मन्दार पहाड़ दो मील दूर है। दूर-दूरसे नाना स्थानोंकी दूकानें आदि आकर वहाँ १५ दिन रहती हैं। पौष संक्रान्तिके दिन सुसज्जित राजहस्तीकी पीठपर

शोभायात्रियोंके सहित अपने मन्दिरसे श्रीमधुसूदन भगवान मंदार पहाड़की तराईके एक छोटेसे मन्दिरमें मञ्चके ऊपर विराजमान होकर सुशोभित होते हैं।

इन्हीं मञ्चारूढ़ श्रीमधुसूदनके दर्शन करने प्रति वर्ष इतने लोग इकट्ठे होते हैं। तीसरे पहर भोगरागके उपरान्त श्रीमधुसूदन भगवान ग्रामसे मंदार जाते हैं। वहाँ एक घंटा समय बिताकर फिर शोभा यात्रासे अपने ग्रामके मन्दिरमें आ जाते हैं। भागलपुरसे दो-तीन घंटेके अन्तरसे स्पेशल रेल गाड़ियाँ आती-जाती रहती हैं। मञ्चारूढ़ श्रीमधुसूदनके दर्शनोंके लिए इतनी भीड़ होती है कि कई लोग दबकर मर जाते हैं। इतनी भीड़में श्रीगोस्वामी प्रभु सपरिवार श्रीगौराङ्ग प्रभुकी कृपासे अति सुन्दर भावसे श्रीमधुसूदनके दर्शनकर कृतार्थ हुए। मंदारके जिस विप्र पण्डेका पादोदक पान करके स्वयं भगवान श्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीगौरसुन्दरने श्रीमधुसूदन सेवककी मर्यादा बढ़ाई, आज भी उन्हींके वंशज उन्हीं श्रीमधुसूदन श्रीविग्रहकी सेवा कर रहे हैं। उनके दर्शन करके वही स्मृतिकथा स्मरण करके श्रीगोस्वामी प्रभु प्रेमानन्दसे गद्गद् हो उठे। वहाँ श्रीमन्महाप्रभुकी सेवा प्रचार अत्यावश्यक समझकर उन्होंने वहाँके प्रधान पण्डोंके साथ भी इस बातकी विशेष आलोचना की थी। मैंनेजर श्रीनदियाचाँद दत्त महाशयने विशेष आश्वासन दिया था।

मंदार पर्वतकी तराईमें श्रीगोस्वामी प्रभुकी यात्राके एक वर्ष पूर्व गौड़ीय मठ वालोंने एक छोटा मञ्च निर्माण कराया था। उनका अभिप्राय वहाँ श्रीमन्महाप्रभुके चरण-चिन्होंकी प्रतिष्ठा करना था। इसके लिए सरकारसे एक कट्ठा जमीन भी ली जा चुकी थी। लेकिन चरण-चिन्होंकी स्थापना उस समय तक न हो पाई थी। श्रीगोस्वामी प्रभुका प्रस्ताव था कि श्रीमधुसूदन भगवानके श्रीमन्दिरके प्राङ्गणमें श्रीगौराङ्ग-मूर्तिकी प्रतिष्ठा हो और वहीं उनकी सेवा प्रकाश हो और पण्डे लोग ही उनकी सेवा-पूजा किया करें। वे लोग भी सभी इसमें एक मत थे और इसमें अपना परम गौरव मानते थे। स्थानकी कमीकी बात नहीं। केवल मात्र एक छोटा-सा श्रीमन्दिर-निर्माण और कुछ सेवा-पूजाकी व्यवस्थाकी आवश्यकता थी। श्रीगोस्वामी प्रभुका विचार था कि वे स्वयं श्रीविग्रह-निर्माणका व्यय-भार वहन करें एवं दल-बल सहित वहाँ जाकर श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा करके आवें। आगे जैसी महाप्रभुकी इच्छा।

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गका प्रवास भ्रमण
(श्रीडाकौरजीकी यात्रा)

•

[श्रीअमृतलालदत्त द्वारा लिखित]

नवद्वीपसे प्रस्थान

गत विजया दशमी (बङ्गाब्द १३३६ साल, सन् १९२९ ई०) तिथिमें श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु श्रीधाम नवद्वीपसे प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीको साथ लेकर सपरिवार अपनी स्त्री और कन्या, तथा एक भक्तिमती अनुगता स्त्री-सङ्गिनीके साथ शुभयात्रा करके पहले श्रीरामपुरमें अपने प्रिय शिष्य श्रीमान् षष्ठीधर लाहिड़ीके घर पर दो दिन रहे। वहाँ प्रभु-प्रियाजीकी सेवा प्रतिष्ठित तीनतल्लाके ऊपर एक सुन्दर निर्जन प्रकोष्ठमें हुई। लाहिड़ी-दम्पतिकी प्रेम-सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीधाम नवद्वीपसे प्रभु-प्रियाजीने उनके घर शुभागमन किया। वैष्णवीय नियम-निष्ठा तथा सदाचारके साथ यहाँ श्रीविग्रह सेवा अनुष्ठित हुई। लाहिड़ी वंश श्रीरामपुरमें सुप्रसिद्ध रहा है। परम्परासे ये लोग कुलीन और सिद्ध वंशके माने जाते हैं। षष्ठी दादा बड़े नैष्ठिक वैष्णव और प्रभु-प्रियाजीके एक निष्ठ सेवक थे। उनके यहाँभी बाल गोपालकी सेवा होती थी। गोपाल सेवामें षष्ठी दादाकी विशेष प्रीति रहा करती। वह श्रीगुरु गोष्ठीके साथ प्रभुप्रियाजी और गोपालजीको अपने मन्दिरमें पाकर प्रेमानन्दमें तल्लीन होकर श्रीगुरु-गौराङ्ग-सेवामें दो दिन इतने मत्त रहे कि उनको अपनी देहकी भी सुध-बुध नहीं रही। उनकी भक्तिमती स्त्री उस समय अपने पिताके घर थीं। उन्होंने अकेले ही सेवाका सारा भार ग्रहण करके श्रीगुरु-गौराङ्गकी प्रसन्नता प्राप्त कर जीवनको कृतार्थ माना था। कलकत्तेके भक्तगण श्रीरामपुरमें आकर गोस्वामी प्रभुके साथ इष्टगोष्ठी कर गये थे।

२९वीं आश्विन द्वादशी तिथिको १० बजे रातकी गाड़ीसे गोस्वामी प्रभुने हावड़ा स्टेशन होकर गोमो जानेका निश्चय किया। उनके अनुगत एक प्रियशिष्य श्रीमान् बंकु विहारी राय अहमदाबाद शहरमें कोई बड़ी नौकरी करते थे। उनके परिवारके लोग पहले गोस्वामी प्रभुके साथ गोमो जाने वाले थे। उस दिन हावड़ा स्टेशन पर आकर

वे यथा समय अपेक्षा कर रहे थे। गोस्वामीप्रभुके साथ ४ आदमी और लगभग ५ मन सामान था, उन लोगोंके साथ ५ आदमी और ४ बालक-बालिकाएँ, तथा ९ मन सामान था। वे लोग इतने आदमी और सर-सामान लेकर अहमदाबाद जा रहे थे। साथमें दो बीमार बच्चे भी थे।

श्री रामपुरसे हावड़ा स्टेशन गोस्वामी प्रभु रातमें नौ बजेके बाद पहुँचे। उनके साथ उनके अनुयायी भक्तगण थे। स्टेशन प्लेटफार्म पर जाकर अपने आदमियोंको तथा बंकुबाबूके परिवारको खोजनेमें भी कुछ समय लगा। हमारे और उनके टिकट एक साथ लेकर सामान आदिको एक साथही तुलवानेकी बात थी। किन्तु हमको कुछ देर हो जानेसे वे लोग भूलसे बी. एन. आर. होकर गोमो जानेकी टिकट लेकर बैठे थे और हम लोगोंको जाना था ग्राण्डकार्ड लाइन द्वारा। इस प्रकार प्रभु-प्रियाजीने पहले ही एक झंझट खड़ा कर दिया। साथ ही दूसरा एक और झंझट हुआ—गोस्वामी प्रभुके एक अनुयायी पक्के कलकतिया थे, वह हमारे लिए गोमोकी बजाय गयाकी टिकट ले आये और सामान भी तुलवाकर वहीं के लिए बुक करा लाये। पूछने पर बोले कि मेम बुकिंग क्लर्कने भूलसे ऐसा कर दिया है। हमारा सारा सामान हमारे साथ जायगा, कुछ भी ब्रेकमें देनेको गोस्वामी प्रभुने मना कर रक्खा था, क्योंकि साथमें श्रीविग्रह थे, उनका सब साज-सामान और ग्रन्थ आदि थे। सबको साथ लेकर जानेकी ही बात थी। अब केवल आधा घण्टा समय ही बचा था, हम ट्रेनमें बैठे थे। जिनिस-पत्र सब आ गया था। जाना था गोमो, और टिकट हो गया था गयाका—सामानकी भी यही हालत थी। इसलिए झट-पट गाड़ीसे उतर कर गोस्वामी प्रभुको स्वयं स्टेशन-सुपरिण्टेण्डेण्टके पास जाना पड़ा। उनसे कहकर टिकट और सामानकी रसीद खारिज कराकर, टिकट बाबू और माल बाबूके पाससे रुपये वसूल करकर फिरसे गोमोकी टिकट और सामानकी रसीद लेकर वह गाड़ीमें आकर बैठे। उधर बंकु बाबूके सपरिवारके टिकटका रुपया वसूल करनेमें भी बहुत समय लग गया। गोस्वामी प्रभुके अपने आदमी थे, इसी कारण इतने थोड़े समयमें इतना काम यथा समय हो गया। यह भी प्रभु-प्रियाजीकी अपूर्व लीला थी। साथमें गोपालजी हैं, बड़े दुष्ट प्रकृति—प्रत्येक काममें गड़बड़ी पैदा करनेमें ही मजा लेते हैं।

गाड़ीके एक छोटे कमरेमें हम १२ आदमी १४ मन सामानके साथ लद गये। कमरा रिजर्व जैसा हो गया। दूसरे किसी आदमीने उस पर चढ़नेका साहस नहीं किया। मजेमें हम लोग दूसरे दिन ८ बजे प्रातः गोमो पहुँचे।

गोमो बड़ा स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहाँ ही जगत्-विख्यात पारसनाथ पहाड़ पर जैन मन्दिर सुशोभित हो रहा है। चारों ओरसे सुरम्य पर्वतश्रेणियोंसे वेष्ठित गोमोका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही मनोरम है। यहाँके रेलवे स्टेशन पर गोस्वामी प्रभुके एक भतीजे निशानाथ दादा प्रभु नौकरी करते थे, इसलिए श्रीविग्रहकी नियमित-सेवा करनेके

लिए यहाँ दो दिन टिकना पड़ा। पारसनाथ पहाड़की जड़में ही रेलवे बाबुओंका बासा है। उनमेंसे एकमें जाकर प्रभु-प्रियाजी विराजमान हो गये, असम्भव सम्भव हो गया, और यहाँसे ही कार्तिक मासकी नियम-सेवा प्रारम्भ हो गयी। गोस्वामी प्रभुके भतीजे बड़े भक्तिवान् हैं, उन्होंने सारा प्रबन्ध कर दिया।

दो दिन वहाँ विधिपूर्वक ठाकुर-सेवा हुई। दो दिन लगातार वृष्टि होती रही। सिर पर वर्षा लेकर गोस्वामी प्रभुको गया यात्रा करनी पड़ी।

कार्तिक मासके प्रथम दिवस १८ अक्टूबर शुक्रवारके दिन हम सब लोगोंने रातके १० बजेकी ट्रेनसे गोमोसे गयाके लिए प्रस्थान किया। यह बताना मैं भूल गया कि गोमोमें ४ दिनकी डाक नवद्वीपसे गोस्वामी प्रभुको मिली। ढेरकी ढेर चिट्ठियाँ, समाचार पत्र, मनीआर्डर आदि साथ साथ नियमित रूपसे सब जगह उनके साथ चल रहे थे। गोस्वामी प्रभु प्रवासमें भी नियमपूर्वक कार्य करते थे। श्रीपत्रिकाका प्रूफ देखना, पत्र आदिका उत्तर, देना लेख लिखना सब काम नियमपूर्वक चला करते थे, परन्तु बहुत कष्ट पूर्वक। गोस्वामी प्रभुका यही कृतीत्व है, प्रभु-प्रियाजीकी यही इच्छा है।

गयाधाममें

गोमोसे यात्रा करके दूसरे दिन २री कार्तिक शनिवारको प्रातःकाल गया स्टेशन पर पहुँचकर धर्मशालामें एक साफ सुथरे स्वतन्त्र स्थानमें हम सब लोग ठहरे। साथमें बंकु बाबूके परिवारके भी आदमी थे, और सारा सामान भी था। धर्मशाला ठाकुर-मन्दिरमें परिणित हो गयी। वहाँ ही प्रातः कृत्य सामाप्त करके उस दिन प्रभात कालमें मङ्गल आरतीकी व्यवस्था हुई। सब कुछ हम लोगोंके साथ था, किसी वस्तुके लिए कोई विशेष असुविधा नहीं हुई। पश्चात् ७॥ बजे प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीको साथ लेकर भोजन बनानेके पात्र आदि साथ लेकर हम लोग घोड़ागाड़ीमें बैठ फल्गु नदीके तीर पर पहुँचे। बङ्गाली पुरोहित राजेन्द्र भट्टाचार्य, गोस्वामी प्रभुके पूर्वपरिचित मित्र और आत्मीय, उस समय वहाँ उपस्थित थे। गोस्वामी प्रभुके पण्डा कमला प्रसाद गोस्वामीजीके लोगभी साथ ही थे। गोस्वामी प्रभु ३० वर्ष पूर्व गयाधाममें डाकघरमें नौकरी करते थे। उनका बासा विष्णुपादके बहुत ही समीप था। यहाँ उनके अनेक परिचित तथा मित्र थे। परन्तु उन्होंने उनमेंसे किसीकी सहायताकी याचना नहीं की। दैवात् एक पुराने मित्रके उनका साथ साक्षात्कार हो गया। अतएव गया श्राद्धादि समाप्त करके उनके बासामें पाक करके प्रभु-प्रियाजीको भोग लगाया गया। परन्तु वहाँ सारे काम अपने व्यय तथा अपने प्रबन्धसे ही किये गये।

फल्गू नदीके तीर अक्षयबट और विष्णुपादपद्ममें विधिपूर्वक श्राद्धादि तथा पिण्डदानादि क्रिया वैष्णव मतके अनुसार सम्पन्न करके (प्रभु-प्रियाजीके साथ),

गोस्वामी प्रभु प्रसाद पाकर अपराह्नमें शहर देखकर स्टेशनपर धर्मशालामें लौट गये। उसी दिन सन्ध्याकालमें ६ बजेकी गाड़ीसे हमने काशीके लिए प्रस्थान किया। सन्ध्याकी आरती करके श्रीविग्रहके साथ सबलोगोंको तथा सारा सामान लेकर हम गाड़ीमें बैठे। वह गाड़ी मोगलसराय तक ही जाती थी। रातके एक बजे हमलोग मोगलसराय पहुँचे। श्रीविग्रहके साथ सबलोगोंने रातमें प्लेटफार्मपर ही अड्डा जमाया। साज-सामान द्वारा एक छोटी प्राचीरसे घेरकर श्रीविग्रहके साथ हम सब लोगोंने वहीं रात वास किया। शेष रात्रिके समय एक मेल ट्रेन उसी प्लेटफार्म पर आकर खड़ी हो गयी, स्टेशनपर गाड़ीके ठहरते ही एक धनी मारवाड़ी यात्रीके चिल्लाने और रोने पीटने से सारे यात्री और स्टेशन कर्मचारी इकट्ठे हो गये। पुलिस आकर गाड़ीको घेरकर खड़ी हो गयी। बात यह थी कि उक्त मारवाड़ी यात्रीका एक ट्रङ्क उसकी तन्द्रावस्थामें एक चोरने उठाकर चलती ट्रेनमें दरवाजेसे बाहर ढकेल दिया था। तन्द्रा भङ्ग होनेपर उसने जब वह बहुमूल्य वस्तुओंसे पूर्ण ट्रङ्क न देखा तो उच्च करुण स्वरसे चिल्लाकर स्टेशनमें कोलाहल पैदा कर दिया। इसी कारण इतने लोग इकट्ठे हो गये। तत्काल ही पुलिशने तलाशी करना शुरू कर दिया। उस कमरेमें जितने यात्री थे, सब रोक लिए गये। प्रत्येककी खानातलाशी हुई। उसी समय चोर पकड़ लिया गया। एक पक्का रेलमें चोरी करने वाला, यात्रीके वेशमें हावड़ासे गाड़ीमें सवार होकर यात्रियोंकी वस्तुएँ चुराकर अपने वस्त्रमें छिपाकर बैठा था। उसको पुलिसने निकाल बाहर किया तथा उस चोरको बाँधकर दो डण्डे लगाते ही उसने बतला डाला कि उस मारवाड़ीका ट्रङ्क स्टेशनसे थोड़ी ही दूरपर उसने फेंक दिया है। तत्काल पुलिस दलबलके साथ उसको सङ्ग लेकर वहाँ गयी, और टूटा हुआ ट्रङ्क उठाकर ले आयी। यह सारा गोलमाल स्टेशनके उसी प्लेटफार्म पर हुआ। उस रात्रिके शेषमें वहाँ बहुत लोगोंका समागम हुआ था। ठीक उसी समय उसी स्थानपर हमारे प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीकी मङ्गल आरतीका समय हो गया। बहुतसे नाना प्रकारके लोगोंके उस जमघटमें रातके चार बजेके बाद ही हमारे ठाकुरकी मङ्गल आरतीका आयोजन हुआ। साथमें सब सामान था ही। बड़ी घण्टा बजने लगे। ठाकुरजी एक छोटे सिंहासनपर बैठा दिये गये। बालभोगके लिए गयाके पेड़े साथमें थे ही, परन्तु दूध न था। गोस्वामी प्रभुकी भक्तिमती कन्या तब दुःखित होकर बोली— "बाबा ! आज गोपालका क्षीर भोग नहीं है।" यह बात मुँहसे निकलते ही एक फेरीवाला पुकारते हुए आ निकला—"गरम दूध चाहिये, गरम दूध"। उसी समय उसको बुलाकर दूध खरीदकर गोपालका बालभोग दिया गया। कई यात्रियोंने खड़े होकर मङ्गल आरतीका दर्शन किया, किसी किसीने प्रणाम भी किया। कुछ देरके बाद भोर हो गया। उसी दिन हमको प्रातः साढ़े छै बजेकी Third Class Express (थर्ड क्लास एक्सप्रेस) ट्रेनसे आगरा जाना था। दिन भर गाड़ीमें रहना पड़ेगा,

रातको ८ बजे आगरा फोर्ट पहुँचेंगे। इसलिए प्रातःकाल ही प्रातः-कृत्य आदि करके ठाकुरको भोग लगाकर कुछ प्रसाद पाकर सामान बटोरना पड़ा। कुछ मिष्ठान्न प्रसाद साथमें ले लिया गया। बंकु बाबूकी वृद्धा माताके सङ्ग उनके ही सङ्गी एक ब्राह्मणको देकर उनको काशी तीर्थ भेज दिया गया, और हमलोग आगरा रवाना हुए। साथमें बंकु बाबूके स्त्री-पुत्रादि सभी थे। वह सारा दिन गाड़ीमें बीता। प्रभु-प्रियाजीकी कृपासे गाड़ीमें वैसी कुछ भीड़ न थी। दो एक बङ्गाली सज्जन सत्सङ्गी मिल गये थे। धर्मकथाकी आलोचनामें समय एक प्रकारसे कट गया। वे लोग इलाहाबादमें ही उतर गये।

यथासमय रातको ८ बजेके बाद गाड़ी आगरा फोर्ट पहुँची। गोस्वामी प्रभुके पूर्व परिचित एक रेलवे कर्मचारी भोलानाथ चौधरी थे। स्टेशनपर पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि वे अपने डेरेपर चले गये हैं। उनका डेरा शहरमें स्टेशनसे डेढ़ मील दूर था। स्टेशनपर उनके कई आदमी थे। उन्होंने जाकर जैसे ही हमारा संवाद पहुँचाया, वैसे ही वह झटपट स्टेशनपर आकर उपस्थित हुए। आनेमें भी लगभग एक घण्टा लग गया। उनके आनेपर बंकु बाबूके परिवारको, तथा उनके सामानको उनके जिम्मे लगाकर गोस्वामी प्रभु रातमें दस बजेकी गाड़ीसे उसी दिन जयपुरके लिए रवाना हो गये। भोलानाथ बाबूने विशेष परिश्रम करके हमलोगोंको साज-सामान तथा श्रीविग्रहके साथ डाकगाड़ी (मेल ट्रेन) में चढ़ा दिया। यहाँसे बंकु बाबूके परिवार वर्गसे हम पृथक हो गये। वे लोग यहाँसे अजमेर होकर पहले ही अपने गन्तव्य स्थान अहमदाबाद (बम्बई) में पहुँचकर हमारी प्रतीक्षा करने लगे। हमलोग एक पखवारेमें जयपुर और अजमेर होते हुए अहमदाबाद पहुँचे।

जयपुर (राजस्थान) में

रविवार ३री कार्तिकको रातके १० बजेके बाद हम आगरा फोर्टसे मीटरगेजकी डाकगाड़ी (मेल ट्रेन) से जयपुरके लिए रवाना हुए। इस बार गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी क्योंकि इसमें केवल एक छोटा डिब्बा सीधा जयपुर जाता है, उसमें बैठने वालोंको रास्तेमें बाँदीकुई जंकशन स्टेशनपर गाड़ी बदली नहीं करनी पड़ती। इसी एक छोटे डिब्बेपर जयपुर और अजमेर आदि बड़े बड़े शहरोंके यात्रियोंकी विशेष दृष्टि रहती है। इसी कारण इसमें अधिक भीड़ रहती है, तब भी प्रभु-प्रियाजीकी कृपासे गोस्वामी प्रभुके इतने सर-सरञ्जामके साथ उसी गाड़ीमें उनके सेवक-सेविका गणके लिए स्थान मिल ही गया। दूसरे दिन ऊषाकालमें ४ बजे गाड़ी जयपुर पहुँची। रात भर बैठे-बैठे जागरण करना पड़ा। जयपुरमें गोस्वामी प्रभुके ज्येष्ठ भ्राताके लड़के ज्ञानेन्द्र दादाप्रभु डाकघरके इन्स्पेक्टर थे। आगरासे उनको समाचार देनेका अवसर न मिलनेके कारण वहाँ स्टेशनपर कोई न मिला। गोस्वामी प्रभुका स्वभाव ही यह था कि किसीको कष्ट देना नहीं चाहते थे। पहले समाचार न देकर वह

प्राय: अचानक जा पहुँचते थे। अपने कष्टको कष्ट नहीं मानते थे। आडम्बर और सुख-स्वच्छन्दतासे उनको लगाव न था। जयपुर उनका पूर्व परिचित स्थान था। स्टेशनपर उतरते ही गाड़ी भाड़ा करके ऊषा-कालमें ही ज्ञानेन्द्र दादा प्रभुके नये डेरेको खोजकर वे वहाँ जा पहुँचे। दादा प्रभु एक ही पुकारमें शय्या त्याग करके अचानक गोस्वामी प्रभुको सपरिवार और श्रीविग्रहके साथ उपस्थित देखकर कुछ चकित हुए, और बड़े आदरके साथ श्रीविग्रहके सहित सबको घरमें ले गये। वह स्थान बिल्कुल ही नया था, तथा जयपुरके भूतपूर्व राजमन्त्री, प्रात:स्मरणीय कान्ति बाबूके राजप्रासादके सन्निकट साफ-सुथरा दो तल्ला पक्का मकान था। वहाँ ज्ञानेन्द्र दादा प्रभु सपत्नीक रहते थे। वहाँ गोस्वामी प्रभुके एक और भतीजे जीतेन दादा प्रभुकी स्त्री भी रहती थीं। दोनोंके दो शिशु पुत्र और कन्याएँ थीं जो एक वर्षके ऊपरके हो गये थे। **गोस्वामी प्रभुके "दादू और दादी" उनको देखकर प्रेमानन्दसे उनकी गोदमें चढ़ गये।** वहाँ सबके सहित इष्ट-गोष्ठी करके गोस्वामी प्रभुने कुछ देरके लिये अपूर्व गार्हस्थ्य लीलाभाव प्रकट किया। इधर मां-गोस्वामिनी और दीदी-गोस्वामिनी उसी ऊषा कालमें श्रीविग्रहकी मङ्गल आरतीका सब जोगाड़ करके सूर्योदयके पहले ही मङ्गल आरती करने लगीं। वहाँ भी घड़ी-घण्टा बजने लगा। आस-पासके लोग जागकर चकित हो उठे। जयपुर आकर विधिपूर्वक और समारोहके साथ नियमित सेवा-पूजा स्वच्छन्दतासे चलने लगी।

जयपुर (राजस्थान) गौड़ीय वैष्णवोंका एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। श्रीरूपगोस्वामी पादके द्वारा सेवित आदिविग्रह गोविन्दजी, मधुपण्डित द्वारा सेवित गोपीनाथजी, श्रीजीव गोस्वामी पाद द्वारा सेवित राधा दामोदरजी की सेवा यहाँ बहुत दिनोंसे राज्यके प्रबन्धसे, तथा राजसेवाके द्वारा होती आ रही है। यहाँ गोविन्दजीके ऐश्वर्यकी सीमा नहीं है। विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ कि गोविन्दजीके एक करोड़ रुपयेके महामूल्यवान् हीरा-जवाहरात और सोनेके आभूषण हैं। वर्तमान महाराजकुमार उस समय नाबालिग थे, सारी सम्पत्ति (देवोत्तर सहित) कोर्ट आफ वार्ड्सके अधीन थी। मुसलमान बादशाहोंके अत्याचारके भयसे जयपुरके हिन्दू महाराजने इन श्रीविग्रहोंको श्रीवृन्दावनसे अपनी राजधानीमें लाकर श्रीमन्दिर आदि निर्माण कराकर सेवा-पूजाके लिए नियमित व्यवस्था करदी थी।

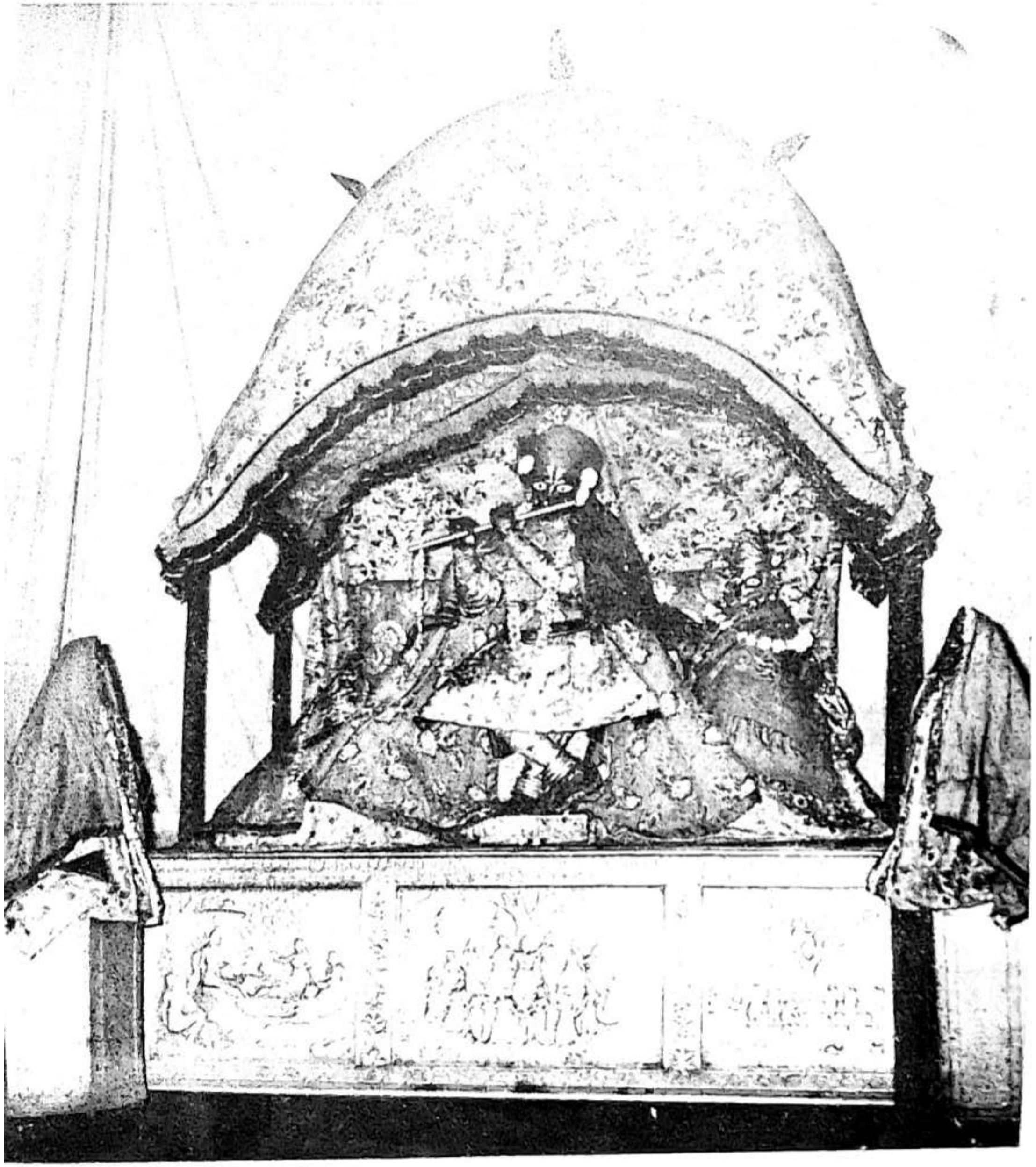
गोस्वामी प्रभु अपनी गोष्ठीके साथ इन सब प्राचीन महाजनोंके द्वारा सेवित श्रीविग्रह आदिका दर्शन करके कृतार्थ हो गये। श्रीविग्रह दर्शन करके दक्षिणा चढ़ाई, भोग लगाया और प्रसाद ग्रहण किया। गोविन्दजीके पुजारी गोस्वामीजीके साथ इष्ट-गोष्ठी की।

गोविन्दजीके श्रीमन्दिरके पास ही 'साहेब' गोविन्दजीका मन्दिर तथा उनके सामने गङ्गादेवीकी श्रीमूर्ति विराजमान हैं। 'साहेब' गोविन्दजी नामसे श्रीश्रीराधा-

आदि विग्रह श्रीगोविन्दजी







श्रीमधु पण्डित द्वारा सेवित श्रीगोपीनाथजी



माँजीके मन्दिरके श्रीराधागोविन्दजी

गोविन्दजीकी अपूर्व श्रीमूर्ति है। उनका 'साहेब' नाम क्यों पड़ा—इसे बतलाता हूँ। जयपुरके स्वर्गीय महाराज माधव सिंहजी इंगलैण्डके राजाके राज्याभिषेकके समय जब विलायत जानेके लिए बाध्य हो गये तो वह श्रीश्रीराधा गोविन्दजी तथा गङ्गा देवीको अपने साथ स्टीमर पर विलायत ले गये थे, इस कारण जयपुरके लोगोंने गोविन्दजीका नाम 'साहेब' गोविन्द रख दिया। श्रीश्रीराधा-गोविन्दजीकी यह मूर्ति बहुत सुन्दर है। यहाँ उनका स्वतन्त्र मन्दिर है तथा स्वतन्त्रभावसे पूजा और भोगका प्रबन्ध है। इसका भाव यह है कि मानो विलायत जानेसे उनकी जाति चली गयी है। 'साहेब' गोविन्दजीके श्रीमन्दिरमें कितने ही अतिप्राचीन वैष्णव चित्र देखे। वे चित्र बड़े ही सुन्दर और दुष्प्राप्य हैं। महाराज माधोसिंह अपने निजी व्ययसे एक बड़े स्टीमर पर श्रीविग्रहके साथ गङ्गाजल, तुलसीवृक्ष, पुजारी ब्राह्मण तथा अपने लोगोंको साथ लेकर हिन्दू आचारके साथ विलायत गये थे।

श्रीधाम नवद्वीपके गौर-गोविन्दजीको अपने राज्य जयपुरमें पाकर साहेब गोविन्दजी मन ही मन बहुत प्रसन्न हैं। उनकी साध है कि गौर-गोविन्दजी भी उनकी तरह एक बार विलायत जाँय, और महात्मा शिशिर कुमार घोषके द्वारा प्रदत्त 'लार्ड गौराङ्ग' नामकी सार्थकता सिद्ध करें। मनकी बात मन ही में न रख सकनेके कारण सुयोग प्राप्त करके साहेब गोविन्दजीने गौर-गोविन्दके सामने अपना अभिप्राय प्रकट किया। गौर-गोविन्दजीके साथ भी प्रियाजी हैं। उन्होंने अपनी प्रियाजीके श्रीमुखचन्द्रकी ओर सप्रेम नेत्रोंसे एक बार देखा। इसका अभिप्राय यह था कि, तुम क्या कहती हो? प्रियाजीने गम्भीरतापूर्वक अपनी रक्तिमाभ ग्रीवाको कुछ टेढ़ी करके श्रीमुखचन्द्रको घुमाकर इशारेसे कहा—'ना'। साहेब गोविन्दजीके प्रस्ताव पर तब दोनों गोविन्दजीमें वादविवाद शुरू हो गया। साहेब गोविन्दजी बोले—"हे गौर गोविन्द! तुम भी तो साहेब हो। क्योंकि तुम्हारा नाम 'गोरा' है। मैंने तो विलायत जाकर साहेब नाम खरीदा है। तुम तो नदियामें बैठे ही 'गोरा' बन रहे हो। तुम देशी साहेब हो और मैं विलायती साहेब हूँ। देशी साहेब होने पर भी तुम्हारा रङ्ग बिल्कुल साहेबके समान है। मैं विलायतकी इतनी कड़ी सर्दी सहन करके भी अपने श्याम वर्णको तुम्हारे समान गौर नहीं कर सका। विलायत जानेसे मेरी जाति चली गयी है। देखो, तुम्हारे वृन्दावनके दलने मुझे दल-च्युत कर दूसरे मन्दिरमें स्थान दिया है। तुम ब्राह्मण शरीर हो, तुमको जातिका बड़ा डर है, मैं गोपकुमार हूँ, मुझे जातिका डर नहीं है।" प्रियाजी अन्तरालमें खड़ी होकर यह सारी बातें सुन रही हैं, और अपनी दासियोंके साथ खूब हँस रही हैं, और अपनी प्रधान सेविका हरिदासियासे चुप चाप कह रही हैं, यहाँ अधिक दिन रहना उचित नहीं है, चाल-ढाल ठीक नहीं सङ्गत अच्छी नहीं जान पड़ती। यह आदेश पाते ही गोस्वामी प्रभु १० दिनके भीतर जयपुरका वासा त्याग कर प्रभु-प्रियाजीको

लेकर अजमेर रवाना हुए। ये सारी भावकी बातें गोस्वामी प्रभुके श्रीमुखसे मैंने सुनी थीं। इनके रहस्यको मैं क्या जानूँ ?

जयपुरके महाराजा माधवसिंहजीकी रानीका बनाया हुआ श्रीश्रीराधागोविन्दजी का एक नवीन विशाल मन्दिर है, जो विचित्र शिल्पकलासे मण्डित है। इस मन्दिरके भीतरकी दीवालों पर सूर्यवंशके श्रीरामचन्द्रजीसे लेकर निचले राजकुमारोंकी अपूर्व चित्रावली, तथा समस्त कृष्णलीलाकी अति सुन्दर चित्रावली अलौकिक निपुणताके साथ अङ्कित और चित्रिच है। इस मन्दिरके बनानेमें उस समय दो लाख रुपये लगे थे। इसको जयपुरके लोग माजीका मन्दिर कहते हैं। यहाँके श्रीविग्रहका नाम है माधव विहारीजी। दूर देशसे आये यात्रियोंको इस मन्दिरका दर्शन अवश्य करना चाहिए। हमलोग प्रायः इस मन्दिरमें जाकर भक्तिभावोद्दीपक कृष्णलीलाकी चित्रावलीके दर्शन कर अपार आनन्दोपभोग किया करते थे।

गोस्वामी प्रभु भूतपूर्व राजमन्त्री स्वनामधन्य कान्तिबाबूके पुत्र श्रीईशानचन्द्र वन्द्योपाध्याय (पुकार नाम हाथीबाबू) महाशयके घर जाकर उनके साथ परिचय प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए। वे अपने सुवृहद् पुस्तकालयमें वैष्णव ग्रन्थोंका संग्रह कर रहे हैं, यह देखकर गोस्वामी प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रद्धास्पद हाथी बाबूने गोस्वामी प्रभुसे गौड़ीय वैष्णव-ग्रन्थावलीकी एक पूर्ण तालिका तैयार कर देनेका अनुरोध किया था। हाथी बाबूने भी जयपुर राज्यके मन्त्री पदको सुशोभित किया था। अब वे स्वेच्छासे पद त्याग करके अपनी बड़ी जमींदारीका कारोबार देखते थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् सातकौड़ी बाबू भी वहाँ एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। वे उच्चकोटिके शिक्षित और सरल हृदयके आदमी थे। गोस्वामी प्रभुके भतीजेका डेरा सदर रास्ते पर हाथी बाबूके एक नये मकानमें था।

अजमेर (पुष्करजी) में

कार्तिक चतुर्दशी वृहस्पतिवार दीवालीके दिन हम जयपुरसे दस बजेकी गाड़ीसे रवाना हुए। झटपट ठाकुरजीकी पूजा, भोग आदि समाप्त करके प्रसाद पाकर गोस्वामी प्रभुने दलबलके साथ गाड़ी पकड़ी। उनके साथ उनका सारा परिवार अर्थात् जयपुर स्थित भतीजेका परिवार भी था। सबको साथ लेकर वे अपने पुराने कर्म-स्थान अजमेरके लिए चल पड़े। अजमेर तीर्थराज पुष्कर खण्डके अन्तर्गत है। यहाँ गोस्वामी प्रभु तीन वर्ष तक कार्यक्षेत्रमें रहे। अजमेरके हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई आदि सभी लोग उनको 'स्वामीजी' कहकर बहुत सम्मान करते थे, यद्यपि वे उस समय वहाँ पोष्टमाष्टर ही थे। विशिष्ट शिक्षित सज्जन सर्वदा उनके पास धर्मोपदेश प्राप्त करके कृतार्थ होते थे। उनका विशाल बङ्गला साधु-वैष्णवों तथा अतिथि-अभ्यागतोंका आश्रय और विश्राम स्थान था। वहाँ उनके लिए नियमपूर्वक सदाव्रतकी व्यवस्था थी।

उनके द्वारा स्थापित हरिसभा तथा सङ्कीर्तन दल जाति और वर्ण का भेदभाव छोड़ कर सब लोगोंके घर जाकर कीर्तनानन्द प्रदान कर सबके हृदयमें एक विशिष्ट सार्व-जनीन धर्मभावको जागृत करते थे। अयाचित भावसे वे अपने सङ्कीर्तन दलको लेकर सन्ध्योपरान्त साधारणसे साधारण मनुष्यके घर पर जाकर पाठ और नामसङ्कीर्तन कर आते थे। स्टेशनके समीप अजमेरकी वर्तमान बङ्गाली धर्मशाला उन्हींकी कीर्तिका निदर्शन है। अब दो तल्ले पत्थरके एक पक्के सुन्दर आश्रम द्वारा पुष्करके बङ्गाली यत्रियोंके लिए बहुत दिनोंकी असुविधा दूर हो गई है। अजमेरसे जब वे कलकत्तेके लिए बदली होकर जाने लगे—यह आज ७-८ वर्ष पूर्वकी बात है, तो उनको सारे अजमेरके लोगोंने जिस प्रकार विदा किया था, वह अजमेरके इतिहासमें चिरकाल तक बङ्गाली जातिके गौरवकी घोषणा करता रहेगा। इन सब बातोंकी यहाँ आवश्यकता नहीं है, अजमेरके लोगोंके प्रति गोस्वामीप्रभुका कैसा प्रेम-सम्बन्ध तथा प्रीति-व्यवहार था, इसका प्रकृष्ट प्रमाण यही है कि सरकारी कार्यसे अवसर ग्रहण करके बाद भी उनको दो बार सुदूर अजमेरकी यात्रा करनी पड़ी थी। उनके अनुयायी बहुतसे उच्चपदस्थ राजकर्मचारी तथा धनी लोग यहाँ उनको चाहते थे, और उनका सत्सङ्ग प्राप्त करके अपनेको कृतार्थ मानते थे। गोस्वामी प्रभुके जीवनका प्रधान कर्मक्षेत्र, तथा गौराङ्ग-धर्म-प्रचारके विशिष्ट स्थान उस अजमेरमें वे बिना किसीसे कुछ कहे, बिना आडम्बरके दीन-हीनके समान जाते थे। यहाँ उनके एकान्त अनुयायी, अति प्रियतम एक गौरभक्त साधु पुरुष थे, जिनका नाम था हाराणचन्द्र सेन। पहले वे यूरोपियन राजपूताना क्लबके उच्च वेतन भोगी मैनेजर थे। परम गो-सेवा-परायण एक निष्ठ गुरु-भक्त हाराणदादा इस समय सपरिवार कुटीर वासी दीन-दरिद्र वैष्णव साधु थे। अजमेरके एक प्रान्तमें तीर्थराज पुष्करके मार्गमें किनारे पर एक निर्जन कुटीमें अपनी भक्तिमती स्त्रीके साथ रात दिन हरिभजनके आनन्दमें मग्न रहते थे। इस समय दमेके रोगसे विशेष पीड़ित होनेके कारण उनमें उठनेकी शक्ति नहीं थी, उन्हींके प्रबल आकर्षण और कातर प्रार्थनासे भक्तवत्सल गोस्वामी प्रभु आज अजमेर जा रहे थे। अजमेरमें गोस्वामी प्रभुके एक और भतीजे धीरेन दादा प्रभु डाकघरमें नौकरी करते थे। श्रीपाद नृत्यगोपाल गोस्वामी प्रभुके एक पुत्र जगबन्धू दादा प्रभु भी यहाँ रेलवेमें नौकरी करते हैं। वे रेलवे क्वार्टरमें सपत्नीक रहते थे। उनको गोस्वामी प्रभुके शुभागमनका संवाद पहले ही मिल गया था। अजमेर स्टेशन पर गाड़ी तीसरे पहर ४ बजे पहुँची। जगबन्धू दादा प्रभु स्टेशनपर प्रतीक्षा कर रहे थे। सारे समाजके साथ गोस्वामी प्रभुको अपने बासे पर रेलवे क्वार्टरमें ले गये। घर था तो छोटा, पर साफ-सुथरा था। उनके यहाँ श्रीश्रीनदिया-युगल चित्र-मूर्तिकी सेवा होती है। यहाँ ही रात बितानेकी व्यवस्था हुई, क्योंकि हाराण दादाका आश्रम बहुत दूर था। तथापि सन्ध्याके पहले माँ गोस्वामिनी ज्ञानेन्द्र दादा प्रभुको लेकर उनको (हाराण दादाको) देखने गयीं।

दीदी गोस्वामिनीने ठाकुर सेवा और आरतीका बन्दोबस्त किया । प्रभु-प्रियाजीका उस रातको वहीं भोग लगा । जगबन्धु दादा प्रभुके आग्रह और प्रेमसे परितृप्त होकर सब लोग परमानन्दित हुए ।

दूसरे दिन कार्तिक अमावस्या शुक्रवारको अन्नकूट था । हाराण दादाके आश्रममें गोपालजीका अन्नकूट उत्सव था, पहाड़की तलहटीमें गोशालेके अत्यन्त समीप, सुप्रसिद्ध आना सागरके अत्यन्त समीप उनका निर्जन आश्रम बहुत रमणीक था । यह सिद्ध स्थान है, पहले एक साधुका आश्रम था । हाराण दादा आज ६-७ वर्षसे सपत्नीक इसी आश्रममें रहकर निर्जन भजनानन्दमें दिन यापन किया करते हैं । उनकी कोई सन्तान नहीं थी । गाय, गधा, बिल्ली, कुत्ता, चूहा, साँप, मेढ़क आदि जन्तु और पशु-पक्षी सबको वे अपनी सन्तानके समान पालते थे । सबके साथ उनका स्नेह व्यवहार था । देखा जाता था कि गधा भी उनके स्नेहसे वञ्चित नहीं होता, वह उनका नित्य अतिथि बनता था और एक रोटीके लिए उनके आश्रमके पिछवाड़े आकर नित्य चीत्कार करके भिक्षा किया करता था । वह जब तक रोटी नहीं पाता, तब तक वहाँसे कदापि नहीं हटता था । बिल्ली नियमपूर्वक दूध पीती थी । सेन दम्पति जीव सेवामें दक्ष थे । **"जीवे दया, नामे रुचि, वैष्णव सेवन"**—महामन्त्रमें वे दीक्षित थे । जातिके वैद्य होने पर भी उन लोगोंको गोप होनेका अभिमान था । गोपाल और गो-सेवा ही उनके जीवनका व्रत है । अजमेरकी बड़ी गोशालामें वे बहुत दिन तक मैनेजर रहे । गोस्वमी प्रभु जब अजमेरमें थे तब वे इस गोशालाके उपाध्यक्ष (वाइस प्रेसिडेण्ट) थे । इस गोशालेमें एक हजार रुपये प्रति मास खर्च होते थे । आय भी तदनुकूल थी । गोस्वामी प्रभुके एक अनुयायी डाकघरके इन्स्पेक्टर मुफस्सिलसे ३-४ हजार रुपया वार्षिक चन्दा गोशालाके लिए इकट्ठा करके देते थे ।

हाराण दादाके आश्रममें प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीने महामहोत्सवसे परितुष्ट होकर वहाँ ही अन्नकूटके दिन रात्रिवास किया । दूसरे दिन संध्याके बाद आँखोंमें प्रेमाश्रु लिये विदा हुए । एकान्त गुरुनिष्ठ हाराण दादाकी अद्भुत् गुरु-निष्ठा थी । गोस्वमी प्रभु कहते थे कि यदि गुरु-सेवा और गुरु-निष्ठा सीखनी हो तो उसके लिये एक मात्र हाराण ही सच्चे आदर्श हैं । विदा होते समय हाराण दादाका कातर-करुण-प्रेम-क्रन्दन, उनके उस रुग्ण शरीरसे व्याकुलतामय आर्त्तनाद !—उस करुण दृश्यका वर्णन भाषामें करना कठिन है । उनकी हार्दिक कामना थी कि गोस्वामी प्रभु अपने समाजके सहित उनके आश्रममें ही रहें । परन्तु प्रभु-प्रियाजीकी इच्छा और ही थी । इसी कारण गोस्वामी प्रभु अजमेरमें केवल दो दिन ही ठहरे । संध्याके बाद विदा होकर रातको १० बजेकी गाड़ीसे उन्हें अपने गन्तव्य स्थान अहमदाबाद (बम्बई) के लिये प्रस्थान करना था । इस बीचमें ७ बजे शामको उनके अजमेर निवासी बङ्गाली मित्रोंने बङ्गाली धर्मशालामें सङ्कीर्तन-यज्ञमें उनका अभिनन्दन

करनेका आयोजन किया था। निर्दिष्ट समय बीत गया, हाराण दादाके आश्रमसे विदा होते होते ७॥ बज गये। तथापि गोस्वामी प्रभुने रातमें ८ बजेके बाद धर्मशालामें उपस्थित होकर अपने अनुगत मित्रोंके साथ सङ्कीर्तनमें योगदान करके उनको यथायोग्य प्रेम-सत्कारसे परितृप्त कर प्रसन्न किया। उसी दिन रातके ६ बजेकी गाड़ीसे उनके भतीजे ज्ञानेन्द्र दादा प्रभु सपरिवार जयपुरके लिए रवाना हुए। गोस्वामी प्रभुको उनके साथ एक बार गाड़ीमें साक्षात्कार करनेका अवसर मिला था। उनके एकान्त अनुगत हाराण दादा और उनकी भक्तिमती स्त्रीके करुण क्रन्दनसे गोस्वामी प्रभुके हृदयमें उनके लिये एक अत्यन्त व्याकुलताका भाव उत्पन्न हो गया था। विशेषतः मां गोस्वामिनी और दीदी गोस्वामिनी तो व्याकुल होकर रोने लगी थीं।

जगबन्धु दादा प्रभु एवं प्रमुख अजमेरवासी बङ्गालियोंने उस रातको स्टेशन पर जाकर गोस्वामी प्रभुको अहमदाबादकी गाड़ीमें चढ़ाया। जगबन्धु दादा प्रभुके अथक परिश्रम, सेवा-निष्ठा तथा सरल हृदयका सरल प्रीति व्यवहार देखकर सभी लोग उनसे सन्तुष्ट थे। उनकी भक्तिमती स्त्रीकी भक्तिनिष्ठा और अतिथि सेवा-परायणता विशेष प्रशंसनीय थी। प्रभु-प्रियाजीके चित्रपटकी सेवामें इनकी परम प्रीति देखी गई। सुदूर अजमेरमें भी प्रभु-प्रियाजीकी सेवा सुप्रतिष्ठित देखकर गोस्वामी प्रभुके मनमें बड़ा आनन्द हुआ।

अहमदाबादमें

रातके १० बजेके बाद अजमेरसे अहमदाबादके लिए गाड़ी खुली। ट्रेनमें अधिक भीड़ न थी। रातमें सबको थोड़ा सोनेका मौका मिला। दूसरे दिन दोपहरको साढ़े बारह बजे अहमदाबाद पहुँचनेकी बात थी। माउण्ट आबू पहुँचते पहुँचते सबेरा हो गया। मनोरम पर्वत श्रेणीके सुन्दर दृश्य बाल अरुण रश्मिकी आभासे परम सुन्दर लगते थे। राजपूतानेकी मरु-भूमि पार करके जब हम पालनपुर स्टेशन पहुँचे तो १० बज गए थे। बम्बई प्रदेशकी भूमि बङ्गालके समान उर्वरा है। वृक्षलता शस्य आदि और शाक सब्जीके हरे-भरे खेत रेलवे लाइनके दोनों ओर देखकर बङ्ग भूमिकी वह **"सुजलां सुफलां शस्य श्यामलां"** अपरूप रूपकी बात याद आती है। दोनों ओर हरी-भरी खेती देखकर मन बहुत आनन्दित हुआ। शीतल, मन्द मन्द वायुके स्पर्शका भी आनन्द प्राप्त हुआ।

१७वीं कार्तिक, रविवार साढ़े बारह बजेके समय हम अहमदाबाद स्टेशन पर पहुँचे। साबरमती रेलवे पुल पार करते समय महात्मा गांधीका आश्रम ट्रेनसे ही दीख पड़ा। अहमदाबाद बहुत बड़ा स्टेशन है। यहाँ सैकड़ों बड़ी बड़ी कपड़ेकी मिलें हैं, गोस्वामी प्रभुके शिष्य तथा कृपा-पात्र श्रीबन्धु विहारी राय यहाँ नौकरी करते हैं। वह एलेक्ट्रिक इंजीनियर हैं तथा यहाँके पावर-हाउसके सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। शाही

बागमें एक बंगलेमें सपरिवार रहते हैं। शाही बाग Civil Station है। वह अपने आदमियोंके साथ स्टेशन पर उपस्थित थे। एक मोटर बससे गोस्वामी प्रभुके परिवारके लोगोंको तथा सामान आदि लेकर १॥ बजेके समय हम उनके बँगले पर पहुँचे। तब स्नान आदि करके श्रीविग्रह सेवाका आयोजन हुआ। पञ्चगव्य आदि सब प्रस्तुत था। पूजा-भोग आदिमें ४ बज गए। कार्तिक मासमें एक इसी दिन प्रातःकाल ठाकुरजीकी मङ्गल आरतीकी सुविधा नहीं हुई। जयपुरसे अहमदाबाद एक्सप्रेस गाड़ीसे १४ घण्टेका रास्ता है। नवद्वीपसे अहमदाबाद १३५५ मील दूर है। इस स्थान तथा महात्मा गांधीके आश्रमके सम्बन्धमें बहुत सी बातें कहनी हैं, जो पीछे क्रमश, बताई जायेंगी।

अहमदाबादमें जाकर शाहीबागमें जिस बंगलेमें हम लोग ठहरे, उसका मासिक भाड़ा एक सौ रुपया था। गोस्वामी प्रभु और उनके श्रीविग्रह तथा उनके परिवार वर्गके स्वच्छन्द वासके लिए उस बंगलेके आधेसे अधिक भागको उनके प्रिय शिष्य श्रीबंकुविहारी दादाने पूरा खाली करा रक्खा था। ठाकुर घर, रसोई घर, शयनघर तथा गोस्वामी प्रभुके लिखने-पढ़नेके लिये कुर्सी-मेज आदि सब सामान अच्छी प्रकार यथास्थान सजाकर रखे गए थे। इस सुसज्जित मकानमें १७वीं कार्तिक रविवारके दिन श्रीविग्रहके साथ श्रीगुरु-गोष्ठी विराजमान हुई। उसी दिनसे नये ढङ्गसे और नये उत्साहसे बंगलेमें ठाकुर-सेवा प्रारम्भ हो गयी। संध्या आरतीके समय घड़ी-घण्टा बजे। विदेशी और विजातीय पड़ौसी लोग चकित हो उठे। प्रातःकाल बहुतोंने पूछा, 'यहाँ रातमें क्या हुआ था?' जब उन्होंने सुना कि, राय साहबके गुरूजी आये हैं, साथमें ठाकुरजी आये हैं, प्रातः सायंकाल ठाकुरजीकी आरती होती है। भोगराग लगता है—तो बहुत लोग ठाकुरजीके दर्शनोंके लिए आये। समीपमें सेठके बंगलेमें फूलोंका उद्यान था। ठाकुरजीके लिये पहले पुष्प-चयन वहींसे होता था। वहाँके माली लोग अच्छे नहीं थे, बड़े पाखण्डी थे, पुष्प-चयनमें बाधा देने लगे। गोस्वामी प्रभु स्वयं एक दिन समीपके एक दूसरे बड़े सेठ जमुनाधरके उद्यानमें जाकर याचना करके फूल चयन कर लाये। जमुनाधर सेठ बड़े ही सज्जन और शिक्षित थे। उन्होंने अपने मालीको बुलाकर तत्काल हुक्म दिया—"बूढ़े बाबूजीको बराबर फूल देना।" मालीका नाम था रामहरख। वह भक्त आदमी था, बड़े सत्कारसे गोस्वामी प्रभुको स्वयं अपने हाथोंसे प्रति दिन फूल चुन देता। पश्चात् वह स्वयं फूल चयन करने लगे। इस प्रकार प्रभु-प्रियाजीने यह अपने लिये फूलका प्रबन्ध करने वाला नियुक्त करके ठीक कर दिया। उद्यानमें कुन्द पुष्पके १०-१२ वृक्ष थे। अन्तमें गोस्वामी प्रभुने सपरिवार इस बगीचेमें फूल तोड़ना प्रारम्भ कर दिया। श्रीवासके आंगनके कुन्द वृक्षसे नदियाके वैष्णवोंकी कुन्द पुष्प-चयन लीलाकी स्मृति उदय हो आई। प्रभु-प्रियाजीके लिए टोकरी भरकर कुन्द पुष्प आने लगे। प्रभु-प्रियाजी और

गोपालजीके गलेमें नित्य नयी सुन्दर-सुन्दर मालाएँ सुशोभित होने लगीं। पुष्पोंके गुच्छोंसे सज्जित सिंहासन पर पुष्प शय्याके ऊपर श्रीश्रीनदिया-युगल सुखसे शयन करने लगे। राजभोगसे सेवा चलने लगी। बीच-बीचमें कीर्तन होता था। एकादशीको हरिवासर आदि श्रीग्रन्थोंका पाठ, इष्ट-गोष्ठी और भक्तिके अङ्गोंके द्वारा नियमित भजनपूजन चलने लगा। अहमदाबाद नवद्वीपमें परिणत हो गया। "जहाँ तुम हो वहीं नीलाचल है" यह शास्त्र-वाक्य सिद्ध होने लगा।

प्रवासी बङ्गाली वृन्द एक-एक करके गोस्वामी प्रभुका दर्शन करनेके लिये आने लगे। श्रीविग्रहका दर्शन करके सभी आनन्दित हो उठे। उनकी स्त्रियाँ और बाल-बच्चे भी आने लगे। धीरे-धीरे हरिसभा संगठित हुई। प्रत्येक शनिवारको बंगलेमें नित्य कीर्तन होने लगा। सुदूर मणिपुरके चार गौर-भक्त वैष्णव यहाँ रहते थे। उनका निवास स्थान अगरतल्ला, त्रिपुरामें था। वे नृत्यकला और सङ्गीतमें विशेष प्रवीण थे। वहाँके प्रसिद्ध धनी चिन्नूभाई, माधोलाल (Sir Chinu Bhai Madhowlal Ranchhodlal Baronet) तथा सारा भाई अम्बालालके पुत्र-कन्या आदिको नृत्य-कलाकी शिक्षा देनेके लिये कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी सिफारिशसे श्रीकुमुदबन्धु सिंह तथा नवकुमार सिंह, और उनके दो और आत्मीय यहाँ सालभरसे भी अधिक कालसे नौकरी करते थे। वे सब मिलाकर ४०० रु० मासिक वेतन पाते थे; और एक सजा सजाया छोटा बंगला रहनेके लिये मुफ्त मिला हुआ था। कुमुदबन्धु सिंह तथा नवकुमार सिंह तीन पीढ़ीसे महाराज त्रिपुराके अन्नसे पले थे। राजपरिवारमें नृत्य-कलाकी शिक्षा देना और कीर्तन करना ही उनका काम था। वैष्णवाचार्य श्रीगौरगोविन्दानन्द स्वामीजी महाराजके साथ इनका विशेष परिचय था। ये लोग उनको गुरुके समान पूज्य मानते थे। गोस्वामी प्रभु इनके साथ परिचय तथा इष्ट-गोष्ठी करके बहुत आनन्दित हुए। बीच-बीचमें आकर ये लोग कीर्तनमें योगदान करते थे; प्रभु-प्रियाजी तथा गोपालजीको अपनी नृत्यकला दिखलाकर आनन्दित करते थे। यहाँ दो प्रसिद्ध कपड़ेके मिलोंके मैनेजर बाबू श्रीप्रभासचन्द्र बन्ध्योपाध्याय और उनके भाई श्रीसत्यसेवक बन्ध्योपाध्याय महाशय अपने आत्मीय जनोंको लेकर नियम-पूर्वक कीर्तनमें योगदान देते थे। उनके वासे पर भी गोस्वामी प्रभु अपने दलबलके साथ जाकर कीर्तन करने लगे। सत्यसेवक बाबू मधुर कण्ठ वाले कीर्तनियाँ थे; कीर्तनसे उनको बड़ी प्रीति थी। यहाँ गोस्वामी प्रभुने प्रधानत: इन्हीं लोगोंको लेकर एक हरिसभा सङ्गठित की। मृदङ्ग और करताल आ गये। कीर्त्तन करने वाले कुमुद बन्धु बाबू और सत्यसेवक बाबू थे। १०-१२ आदमी और इकट्ठे हो गये। बंकुविहारी दादा पक्के वैष्णव थे। प्राचीन ढङ्गसे भजन-साधनमें आशक्त रहते थे। इस हरिसभाके स्थायी सभापति स्वयं गोस्वामी प्रभु थे। उनके प्रतिनिधिके रूपमें उनके प्रिय शिष्य इस हरिसभाका कार्य-सञ्चालन करेंगे ऐसी व्यवस्था कर आये थे।

अहमदाबाद आकर गोस्वामी प्रभु प्रतिदिन ३-४ मील प्रातः भ्रमण करते थे, उनके साथ उनके शिष्यका पुत्र गुरुदास एक ७-८ वर्षका बालक रहता था। इस बालकके साथ उनका सख्यभाव था। बड़े बड़े सेठोंके बगीचोंमें जाकर पुष्पचयन करना; साबरमती नदीके किनारे भीमनाथके मन्दिर, स्वामीनारायणके मन्दिर, बाजारमें रणछोरजीके मन्दिर, भद्रकालीके मन्दिर आदिका दर्शन करना तथा अन्यान्य दर्शनीय स्थानोंपर जाना, रेलवे पुलको पार करके साबरमती नदीके किनारे शस्यश्यामल क्षेत्रमें वायुसेवन करना; ये उनके नित्यके काम थे। गोस्वामीजीके बालबन्धु बड़े रसिक थे। गृह-देवता गोपालजीके प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। पुष्प चयन करनेकी उनकी बड़ी इच्छा रहती थी और इसमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था। रास्ता चलनेमें वह बड़े बलिष्ठ थे और गोस्वामीप्रभुके साथ झगड़ा व विवाद करनेमें उससे भी अधिक अपने गुरुदास नामको सार्थक करते थे। वस्त्र छोड़कर स्वयं फूल तोड़कर माला गूँथकर वह जबतक गोस्वामी प्रभुके गलेमें माला नहीं पहनाते- उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। गोस्वामीप्रभुका स्नानादिक कृत्य दोपहर तक होता था। वह बालक माला गूँथकर बैठा रहता था, और ताकीद करता रहता था। जब स्नान कर लेते तब उनके गलेमें माला देकर प्रणाम करता। जैसी प्रीति और भक्ति थी, वैसे ही सख्यभावमें ताड़न भर्त्सनादि तथा बीच-बीचमें अत्यन्त अभिमान और रोष भी प्रकट होता था। बंकु दादाकी दो छोटी कन्याएँ प्रतिदिन गुरुपूजा करती थीं। वे अपनी माताकी देखादेखी पुष्प और जल लाकर गुरुकी पादपूजा करती थीं। प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीकी प्रेम-सेवा यहाँ नियमित रूपसे नित्य सम्पन्न हुआ करती। प्रभु-प्रियाजीके संसारके सारे कार्य सपरिवार बंकु दादा और उनकी भक्तिमती स्त्री सुनीति दीदी परमानन्दपूर्वक दास-दासी भावसे अक्लान्त होकर दिनरात हँसते-हँसते सम्पादन करते थे। विदेशमें बड़ी नौकरी करने और बंगलेमें रहनेसे ठाकुरजीकी सेवा नहीं पार पड़ सकती, जिसकी यह धारणा है उनसे मैं कहता हूँ कि वे एक बार इस भक्ति-पथके पथिक राय-दम्पतिकी ठाकुर-सेवा-अर्चा एक बार आकर देख जायँ। गोस्वामी प्रभु २२ वर्ष तक विदेशमें रहकर बंगलेमें वास करके प्रभु-प्रियाजीकी प्रेम सेवा किया करते थे।

साबरमती आश्रममें

अहमदाबाद शहर साबरमती नदीके किनारे अवस्थित है। वर्षाकालमें यह नदी प्रवाहमयी बन जाती है, परन्तु अन्य समय यह फल्गु नदीके समान अति क्षीण बालुकामयी स्रोतस्विनी बन जाती है। इस नदीका जल बहुत ही स्वादिष्ट और स्वाथ्यप्रद है। उस समयका भी अहमदाबाद शहरका पानीका यन्त्र बहुत बड़ा था। प्रतिदिन दो लाख गैलन जल शहरमें खर्च होता था। जलके यन्त्रके चीफ इंजिनीयर भट्टजीके साथ गोस्वामी प्रभुका विशेष परिचय हो गया था। उनके मुखसे सुना था

कि इतने बड़े शहरमें जलकी पूर्ति बड़े बड़े एक दर्जन कुओंके जलसे होती है। इन कुओंसे बड़ी मशीनोंसे बड़े बड़े पम्पोंके द्वारा जल निकाला जाता था। १२० कपड़ेके मीलोंमें सारी जलकी पूर्त्ति इन्हीं द्वारा होती थी। राजपूतानेके समान यहाँ जलकष्ट नहीं था। यहाँके खेत तथा बड़े बड़े लोगोंके बड़े बड़े उद्यान अधिकांश कलके जलसे ही सींचे जाते थे। साबरमती नदीमें गहरा जल न रहनेके कारण ही ऐसी व्यवस्था की गयी थी।

साबरमती नदीके पूर्व पारमें शहर, और पश्चिम पारमें महात्मा गांधीका आश्रम है। हमलोग पैदल नदी पार करके कई बार आश्रममें गये थे। घुटने तक भी जल नहीं था। नदी पार करनेमें उतराईका पैसा भी नहीं लगता, पहना हुआ कपड़ा भी नहीं भीगता। महात्मा गांधीके आश्रमकी तरफके गाँवोंसे नाना प्रकारकी बिक्रीकी वस्तुएँ तथा अन्न, घास आदि बैल-भैंसा गाड़ी तथा ऊँट, धोड़ा, गधा आदिपर लादकर बहुतसे लोग शहरमें लाते, उनको भी उतराई नहीं देनी पड़ती। गरीब लोगोंके लिए इससे बड़ी सुविधा थी।

महात्मा गांधीजीका आश्रम ४–५ सौ एकड़ सुदूर विस्तृत भूमिखण्डके ऊपर अवस्थित है, और सुचारु रूपसे अति सुन्दर प्राकृतिक सौन्दर्यसे घिरा है। जैन सम्प्रदायकी सुविख्यात विद्यापीठ (University) से केवल एक मीलकी दूरीपर साबरमती आश्रम बना है। इस विद्यापीठसे महात्मा गांधीजीके आश्रमका कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु उनके आश्रमके विद्यार्थी सब प्रकारसे जैन-विद्यापीठकी शिक्षा समाप्त कर सकें, ऐसी व्यवस्था थी। इस विद्यापीठके वृहद् ग्रन्थागारमें बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ संगृहीत हैं। अनेक भाषाओंकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियोंका बड़ा मूल्यवान संग्रह है। इस सुप्रसिद्ध विद्यापीठमें एक जन्मान्ध अध्यापक थे जिनका नाम था शुकुलजी। वह सब विद्याओंमें पारदर्शी थे तथा यूरोपके अनेक देशोंका भ्रमण कर चुके थे। वही इस विद्यापीठके सर्वप्रधान कर्मवीर और अध्यक्ष थे।

महात्मा गांधीजीके आश्रमकी नियमावली अति सुन्दरतापूर्वक शृङ्खलाबद्ध थी तथा बाध्यतामूलक नियमोंका यथार्थतः पालन होता था। एक प्रकारसे यहाँके आश्रमवासी नियम और आज्ञा-पालनके विशेष पक्षपाती थे। उस नियमावलीका सारांश नीचे लिखा जाता है :—

(१) प्रार्थना—प्रातः ४॥ से ५॥ बजे तक, और सायंकाल ६॥ से ७ बजे तक—अनिवार्य नहीं। स्त्री और पुरुष आश्रमवासियोंके लिये पृथक्-पृथक् भजन-स्थान खुले आकाशमें नदीके किनारे बालुकामय, वृक्ष-लतासे आवेष्टित थे। उनमें दो सुन्दर प्रवेशद्वार थे, जिनके ऊपर साइन बोर्ड पर लिखा था—स्त्रियों तथा पुरुषोंके लिये। भजन-कीर्तन, पण्डित् विष्णु दिगम्बरजीका **"रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम"** होता था। आश्रमके उद्देश्यसे विशेषरूपसे हिन्दी और गुजराती गीतोंकी

एक छोटी पुस्तिका छपाई गयी थी। गीताके श्लोकोंका पाठ एक स्वरसे होता था। प्रति पूर्णिमाको रासलीला गीताभिनय होता था। आश्रमवासिनी गुजराती महिलाएँ नृत्य-गीत आदि किया करतीं। यहाँ परदा नहीं था और जाति विचार भी नहीं था।

(२) दैनन्दिनी संवाद श्रवण। समाचारपत्रोंसे विशेष समाचार संग्रह करके प्रतिदिन सबको सुनाना।

(३) जलपानमें प्रातःकाल ७ बजेके बाद रोटी और राब होता था। गुड़ मिश्रित घुला हुआ आटा गरम करके पानीके रूपमें चायके समान व्यवहृत होता था,—इसीका नाम राब है। ११ बजे मध्याह्न भोजन होता था। सायंकालका भोजन ७ बजे रात्रिको होता था। भोजनमें दाल रोटी, चावल और केवल नमक डाली हुई बिना मिर्च मसालेकी सब प्रकारकी उबाली हुई तरकारियाँ होती थीं। एक नियत परिमाणमें दूध और घी मिलता था। तेल या घीमें छौंकी हुई तरकारी आश्रमकी पाकशालामें निषिद्ध थी। बहुतोंको असुविधा होनेके कारण व्यक्ति विशेषके लिए अब कुछ घी-तेलका भी प्रयोग होता था। परन्तु साधारण नियम पूर्वोक्त ही था। एक ही पाकशालामें सबका भोजन बनता था। एक भी ब्राह्मण रसोइया नहीं था। आश्रमके सब स्त्री-पुरुषोंको बारी-बारी रसोई बनानेका काम करना पड़ता था। यहाँ जाति-पाँतिका विचार नहीं था। आश्रममें २-४ विशिष्ट जनोंको अपनी-अपनी कुटियामें रसोई बनानेकी अनुमति मिल गयी थी। वे आश्रममें सपरिवार रहते थे।

(४) रात्रिको शयन ६ बजेके बाद—परन्तु इसके लिये सब बाध्य नहीं थे; दिनमें सोनेका निषेध था। आश्रमके सारे काम आश्रमवासी स्वयं किया करते थे, इसलिये पृथक् रूपसे व्यायामकी व्यवस्था नहीं थी। हमने Reynold नामक एक अँग्रेजको कुदाल लेकर मिट्टी खोदते देखा। श्रीहट्टके एक प्रोफेसर दुर्गेशदास खद्दरके कपड़े पहिने खेतमें कुलीका काम कर रहे थे। और एक गुजराती ग्रेजुएट बाल्टी लेकर बगीचेके पेड़ोंमें जल दे रहे थे।

(५) चरखेसे सूत कातना, रूई धुनना प्रत्येक आश्रमवासी नर-नारीके लिये अनिवार्य था। इन सब कामोंकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये शिक्षार्थीको आरम्भमें आश्रमसे १२ रु० मासिक खुराकी मिला करती थी। उनको आश्रमके नियमानुसार वहाँ ही रहना और वहाँ ही भोजन करना अनिवार्य था। इसके लिए ६ रु० मासिक उनको देना पड़ता था। यदि ये दूध या घी खाना चाहें तो उसका भी मूल्य देना पड़ता था। मैंने एक उड़ीसा निवासी बङ्गाली शिक्षार्थीको भी देखा।

(६) आश्रममें या पाकशालाके या अन्य किसी व्यक्तिगत कार्यके लिये कोई वेतन भोगी नौकर या नौकरानी नहीं होते थे। अपना काम सबको आप करना पड़ता था। बर्तन माँजना, कपड़ा धोना, घर-द्वार साफ करना, यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर अपना पाखाना भी अपने आप साफ करना पड़ता था।

(७) स्त्री और पुरुषोंके पृथक्-पृथक् वास स्थान थे। जो लोग सपत्नीक इस आश्रममें रहते; उनके लिये पृथक् स्वतन्त्र कुटीर होते थे।

(८) पाठशालाका भवन विस्तृत, पक्का और दोतल्ला था और इलाहाबादी टाइलसे सुन्दरतापूर्वक छाया हुआ था। चारों और घर बने थे और उनके बीचमें लम्बा-चौड़ा बालुकामय क्षेत्र था। नीचे पाठशालाके भवनके चारों ओर बहुत सी छोटी-छोटी ८ फुट लम्बी व ४ फुट चौड़ी कुटीर थीं, जो छात्र निवासके काम आती थीं। प्रत्येक कुटीरमें पीछे एक जङ्गला और सामने एक द्वार था। एक कुटीरका दूसरीसे लगाव नहीं था। दीवालमें एक आलमारी थी जिसके निचले खानेमें काठका ढक्कन था जिसमें ताला लगाया जा सके, इससे विद्यार्थियोंके लिए एक बक्स या सन्दूकका काम चल जाता था। उस काठके ढक्कनके नीचे छिटकनी लगी थी, जिसको खोल देने पर वह ढक्कन छोटे टेबुलका काम कर देता था। घरके फर्श पर एक छोटी दरी थी। पाठशालाके नीचेके तल्लेमें बोर्डिङ्ग अर्थात भोजनका स्थान था। स्कूलके बालुकामय क्षेत्रमें आश्रमकी सभा समिति होती थी। सभामें कुर्सी, टेबुल या बैठनेके लिए आसनादि कोई वस्तु नहीं होती थी। भाषण देनेका मञ्च स्कूलका बरामदा था। वहीं खड़े होकर वक्ता भाषण दिया करते।

पढ़ाईके नियम अद्भुत थे; कोई परीक्षा नहीं होती थी। जिस विषयमें जिस विद्यार्थीकी अधिक पैठ तथा अधिकार होता, उसको उसी विषयकी शिक्षा शिक्षक देते। छोटे-छोटे बालक-बालिका एक ही विद्यालयमें पढ़ते, बालिकाओंके लिए पृथक् विद्यालय नहीं था।

(९) साबरमती नदीके तीरके ठीक ऊपर महात्मा गांधीजीकी कुटीर थी, और उनसे कुछ दूर पर उनकी पत्नी कस्तूरबाई तथा परिवारके लोग स्वतन्त्र कुटीरमें रहते थे। ये दोनों कुटीर एक एक छोटे बङ्गलेके समान थे। महात्मा गांधीजीकी कुटीरमें भी टेबुल-कुर्सी कुछ भी नहीं थे। दरीके ऊपर एक डेस्क (छोटी मेज) हुआ करती थी जहाँ बैठकर महात्मा गांधी लिखा पढ़ी किया करते थे। एक तीन हाथ लम्बी, डेढ़ हाथ चौड़ी खद्दरके नेवारसे बुनी हुई खटिया थी। जो साधारण काठकी बनी थी। तकिया जो था वह एक छोटे बालकके व्यवहार योग्य था। खद्दरकी एक छोटी चादर होती थी। यही गांधीजी महाराजकी शय्या होती थी। यहाँ ही लोग आकर उनसे मिलते थे। और बड़ी बड़ी परामर्श सभायें यहाँ होती थी। डेस्कके ऊपर कुछ पुस्तकें और कागज-कलम रखे रहते थे। कस्तूरी बाईके कुटीरके सामने उसी कम्पाउण्डमें मीराबाई (Miss Slade) की एक अति साधारण कुटीर थीं। महात्मा गांधीजीकी गृहिणी कस्तूरी बाई अपने पुत्र-पुत्री, नाती पोतोंके साथ आश्रममें ही रहती थीं। महात्माजीकी कुटीरका

नाम था आराम कुञ्ज और कस्तूरी बाईकी कुटीरका नाम था हृदय कुञ्ज। इस प्रकार एक एक कुटीर एक एक कुञ्जके नामसे अभिहित थे। आश्रममें एक एक प्रकारके वृक्ष कतारमें रोपे गये थे, जिनका वृक्षोंकी जातिके साथ नाम बीथि रक्खा गया था जैसे निम्ब बीथि, दाड़िम बीथि इत्यादि। आश्रममें बीच-बीचमें चौड़े और स्वच्छ मार्ग होते थे जिनको आश्रमवासी सदा साफ सुथरा रखते थे। मुक्त नील गगनके नीचे पुण्यतोया साबरमती नदीके तीर पर, वृक्षलता, तृण-गुल्मसे आवृत्त फल-पुष्पसे सुशोभित इस नवीन आश्रमको देखकर प्राचीनकालके ऋषि-मुनियोंके पवित्र आश्रमोंकी पुरातन स्मृति हृदयमें जाग उठती है। शान्तिमय और परम निर्जन आश्रममें इतने लोग काम करते हुए भी कोई गड़बड़ी या किसी प्रकारकी अशान्तिका लेश भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। सभी आश्रमवासी पूर्ण स्वस्थ, बलिष्ठ, प्रफुल्ल और कर्मठ थे। नदीके किनारे बैठ कर आश्रमवासी स्त्री-पुरुष पत्थरके ऊपर अपने कपड़ोंमें साबुन लगाकर साफ किया करते। आर्द्र वस्त्र काठके मुग्दरसे कूटे जाने पर ही साफ हो पाते। इस काममें विशेष परिश्रम था। सभी स्वतन्त्र और स्वावलम्बी थे। देखने पर जान पड़ता था कि ये सब लोग इस जगतके नहीं हैं।

(१०) आश्रमके खेतमें नियमानुसार खेती हुआ करती। तरकारी, शाक-सब्जी, धान-गेहूँ आदिकी खेती समयानुसार हुआ करती, जिसके द्वारा आश्रमको सहायता मिलती। बड़े-बड़े कुएँ होते थे, जल निकालनेके पम्प थे। बैल और भैंसेकें द्वारा भी जल खींचा जाता था। Dairy farm, बैलगाड़ियाँ, बैल, भैंसे, गोशाला आदि सभी कुछ थे। छोटा-सा चमड़ेका कारखाना था, जहाँ जूते तैयार होते थे। यहाँ मरी हुई गौके चामसे ही जूता तैयार होता था। बङ्गाली साधु सुरेन्द्रनाथके हाथ इस टैनरी (चर्मालय) की देखभाल और व्यवस्थाकी जिम्मेदारी थी। वह वृक्षके नीचे रहा करते, परन्तु इस कार्यमें विशेष दक्ष थे। इन सब कार्योंके देखभालके उपयुक्त निरीक्षक भी हुआ करते थे और सामान्य वेतनभोगी कर्मचारी भी होते थे। आश्रमवासी कुछ बड़े लोगोंने दो-एक बड़ी २ अट्टालिकाएँ भी निर्माण कराई थीं। सुना था कि इसके लिए महात्मा गांधीजी महाराजकी अनुमति थी। साबरमती आश्रमसे साबरमती ग्रामकी दूरी एक मील थी, वहाँ एक रेलवे स्टेशन भी है। रेलवे स्टेशनसे आश्रम पर्यन्त एक सुन्दर प्रशस्त मार्ग है जिसके द्वारा शहरके बड़े-बड़े लोग तथा बाहरी लोग आश्रममें आया करते। शहरके बीचसे मोटर या, टैक्सी करके १३ मीलका चक्कर लगाकर भी कोई-कोई आश्रम देखने आया करते। साबरमती नदीके ऊपर एक रेलवेका पुल भी था, उससे पार होकर आनेमें एक पैसा कर लगा करता। केवल मनुष्य ही उस पुलके एक बगलसे चल सकता था, गाड़ी घोड़ा आदि नहीं चल सकते थे।

(११) करघा पाठशाला अलग थी । यहाँ ही आश्रमके काम-काजके लिये आफिस था। आश्रममें तैयार हुआ खद्दर, कार्पेट, दरी, आसन, तौलिया, रुमाल, झोला, टोपी आदि सामग्री यहाँ ही बिक्री होते थे । महात्मा गांधीजीके ग्रंथ भी यहाँ मिलते थे। उनकी आत्मकथा दो खण्डोंमें प्रकाशित हुई है । मूल्य प्रतिखण्ड ५ रु० था । वह भी यहाँ मिलती थी । खादी-प्रतिष्ठानसे सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य ग्रंथकारोंके ग्रन्थ भी यहाँ मिलते थे । गांधीजी महाराजके द्वारा सम्पादित Young India अँग्रजी तथा हिन्दी 'नवजीवन', साप्ताहिक पत्रिकाएँ यहाँसे प्रकाशित होती थीं। परन्तु प्रेस (मुद्रणालय) अहमदाबाद शहरमें था । इस प्रेस और दोनों पत्रिकाओंकी सारी स्वत्व-सम्पत्ति महात्मा गांधीने स्वदेशी आन्दोलनके लिए दान करदी थी।

(१२) बगीचेसे पैदा हुई शाक-तरकारी कुछ-कुछ आश्रममें ही बेची जाती थी। दूध से मिठाई बनती, वह भी बेची जाती थी। आश्रमके ही एक आदमीने चावल, दाल, आटा, शाक-तरकारी, आदिका एक भण्डार खोल रक्खा था। इस आश्रममें बढ़ईगीरीका भी कुछ काम होता था। बैठनेके लिए बेंच आदि आश्रममें ही तैयार होते थे । आश्रमसे संलग्न एक औषधालय भी था जिसमें स्वदेशी चिकित्साकी व्यवस्था भी थी।

(१३) बाहरी आदमीको आश्रममें वास नहीं करने दिया जाता। पैसा देने पर भी भोजन प्राप्त करनेकी व्यवस्था नहीं थी, क्योंकि आश्रमकी पाकशाला होटल नहीं थी।

(१४) जो लोग आश्रम देखने जाते, उनको बड़े सत्कारपूर्वक तथा बहुत अच्छी प्रकार सब स्थान दिखलाये जाते, सारी बातें समझाई जातीं। सभी लोग Guide (प्रदर्शक) का काम करते । हम लोगोंको प्रोफेसर दुर्गेशचन्द्रदास महाशयने आश्रमकी सभी चीजें अतिशय आग्रहके साथ दिखलायीं और सबके बारेमें समझा दिया। महात्मा गांधी सर्वदा कार्यमें व्यस्त रहते, तो भी उनके दर्शन करनेमें कभी कोई बाधा नहीं थी। परन्तु संसारमें जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनका बहुमूल्य समय नष्ट करनेका किसीको अधिकार नहीं है। वह जिस कार्यको लेकर चलते हैं उसके सम्बन्धमें आवश्यकता होने पर कोई भी आदमी उनसे बातें कर सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने शिष्य अम्बालाल सारा भाईके घर पर, जो बड़े व्यवसायी और कई मिलोंके मालिक हैं, कई दिन रहे । उनको भी कुछ मिनटोंके लिए ही महात्मा गांधीजीसे बातें करनेका अवसर मिला था। गोस्वामी प्रभुको कुछ वर्ष पूर्व चट्टगाँवमें नेताओंकी सभामें गांधीजीके साथ एक आसन पर बैठनेका अवसर मिला था । इस बार उनका दर्शन मात्र करके धन्य हो गये। मां-गोस्वामिनी और दीदी गोस्वामिनीको महात्माजीकी स्त्री और पुत्रवधू तथा मीराबाई Miss Slade के साथ देर तक अनेक विषयों पर बातें करनेका सुयोग मिला था।

मीराबाई (Miss Slade) के साथ जो उनकी बातें हुई थीं, वह दीदी गोस्वामिनीकी डायरीसे उद्धृत करके प्रकाशित की गयी थीं। मीराबाई (Miss Slade) के साथ गोस्वामी प्रभुने भी कुछ देर बातें की। गोस्वामी प्रभुने पूछा—

"आप अपने स्वदेश और आत्मीय स्वजनोंको छोड़कर यहाँ आकर सुखसे तो हैं ?"

मीराबाईने हँसकर उत्तर दिया—"बिल्कुल अच्छा है।" वे हिन्दू विधवाके समान ब्रह्मचारिणी वेषमें रहतीं, सिर मुड़ाये, खद्दर पहने और नङ्गे पैर। सब काम अपने हाथसे करतीं। Miss Slade को देखकर बड़ा आनन्द हुआ। अँग्रेज रमणी दीन हिन्दू विधवाके समान ब्रह्मचारिणी वेशमें आश्रममें काम करती है। दीदी गोस्वामिनीके साथ उनकी जो बातें हुई थीं, उसको पढ़नेसे Miss Slade की जन्मसे ही हिन्दूधर्ममें निष्ठा तथा भारतवासियोंके प्रति उनकी स्वाभाविक प्रीतिका परिचय प्राप्त होता है।

दीदी गोस्वामिनीकी डायरीसे

पूछती हुई मिस् स्लेड या मीराबाईके घर गयी। वह स्थान हृदयकुञ्जके समीप ही था। मिस् स्लेड जमीन पर घुटनेके बल बैठी कुछ धड़ाधड़ लिख रही थीं। दीर्घकाय सबल देह, बड़ी ऊँची नासिका, काली घनी टेढ़ी भौं, आँखकी पुतली काली, दृष्टि मानों विनय और प्रीतिसे सुशीतल, पतले ओष्ठ, कुन्दके समान श्वेत दाँत संक्षेपमें सब प्रकारसे सुन्दर थीं। शरीर पर जैसा तैसा एक वेस्ट कोट और वदनमें खद्दरकी साड़ी, दो-तीन जगह फटी हुई।

उन्होंने हम लोगोंको आसन देकर बैठाया। सिरके बाल छुरेसे मुड़े हुए, कुछ-कुछ पके हुये थे। बातचीत हिन्दीमें ही चली। मधुर हँसी, मधुर व्यवहार।

मैं—"आपका दर्शन करके बड़ा आनन्दित हुआ।"

स्लेड—"मैं आप लोगोंकी ही हूँ। मुझको ऐसा लगता है कि मैं जन्म-जन्मान्तरसे यहीं रही हूँ। किसी पापका फल भोगनेके लिए इस जन्ममें इंगलैण्ड में चली गयी।"

मैं—"आपकी माँ जीवित हैं ?"

स्लेड—"हाँ, पिता कुछ दिन हुए स्वर्गीय हो गये।"

मैं—"उनको चिट्ठी-पत्री लिखती हैं ? उनके और कौन सन्तान है ?"

स्लेड—"उन्हींको यह पत्र लिख रही हूँ। आज शुक्रवार है, विलायती डाक जायेगी। बस, यही मेरा माँके साथ सम्बन्ध है। मेरी एक और बड़ी बहिन है।"

मैं—"आप यहाँ इस प्रकार रहती हैं, माँको दुःख नहीं होता ?"

स्लेड—"प्रारब्धकी बात मानकर सन्तोष कर रखा है। वह बड़ी शान्त हैं।"

मैं—"आपका विवाह नहीं हुआ ?"

स्लेड—"नहीं, मैं कुमारी हूँ। महात्माजीकी शक्तिने मुझको तीव्र रूपसे आकर्षित किया है। ४ वर्ष हुए उनके सामने ब्रह्मचर्य ले चुकी हूँ, तभीसे मुण्डन रखती हूँ, रुपये-पैसे नहीं छूती। घरसे जो कुछ आता है, वह महात्माजीके नामसे आता है। मैं केवल रेलसे भ्रमण करते समय खर्च लेती हूँ।"

मैं—"किधर अधिक भ्रमण करती हैं ?"

स्लेड—"विहार और उड़ीसामें। बड़े दरिद्र देश है। उनकी तुलनामें यह गुजरात कुछ धनी है। चर्खा कातना सिखलाती हूँ।

मैं—"इस देशके ग्रीष्ममें निश्चय ही आपको कष्ट होता होगा ?"

स्लेड—"नहीं, मैं इस देशमें, इस आचारमें परम सुखी हूँ। मालूम होता है कि सदा यहीं रहती आई हूँ।"

मैं—"आपकी उम्र क्या होगी ?"

स्लेड—"(थोड़ी हँसकर) ३७ वर्ष।"

मैं—"आप सचमुच मीराबाई हैं।"

स्लेड—"(प्रणामके भावमें) वे बड़ी भजनशील थीं। उनके भजन, गीत बड़े ही मधुर हैं, अति सुन्दर हैं।"

मैं—"अब मैं आपका बहुमूल्य समय अधिक न लूँगी।"

स्लेड—"हाँ, अब मैं भी रूई धुनने जाऊँगी। इसीको मैं अधिक आवश्यक समझती हूँ। यह ठीक होने पर सूत-कपड़ा सब ठीक हो जाते हैं।"

इसके बाद मैं श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी बात, टूची साहबकी बात—आदि बहुत सी बातें करके उठी। सारा आश्रम देखनेके बाद, फिर ढूँढ़ने पर मैंने देखा कि वे रूई धुन रही हैं। वहाँ जाकर मैंने देखा, मानो गुजराती विधवा महिला हो, कंधा और पेट खुले, धुनियाँकी स्त्रीके समान रूई धुन रही थीं। रङ्ग कुछ जलासा था; और मुँह पर छोटे-छोटे दाग थे। एक खास अमेरिकन मेम उनसे भेंट करने आयी थी। बाहर निकलकर उन्होंने उनसे हाथ मिलाया और उनको जल दिया। मीराबाईके साथ बाबाका परिचय इसी स्थान पर हुआ था।"

डाकौरजीका इतिहास

अहमदाबादके अवस्थान कालमें सौभाग्यवश हम लोगोंको डाकौरजीका दर्शन करनेका अवसर मिला था। डाकौर नामक (उस समयके बी० बी० सी० आई० रेलवे की) स्टेशन अहमदाबादसे ६० मील दूर बम्बईके रास्तेमें है, और बड़ौदाके बहुत नजदीक है। नड़ियाद और आनन्द रेलवे स्टेशनोंसे आगेका स्टेशन डाकौर है। आनन्द जंकशन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है।

जैसे जयपुरमें आदि गोविन्ददेव हैं, उसी प्रकार डाकौरजीमें भी आदि द्वारकाधीश विराजरहे हैं। इसकी एक प्राचीन कथा है। दीदी गोस्वामिनी डाकौरमें बैठे-बैठे यह कथा सुनकर लिख लायी थीं। नीचे उसे उद्धृत करते हैं :—

"श्रीश्रीद्वारकाधीशका आदिविग्रह चिरकालसे श्रीश्रीडाकोरजीके नामसे विख्यात होकर बम्बई प्रान्तमें अपने ही नामसे प्रसिद्ध डाकौर नामक स्थानमें विराजमान हैं। पुण्य-क्षेत्रमें मुक्तिधाम चारधामके अन्तर्गत महामहिमान्वित स्थान श्रीद्वारका त्याग करके उनके इस स्थानमें आनेका विवरण बड़ा ही मधुर और हृदय-द्रावक है, तथा भक्तवत्सल प्रभुकी अपूर्व भक्ताधीनताका परिचायक है। यह कथा सैकड़ों वर्षोंसे साधु-महात्माओं तथा आचार्योंके मुखसे सुप्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित हुई है।

पूर्वकालमें इसी डाकौर ग्राममें राजपूत वंशके पीपा नामक एक परमभक्त निवास करते थे। कृषि करना ही उनकी जीविकाका साधन था। घरमें गङ्गा नामकी अपनी पतिव्रता स्त्री, तथा शिशु पुत्र-पुत्रीको छोड़कर वह द्वारकाधाम श्रीद्वारकाधीशके श्रीचरणोंके दर्शनोंके लिये अत्यन्त आकुल चित्तसे यात्रा किया करते थे। डाकौरसे द्वारका एक महीनेका पैदलका रास्ता है। अञ्जलिमें प्रफुल्ल तुलसी-मञ्जरी लेकर एक महीनेमें वहाँ पहुँचकर उसी विशुद्ध तुलसीदलसे प्रभुके श्रीचरणोंकी अर्चना करके दो एक दिन वहाँ ठहरकर हाथमें प्रभुका निर्माल्य तुलसीदल लिये गृहाभिमुख यात्रा प्रारम्भ करते। यथाकाल डाकौर पहुँचकर स्त्री-पुत्र-कन्यादिको निर्माल्य प्रसाद देकर गृह-क्षेत्रादिकी कुछ देख-भाल करके ५-६ दिनके बाद ही उनका हृदय प्रभुके दर्शनोंके बिना फिर व्याकुल हो उठता, और फिर उसी प्रकार यात्रा करते। फिर वहाँसे गार्हस्थ्य धर्मकी रक्षाके लिए लौट आते। इस प्रकार जाने-आनेमें ही उनका सारा जीवन वीत गया। पश्चात् बुढ़ापेके कारण शरीर शिथिल और दुर्बल होने लगा। प्रभुके दर्शनोंकी आतुरतामें उनके मन:प्राण इतने विह्वल हो उठते कि रास्तेके श्रमको वे तृणवत् भी नहीं समझते। परन्तु वृद्धावस्थाकी विवश अवस्थाने उनको बहुत ही भीत और विचलित कर दिया। अन्तिम यात्रामें बहुत कष्टपूर्वक ७-८ महीनेमें श्रीद्वारकाधाम पहुँचकर भक्त हृदयके स्वत: नि:सरित सुनिर्मल प्रेमाश्रुसे अपने वक्ष:स्थलको धोते हुए प्रभुके चरणोंमें अपनी अवस्था निवेदन करके विरह-शङ्कित क्षुब्ध अन्त:करणसे सिंहद्वारके एक पार्श्वमें मृतवत् पड़ रहे। परम करुणामय भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भक्तकी दुर्दशा न देख सके, गम्भीर रजनीमें स्वप्नमें प्रकट होकर मृदुहास्यमय मुखमण्डलसे स्नेहयुक्त वचन बोले—'पीपा मैं तेरा दु:ख दूर करने आया हूँ। तुम बूढ़े हो गये हो, अब पैदल नहीं आ सकोगे और मैं भी तुमको देखे बिना नहीं रह सकूँगा। तुम एक काम करो, एक गाड़ी लाकर मेरे अन्त:पुरके पीछे उद्यानमें रक्खो। मैं अगली रातमें स्वयं आकर उस गाड़ी पर चढ़ जाऊँगा और तुम

स्वयं उसको चलाकर ले चलना। यहाँसे जाकर मैं डाकौरमें ही रहूँगा।' भक्त पीपा स्वप्नमें ही रो उठे—'प्रभो ! तुम विश्वम्भर हो, मैं कैसे तुमको वहन करके ले जाऊँगा ?' श्रीद्वारकाधीश्वर हँसकर बोले—'पीपा चिन्ता मत करो। मैं रूईके समान हल्का हो जाऊँगा।' सहसा निद्रा भङ्ग होनेपर पीपा विस्मित, पुलकित और स्तब्ध हो उठे। 'अहा ! मैं इसी सिंहद्वार पर धूलिशय्या पर सोया हूँ, मैंने क्या देखा ? क्या सुना ?' अचानक अपूर्व धूप, गुग्गुल, केशर, चन्दन, तुलसी मिश्रित गन्धसे वह स्थान भर गया। अपने प्रभुके पाद-पद्मोंकी उस गन्धसे पीपा चिरपरिचित थे, उनका संशय दूर हो गया। सारा दिन किसी प्रकार काटकर रातको एक गाड़ीका जोगाड़ करके उन्होंने ठीक तौर पर उसे संकेत स्थान पर रख दिया। एक पहर रात बाकी थी। पीपा तृषित नेत्रोंसे एकटक श्रीमन्दिरके अवरुद्ध द्वारकी ओर देखते रहे। उसी समय सुधा-मधुर रुन-भुन रुन-भुन ध्वनिके साथ श्रीद्वारकाधीश्वर पीपाकी गाड़ीके पास आये और उसपर चढ़कर मधुर स्वरसे बोले—'गाड़ी ले चलो'। पीपाने आनन्दसे जड़बत् शरीरसे किसी प्रकार गाड़ीमें हाथ लगाया। हाथ लगाते ही सचमुच गाड़ी मानो रूईके समान उड़ चली और वृद्ध पीपाको उस गाड़ीका साथ देना मुश्किल हो गया। रात बीतने पर शय्यासे उठानेके लिए भक्त पुजारी जब आवेंगे तो उनको न पाकर क्या करेंगे—इसी भयसे भक्ताधीन प्रभु भागे जा रहे हैं। एक महीनेका रास्ता एक दिनमें पार करके उमरेट नामक ग्राममें आकर बोले—'पीपा ! मैं थक गया हूँ। मुझको पानी पिलाओ।' व्याकुल भक्तने पत्तेके दोनेमें प्रभुको जल दिया। वे एक विशाल निम्बवृक्षकी एक निचली डाल बायें हाथसे पकड़कर कुछ बङ्क होकर मानो भार देकर खड़े थे। श्रीद्वारकाधीश जल पी रहे थे, इसी समय दूरसे 'पकड़ो-पकड़ो' का कोलाहल सुन पड़ा। प्रभु चमक उठे, और बोले—'पीपा ! पण्डे लोग आ रहे हैं, तुम शीघ्र गाड़ी हाँको, हम भागें।' प्रभुके आदेशसे पीपाने गाड़ीको स्पर्श किया ही था कि वह विमान-विजयी गतिसे उड़ चली; क्रमसे डाकौर ग्राममें आ पहुँचे और भक्त पण्डे भी पवन गतिसे दौड़ते आ रहे थे। थोड़ी दूर पर उनका कोलाहल सुनकर प्रभु एक स्थानीय विशाल कुण्डमें कूद पड़े। वह कुण्ड गोमती कुण्डके नामसे विख्यात है। पण्डोंने आकर देखा, कहीं कुछ नहीं है। पीपा अकेले पेड़के नीचे बैठा है। तब यह सोचकर कि निश्चय ही वह चतुर चूड़ामणि कुण्डमें छिपे हैं, वे लोग कुण्डमें कूदकर तलाश करने लगे। विश्वकर्त्ता स्वयं छिप गये हैं, यदि स्वयं न पकड़ावें तो किसकी मजाल जो उनको पकड़ पाये ? स्वतः सिद्ध भक्त पुजारी लोग तब भक्तिके अभिमानवश क्रोधसे अधीर हो उठे, और उन्होंने धनुषवाण लेकर कुण्डके जलमें वाण चलाना आरम्भ कर दिया। मनमें यह भाव था कि 'मारकर उनको बाहर निकालेंगे। कब तक छिपे रहेंगे ?' श्रीभगवान भक्तोंके इस आघातकी उपेक्षा न कर सके। लीलामय एक

तीव्र तीरकी फलक बायें कक्षमें लगाये जल शोणितमय करकर ऊपर आये। आज तक उनके उन भक्तोंके द्वारा क्षत-चिह्न पर पहले पट्टी बाँधी जाती है, फिर उसपर शृङ्गार होता है। तब गोमतीके तीर प्रभु स्थापित किये गये। पण्डा लोगोंके कानोंमें प्रभुने आदेश दिया कि, 'तुम लोग मेरे विग्रहके समान तौलका सोना पीपासे माँगो। पीपा कङ्गाल है, कहाँसे देगा ? तब मैं द्वारकामें जाऊँगा।' पीपा यह बात सुनकर काँपने लगे—'हाय प्रभु ! भूखेके हाथमें लड्डू देकर फिर उससे वञ्चित कर रहे हो ? यदि ऐसा ही करना था तो आये ही क्यों ? सोना मैं कहाँ पाऊँगा ?' तब प्रभुने उसके कानोंमें कृपादेश दिया—'पीपा ! क्यों घबराता है ? तेरी स्त्री गङ्गाबाईके दाहिने कानमें जो सोनेकी बाली है, एक तुलसीदलके साथ उसे ही तुला पर रख दो। मैं ऊँचा उठ जाऊँगा, वह सोना भारी होकर नीचे हो जाएगा।' हुआ भी ऐसा ही। बड़ा तराजू लाया गया, डाकौरके सब लोग एकट्ठे हो गये, तुलादण्डके एक पलड़े पर विशाल चतुर्भुज श्रीकृष्ण विग्रह था और दूसरे पलड़े पर पीपाकी भक्तिमती स्त्री गङ्गाने रोते-रोते अपने उस साधारण कुण्डलको तुलसीदलके साथ रख दिया। सब लोगोंके सामने प्रभु हल्के होकर ऊपर उठ गये, और वह छोटा स्वर्णकुण्डल अतिभारसे नीचे हो गया। तब पण्डे लोग द्वारकाधीशकी चालाकी समझकर हाय-हाय करके रोने लगे। कोई पत्थरसे अपना सिर मार रक्तपात करने लगा, गोमती तीर अश्रु जलसे सिक्त हो गया। भक्तवत्सल अब इस क्रन्दनको न सह सके। आकाशवाणीसे आदेश हुआ—'श्रीद्वारका धाममें एक कुएँके भीतरसे मेरा स्वत: सम्भूत विग्रह प्रकट होगा, बारह महीनेके पहले उस विग्रहको न उठाना, वहाँ उसी श्रीविग्रहमें अधिष्ठित होकर मैं सेवा ग्रहण करूँगा।' पण्डे लोग उस आदेशको शिरोधार्य करके श्रीधाममें लौट गये। तबसे पीपा डाकूके नामसे प्रसिद्ध हो गया, और उसके नामके अनुसार श्रीद्वारकानाथ वहाँ डाकौरजी कहलाने लगे।

पीपाके वंशज आज भी डाकौर नगरमें विद्यमान हैं। वे लोग खेती-बारीका काम करते हैं और श्रीमन्दिरमें अन्नका जोगाड़ करते हैं। उमरेट गाँवमे श्री द्वारकाधीशने नीमके पेड़की डाल पकड़ कर विश्राम किया था, वह पुराना वृक्ष आज भी है। प्रभुने श्रीहस्तसे जिस डालको पकड़ा था, उस डालकी पत्तियाँ, छाल आदि सब कुछ चीनी मिली हुई सी मधुर लगती हैं। वृक्षके दूसरे अङ्ग स्वाभाविक तिक्त हैं। इस अद्भुत वृक्षको देखनेके लिए आज भी लोग उमरेट गाँवमें जाते हैं।

श्रीद्वारका धाममें उपर्युक्त कूपसे श्रीविग्रह प्रकट हुआ। वह कूप अब तक वहाँ है। वहाँ भी यह डाकौरजीकी कहानी प्रसिद्ध है, परन्तु पण्डा लोगोंने बारह महीने प्रतीक्षा न करके सात ही महीनेमें धीरज खोकर पत्थर मार-मारकर प्रभुको बाहर निकाला। सेवकोंके प्रेममय औधत्यसे वहाँ भी प्रभुके कन्धेके ऊपर पत्थरकी

चोटके स्पष्ट चिह्न विद्यमान हैं। जय श्रीश्रीडाकौरजी। जय भक्तवत्सल द्वारकाधीश! जय भक्त-महिमा।

डाकौरजीके दर्शन और उनकी रहस्यमयी लीला

दिसम्बर, २९ वीं मार्गशीर्ष रविवारके दिन १०॥ बजेकी ट्रेनसे डाकौरजीके लिये प्रस्थान किया। साथमें गोस्वामी प्रभु, मां-गोस्वामिनी, दीदी-गोस्वामिनी, तथा बंकु दादाकी स्त्री और पुत्र गुरुदास, एवं एक शिशुपुत्र, उनका रसोइया हरिनारायण मिश्र, और गोस्वामी प्रभुकी अनुगता एक सेविका थी। प्रति पूर्णिमाको डाकौरमें एक बड़ा मेला लगता है। बहुत दूर-दूरसे बहुतसे लोग इकट्ठे होते हैं। श्रीविग्रह गोपालजीके दर्शनोंके लिए स्पेशल ट्रेनें खुलती हैं। हम इसी पूर्णिमा तिथिको डाकौरजीके दर्शनोंके लिए गये थे। गाड़ी उस दिन आउट लाइन लेकर २॥ घण्टे पीछे थी। इस कारण हम लोग संध्या होनेके कुछ पूर्व डाकौरजी पहुँचे। स्टेशनसे डाकौरजीका मन्दिर एक मीलसे कम दूरी पर है। ताँगा करके हम लोग बल्लभनिवास धर्मशालामें उतरे। मणिलाल पण्डा आनन्द स्टेशनसे ही हमारे सङ्ग लग गये थे। उन्होंने ठीक संध्याके बाद डाकौरजीके दर्शनोंका सुयोग और सुविधा कर दी। श्रीमन्दिरमें लोग ठसाठस भरे थे। दर्शनकी विशेष असुविधा होने पर भी हमारे भाग्यसे भली-भाँति श्रीविग्रहके दर्शनोंका सुयोग प्राप्त हो गया था। बंकुदादाके रसोइया ब्राह्मण हरि-नारायण मिश्र एक छोटे शिशुको लेकर धर्मशालामें रहे, और हम सब पण्डाजीके साथ दर्शनोंके लिए गये। हमारे दर्शन करके लौट आने पर मिश्रजी दर्शन करने जायेंगे ऐसी व्यवस्था करके सब लोग दर्शन करने गये थे, क्योंकि छोटे बच्चेको लेकर उस भीड़में दर्शन करना असम्भव था। यहाँ श्रीविग्रहके दर्शनोंके लिए बहुत थोड़ा समय मिलता है। दूसरे दिन प्रातःकालकी गाड़ीसे हमारे अहमदाबाद लौटनेकी बात थी। मां-गोस्वामिनीने श्रीविग्रहका दर्शन करके मिश्रजीके लिए बड़ी ही उत्कण्ठापूर्वक विनती करके पण्डाजीसे कहा—"आप जाकर मिश्रजीको अभी ले आवें।" क्योंकि प्रातःकाल यदि समय न मिला, तो मिश्रजीको डाकौरजीके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त न होगा। इसी कारण मां-गोस्वामिनीको इतनी व्याकुलता थी। मिश्रजी आये, दर्शन आदि भी किया; परन्तु उनके गलेकी चादर बंकुदादाके शिशुका मूत्र लग जानेसे अपवित्र हो गयी थी, जल्दीमें इसका विचार न करके पहने हुए वस्त्रको न बदल कर उस अपवित्र चादरमें ही श्रीविग्रहका दर्शन करने आए। इसके फलस्वरूप डाकौरजीके अति निगूढ़ लीला रहस्यकी बात सुनिये। यहाँ डाकौरजी जागृत देवता हैं। बहुत लोगोंकी अनेकानेक मनोकामनाएँ उन्होंने पूर्ण की हैं, और कर रहे हैं। बम्बई और गुजरात प्रदेशमें डाकौरजीका नाम अति प्रसिद्ध है।

हम लोग श्रीविग्रह दर्शन करके और माखन-मिश्रीका भोग लगाकर संध्याके बाद धर्मशालामें आये। पण्डाजीने डाकौरजीका प्रसाद लाकर दिया। हम सब

लोग मिल-जुलकर प्रसाद पाकर डाकौरजीकी महिमा सम्बन्धी अनेक कथा वार्त्ताओंके बीच परम आनन्दपूर्वक धर्मशालाके एक कमरेमें सो गये। बंकु दादाके रसोइया ब्राह्मण मिश्रजी एक दूसरी कोठरीमें सोये। मिश्रजी निरक्षर थे, बड़े ही सीधे ब्राह्मण थे; प्रतापगढ़ जिलेके निवासी थे। रातमें सोये हुए वे स्वप्नमें देखते हैं; उसे उन्हींके वर्णनमें श्रवण कीजिये। "डाकौरजीके दो बलवान् दरबान हाथमें लाठी लिए मेरी कोठरीके द्वार पर धक्का दे रहे हैं, और मुझसे कह रहे हैं, 'उठो, उठो तुमको डाकौरजी बुला रहे हैं।' मैंने द्वार बिना खोले ही कहा—'जाओ मैं नहीं जाऊँगा, मैं किसीका नौकर नहीं हूँ।' फिर द्वार पर धक्का लगा, मानो दो आदमी और आ गये। सब मिलकर मुझको भयभीत करने लगे। तब मैंने डर कर द्वार खोल दिया। देखता क्या हूँ कि सामने ४-५ बलवान दरबान हैं। वे मुझको देखते ही धर पकड़ कर धक्का देकर रास्तेमें घसीटते हुए डाकौरजीके मन्दिरमें ले गये। डाकौरजीके सामने हाजिर करते ही डाकौरजी दोनों आँखें लाल करके मेरी ओर क्रोध भरी आँखोंसे देखकर बज्रके समान गम्भीर स्वरमें बोले—'तुम अपवित्र चादर गलेमें बाँधकर मेरा दर्शन करने आये थे। तेरी माईजी तेरे लिए बड़ी ही व्याकुलतापूर्वक रो उठी थी, इसीलिए तुझको मैंने दर्शन दिया था, नहीं तो, नहीं देता। तू महा पापी है'—इतना कहकर दरवानोंको हुक्म दिया कि इसका सिर मेरे सामने पत्थरसे चूर-चूर करदो। तब मैं भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोला—'प्रभु! मुझसे अपराध हो गया है, मुझको क्षमा करो, ऐसा काम फिर न करूँगा।' तब डाकोरजी कुछ शान्तभाव धारण करके बोले—'कल तड़केके मङ्गल आरतीके समय स्नान करके पवित्र होकर तुम आना, तुमको अपना चरण स्पर्श करने दूँगा। ऐसा काम फिर कभी न करना, मेरे सामने शपथ करके बोलो।' मैं तब फिर उस मन्दिरमें दण्डवत् प्रणाम करके शपथ लेकर बोला—'ऐसा काम अब मैं फिर कभी न करूँगा।'

हम सब सोये थे। दूसरी कोठरीमें मिश्रजीने यह अद्भुत स्वप्न देखकर रोतेहुए सबकी नींद भङ्ग करदी, तथा प्रेम गद्गद् होकर सारा स्वप्न-वृत्तान्त सुनाकर मां-गोस्वामिनीके चरण पकड़कर बोले—"मां! आपकी कृपासे मुझे डाकौरजीका दर्शन प्राप्त हुआ है। अब फिर एक बार कृपा करके मुझको साथ लेकर कल तड़के मङ्गल आरतीके दर्शन कराकर मुझको कृतार्थ करें।" इतना कहकर वह ब्राह्मण स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर मङ्गल आरतीके दर्शन करनेके लिए जानेको तैयार हो गया। हम सब लोग उसको साथ लेकर जानेके लिए तैयार हो गये, उसी समय पण्डाजी भी आ गये। वे भी वह स्वरूप वृत्तान्त सुनकर प्रेमसे गद्गद् होकर उस ब्राह्मणको धन्य-धन्य कहने लगे। यथा समय खूब तड़के बड़े प्रेम और आनन्दसे डाकौरजीकी मङ्गल आरतीका दर्शन हुआ। मिश्रजी अब वह मिश्रजी नहीं रहे।

भक्तिरससे परिलुप्त होकर प्रेम-गद्‌गद् वचनसे हाथ जोड़कर वह डाकौरजीके चरण पकड़ कर न जाने क्या-क्या बोलने लगे, और अपने नयन जलसे मन्दिरके प्राङ्गणको सिक्त कर दिया। वह अपूर्व दृश्य जीवनमें कभी भुलाया नहीं जा सकता। श्रीमन्दिरसे धर्मशालामें आकर वह ब्राह्मण गोस्वामी प्रभु और मां-गोस्वामिनीको दण्डवत् प्रणाम करके उनके चरण पकड़ करके अजस्त्र आँसू बहाने लगा। सभी उपस्थित लोग यह देखकर प्रेम-गद्‌गद् चित्तसे प्रेमाश्रु बहाने लगे। सबका हृदय मधुमय हो उठा। सबको जीवन सार्थक जान पड़ा। उस ब्राह्मणको सभी लोग धन्य-धन्य कहने लगे। मिश्रजीके प्रति डाकौरजीकी इस अद्‌भुत कृपाकी बात बिजलीके समान डाकौरके घाट-बाट स्टेशनमें सर्वत्र फैल गयी। हम लोग प्रातःकालकी ट्रेनसे अहमदाबाद लौटे। गाड़ीमें बैठे हुए कई सज्जन यात्रीगणके साथ डाकोरजीकी अद्‌भुत कृपाकी चर्चा होती रही। श्रीगुरु गौराङ्गकी कृपासे हमको यह श्रेष्ठ तीर्थ-दर्शन परम आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रीद्वारकानाथका दर्शन करनेका सौभाग्य पहलेही प्राप्त हो चुका था। यहाँ हम द्वारकानाथका दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो गये। जीवन सार्थक समझने लगे।

अहमदाबादमें प्रभु-प्रियाजीकी अद्‌भुत् लीला

अहमदाबाद लौटकर हरिनारायण मिश्र ठाकुर गोस्वामी प्रभुसे हरिनाम महामन्त्रमें दीक्षित हुए। तुलसीकी कण्ठी धारण करके जपकी माला ले ली। कुछ दिनोंके बाद द्वारकाधाममें जाकर श्रीद्वारकाधीशका दर्शनकर कृतार्थ हुए। वह नित्य मां-गोस्वामिनीको प्रणाम किए बिना जल ग्रहण नहीं करते थे।

सुदूर बम्बई प्रदेशमें जाकर प्रभु-प्रियाजीने अनेक लीलाएँ कीं। अहमदाबादमें भक्तिमान् और भक्तिमती राय दम्पतिकी प्रेम-सेवासे परितुष्ट होकर उन्होंने जो जो अपूर्व लीलारङ्ग दिखलाये, उनको विस्तारपूर्वक लिखनेसे एक छोटी पुस्तक तैयार हो जायेगी। दो एक लीला-कहानी यहाँ वर्णन की जाती हैं।

पौष ४ थी तिथिकी रातमें गोस्वामी प्रभुने अपनी प्रवास-सङ्गिनी एक अनुगता भक्तिमती स्त्रीको ठाकुर मन्दिरके ठीक बगलके कमरेमें कागज जलाकर शीत निवारण करते देखकर बनावटी क्रोध दिखलाकर आदेश दिया था कि, 'तुम बाहर सोया करो।' पौषके महीनेकी कड़ाकेकी शीत थी। वह स्त्री अनन्य भावसे श्री गुरु-सेवामें रत रहती थी। गुरु-सेवाके लिये ही वह श्रीवृन्दावन-वास छोड़कर श्रीधाम नवद्वीपमें आयी थी। गोस्वामी प्रभुने श्रीधाम नवद्वीपसे जब सुदूर बम्बई प्रान्तमें प्रभु-प्रियाजीके साथ गमन किया तो वही स्त्री साथ-साथ उनकी सेवा करती आयी थी। वह स्त्री विधवा थी, और प्रभु-प्रियाजीकी एकान्त अनुरागिणी दासी थी। गुरुकी आज्ञाका पालन करना उसका कार्य था। उस शीतमें उसको गुरुदेवने बाहर सोनेका जब आदेश

दिया तो, उसे शिरोधार्य करके किसीसे कुछ न कहकर उसने गुरुकी आज्ञाका पालन किया। उस दिन रातमें वंकुदादाकी भक्तिमती स्त्री सुनीतिने स्वप्नमें जो कुछ देखा था, वह अपने पत्रमें लिखकर श्रीगुरुदेवको विज्ञापित किया था। उस पत्रका अविकल अनुवाद नीचे दिया जाता है।

"पौष मास, भयङ्कर शीत रातमें यथासमय प्रसाद पाकर सोयी हूँ। १॥ या २ बजे रातके समय स्वप्नमें देखती हूँ कि प्रभु-प्रियाजीके श्रीमन्दिरके द्वार पर खड़ी होकर मैं मूर्तिका दर्शन कर रही हूँ। परन्तु देखती हूँ कि वह मूर्त्ति श्रीविग्रह नहीं है, वह मानो जीवन्त श्रीविग्रह है, साक्षात् दर्शन हैं। देखती हूँ कि श्रीप्रभु पलङ्ग पर एक पैर नीचे लटकाकर बैठे हैं। तीन-चार परम सुन्दरी सखियाँ वहाँ उपस्थित हैं। श्रीमन्दिरकी पिछली दीवालके ऊपर एक काठकी जाफरी लगी है, उसके भीतरसे ठण्डक आ रही है। सखियाँ नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करके भी ठण्डकका आना बन्द नहीं कर पा रही हैं। उस रात भयानक शीत पड़ रहा था। तब प्रियाजी स्वयं पलङ्गसे उठकर उस स्थानको आच्छादित करने गयीं। इस काममें उनके दाहिने हाथकी अंगुलिमें चोट लगी। ऐसे ही सब सखियाँ क्रोधाविष्ट होकर मुझको लाल आँख करके कुछ कहने आयीं। प्रियाजीने उनको इशारेसे मना करते हुए कहा—'अहा! उसको कुछ न कहना, वह बच्ची है, वह क्या जाने।' तब सखियाँ प्रियाजीकी अंगुलीके क्षत स्थानको बाँधनेमें लग गयीं। यह देखकर प्रियाजी मधुर वचनोंसे फिर बोलीं—'तुम लोग इस स्त्रीको लाल आँखें करके धमकाती हो, मेरी अंगुलीका क्षत स्थान इसीको बाँधने दो।' तब मैंने भयसे रोते-रोते गेंदाके फूलके पत्तेसे, प्रियाजीकी अंगुली बाँध दी। उसी समय मेरी नींद टूट गयी। बिछौने पर लेटे लेटे कितनी ही बातें सोचने लगी, और रोने लगी। कुछ देरके बाद फिर तन्द्रा आयी। फिर स्वप्न देख रही हूँ मानो वे ही लोग क्रोधित होकर मुझको धमकाकर कह रही हैं—'तू सो रही है, तुम्हारे घरसे बाहर एक आदमी शीतमें पड़ा है, तूने देखा क्यों नहीं है?' इस प्रकार तीन बार मेरी नींद तोड़कर मानों उन्होंने विशेषरूपसे मुझे ताड़ना दी। गम्भीर निशामें सब सोये हैं, मैं धीरे-धीरे शय्यासे उठकर श्रीगुरुदेवके शयनगृह, तथा अन्यान्य स्थानों पर जहाँ लोग शयन किये थे, गई और एक एक करके सब स्थानोंको देख डाला। सभी बिछौने पर सोये थे। केवल मेरी भक्तिमती गुरु-बहिनको उसके घरमें नहीं देखा। सारा बंगला खोजनेपर जब न मिली तो जाकर गोशालाके बगलमें ग्वालेके घरकी सीढ़ीके पत्थरके ऊपर उसको सोया देखकर मैं चकित हो उठी। उसे खूब फटकार कर घरके भीतर सोनेके लिए कहा। उसके बाद सुना कि श्रीगुरुदेवके आदेशसे ही उसने ऐसा किया था। मेरी गुरु-बहिन बहुत सरल और भक्तिमती हैं, उन्होंने भी कहा—"दीदी! मैंने स्वप्नमें देखा है, प्रियाजी अपने पद्महस्तसे मेरा मस्तक स्पर्श करके कह रही हैं—'उठ रात बीती,

प्रभात हो रहा है'। ठाकुरको जगाओ माखन-मिश्री भोग लगाओ।" जिस समय मैंने उसको पुकारा था, ठीक उसी समय मेरी भक्तिमती गुरु-बहिन यह स्वप्न देख रही थी।

प्रातःकाल उठने पर रातके इन स्वप्नोंको लेकर बहुत आलोचना हुई। ठाकुर मन्दिरके पीछेकी ओर दीवालके ऊपर काठकी जाफरीमें नया पर्दा लगाया गया। गोस्वामी प्रभु सारा स्वप्न वृत्तान्त सुनकर हँसे और बोले—"तुम लोग भाग्यवती हो। मेरे ठाकुर जागृत देवता हैं, तुम लोगोंकी प्रेम-सेवासे परितुष्ट होकर इस प्रकार तुम लोगोंको दर्शन दिया है।" प्रियाजीकी श्रीअंगुलीकी उन्होंने विशेषरूपसे परीक्षा की, और धीरे-धीरे हाथ फेरकर बहुत आदर सम्मान किया।

अहमदाबादमें श्रीविष्णुप्रिया और श्रीअद्वैतप्रभुका जन्मोत्सव

अहमदाबाद प्राचीन स्थान है। मुसलमानी राजके अनेक ध्वंसावशेष यहाँ अब भी वर्तमान हैं। शाहीबाग, दिल्ली दरवाजा, बड़ी मस्जिद, शहरके चारों ओर दुर्ग-प्राचीर आदि बादशाही शासनके प्राचीन स्मृति-चिह्न अब भी यहाँ मुसलमानी प्रभावकी साक्षी दे रहे हैं। परन्तु यह ऐतिहासिक बातें यहाँ अप्रासाङ्गिक होनेके कारण विशेषरूपसे वर्णित नहीं हो रही हैं।

बसन्तपञ्चमी तिथिको श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभुने श्रीश्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव यथाविधि अति सुन्दरतापूर्वक अपने शिष्यके घर पर सुसम्पन्न किया था। श्रीश्रीनदियायुगल-विग्रहकी विधिपूर्वक पूजा, पाठ, अभिषेक, भोग-राग आदि समस्त महोत्सव सुव्यवस्थित रूपसे हुआ था। इस उपलक्ष्यमें यथायोग्य कीर्त्तनका अनुष्ठान भी हुआ था। स्थानीय विशिष्ट शिक्षित बङ्गाली समाजने कीर्त्तनमें योगदान दिया था। नई स्थापित की गयी हरिसभाका उस दिन एक विशेष अधिवेशन हुआ था। मणिपुरके नृत्यकला और कीर्त्तन विशारद श्रीयुत् कुमुदबन्धु सिंह आदि प्रवासी वैष्णव भक्तोंने प्रियाजीके जन्मदिवसके उत्सवमें उपस्थित होकर अपूर्व नृत्य-कीर्तन करके प्रभु-प्रियाजीको मुग्ध किया था। इस सुदूर प्रवासमें प्रियाजीके जन्मोत्सवमें इस प्रकार प्रेम और आनन्दसे भरपूर अनुष्ठान होंगे, इसकी गोस्वामी प्रभुको स्वप्नमें भी आशा न थी, सभी उपस्थित सज्जनोंने मिलकर श्रीविग्रहके सामने खड़े होकर पूज्य गोस्वामी प्रभुके साथ नृत्य-कीर्त्तनमें योगदान करके जब यह पद गाया—

"जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदियाविहारि॥"

तब उच्चकीर्तनध्वनिसे 'लक्ष्मी निवास' भवन तथा उसके समीपके स्थान गुञ्जायमान हो उठे। रास्तेमें चलने वाले बाहरके लोग बंगलेके सामने खड़े होकर

कीर्त्तन सुन रहे थे। तत्पश्चात् रातमें महोत्सव हुआ। उपस्थित सज्जनोंको यथायोग्य ठाकुरजीका प्रसाद वितरण किया गया। बंकुदादाके आदर-सत्कार और मधुर व्यवहारसे सब लोग सन्तुष्ट हुए थे। मां और दीदी गोस्वामिनीके अथक परिश्रमसे तथा सुनीति दीदीके हार्दिक उद्योग और प्रयत्न तथा आंतरिक भक्ति-भावसे यह महान् शुभकर्म इस सुदूर प्रवासमें अत्यन्त सुन्दर रूपसे सुसम्पन्न हुआ। अहमदाबाद वासी लोगोंके लिए श्रीविग्रहके सामने इस प्रकारका विशुद्ध कीर्त्तनानन्द और हरि कथामृत उपभोग करनेका शुभ सुयोग सम्भवतः इस देशमें यह पहला ही था।

श्रीअद्वैत प्रभुका जन्मोत्सव भी अहमदाबादमें ही सम्पन्न हुआ। अजमेरवासी गोस्वामी प्रभुके प्रिय शिष्य श्री हाराणचन्द्रसेनने अहमदाबादके उत्सवके आनन्दकी बात सुनकर बंकुदादाको पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करनेका लोभ मैं सम्वरण नहीं कर सका। उन्होंने लिखा था—"दादा ! आप कौन मन्त्र जपते हैं ? आप कौन साधना करते हैं ? साक्षात्कार होने पर आपसे पूछूँगा। आपका सौभाग्य देखकर हम लोगोंके मनमें खूब ईर्ष्या होती है। आपने असाध्य साधन धन श्रीश्रीगुरु युगलको घर पर बैठे-बैठे प्राप्त कर लिया है। उनकी प्रेमसेवाके फलस्वरूप आपको जो प्राप्ति होगी, उसे सुनकर हम परम सुखी होंगे। आप लोगोंकी प्रेमभक्तिकी कहीं तुलना नहीं है।"

२२वीं माघ, ता० ५ फरवरीको सपरिवार श्रीविग्रहके साथ गोस्वामी प्रभु अहमदाबादसे अजमेरके लिए रवाना हुए। यहाँके प्रवासी बङ्गाली लोगोंके साथ उनका विशेष सौहार्द हो गया था। सभी उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते थे। विदा होनेके समयका दृश्य बहुत ही करुण रसात्मक था। बंकुदादाने सगोष्ठी प्रेमाश्रु-धाराके द्वारा उनके चरण कमलोंको धोकर अपने पूज्यपाद गुरु मण्डलीको विदा दी थी। मेरी सुनीति दीदी रो-रोकर आकुल हो उठीं। उस दिन गुरुवर्गके और शिष्य वर्गके प्रेमाश्रुधाराके प्रवाहमें मिलकर एक प्रेमकी नदी वह चली। स्टेशनपर सिटी मिलके मैनेजर श्रीयुत् प्रभासचन्द्र वन्द्योपाध्याय प्रभृति सज्जन वृन्दने उपस्थित होकर पुष्प मालाके द्वारा गोस्वामी प्रभुको अलंकृत किया। गोस्वामी प्रभुके सख्य रसके प्रिय बन्धु सप्तमवर्षीय बालक गुरुदास भी स्टेशन तक साथ-साथ आये थे। **'जय गौर विष्णुप्रिया'** ध्वनिके साथ दोपहरकी गाड़ीसे अहमदाबाद स्टेशनसे अजमेरके लिये प्रस्थान किया।

अजमेर—हाराणदादाकी कुटियामें

दूसरे दिन प्रातःकाल गोस्वामी प्रभु अजमेर (पुष्कर) पहुँचे। श्रीपाद नृत्यगोपाल गोस्वामी प्रभुके पुत्र जगबन्धु दादा स्टेशन पर ही उपस्थित थे। दो घोड़ागाड़ी करके श्रीविग्रहके साथ गोस्वामी प्रभुको गोशालेके समीप हाराण

दादाकी निर्जन कुटियामें पहुँचाया। हाराणदादा बहुत उत्कण्ठापूर्वक बाट जोह रहे थे। श्रीगुरु गोष्ठीको देखकर मानो आकाशका चाँद उनके हाथ आ गया। उनका शरीर दमेके रोगसे बिलकुल अशक्त हो गया था, यदि कहें कि उनमें उठनेकी भी शक्ति न थी तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। तथापि उनका उत्साह और औत्सुक्य देखते ही बनता था। गुरु गोष्ठी थी ही ऐसी मधुर वस्तु। हाराण दादाके समान एकान्त गुरु-निष्ठ गौर-भक्त संसारमें विरले ही होते हैं। वे स्त्री-पुरुष इस समय श्रीपुष्कर खण्डमें कई वर्षोंसे निर्जनमें रह कर भजन कर रहे हैं। वे बड़ी नौकरी करते थे। राजपूतानाके साहबोंके क्लबके सेक्रेटरी थे। अजमेरमें सभी लोग हाराण दादाको भक्ति, श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। इस समय वे कुटीर-वासी भजन-निष्ठ अकिञ्चन वैष्णव थे। हाराण दादा गोस्वामी प्रभुके बड़े ही प्रियपात्र थे। वे उनको 'हाराण धन' (खोया धन) कहा करते थे। अपने एक पदमें उन्होंने बहुत पहले लिखा था :—

"हाराण-धन आमि खूंजे पेयेछि।
कोथाय लुकाये छिल, केबा मोरे एने दिल,
कि जे धन हारानिधि—सब जेनेछि।"

"खोया हुआ (हाराण दादा रूपी) धन मैंने खोजकर पा लिया है। कहाँ छिपा हुआ था, किसने मुझे लाकर दे दिया। यह कैसा खोया हुआ रत्नधन है! मैंने सब जान लिया है।"

हाराण दादाकी कुटियामें परम आदरपूर्वक प्रभु-प्रियाजी तथा श्रीश्रीगोपालजी सिंहासन पर विराजमान हो गये। कुटी टूटी-फूटी तथा बहुत पुरानी थी और गोशाला तथा आनासागरके अति निकट थी। वहाँ एक शिवमन्दिर था। सेनदम्पति इस निर्जन कुटीरमें अतिदीन-हीनके समान रहते हुए परम आनन्दपूर्वक अपना भजन-साधन करते थे। हाराण दादा अपनेको गोप-बालक तथा उनकी स्त्री अपनेको ग्वालिन मानती थीं। केवल मौखिक ही नहीं, उनकी गति विधि, उनके क्रिया-कलाप और भजन साधनके प्रति पद-पद पर यह उच्च भावना पूर्णमात्रामें दीख पड़ती थी। दीदी गोस्वामिनी हाराण दादाकी स्त्रीको 'ग्वालिनी दीदी' कहकर सम्बोधन किया करतीं और हाराण दादाकी स्त्री दीदी गोस्वामिनीको 'यशोदा' कहकर मधुर मधुर संभाषण किया करतीं हाराण दादाका स्वभाव बालवत् मधुर था और सदा हास्यवदन रहकर दमेके भीषण रोगके असह्य कष्टको सहन करते थे। ऐसे भक्तिमान्, सरल, और स्नेही पुरुष संसारमें बिरले ही होते हैं। प्रभु-प्रियाजीके चित्रपटकी सेवा भी यहाँ प्रतिष्ठित थी। दूध, मक्खन, दही, नवनीत घृतादिके महोत्सव यहाँ प्रतिदिन श्रीश्रीगोपालजी तथा प्रभु-प्रियाजीकी प्रेम-सेवामें होने लगे। इसके सिवा नाना प्रकारकी शाक-सब्जी, आलू, गोभी, बैंगन आदि तर-तरकारीके द्वारा प्रभु-प्रियाजीका राजभोग चलने लगा। इस प्रकार नौ दिन तक हाराण

दादाकी कुटियामें महोत्सवके साथ प्रेमानन्दका स्रोत बहता रहा और भक्तगण प्रसाद पाते रहे ।

इसी बीचमें श्रीनिताई चाँदका जन्मोत्सव २८वीं माघको इस निर्जन कुटीमें बड़े समारोहके साथ मनाया गया । प्रभुपाद प्राणगोपाल गोस्वामीके शिष्य ज्ञानेन्द्रनाथ घोषने मधुर संकीर्त्तन किया । भक्त प्रवर श्रीनलिनीकान्त घोषने अथक परिश्रम करके गोस्वामी प्रभुकी यथायोग्य सेवाकी । जगबन्धु गोस्वामी दादाने भी सर्वतोभावेन इस कार्यमें सहायता की । श्रीअद्वैत वंशीय प्रभुपाद श्रीयुत् बिनोदलाल गोस्वामी एम. ए. महाशयने श्रीनित्यानन्द प्रभुके जन्मोत्सवमें गोस्वामी प्रभुके आमन्त्रणसे हाराण दादाकी कुटियामें आकर इस भुवन मङ्गल शुभ काममें योगदान करके सबको उत्साहित किया था । एक दिन गोस्वामी प्रभुको अपने निजी बासे पर सम्मान पूर्वक बुलाकर पाठ और कीर्त्तनमें योग दिया था । वहाँ भी बहुतसे भक्तोंका समागम हुआ था । गोस्वामी प्रभु अजमेर वासी प्रवासी बङ्गालियोंके लिए प्राण स्वरूप थे । सरकारी नौकरी करते समय वे इस सुदूर अजमेर शहरमें २-३ वर्ष तक रहे थे । उन्हींके उद्योग और चेष्टासे यहाँ एक दोतल्ला पत्थरकी बनी पक्की बङ्गाली धर्मशाला स्थापित हुई थी । उनको पुनः अजमेरमें पाकर घर-घर ले जाकर सभी कीर्त्तनके आनन्दमें उन्मत्त हो उठे । श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुके जन्मोत्सवमें हाराण दादाकी जीर्ण कुटियामें जो प्रेमानन्दका स्रोत प्रवाहित हुआ, उसका वर्णन भाषा द्वारा नहीं किया जा सकता । नवागत उच्चशिक्षित और उच्च वेतनभोगी बङ्गाली सज्जनोंमें इंजीनियर श्रीरमेशचन्द्र बन्द्योपाध्याय तथा म्युनिसिपल सेक्रेटरी श्रीश्रीचन्द्र मित्र महाशयका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है । उन्होंने कीर्त्तनमें योगदान करके गोस्वामी प्रभुके साथ श्रीगौराङ्ग धर्मकी आग्रह पूर्वक आलोचना की थी ।

अजमेरसे नवद्वीप धाम

अजमेरसे १४ फरवरी, २ री फाल्गुन तिथिको सायं ५ बजेकी गाड़ीसे गोस्वामी प्रभु अपने परिवार और श्रीविग्रहके साथ जयपुर होते हुए आगराके लिए रवाना हुए । हाराण दादा और उनकी भक्तिमती स्त्रीकी विदा होते समयकी अवस्था देखकर काष्ठ-पाषाण भी द्रवित हो उठेंगे । सार्वभौम भट्टाचार्य महाशयने दक्षिणकी यात्राके समय श्रीमन् महाप्रभुसे कहा था—

"शिरे बज्र पड़ि यदि पुत्र मरि जाय । ताहा सहे, तोमार विच्छेद सहन ना जाय ।।"	यदि सिर पर बज्र पड़े, पुत्र मर जाय तो वह कष्ट सहन किया जा सकता है, परन्तु तुम्हारा विच्छेद नहीं सहा जा सकता ।

(चैतन्य चरितामृत)

श्रीगुरु-गोष्ठीके विषयमें एकान्त गुरु-निष्ठ गौरभक्तवर हाराण दादा तथा उनकी भक्तिमती स्त्रीकी अवस्था भी ठीक उसी प्रकारकी हुई थी। गुरु-गोष्ठी भी इस प्रकारके भक्तिमान् शिष्यके विरहसे विशेषरूपसे अस्थिर और कातर हो उठी थी। गोस्वामी प्रभु कहा करते कि, **"गुरु मिले लाखों लाख, चेला ना मिले एक"**—यह बात परम सत्य है। वे यह भी कहा करते कि, **"शिष्येर द्वारे गुरुर प्रकाश"** अर्थात् शिष्यके द्वार पर ही गुरुका प्रकाश होता है। हाराण दादाकी सारी बातें लिखने पर एक वृहत् ग्रन्थ तैयार हो जायगा।

जयपुर स्टेशनसे १० बजे रातकी ट्रेनसे गोस्वामी प्रभुके दो भतीजे जीतेन्द्र और यतीन्द्र दादा प्रभु सपरिवार उनके साथ होकर एक डिब्बेमें बैठकर दूसरे दिन प्रातःकाल आगरा पहुँचे। ज्ञानेन्द्र दादा प्रभु जयपुरसे बदलकर नागपुरमें डाकखानोंके इन्स्पेक्टर हो गये थे। आगरासे वे दूसरे दिन संध्याकी गाड़ीसे परिवारके साथ रवाना हुए। जीतेन्द्र दादा गोस्वामी प्रभुके साथ सपरिवार श्रीधाममें आ रहे थे। वह भी मीराटमें एलेक्ट्रिक इंजीनियर थे, उस समय उनकी कलकत्ते बदली हुई थी।

१५ फरवरी शनिवारके दिन श्रीविग्रहके साथ हम लोग आगरा धर्मशालामें ठहरे। तीनतल्लेके एक घरमें श्रीविग्रह विराजमान हो गये। भोजनालय भी वहाँ ही था। श्रीयमुनाजीसे मां गोस्वामिनीने स्वयं जल लाकर श्रीविग्रह-सेवा तथा भोग रागके कार्यका निर्वाह किया। यात्रामें ऐसी अवस्थामें सदाचारपूर्वक श्रीविग्रह-सेवा करना कितना कष्ट-साध्य कार्य होता है, इसको वे ही समझ सकते हैं, जिनको अपनी आँखोंसे देखनेका अवसर मिला हो, दूसरे नहीं समझ सकते। गोस्वामी प्रभु अपनी गोष्ठीके साथ अथक परिश्रमपूर्वक इस सेवा-कार्यको प्रवासमें विभिन्न स्थानोंमें आज २०-२२ वर्षोंसे करते करते सिद्धहस्त हो गए हैं। इस प्रकार सदाचारपूर्वक परम प्रेम और विधिसे प्रभु-प्रियाजी और गोपालजीकी सेवा एक मात्र उनके और उनकी गोष्ठीके द्वारा ही सुसम्पन्न होती है, दूसरोंके द्वारा सम्भव नहीं है। केवल अर्थके द्वारा यह सब कार्य सम्पन्न नहीं होता। ये सब लोग श्रीविग्रहकी सेवाके सारे कार्य अपने हाथोंसे करते हैं, पुजारी या परिचारिकाकी सहायता ये लोग कभी नहीं लेते। यही इनकी विशेषता है। श्रीविग्रहकी सेवाकी सामग्री साथ रखते हैं।

१६ फरवरीको ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर स्नानादि क्रिया करके श्रीविग्रहको भोग लगाकर प्रातः ८ बजेकी गाड़ीसे गोस्वामी प्रभु थर्ड क्लास एक्सप्रेससे श्रीधामके लिए रवाना हुए। दूसरे दिन रविवारको प्रातःकाल १० बजे गाड़ी वण्डेल पहुँची। स्टेशनके प्लेटफार्म पर एक ओर श्रीविग्रह-सेवाके लिए गोस्वामी प्रभुने एक स्वच्छन्द और पवित्र स्थान ठीक कर लिया। स्थानको गोबरसे लीपकर श्रीविग्रहकी सेवाके उपयुक्त बनाया गया। वहाँ स्नानादि क्रिया समाप्त करके विधिपूर्वक श्रीविग्रहकी पूजा हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें ठाकुरजीके फलाहारकी व्यवस्था हुई। जिस समय श्रीविग्रह

स्टेशनके प्लेटफार्मको आलोकित करते हुए सिंहासनके ऊपर विराजे, जब घड़ी-घण्टे बजने लगे, तब स्टेशनके सब लोग, साहब और मेम भी दूरसे दर्शन करके चकित हो उठे और प्रणाम करने लगे। बण्डेलसे सवा दो बजेकी गाड़ीसे रवाना होकर हम लोग ५ महीनेके बाद १७ फरवरी, ५ वीं फाल्गुन तिथिको अपराह्नमें ५ बजे श्रीधाम नवद्वीपमें पहुँचे। श्रीविष्णु-प्रिया-गौराङ्ग-कुञ्जमें नदिया-युगल विधिपूर्वक सेवा और अभिषेक आदिके बाद जब सिंहासन पर विराजमान हुए, उस समय संध्याका पूर्वकाल था और श्रीमन्दिरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। तब परम उत्साहपूर्वक सब लोगोंने अपने घरके ठाकुर ठकुरानीको घरमें पाकर परमानन्द प्राप्त किया। सबने कहा प्रभु-प्रियाजी तथा श्रीगोपालजीके स्वास्थ्यमें उन्नति हुई है, और उनके श्रीअङ्ग कुछ परिपुष्ट लग रहे हैं। गोस्वामी प्रभु, मां और दीदी गोस्वामिनी सबके स्वास्थ्यमें उन्नति देखकर सब लोग आनन्दित हुए। गोस्वामी प्रभुके प्रवास-भ्रमणमें जानेके पूर्व शरीरका वजन २ मन ६ सेर था, अब उनका वजन २ मन १५ सेर हो गया। अर्थात् उनका वजन ९ सेर बढ़ गया। श्रीविष्णुप्रिया बल्लभ प्रियाजीके साथ शचीके आंगनमें आकर परमानन्दपूर्वक, नित्य नव महोत्सवसे उन्मत्त हो उठे। विदेशी भक्त लोग आने लगे। श्रीकुञ्ज श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गके नाम कीर्तनसे पुनः गूँजने लगा। जय गौर-विष्णुप्रिया !

"रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम ॥"
"राजा राम राम राम। सीता राम राम राम ॥"



भक्तप्रवर गायनाचार्य स्व० पं० श्रीविष्णु दिगम्बर पलुसकर

गायनाचार्य पण्डित विष्णुदिगम्बरजीसे भेंट

•

श्रीपाद हरिदास गोस्वामी प्रभु जिस समय अजमेर (राजस्थान) में पोष्ट-माष्टर थे, उस समय उनका घनिष्ट परिचय पण्डित विष्णुदिगम्बरजीके साथ पड़ौसमें रहनेके कारण अनायास ही हो गया। उन दिनों पण्डितजी सपरिवार श्रीगोस्वामी प्रभुके समीपमें ही रहते थे। दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री थी तथा वे एक दूसरेके भजन-स्थलपर प्रायः मिला करते थे। जब कभी अवसर मिलता, पण्डितजी श्रीगोस्वामीके श्रीविग्रह श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गका अपने चुने हुए सुरीले और मधुर गीतोंसे मनोरञ्जन किया करते। गोस्वामीजीने पण्डितजीको नवद्वीपके श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका पहले पहल परिचय प्रदान किया, और उनको श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका एक सुन्दर चित्र तथा "गौर गीतिका" नामक अपनी पुस्तक भेंट की। गोस्वामीजी उनको गौर-लीला-कथा भी सुनाया करते थे, जिससे प्रभावित होकर पण्डितजीने नवद्वीपकी यात्रा करनेका संकल्प किया तथा गोस्वामीजीसे कहा कि नवद्वीप जानेपर उस तीर्थ स्थानका तथा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके उस विग्रहका दर्शन करेंगे जिसकी स्थापना और पूजा उनकी शक्ति श्रीविष्णुप्रिया देवीने की थी। पण्डितजीने अपने वचनको पूरा किया। वहाँ वे श्रीगोस्वामी हरिदासजीकी उपस्थितिमें चार वर्षकी अवधिमें केवल एक बार ही नहीं, तीन-तीन बार अपनी भजन-मण्डली तथा सहधर्मिणीके साथ गये। गोस्वामीजीकी सहायतासे उन्होंने अपनी पहली यात्रामें रामायणका एक भव्य और विशाल प्रदर्शन किया, जिसके पीछे-पीछे जुलूसके साथ एक महान् सङ्कीर्त्तन दल चलता था। इस जुलूसमें नवद्वीप निवासी सभी वर्गके स्त्री-पुरुष शामिल हुए थे। जुलूस भजनाश्रमसे (जहाँ वे ठहरे थे और जहाँ नवरात्रोंमें नौ दिनों तक रामायण कथाका गान करते रहे) चलकर बूड़ा शिवतलामें श्रीहरिदासजी गोस्वामीके निवास स्थान तथा श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग मन्दिर तक जाकर समाप्त हुआ। ऐसे विशाल और भव्य जुलूसके मनोहर और अभूतपूर्व दृश्यको नदियाके लोगोंको पहले कभी देखनेका अवसर नहीं मिला था। इससे वे अत्यन्त प्रभावित हुए। पण्डितजीकी कीर्त्तन-ध्वनि **"रघुपति**

राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम" से नवद्वीप नगरी प्रतिध्वनित हो उठी, और नदियावासी लोग अत्यन्त मुग्ध हो उठे।

पण्डित विष्णुदिगम्बरजी धामेश्वर श्रीगौराङ्गके मन्दिरमें प्रायः दर्शन करने जाया करते थे। उनको श्रीगौराङ्गके सेवाइत (पुजारी) गोस्वामियोंने महाप्रभुके मन्दिरमें सङ्गीतका प्रदेशन करनेके लिए विशेष रूपसे आमन्त्रित किया था। गोस्वामी हरिदासजीके अनुरोधसे उन्होंने बहुत सफलतापूर्वक मीराबाईके पदोंका गान प्रस्तुत किया, जिसे सुनकर सब लोग स्तब्ध हो गये। मन्दिरका प्राङ्गण ठसाठस भरा होने पर भी वहाँ एकान्त निस्तब्धता छायी रही। दूसरे दिन उन्होंने नगरके गणमान्य लोगोंके सन्मुख अपने चुने-चुने पदोंको गाकर उन्हें मन्त्र मुग्ध किया। स्थानीय सङ्गीतज्ञोंके ऊपर भी इस प्रदर्शनसे उनके सङ्गीतके गुरु गम्भीर ज्ञानका गहरा प्रभाव पड़ा।

वे श्रीपाद हरिदासजी गोस्वामीके बड़े कृतज्ञ थे कि उन्होंने अपर वृन्दावनका पता बतला दिया। वे नवद्वीपको इसी नामसे पुकारते थे। वे नवद्वीपके सब लोगोंसे स्पष्ट रूपसे कहते थे कि गोस्वामीजीकी कृपासे ही उनको नवद्वीप धाम (द्वितीय वृन्दावनके) दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

पण्डित श्रीविष्णुदिगम्बरजी अपने युगके महान् सङ्गीतज्ञ थे। उन्होंने सङ्गीतको भगवानके साथ जोड़कर अपने इस सर्वाधिक नैपुण्यको जनता-जनार्दनमें भगवन्नाम प्रचारका साधन बनाया था। वास्तवमें उनकी सङ्गीत-माधुरी पूर्ण कीर्त्तन शैलीमें इतना चमत्कार था कि व्यक्तिका अहं गलकर कुछ क्षण तो भगवन्नामकी ओर उन्मुख हो ही जाता था। उन्होंने संगीतको कलाकी सेवाके अतिरिक्त स्वयं अपनी साधनाका प्रखर स्वरूप मान रखा था। निरभिमानी मिलनसार एवं भगवद्-विश्वासी सङ्गीतज्ञको गौर महाप्रभुने श्रीगोस्वामीजीके माध्यमसे प्रेरित कर मानो स्वयं ही अपने धाममें बुला लिया हो।

श्रीविष्णुदिगम्बरजीका संक्षिप्त परिचय

श्रीविष्णुदिगम्बरजीका जन्म महाराष्ट्रके बेलगाँव जनपदमें कुरुन्दवाड़ राज्यमें सन् १८७२ ई० की श्रावण पूर्णिमाके शुभ दिनको हुआ था। उनके पिता श्रीदिगम्बर गोपाल भगवानके बहुत बड़े भक्त थे, उनकी हरिकीर्त्तनमें विशेष रुचि थी। उनकी माता गङ्गादेवी धार्मिक प्रवृत्तिकी महिला थीं। माता-पिताके भगवद्भाव और सात्विक स्वभावका श्रीविष्णुदिगम्बरजीके जीवन-विकासपर अमित प्रभाव पड़ा।

बचपनमें भगवान दत्तात्रेयके जन्म-दिवसके उत्सवपर आतिशबाजीके प्रदर्शनमें बालक विष्णुदिगम्बरकी आँखोंमें चोट लगनेसे देखनेकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। महाराज कुरुन्दवाड़ने उनकी आँखोंकी ज्योति लौटानेके लिए बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु

उससे कोई लाभ न हुआ। इस दुर्घटनाके अतिरिक्त एक रेल यात्रामें ऊपरकी बर्थसे गिर पड़नेके कारण भी इनकी आँखोंपर पुनः चोट आयी और इनकी रही-सही सामान्य ज्योति और भी क्षीण हो गयी। ऐसी स्थितिमें उनके लिए स्कूली शिक्षाकी अपेक्षा सङ्गीत शिक्षा ही अधिक उपयुक्त समझी गयी। उनके पिता भी सङ्गीतके अच्छे मर्मज्ञ थे। पुत्रके आकर्षक मधुर कण्ठको देखकर वे उसे सङ्गीतका ज्ञान कराने लगे। पन्द्रह वर्षकी अवस्था होनेपर विष्णुदिगम्बरको मिरजके प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ बालकृष्ण बुवाके पास सङ्गीत-साधनाके लिए भेजा गया। अथक परिश्रम और अभ्याससे एवं पूर्व जन्मके संस्कारोंके प्रभावसे विष्णुदिगम्बर सङ्गीत शास्त्रमें शीघ्र ही पूर्ण पारङ्गत हो गये। सङ्गीत-शिक्षा पूरी कर लेनेके बाद विष्णुदिगम्बरने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया।

उन दिनों लोग सङ्गीतज्ञोंको हेय दृष्टिसे देखा करते थे। समाजमें उनका अनादर श्रीविष्णुदिगम्बरजीको बहुत खटका करता। मिरजकी एक सूती मिलमें श्रद्धास्पद ब्राह्मणोंका एक भोज था। उस भोजमें श्रीविष्णुदिगम्बरजीके गुरु, उच्च कोटिके सदाचारी ब्राह्मण होते हुए भी, मात्र गायक होनेके कारण आमन्त्रित नहीं किये गये। इस घटनासे विष्णुदिगम्बरजीके स्वाभिमानी हृदयको बड़ी ठेस लगी। उन्होंने देशके कोने-कोनेमें भ्रमण कर सङ्गीत और सङ्गीतज्ञोंके प्रति घर-घरमें आदरका भाव जाग्रत करनेका पुनीत सङ्कल्प किया और व्रत लिया कि वे सङ्गीतज्ञोंको राजाओंके मनोरंजनका साधन नहीं रहने देंगे तथा उनके आर्थिक परावलम्वनकी याचक जैसी स्थितिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देंगे।

इसी महान उद्देश्यको लेकर १८९६ ई० में वे अपने दो साथियोंके साथ सङ्गीतके उज्ज्वल स्वरूपके प्रचारके लिये घरसे निकल पड़े और प्रारम्भमें औंध तथा साताराके अनेक सङ्गीत आयोजनोंमें भाग लेकर लोगोंको अपनी साधनाकी ओर आकृष्ट किया। बड़ौदाकी तत्कालीन महारानीने उनकी कलामें विशेष रुचि प्रकट की। राजप्रासादमें प्रतिदिन भगवानकी पूजाके समय उन्हें भजन और कीर्त्तनका कार्य सौंपा गया। महारानीने उन्हें अपने राज्याश्रयमें रखनेका बड़ा आग्रह किया परन्तु विष्णुदिगम्बरजीका तो यह व्रत ही था कि वे अपने आपको राज्याश्रयसे मुक्त रखकर अन्य सङ्गीतज्ञोंके समक्ष स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करनेका आदर्श उपस्थित करेंगे। अतएव बड़ौदासे मुक्ति प्राप्तकर वे सौराष्ट्र प्रदेशमें गये।

एक दिन वे गिरनार पर्वतकी यात्रापर गये हुए थे—मार्गमें वर्षाके कारण वे एक स्थानपर बैठकर पद-गानमें तन्मय हो गये। नेत्र खुलनेपर उन्होंने देखा कि एक संन्यासी खड़े-खड़े उनका गायन सुन रहे हैं। उपेक्षा भावसे उन्होंने उक्त संन्यासीसे पूछा—"क्या आप गायन समझते हैं?" संन्यासीने उत्तर दिया—"अच्छी तरह

समझता हूँ। तुम्हारी गायन-कला दोष पूर्ण है।" संन्यासी महात्मा विष्णुदिगम्बरजीको पासके एक मन्दिरमें ले गये तथा भगवानको अर्पण करनेके निमित्त एक सङ्गीत गाया जिसे सुनकर विष्णुदिगम्बरजी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने संन्यासीसे इतने मधुर गानका रहस्य पूछा। संन्यासीने बताया कि गायकके जीवनमें तपस्या, साधना और सरलता उतर आनेपर ही उसे सङ्गीत विद्यामें पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। इस उपदेशको श्रीविष्णुदिगम्बरजीने अपने जीवनमें ज्योंका त्यों उतारा और उन्हीं संन्यासीके आदेशानुसार वे उत्तर भारतमें जगह-जगह सङ्गीतका प्रचार करनेके लिए निकल पड़े।

५ मई १९०१ ई० को लाहौरमें इनके द्वारा राजा ध्यानसिंहकी हवेलीमें गांधर्व महाविद्यालयकी स्थापना हुई। यहाँ उन्हें आर्थिक संकट और जनताके विरोधका सामना करना पड़ा, परन्तु वे कभी निराश नहीं हुए। लाहौरमें वे लगभग २५ वर्ष तक ठहरे। वहाँसे सङ्गीतामृत नामक एक मासिक-पत्र तथा सङ्गीतके नोटेशन पद्धतिके सम्बन्धमें कई पुस्तकें इन्होंने प्रकाशित कीं।

लाहौर निवासकालमें महाराज कश्मीरके निमन्त्रण पर वे कश्मीर गये तथा अपने मनमोहन सङ्गीत द्वारा महाराजको आत्म-विभोर कर दिया, जिससे प्रसन्न होकर महाराजने आपको प्रचुर धनराशि पुरस्कार स्वरूप दी एवं जीवन पर्यन्त इनकी सहायता करनेका वचन दिया।

सन् १९१५ ई० में उन्होंने बम्बईमें गांधर्व महाविद्यालयके भवनका निर्माण कराया। देशके अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें जा-जाकर भी इन्होंने लोगोंमें शास्त्रीय सङ्गीत, भगवद्गीता, और रामचरितमानसके प्रति अभिरुचि उत्पन्न की। उनकी सत्प्रेरणासे अनेक स्थानोंमें बड़े-बड़े सङ्गीत सम्मेलन सम्पन्न हुए तथा भगवद्समाजोंकी स्थापना हुई। सङ्गीतको इस तरह भगवद्भक्तिकी परिधिमें संयोजित और नियन्त्रित कर उसके सात्विक तथा शास्त्रीय पक्षका इन्होंने पर्याप्त संरक्षण किया।

श्रीविनायकराव पटवर्धन, श्रीओंकारनाथ ठाकुर, श्रीनारायण राव व्यास और देवधर जैसे उच्चकोटिके सङ्गीत-महारथियोंने इनके चरणोंमें बैठकर ही सङ्गीतका अभ्यास किया। तथा वे आज भी इनकी कीर्ति-पताकाको अक्षुण्ण रखे हुये हैं।

महाराष्ट्रके एक सन्त गुरु द्वारा इन्हें **"रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम ॥"** नामक मन्त्रकी उपलब्धि हुई थी। ये सच्चे राम-भक्त थे। संत गायकके रूपमें वैराग्यका वाना पहनकर इन्होंने अपनी सङ्गीत साधना सफल की। **"रघुपति राघव राजाराम"** नामक मन्त्र इनके कण्ठका सुललित स्वर पाकर लोकमानसमें परिव्याप्त हो गया। सन् १९२० ई० में उनके मनमें वैराग्यका आवेग बढ़ गया। वे संन्यासीके वेषमें रहने लगे। नासिकके निकट पञ्चवटीमें श्रीराम-नाम-आधार-मण्डलकी स्थापना की, जहाँ अखण्ड नामकीर्त्तन तथा भगवद्भक्तिके प्रसार-प्रचारकी

दिशामें पर्याप्त कार्य हुआ है। आँखोंकी ज्योति अति क्षीण होनेके कारण बहुत बड़े-बड़े अक्षरोंमें हाथसे इन्होंने श्रीरामचरितमानस ग्रन्थ लिखवा रखा था जिसे आँखोंके बहुत निकट लाकर यह पाठ किया करते थे। यह हस्तलिखित ग्रन्थ आज भी नासिक श्रीरामनाम-आधार-मण्डलमें सुरक्षित रखा हुआ है।

काँग्रेस जैसी राजनैतिक संस्थामें विष्णुदिगम्बरजीने भगवन्नामका प्रवेश कराया। सन् १९२१ ई० के कांग्रेस अधिवेशनमें 'वन्दे मातरम्' गानके लिए श्रीविष्णुदिगम्बरजी अपने स्थानपर विराजमान थे। बाहर द्वारपर गांधीजीके प्रवेश करते ही जनताकी भीड़ उमड़ पड़ी और गांधीजीका भीतर जाना असम्भव हो गया। उस समय श्रीविष्णुदिगम्बरजीने **"रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम।।"** का कीर्त्तन करके जनताको मन्त्र-मुग्ध कर दिया और मधुर सङ्गीत सुनानेका आश्वासन देकर गांधीजीको शान्तिपूर्वक भीतर जाने देनेमें वे सहायक हुए थे। जनताने उनकी बात शिरोधार्य करके भगन्नामके प्रति यथा उनके सङ्गीतके अनुपम प्रभावके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

श्रीविष्णुदिगम्बरजी बड़े निर्भीक स्पष्ट वक्ता थे। १९२३ ई० में कांग्रेसके काकनाड़ा अधिवेशनमें जब मौलाना मुहम्मद अलीने 'वन्दे मातरम्' गीत गाये जानेपर आपत्ति प्रकट की, तो विष्णुदिगम्बरजीने उन्हें फटकारकर कहा कि यह राष्ट्रसभाका मण्डप है, मस्जिद नहीं है। अतएव 'वन्दे मातरम्' गीतपर उनकी आपत्ति सर्वथा अमान्य है और उन्होंने तनिक भी परवाह न कर 'वन्दे मातरम्' गीत प्रारम्भ कर दिया।

एक समयकी बात है। नेपालमें उनका रामायण पर प्रवचन हो रहा था। इसमें राणा परिवारके लोग दास-दासियों सहित उपस्थित थे। धूम्रपान और ताम्बूल आदिको रामायण पाठके समय देखकर श्रीविष्णुदिगम्बरजीने कहा कि—"बड़ी लज्जाकी बात है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी कथामें दो-एक घण्टेके लिए भी लोग अपना व्यसन नहीं छोड़ सकते, जब तक ताम्बूल आदिके पात्र नहीं हटा दिये जाते तब तक मैं प्रवचन ही नहीं करूँगा।" महाराणागण बहुत लज्जित हुए और उन्होंने दास-दासियोंको उस स्थानसे तत्काल विदा कर महाराजके आदर्शके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की।

श्रीविष्णुदिगम्बरजी भागवत गायक थे। सङ्गीत साधनाके पथमें श्रीविष्णुदिगम्बरजीका ध्येय था भगवानकी प्राप्ति। उनका—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

भगवद्भजनमें पूर्ण विश्वास था। वे सर्वदा निरन्तर—

रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम।।

कीर्त्तनका गायन करते रहते थे। यहाँ तक कि शौच जानेकी अवस्थामें शास्त्र नियमानुसार मौन रहनेकी स्थितिमें शौचालयके बाहर अपने किसी एक शिष्यसे इस पावन नामका सस्वर गायन सुनते रहा करते थे। सुसुप्त अवस्थामें भी बारी-बारीसे इनके शिष्य इन्हें कानके निकट इनके गुरुदत्त मन्त्र—

"रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥"

का सस्वर कीर्त्तन निरन्तर सुनाया करते थे।

उन्होंने सङ्गीत शिक्षाका वैज्ञानिक ढंगसे प्रचार किया। उनके द्वारा संस्थापित सङ्गीत विद्यालयोंमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियोंके खाने-पीने तथा रहने और पहननेके वस्त्रकी व्यवस्था विष्णुदिगम्बरजी स्वयं विद्यालय द्वारा कर दिया करते थे। उन्होंने विद्यालयमें भाषा और अङ्कगणितको भी स्थान दिया था, जिससे विद्यार्थी पूर्ण रूपसे शिक्षित होकर समाजको सङ्गीत शास्त्रके महत्वसे परिचित करा सकें। केवल सन्त पदावलीके द्वारा ही वे सङ्गीतकी शिक्षा प्रदान किया करते थे।

श्रीविष्णुदिगम्बरजी महिलाओंमें सङ्गीत प्रचारके भी पूर्ण समर्थक थे। अपनी कन्याको भी उन्होंने सङ्गीतकी अति उत्तम शिक्षा दी थी, लेकिन उसकी अचानक मृत्यु हो जाने पर उनका स्वप्न अधूरा ही रह गया। कन्याकी मृत्युसे उन्हें बड़ा आघात पहुँचा, फिर भी सङ्गीत-प्रचारके कार्यमें किसी तरहकी शिथिलता उन्होंने नहीं आने दी।

इनके कीर्त्तन-प्रचारके केवल दो ही मन्त्र थे। एक तो :—

रघुपति राघव राजा राम । पतित पावन सीताराम ॥

दूसरा—

राजा राम राम राम । सीता राम राम राम ॥

इस प्रकार भक्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए, इन्हीं मन्त्रोंका निरन्तर सस्वर गान करते और श्रवण करते हुए उन्होंने अपनी इहलोक लीला मिरजमें २१ अगस्त सन् १९३१ ई० के दिन सम्पन्न की।

ग्रन्थ-प्रणयन और वैष्णव-साहित्य-सेवा

•

श्रीहरिदासजी गोस्वामीने डाक-विभागकी सरकारी नौकरीके कालमें अथक परिश्रम करनेके पश्चात् तथा नौकरीसे अवकाश प्राप्त करनेके उपरान्त भी दिनका समय साधुसङ्ग और भगवच्चर्चामें बिताकर विश्रामकी परवाह किये बिना रात-रात भर जागकर किस प्रकार अध्ययन, मनन और ग्रन्थ प्रणयन किया, यह उनके स्वलिखित वर्णनसे स्पष्ट है। विद्याध्ययन कालमें रुग्णता एवं अन्य दूसरी परिस्थितियोंके कारण अच्छे अध्ययनके अभावमें भी उन्होंने जिन अपूर्व ग्रन्थोंका प्रणयन किया, इसमें विशेष भगवत्कृपा ही मुख्य हेतु है। श्रीविष्णुप्रिया-चरित आदि ग्रन्थोंके प्रणयनमें कुछ विशेष रहस्य भी है जो आगे वर्णित इतिहाससे स्पष्ट हो जाता है।

अपने सर्वप्रथम ग्रन्थ "श्रीविष्णुप्रिया-चरित" के सम्बन्धमें ग्रन्थकारने अपने अन्य ग्रन्थ "श्रीविष्णुप्रिया नाटक" के सूचना-प्रसङ्गमें लिखा है कि यह श्रीग्रन्थ (श्रीविष्णुप्रिया-चरित) ४२७ गौराब्दमें जबलपुरमें बैठकर लिखा गया। "श्रीविष्णुप्रिया-चरित" के उन्तीसवें अध्यायकी एक फुट नोट टिप्पणीसे भी स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ जबलपुरमें लिखा गया। ग्रन्थके उन्तीसवें अध्याय तककी पाण्डुलिपि तत्कालीन "श्रीविष्णुप्रिया-पत्रिका" के सुयोग्य कार्याध्यक्ष एवं महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषके भतीजे श्रीयुक्त मृणालकान्ति घोषने वहीं पढ़ी थी। प्रथम संस्करणकी उपलब्ध मुद्रित प्रतिसे स्पष्ट है कि उसी साल ४२७ गौराब्दमें इसका कलकत्तेमें मुद्रण होकर प्रकाशन हुआ। इस प्रकाशनका व्यय-भार भी उन्होंने स्वयं वहन किया। उन्होंने इसका उत्सर्गीकरण गोलोकगत परमाराध्य अपने पितृदेव श्रीसीतानाथ गोस्वामीके कर-कमलोंमें किया।

× × ×

यद्यपि बृहद् ग्रन्थ-रूपमें 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-चरित' उनका पहला ग्रंथ है तथापि कुछ दिनोंसे उनकी रचित कविताएँ श्रीविष्णुप्रिया-पत्रिका, श्रीश्रीगौराङ्ग-सेवक, श्रीवैष्णव सङ्गिनी, श्रीवैष्णव-सेविका, श्रीवैष्णव-धर्मप्रचार, भक्ति आदि श्रीवैष्णव धर्मकी सामयिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहती थीं।

श्रीश्रीगौरभक्तवृन्दके अनुरोधसे उनको जबलपुर निवास-कालमें एकत्र करके पुस्तकाकार मुद्रित कराया गया जो उनका सर्व-प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ है। इसकी प्रकाशन तिथि गौर-पूर्णिमा गौराब्द ४२७ है। इसका उत्सर्गीकरण उन्होंने अपने गौरधामगत अनुज श्रीमान गुरुदास गोस्वामीके प्रति किया था, जिन अनुजका वर्णन उनकी आत्म-कथामें है। उत्सर्गीकरणमें वे लिखते हैं—"बड़ा भाई भी छोटे भाईसे कुछ आशा करता है। मेरी प्रलाप-पूर्ण गौरानुरागकी कविता तुम मनोयोगसे पाठ करकर मेरे प्राण गौराङ्गको सुनाना जिससे मेरे मनकी आशाएँ पूरी हो जायें।" इस पुस्तकमें प्रकाशित गीत बड़े ही मार्मिक हैं।

× × ×

भोपालके निवासकालके समय डाक विभागकी सरकारी नौकरीके कालमें छुट्टी लेकर उन्होंने श्रीवृन्दावनकी यात्रा की थी और वहाँ लगभग नौ महीने निवास किया था। उसी समय गौराब्द ४२९ में वहाँ 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' की रचना हुई और वहीं उसका मुद्रण-प्रकाशन भी हुआ। करुण रसका यह एक अद्वितीय लघु काव्य है। इसकी तत्कालीन समालोचनाओंसे इसके प्रभावका पता लगता है जिनमेंसे कुछका उद्धरण नीचे दिया जाता है :—

गोलोकगत महात्मा शिशिरकुमार घोषकी परम विदुषी गौराङ्गगतप्राणा भगिनीका मन्तव्य :—

"श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीतिका पाठ करनेसे ऐसा बोध हुआ मानो प्रियाजीने स्वयं आपमें प्रवेश करके ही यह विलाप-कहानी लिखी है, नहीं तो यह इतनी सुन्दर और मर्मस्पर्शी नहीं होती।"

बंगीय साहित्य परिषद्के सहकारी सम्पादक श्रीयुत मृणालकान्ति घोषका मन्तव्य :—

"श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीतिका पाठ करते-करते मैं प्रेम-विह्वल हो गया। आज यदि बड़े काका (शिशिर बाबू) इस जगतमें होते तो वे इसका पाठ करते हुए कितने आनन्दाश्रु बहाते, यह कहना कठिन है।"

परम गौर-भक्त श्रीयुत रंजनविलास राय चौधरीका मत :—

"श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीतिमें रचयिताने श्रीविष्णुप्रिया-देवीकी एक अभिनव छवि दिखलाई है। इसकी कल्पना जितनी सुन्दर है, वर्णन भी उतना ही मधुर है। देवीके आत्मत्यागका ज्वलन्त दृष्टान्त इस छोटेसे काव्य ग्रन्थमें मर्मभेदी भाषामें दर्शाया गया है।"

एक ऊँचे पदपर आसीन अंग्रेजी शिक्षित विशिष्ट राजकर्मचारीने (जिनका नाम प्रकाशमें नहीं लाया गया) ग्रन्थकारको लिखा था :—

"आपका ग्रन्थ पढ़कर मेरी पत्नी तीन दिनों तक लगातार रोते-रोते मूर्छा रोगसे ग्रसित हो गयी है और मूर्च्छावस्थामें प्रलाप करती हुई बोलती रहती है—'हा गौराङ्ग ! तुम बड़े निष्ठुर हो ! तुमको दयामय कौन कहता है ? तुमने बालिका विष्णुप्रियाको जो दु:ख दिया है, उसके लिए तुमको बड़ा ही दु:ख पाना होगा ।' आपका ग्रन्थ पढ़नेसे मेरी पत्नीकी यह दुरवस्था हो गयी है। यदि उसको कुछ हो गया तो इसके उत्तरदायी आप होंगे ।"

स्वनामधन्य श्रीरामदास बाबाजीके शिष्य श्रीयुक्त जितेन्द्रनाथ घोषालने—जो सुदूर ब्रह्मदेश रंगूनमें केलनर कम्पनीके रेलवे होटलके मैनेजर थे—तारीख नवीं कार्तिक १३२८ बङ्गाब्दके अपने पत्रमें रचयिताको लिखा था :—

"आपकी 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' अभी शेष नहीं कर सका—आज २७ दिन हो गये आपकी पुस्तक मिले । प्रतिदिन मात्र एक गीत पढ़ लेनेसे भरापूरा हो जाता हूँ, दूसरा गीत पढ़नेकी शक्ति नहीं रहती । आपका प्रत्येक पद इतना मधुर है कि उसकी मधुरता सारे दिन-रातमें भी दूर नहीं हो पाती । प्रातःकाल एक गीत पाठ करते ही अश्रु-प्रवाह आरम्भहो जाता है और सारे दिन रातमें जब जब भी उसकी याद आती है आँखोंमें पानी भर-भर आता है । एक दिन दफ्तर में बैठे-बैठे हठात्—

जे घरे शुइने तुमि केउ खोलेनि ।
बिछाना बालिस खाट केउ तोलेनि ।।

ये दो पंक्तियाँ याद आते ही न जाने क्या हुआ, चीत्कार करके बुरी तरहसे रो पड़ा और साहबके सामने कुछ भी नहीं कह सका । २७ दिनमें केवल इतना पढ़ पाया हूँ, पता नहीं कब पूरी पुस्तक शेष कर सकूँगा ।"

फेणी, ब्राह्मणबेड़िया प्रभृति नाना स्थानोंके उच्च अँग्रेजी विद्यालयोंके शिक्षक व प्रधानाध्यापक श्रीविधुभूषण सरकार बी०ए० श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीतिमें वर्णित श्रीहरिदासजीकी व्यथासे इतने व्यथित एवं विचलित हुए कि उन्होंने त्रिपुरा जिलेके त्रिश गाँवके बसन्त साधुको एक पद्य लिखा था जिसमें विष्णुप्रिया-विलाप-गीतिके रचयिताको यथेष्ट शान्त्वना* दी गई है । उस मार्मिक पत्रका कुछ अंश यों है :—

* 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' के लिए शान्त्वनाका पद्य बड़ा ही मार्मिक है। श्रीमहाप्रभुजीकी दक्षिण यात्रामें दक्षिण मथुरामें एक ब्राह्मण श्रीरामदाससे भेंट हुई जो जगज्जननी-सीताके रावण द्वारा हरे जानेकी और स्पर्शकी कथा पढ़कर दुःखके मारे अग्नि या जलमें प्रवेश कर प्राण त्याग करनेको तैयार था, तब श्रीमहाप्रभुजीने उसको समझाया था कि वह तो मायाकी सीता थीं। इसके बाद वे श्रीरामेश्वरजी पधारे। वहाँ कूर्मपुराणकी कथा हो रही थी उसमें रावण द्वारा मायाकी सीताके हरे जानेका स्पष्ट उल्लेख था । कथावाचक पण्डितसे श्रीमहाप्रभुजीने उस ग्रन्थका पुरातन पत्र माँग लिया और दक्षिण मथुरा जाकर उस रामदास विप्रको दिखाया तब उसको पूर्ण शान्त्वना हुई ।

"विष्णुप्रिया काङ्गालिनी ? के बले ए कथा।
असम्भव। मिथ्या बलि केन देय व्यथा ।।
बलो से भूपालवासी हरिदासियारे।
राजराजेश्वरी तिनि विपुल संसारे ।।
....

कौन कहता है कि विष्णुप्रिया कङ्गालिनी है। यह असंभव है। मिथ्या बात कहकर क्यों व्यथा देते हैं ? भूपाल-वासी उस हरिदासियाको बोलो कि वे तो संसारमें महान् राजराजेश्वरी हैं।
....

बलिओ आमार हये आमि जे अबला।
से हरिदासिया जेन ना हय विह्वला ।।
बलिओ बुझाये तारे अति धीरे धीरे।
से जेन काँदे ना आर, सदा अश्रुनीरे ।।
....

मेरी तरफसे उसको कहना मैं भी अबला हूँ। वह हरिदासी इतनी विह्वल न हो। उसको धीरेसे समझाकर कहना कि वह अश्रुनीर बहाती हुई और क्रन्दन न करे।
....

× × ×

श्रीहरिदासजी गोस्वामीका श्रीधाम वृन्दावनके निवासकालमें श्रीराधारमणजीके मन्दिरकी सेवा करने वाले श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके वंशज एकान्त गौर-भक्त माध्व गौड़ेश्वराचार्य श्रीवनमाली गोस्वामी महाशयसे परिचय हुआ। ये षडदर्शनाचार्य श्रीयुक्त दामोदरलाल गोस्वामी महाशयके ज्येष्ठ भ्राता थे। श्रीविष्णुप्रिया-चरित श्रीग्रन्थका पठन कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीहरिदासजीको एकान्तमें बुलाकर कहा—"आप श्रीलक्ष्मीप्रिया देवीका चरित लिखिये।" यह बङ्गाब्द १३२१ साल भाद्रमासकी १३वीं तारीखकी बात है। श्रीहरिदासजीने उत्तर दिया कि अनेक दिनों पूर्व मैंने यह ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया था, परन्तु कई कारणोंसे यह कार्य अग्रसर न हो सका। इसपर श्रीवनमाली गोस्वामी महोदयने श्रीमती लक्ष्मीप्रिया देवीका चरित शीघ्रातिशीघ्र लिखनेका आदेश दिया। गोस्वामीजीके श्रीधाम वृन्दावनसे भोपाल लौटने पर माघ मास बङ्गाब्द १३२१ सालसे इस ग्रन्थका लेखन पुनः आरम्भ हुआ और और फाल्गुन मासमें सम्पन्न हुआ। श्रीहरिदासजीने इस ग्रन्थकी सूचीमें लिखा है—"मेरी वृत्ति है पर-दासत्व। उसमें दिन-रात दस घंटे तक मुझे अनवरत लिप्त रहना पड़ता है। उसके बाद यह श्रीग्रन्थ लिखनेमें मुझे प्रतिदिन तीन-चार घंटे परिश्रम करना पड़ता था। नाना प्रकारके कामोंके बीचमें रहते हुए भी दयामय प्रभुने मुझ जैसे जीवाधम ग्रन्थकारके केश पकड़कर यह कार्य करवाया है। जो एक बार लेखनीसे लिखा गया उसको दुबारा देखनेका या परिवर्तन अथवा संशोधन करनेका भी अवसर नहीं दिया गया। मुझे ऐसा लगता था कि कोई एक विद्युतलतासदृशी परम-रूपलावण्य-सम्पन्ना देवी मेरे मस्तक पर पदार्पण करके केश पकड़कर विषम ताड़ना द्वारा मुझसे यह दुरूह कार्य करा रही है। रातको मुझे नींद नहीं थी, दिनमें भी सैकड़ों कामोंके

बीचमें श्रीमती लक्ष्मीप्रिया देवीकी पुण्य चरित-कथा और मधुर-करुण-रसात्मक लीलाकथा सर्वदा मेरे स्मृति पथपर उदय होती रहती । भोजनके लिये बैठनेपर मैं क्या खा रहा हूँ, इसका भी ज्ञान नहीं रहता। श्रीग्रन्थ लेखनका कार्य सम्पन्न होने पर मेरा मन सुस्थिर हुआ । किस प्रकार ये कई दिन कट गये, इसका मुझे पता नहीं लगा।.............इस ग्रन्थकी रचनामें अधम ग्रन्थकारका कृतित्व कुछ भी नहीं है। महाप्रभुजीके रसिकभक्त श्रीराय रामानन्दजीने महाप्रभुजीको कहा था :—

मोर जिह्वा वीणायन्त्र तुमि वीणाधारी ।
तोमार मने जेइ उठे ताहाइ उच्चारि ।।

(श्रीचैतन्य चरितामृत)

प्रभुकी इच्छासे एवं उनकी अन्तरङ्गा शक्तिरूपिणी श्रीमती लक्ष्मीप्रिया देवीके कृपादेशसे इस ग्रन्थके लेखनका महत्कार्य २७ दिनोंमें सम्पन्न हुआ । कृपामय पाठकवृन्द इसको सूत्ररूपमें समझें । श्रीश्रीगौराङ्ग प्रभुकी युगल-विलास-लीलाका वर्णन करके ग्रन्थ प्रणयन करना बड़े भाग्यकी बात है । अधिकतर भाग्यवान युगलभजन-निष्ठ गौरभक्तगण इन सब मधुर लीलाओंका और भी विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। श्रीगौराङ्ग-लीलाके वेदव्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने यथार्थ ही लिखा है :—

आर कत लीलारस ह'ल सेइ स्थाने ।
नित्यानन्द स्वरूपे से सर्व्वतत्व जाने ।।
ताँहार आज्ञाय आमि कृपा अनुरूपे ।
किछु मात्र सूत्र करि लिखिल पुस्तके ।।
सर्व्व वैष्णवेर पाय मोर नमस्कार ।
इथे अपराध किछु नहुक आमार ।।
दैवे इहा कोटि कोटि मुनि वेदव्यासे ।
वर्णिवेन नाना मते अशेष विशेषे ।।

(श्रीचैतन्य भागवत)

× × ×

इसके बाद गौराब्द ४२६ में ही भोपाल (मध्य भारत) के निवासकालमें 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-मङ्गल' काव्यकी रचना हुई जिसका प्रकाशन अर्थाभावसे उस समय नहीं हो सका। इसका धारावाहिक खण्ड प्रकाशन इन्हींके द्वारा सम्पादित और प्रकाशित 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग' मासिक-पत्रिका के आठवें वर्ष (गौराब्द ४४४, वङ्गाब्द १३३७ सालकी आश्विन-कार्तिक मास) की आठवीं-नवीं संख्यासे आरम्भ किया गया और अलग पुस्तकाकार प्रकाशन गौराब्द ४४७, वङ्गाब्द १३४० की रास पूर्णिमाको हो सका। इसे उत्सर्ग किया उन्होंने अपने अग्रजके नाम-राशि एवं अग्रज तुल्य मान्यतावाले अनुजोपम श्रीहट्ट निवासी श्रीअच्युतचरण चौधरीके कर-कमलोंमें। इसके उत्सर्ग-पत्रमें वे लिखते हैं :—

"मेरे एक बड़े भाई थे, जिनका नाम था श्रीअच्युतानन्द। पाँच वर्षकी शिशुकालीन अवस्थामें अकालमें ही वे गौरधाम चले गये। वे मेरे अग्रज थे और मैं उनका अयोग्य अनुज हूँ। इसबार अनुज बनकर उन्होंने तुममें प्रवेश किया है, यह मेरी धारणा है। मुझे उनको देखनेका सौभाग्य नहीं मिला, लेकिन तुम्हारा नाम लेते ही मुझे उनकी याद आ जाती है—यही मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। तुम मेरे अनुज होकर भी अग्रज हो, कारण तुमने मेरे उपास्य अभिन्न-श्रीराधागोविन्द श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गके युगल-चरण-कमलोंका आश्रय मेरे पूर्व लिया है, अतएव तुम मुझे अर्चनीय दादा आदि कितने ही सम्मानसूचक शब्दोंसे सम्बोधित करो, लेकिन मेरे मनसे तो तुम मेरे बड़े भाई अच्युत दादा हो। (मुझ जैसे) छोटे भाईको बड़ा करने और उसका सम्मान बढ़ानेमें तुम सर्वदा व्यग्र रहते हो, इसको क्या मैं नहीं जानता, नहीं समझता ?"

× × ×

मध्यभारत भोपालके लगभग तीन वर्षके निवास कालमें ही इन्होंने श्रीगौराङ्ग-महाभारत नामक एक बहुत बड़े ग्रन्थकी रचना की। इस श्रीग्रन्थमें छोटे अक्षरोंमें छपे हुए लगभग साढ़े सत्रह सौ पृष्ठ (९॥″×7″ साइजके) हैं। दिन भर सरकारी नौकरीके परिश्रमके उपरान्त भी रात-रात भर जागकर पागलों जैसी लवलीनता लिए ये अपने काममें लगे ही रहते थे। इसका लेखन आरम्भ हुआ बङ्गाब्द १३२१ वैशाख माससे। इसका प्रकाशन भी आरम्भ हुआ, पर अर्थाभावके कारण खण्ड रूपमें ही निकलकर बन्द हो गया। जब ये माघ १३२७ बङ्गाब्द, ४३४ गौराब्दमें अजमेरसे बदली होकर कलकत्ता आये तब मुद्रण व्यवसायी किसी एक मित्रको इन्होंने एक हजार रुपये इसके मुद्रण खर्चके लिये दिए। लेकिन प्रकाशन कार्य न हो सका और उस मित्रने रुपये भी खा-पीकर पूरे कर दिये। उसके बाद तालन्द (राजशाही) के सुविख्यात परम गौर-भक्त जमींदार महन्त महाराज श्रीयुत ललितमोहन मैत्रेयकी अर्थ सहायतासे इस ग्रन्थकी नवद्वीप लीलाका प्रकाशन सम्भव हो सका था और इसके नीलाचल लीला-भागके प्रकाशनमें पाँच सौ रुपयोंकी सहायता कलकत्ताके सुप्रसिद्ध लाहा वंशधर सुकिया सिमला स्ट्रीटके गौर-भक्तवर श्रीयुक्त गौरचरण लाहा महोदयने भी स्वेच्छया दी थी। इस श्रीग्रंथका पूरा प्रकाशन, लेखनके ८-१० वर्षोंके बाद हो सका था। इस कालमें लेखकने सरकारी नौकरीमें, साधुसङ्गमें, तीर्थ-यात्रामें जहाँ-तहाँ भ्रमण किया था। भ्रमणकालमें इस श्रीग्रन्थकी लगभग ३० सेर भारकी पाण्डुलिपिको बड़े यत्नपूर्वक साथ रखते थे। श्रीग्रन्थके प्रकाशनके विलम्बसे और एक हजार रुपए हजम कर जाने वाले मित्रके असद् व्यवहारसे सन्तप्त होकर तथा श्रीललितमोहन मैत्रेयकी अर्थ सहायतासे गद्गद् होकर इन्होंने श्रीमहाप्रभुको निवेदन किया था—

हे गौर !

(आमार) साध ना पुरिल, आशा ना मिटिल,
जीवन चलिया जाय रे !
नवद्वीप-लीला, केन लिखाइला
प्रकाशित यदि ना हबे ॥
जाहारे दिलाम आपना भाविया,
किछु ना करिल छलना करिया,
कि जे करि आमि बुझिते पारि ना,
भेवे भेवे प्राण जाय जे ॥
(आमि) बड़ आशा क'रे लिखेछि ग्रन्थ,
रात्रे ब'से ब'से जपेछि मन्त्र,
(मोर) आँखि नीर आछे आखरे आखरे,
(आमि) रेखेछि ग्रन्थ बुक माझे ॥
बुके धरि ग्रन्थ भ्रमेछि विदेशे,
सप्त बरष देशे देशे देशे,
अति गुरुभार ब'हेछि बुकेते,
पारिना बहिते आर जे ॥
(तुमि) दिले देखाइया ललित मोहने,
गुरु भार मोर लइते यतने,
(तोमार) कृपा अनुभवि भासि आँखि जले,
आमि काँदि आर भावि कत जे ॥
तव काज तुमि लइबे साधिया,
तबे केन आमि मरि हे काँदिया,
हरिदासियार भ्रम जे गेल ना
अधम नारकी पापी से ॥

× × ×

उसके बाद पुष्कर क्षेत्रके (अजमेर-राजस्थान) डाक-विभागकी सरकारी नौकरीके निवासकालमें "श्रीश्रीविष्णुप्रिया नाटक" की रचना हुई। इसके सम्बन्धमें ग्रन्थकार लिखते हैं "सुदूर देश अजमेरमें श्रीश्रीगौरविष्णुप्रिया-सेवाका प्रकाश हुआ। उसी सेवाके फलस्वरूप श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीने प्रसन्न होकर केश पकड़कर कृपादेश दिया कि उनका नाटक लिखना होगा। कृपामयी गौर-वक्ष-विलासिनीका आदेश एक पक्षके भीतर-भीतर प्रतिपालित हुआ।" इसका प्रकाशन कलकत्ता जानेके पूर्व अजमेरमें रहते-रहते ही गौराब्द ४३४, बङ्गाब्द १३२७ में हो गया था। इसका मुद्रण हुआ

था ट्युटोरियल प्रेस हावड़ामें। इसे उत्सर्ग किया गया स्वयं श्रीमहाप्रभुजीके करकमलोंमें। उत्सर्ग पत्र बड़ा मार्मिक और करुणापूर्ण है।

× × ×

अजमेरके निवास कालमें 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-सहस्रनाम-स्तोत्र' की रचना हुई जिसकी मुद्रित प्रतिके अनुसार उत्सर्ग-पत्र माघी वसन्त पञ्चमी गौराब्द ४३५, बङ्गाब्द १३२८ सालके दिन अजमेरमें ही लिखा गया है और उत्सर्गीकरण किया गया है गोलोकगत महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषके करकमलोंमें। 'श्रीगौर-विष्णुप्रिया अष्टकालीय लीला स्मरण पद्धति' का उत्सर्ग-पत्र भी—जिसका उत्सर्गीकरण श्रीबसंत साधुके करकमलोंमें किया गया है—मुद्रित प्रतिके अनुसार माघ बसन्त पञ्चमी गौराब्द ४३५, बङ्गाब्द १३२८ को श्रीधाम नवद्वीपमें लिखा गया है। इन तिथियोंमें कहीं कोई मुद्रणकी भूल लगती है। एक ही तिथिको श्रीविष्णुप्रिया-सहस्रनाम-स्तोत्रका उत्सर्ग-पत्र अजमेरमें लिखा जाना और श्रीगौरविष्णुप्रिया अष्टकालीय स्मरण-पद्धतिका उत्सर्ग-पत्र श्रीधाम नवद्वीपमें लिखा जाना सम्भव नहीं लगता। इसके अतिरिक्त श्रीगौराङ्ग महाभारत ग्रन्थके नवद्वीप लीला द्वितीय खण्डमें प्रकाशित मुद्रित ग्रन्थकारके निवेदनसे पता लगता है कि वे बङ्गाब्द १३२७ माघ मास (गौराब्द ४३४) में अजमेरसे बदली होकर सरकारी कामसे कलकत्ता आकर रहने लगे थे। ऐसी अवस्थामें इस तिथिके बाद अजमेरमें कोई उत्सर्ग-पत्र लिखा जाना सम्भव नहीं दीखता। हो सकता है, 'श्रीविष्णुप्रिया-सहस्रनाम-स्तोत्र' की रचना अजमेरके निवास कालमें हुई हो और उसका मुद्रण प्रकाशन नवद्वीप निवास कालमें हुआ हो। इससे उत्सर्ग-पत्र लिखते समय स्थानका नाम तो रचनाके हिसाबसे और तिथिका उल्लेख मुद्रण प्रकाशन समयके हिसाबसे लिख गया हो।

× × ×

नौकरीसे अवकाश पानेके बाद भी वे पत्रिकाका सम्पादन-कार्य, ग्रन्थ लेखन, अध्ययन अधिकतर रातको करते थे। शारीरिक आरामके लिये तो नाम मात्रका समय बच पाता था। दिनका समय साधुसङ्ग और भगवच्चर्चामें ही अधिकतर व्यतीत होता था।

'श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन गौर पूर्णिमा गौराब्द ४३७, बङ्गाब्द १३२९ से आरम्भ हुआ था। उस समय श्रीहरिदासजीकी अवस्था लगभग ५४॥ वर्ष हो गयी थी। १० वर्ष तक इस पत्रिकाका सम्पादन और प्रकाशन चलता रहा। इस पत्रिकाके प्रकाशन कार्यमें उन्हें आर्थिक क्षति भी पर्याप्त उठानी पड़ी। उनकी अस्वस्थता और अर्थाभावके कारण दस वर्षके बाद यह पत्रिका बन्द हो गई।

× × ×

इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य बहुत-से ग्रन्थोंकी रचना की जिनमें कुछ तो खण्ड रूपमें 'श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग' पत्रिकामें धारावाहिक प्रकाशित करते गये और

किसी-किसीको स्वतन्त्र रूपसे भी प्रकाशित किया। इनमेंसे कुछ ग्रन्थोंकी सूची नीचे दी जा रही है :—

१. शचि-विलाप-गीति
२. श्रीगौर गीतिका (२ खण्डोंमें)
३. बङ्गालीके ठाकुर श्रीगौराङ्ग
४. श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीपाद मुरारि गुप्त प्रतिष्ठित श्रीश्रीगौरनिताई श्रीविग्रहकी लीला-कथा
५. प्राचीन पद-कर्ता द्विज बलरामदासजीकी जीवनी व पदावली
६. गजपति प्रताप रुद्र नाटक
७. श्रीजाह्नवा चरित
८. सिद्ध चैतन्यदास बाबाजी
९. श्रीमद्विश्वरूप चरित
१०. उपदेश द्विशतक
११. श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षाष्टककी टीका
१२ सार्वभौम शतकका अनुवाद
१३. श्रीश्रीगौर विष्णुप्रिया तत्व संदर्भ
१४. श्रीचैतन्य-चन्द्रामृतका अनुवाद
१५. वेदान्त स्यमन्तक
१६. मूर्ख शतक

× × ×

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त विप्रलम्भ रससे ओत-प्रोत आपका एक अन्य अत्यन्त मार्मिक ग्रन्थ 'गंभीराय श्रीविष्णुप्रिया' भी है जिसकी पृष्ठ संख्या लगभग नौ सौ है और आकार ९॥"×७"। इस ग्रन्थका प्रणयन उनके जीवन कालके अन्तिम वर्षोंमें हुआ है।श्रीहरिदासजी बङ्गाब्द १३३४ सालके पोष माससे श्रीधाम नवद्वीपमें प्रायः नित्य ही प्रातःकाल श्रीवंशीदास बाबाजीसे सत्समागमके लिए जाया करते थे। माघके दिनोंमें एक दिन अपने श्रीविग्रहका इतिहास सुनाते हुए बाबाजीने इनको बताया कि जैसे गम्भीरामें गौर पूर्णतया राधा हो गये थे, गौर रहे ही नहीं, उसी प्रकार मेरे विग्रहमें भी गौर पूर्णतया गदाधर अर्थात् राधा बन गये। श्रीहरिदासजीने प्रश्न किया कि यह क्या नदिया-गम्भीरा है ? इसपर बाबाजीने उत्तर दिया कि हाँ यहाँ पर दो गम्भीरा हैं। एक गौर-गृहमें और एक श्रीवास-आंगनमें। श्रीहरिदासजीने कहा कि मैं समझा नहीं कि गौर-गृहमें गम्भीरा कैसे हुआ ? उत्तर मिला—"शची विष्णुप्रियाका जहाँ गौर विरह है वहीं गम्भीरा है। जहाँ गौर हैं वहीं मायापुर है और जहाँ शची विष्णुप्रिया हैं वहीं गम्भीरा है।" बस यहींसे नदिया गम्भीरा

(गम्भीराय विष्णुप्रिया) का सूत्रपात आरम्भ हो गया। मानों गौर निताईने बाबाजीके श्रीमुखसे कहवाया कि प्रियाजीकी गम्भीरा लीला लिखो। इसके बादसे ही श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग पत्रिकाके छठे वर्षके प्रथम अङ्क (बङ्गाब्द १३३४ गौर पूर्णिमा) से ही इस रसका आस्वादन आरम्भ हो गया।

इस ग्रन्थके वास्तविक रूपका धारावाहिक खण्ड प्रकाशन इस पत्रिकाके आठवें वर्षके आठवें, नवें अङ्क (आश्विन कार्तिक मास गौराब्द ४४४, बङ्गाब्द १३३७) से आरम्भ हुआ। उपलब्ध मुद्रित प्रतिके अनुसार पुस्तकाकार प्रकाशन कार्तिक बङ्गाब्द १३४०, गौराब्द ४४७ में हुआ है। इस पुस्तकमें ग्रन्थकारके निवेदनमें इन्होंने लिखा है :—

"....... परम दयालु हमारे कुलके ठाकुर श्रीनिताई चाँद केश पकड़कर मेरे जैसे कुलाङ्गार नराधमको बीच-बीचमें अपने भुवन मङ्गल पाखण्डी-दलन श्रीचरणाघात द्वारा जो दण्ड-प्रसाद प्रदान करते हैं, उसकी प्रवल ताड़नासे कभी-कभी प्रभु-प्रियाजीके सम्बन्धमें मुझे आल वाल कुछ लिख डालना पड़ता है। **'मूर्खस्य लाठ्योषधम्'** इस शास्त्र-शासन-वाक्यका भी कुछ फल हो सकता है। अपने पाखण्डी-दलन श्रीनित्यानन्द प्रभुके 'जयमङ्गल' के भयसे यदि कुछ ऊट पटांग लिख डालता हूँ तो उसका कृतित्व मेरे अक्रोध परमानन्द अवधूत श्रीनिताई चाँदकी अयाचित कृपाकरणकी अपूर्व महामहिमाका एवं उनके पतित-पावन नामकी अत्यद्भुत महा-महिमाका ही है।......"

"......श्रीग्रन्थके प्रणयनमें मेरी त्रुटि विच्युति व अपराधका अन्त नहीं है। मेरी निर्लज्जताकी भी सीमा नहीं है—इसका प्रमाण श्रीग्रन्थके सुदीर्घ शुद्धिपत्रसे अनायास मिल जाता है। मेरे आत्मीय स्वजन, बन्धु-बान्धव, शिष्य-प्रशिष्य-अनुशिष्य एवं अनुगतजन बहुत हैं, किन्तु मेरे इस दुःसाहसिक विराट वैष्णव-साहित्य-सेवाके कार्यमें किसीसे भी किसी प्रकारकी सहायता आज तक नहीं मिली। श्रीगुरु-गौराङ्ग-कृपा-बलसे कलमसे जो एक बार कागज पर लिखा गया वही मुद्रणालयमें जाता रहा। न तो मुद्रणालयमें भेजने योग्य (स्वच्छ) नकल कर देने वाला ही कोई योग्य व्यक्ति मेरे भाग्यमें कभी जुट पाया और न मुझे स्वयं ही आज तक इस प्रकारका सुश्रृङ्खलाबद्ध इतना बड़ा दायित्वपूर्ण कार्य करनेका यथेष्ट अवसर मिल पाया। प्रूफ संशोधन भी मुझे अकेले ही करना पड़ता इसी प्रकार गत १२ वर्षोंसे चल रहा है। ....किसीसे भी किसी प्रकारकी सहायताकी याचना न करना—यह मेरा स्वतन्त्र प्रकृति जन्य एक और महादोष है जिसको निश्छल भावसे मैं स्वीकार करता हूँ। इसपर भी यदि कोई मेरी दुर्दशा पर स्वतः प्रवृत्त होकर मेरे प्रति कृपापरवश होकर मुझे किसी प्रकारकी सहायता करता है तो मैं उसके भी श्रीचरणोंका सर्वदा दास होकर रहता हूँ।"

"मेरी ६६ वर्षकी वृद्धावस्था हो चली। सुदीर्घ कालसे इस विराट् वैष्णव साहित्यके प्रणयन कार्य और उसके प्रूफको स्वयं देखते-देखते मेरी दृष्टि अतिशय क्षीण हो गयी। एक आँख तो जन्मसे दृष्टिहीन है ही। परम आश्चर्यकी बात है कि बाहरसे देखनेसे यह दोष किसीको दृष्टिगोचर नहीं होता। इसपर भी दायित्वपूर्ण सरकारी कार्योंके सिलसिलेमें देशके नाना स्थानोंमें रहनेसे एवं सरकारी कार्यसे अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् भी गत ११ वर्षोंसे श्रीगौराङ्ग-धर्म प्रचार-कार्यमें भ्रमण शील रहनेसे प्रूफ संशोधनका गुरुतर कार्य कभी गाड़ीमें, कभी नावमें, किसी प्रकार पूरा करना पड़ा है। इसलिए भ्रम, प्रमाद, असावधानी, त्रुटि, विच्युति आदि सब असुविधा एवं आत्यन्तिक व्यस्तताका परिणाम है और इसका सारा दोष वास्तवमें मेरा ही है.........।"

इससे उनकी कठिनाइयोंका अनुमान किया जा सकता है कि किस प्रकार उन्हें अकेले इतना गुरुतर कार्य करना प्रड़ता था।

'गम्भीराय श्रीविष्णुप्रिया' श्रीग्रन्थकी भूमिकामें विद्याभूषण श्रीरसिकमोहन देव शर्माने लिखा है :—

"......श्रीराधाकी प्रणय महिमा किस प्रकारकी है तथा श्रीराधा स्वयं श्रीकृष्णकी अद्भुत मधुरिमाका किस प्रकार आस्वादन किया करती एवं श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यके अनुभवसे श्रीराधाको किस प्रकारका सुख मिलता—उसका परिज्ञान और उसी भावसे उसका आस्वादन करना ही श्रीमन्महाप्रभुके अवतरणका अन्तरङ्ग उद्देश्य था। ....श्रीगौर-प्रेमभक्ति-भजन-साधननिष्ठ साधक भक्तगणोंके शिक्षार्थ महा-महाभावमयी गौरवक्ष विलासिनी श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीकी विप्रलम्भ-रसमयी लीलाका अनुसंधान भी भक्तगणोंके लिए अति प्रयोजनीय था। यह महीयसी महालीला पर्याप्त काल तक अप्रकाशित रही। श्रीचरित लेखकोंमें अनेक महानुभाव ऋषि या ऋषितुल्य थे। उन्होंने अबतक न जाने किस कारणसे इस अद्भुत चमत्कारितापूर्ण लीलाको जनसाधारणके समक्ष प्रकट नहीं किया। वे भावगम्भीर होते थे, अतः उनका निहित उद्देश्य हमारी क्षुद्र दृष्टिकी सीमामें नहीं आ सकता। अनुमानतः इसका सहज सत्य कारण यह हो सकता है कि देशकाल-पात्रके अनुसार लोक शिक्षार्थ भगवच्चरित-लेखक ऋषिगणोंका आविर्भाव होता है एवं देश-काल-पात्रके अनुसार ही वे लोग भगवच्चरितका अनभिव्यक्त भाव अभिव्यक्त किया करते हैं। ऋषि हृदयमें ही निगूढ़ लीला-रहस्य प्रकट हुआ करता है। श्रीभगवानकी परम कृपामयी प्रेरणासे जीव-शिक्षार्थ वे लोग अनभिव्यक्त लीला-रहस्य कभी तो सूत्रवत अस्पष्ट भाषामें, कभी सुधीजन-ज्ञानगम्य कुछ स्पष्ट भाषामें और कभी जनसाधारणके हितार्थ, आस्वादनार्थ एवं भजन-साधन शिक्षार्थ अति

सरस-सहज-समुज्ज्वल-लालित्य-माधुर्यमयी सर्वचित्ताकर्षिणी सुरम्य-मधुर-कोमल-कान्त-पद-वाक्यविन्यास-वैभवमयी भाषामें उस माधुर्यपूर्ण लीला-रसके पीयूष-प्रवाहको निर्झरित कर जनसाधारणके चित्तको आनन्द-रससे अभिषिक्तकर देते हैं एवं उसके द्वारा जनसाधारणकी चित्तवृत्तियोंको उसी प्रकारके भजन साधनके लिए प्रेरितकर देते हैं। आज मैं अपने जीवनके शेष भाग, जीवन-मरणकी चरम सीमापर खड़ा हुआ विनय-नम्र भावसे हाथ जोड़कर जनसाधारणके समक्ष यह आनन्द सम्वाद देता हूँ कि मेरे अनुजतुल्य परम स्नेहास्पद सुविख्यात वैष्णव साहित्यिक बहु वैष्णव ग्रन्थ प्रणेता 'श्रीश्रीगौर विष्णुप्रिया' पत्रिकाके सम्पादक श्रीगौराङ्ग-विष्णुप्रिया भजननिष्ठ श्रीपाद हरिदास गोस्वामी महोदयने 'गंभीराय श्रीविष्णुप्रिया' जैसे महाभावगर्भ सन्दर्भाकार एक वृहत् श्रीग्रन्थका प्रणयनकर श्रीगौर-विष्णुप्रियाभजन-साधन-व्रती महामहाभाग्यवान वैष्णवगणोंका महा उपकार किया है। इस श्रीग्रन्थके प्रणयनमें उनकी जो असाधारण शक्ति प्रकट हुई है उसे पाठक मात्र अनुभवकर सकेंगे। सूक्ष्मदर्शी सहृदय पाठकगण तो इसे उनके ऋषि-शक्ति-वैभव-गौरव एवं साक्षात् भागवती कृपाका पूर्ण परिचायक ही मानेंगे।..............''

× × ×

'श्रीश्रीविष्णुप्रिया' नामकी पत्रिका महात्मा शिशिरकुमार घोषके संरक्षणमें प्रकाशित होती थी। श्रीहरिदासजी गोस्वामीके निबन्ध भी उसमें प्रकाशित होते थे। ये निबन्ध अधिकांश में नवद्वीप-नागरी-भावके माधुर्यसे भरे होते थे। शिशर बाबूके दिवङ्गत होनेपर दैवात् यह पत्रिका काल-कवलित हो गई थी, तथा वैष्णव जगतमें ऐसे साहित्यका महान अभाव उत्पन्न हो गया था। इस अभावकी पूर्तिके लिए श्रीहरिदासजी गोस्वामीने कलकत्ता डाकविभागकी नौकरी कालमें ही बङ्गाब्द १३२६, गौराब्द ४३७ की गौर-पूर्णिमा से 'श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग' नामक मासिक-पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया, जो आगे चलकर गौर-धर्म-प्रचारका मुख्य साधन बन गया। इस बङ्गला पत्रिकाके आरम्भके चार वर्षके बादसे उसी नामसे एक अँग्रेजी मासिक पत्रिकाका प्रकाशन भी साथ-साथ आरम्भ हुआ। यह सब कार्य लगभग १० वर्ष तक चलता रहा। इसके बाद अर्थाभाव और प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी अस्वस्थताके कारण इन पत्रिकाओंका प्रकाशन बन्द हो गया।

'श्रीश्रीविष्णुप्रिया चरित' प्रकट होनेका रहस्य

•

श्रीमहाप्रभुजीके समकालीन वैष्णव आचार्योंने श्रीमहाप्रभुजीके सम्बन्धमें तो वृहत् साहित्यकी रचना की, पर आश्चर्यकी बात है कि किसीने भी उनकी शक्ति स्वरूपा श्रीविष्णुप्रिया देवीके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा। गौरलीला व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास प्रभुने श्रीचैतन्य भागवतके आदि खण्डके तेरहवें अध्यायमें केवल विवाह-लीलाका विस्तृत वर्णन किया है। ठाकुर जयानन्दने अपने ग्रन्थ 'श्रीचैतन्य मङ्गल' में संन्यासके पूर्व प्रभु द्वारा प्रियाजीके तीव्र वैराग्य-योगकी शिक्षाका थोड़ासा वर्णन किया है जिसके फलस्वरूप अपनी सास श्रीमती शची माताके अप्रकट होनेके उपरान्त श्रीविष्णुप्रियादेवीने जिस प्रकारके कठोर वैराग्यका आचरण करके दिखाया वैसा उदाहरण इतिहास में कहीं नहीं मिलता। श्रीलोचनदास ठाकुरने अपने ग्रन्थ 'श्रीचैतन्यमङ्गल' के आदि खण्डमें कहीं-कहीं विवाहके समयकी एक-दो बातोंका दो-दो तीन-तीन पंक्तियोंमें थोड़ा-सा वर्णन किया है और मध्य खण्डमें एक गीतकी कुछ पंक्यियोंमें प्रभुके संन्यास लेनेके विचारके समाचार पर प्रियाजीकी कातरता और प्रभु द्वारा प्रवोधका थोड़ा वर्णन एवं संन्यासकी पूर्व रात्रिके प्रेमविलास और शृङ्गारका वर्णन १८ पयार छन्दोंमें (बङ्गलाका पयार छन्द लगभग चौपाई सरीखा होता है) तथा प्रभुके संन्यास लेनेके बाद आचार्य चन्द्रशेखरके लौटनेपर श्रीविष्णुप्रिया देवीका विलाप २६ पयार छन्दोंमें वर्णन किया है और थोड़ा-थोड़ा उनकी विरह दशाका भी वर्णन कहीं-कहीं पर किया है। उन्होंने उनके संबंधमें कुछ पद-रचना भी की है। श्रीवासुघोष, माधव घोष, बलरामदास, नरहरि आदि तत्कालीन पद-कर्ताओंकी पद-रचनामें भी श्रीविष्णुप्रियाजीके संबधके कुछ पद मिलते हैं। पूज्यपाद कविराज गोस्वामी श्रीकृष्णदासजीने अपने 'चैतन्य चरितामृत' श्रीग्रन्थमें श्रीविष्णुप्रियाजीका कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं किया।

श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके मन्त्र-शिष्य श्रीईशाननागरने अपने 'श्रीअद्वैतप्रकाश' काव्य ग्रन्थके इक्कीसवें अध्यायमें श्रीविष्णुप्रियाजीकी दिनचर्या और उनके द्वारा

शचीमांकी सेवाका वर्णन तेरह पयार छन्दोंमें किया है तथा बाईसवें अध्यायमें श्रीमहाप्रभुजी और शचीमांके अन्तर्धान होने पर श्रीश्रीविष्णुप्रियाजीकी कठोर भजन-प्रणाली और तपस्या का वर्णन भी पन्द्रह पयार छन्दोंमें किया है। पर और अधिक वर्णन करनेमें उनके मन-प्राण भी अन्तर्वेदनाके कारण असमर्थ हो गए।

श्रीविष्णुप्रिया देवीके साक्षात् कृपापात्र श्रीश्रीनिवास आचार्य प्रभुके एक शिष्य थे श्रीरामचरण चक्रवर्ती। उनके शिष्य थे श्रीरामशरण चट्टराज और श्रीचट्टराजजीके शिष्य थे श्रीमनोहरदास। श्रीमनोहरदासजीने श्रीवृन्दावन निवास कालमें (विक्रमाब्द १७५३, शकाब्द १६१८ तथा अनुमानतः गौराब्द २११ की चैत्र शुक्ला दशमीको) श्रीवृन्दावन धाम या निकट ही किसी स्थानमें रहकर "अनुरागवल्ली" काव्य ग्रन्थकी रचना पूर्ण की थी। इस श्रीग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय है श्रीश्रीनिवास आचार्य प्रभुका चरित्र वर्णन। अनुमान है कि अपने गुरु श्रीरामशरण चट्टराज द्वारा सुनी तत्कालीन वस्तुस्थितियोंके आधार पर ही उन्होंने इस पुस्तकमें वर्णन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थके द्वितीय मञ्जरीमें श्रीश्रीनिवास आचार्य प्रभुके प्रतिकी गयी कृपाके प्रसङ्गमें श्रीश्रीविष्णुप्रिया देवीकी उत्कट तपस्याका कुछ वर्णन अवश्य है, लेकिन वह अत्यन्त संक्षिप्त है।

इसी प्रकार श्रीविष्णुप्रिया देवीकी उत्कट तपस्याका यत्किञ्चित उल्लेख "प्रेमविलास" ग्रन्थके चतुर्थ विलासमें भी श्रीश्रीनिवास आचार्यके ऊपर भगवती श्रीविष्णुप्रिया देवीद्वारा की गयी कृपा प्रसङ्गमें है। इस ग्रन्थमें श्रीनिवास आचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्दजी द्वारा श्रीरूपगोस्वामीके षट संदर्भ ग्रन्थ और उनमें प्रतिपादित प्रेम-भक्तिका गौड़ देशमें प्रचार प्रसङ्गका वर्णन है। इसके रचयिता हैं श्रीनित्यानन्ददास जिनकी दीक्षा-गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभुकी गृहिणी श्रीजाह्नवी देवी थीं और शिक्षा-गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभुके आत्मज श्रीवीरचन्द्र प्रभु थे।

शकाब्द १६३९ (अनुमानतः गौराब्द २३१) में श्रीकुल नगरके श्रीपुरुषोत्तमजी मिश्र (गुरुप्रदत्त नाम प्रेमदास) ने "श्रीवंशी शिक्षा" श्रीग्रन्थका प्रणयन किया जो रसराज उपासनाका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके चतुर्थ उल्लासके मध्यमें श्रीमहाप्रभुजीके संन्यास लेनेके लिए चले जानेके बाद नींद खुलनेपर श्रीविष्णुप्रिया देवीके विलापका संक्षिप्त वर्णन है। इसके अतिरिक्त महाप्रभुजीके अन्तर्धान होनेके बाद वंशीवदन द्वारा देवीकी देखभाल और देवीको अपने दारुमूर्ति स्थापनाके स्वप्नादेशका बहुत संक्षिप्त वर्णन है।

सम्भवतः और भी किसी ग्रन्थमें कहीं-कहीं प्रसङ्गवश देवीके सम्बन्धमें नाममात्र उल्लेख आया हो।

श्रीहरिदासजी गोस्वामीके "श्रीश्रीविष्णुप्रिया-सहस्रनामस्तोत्र" पुस्तकके उत्सर्ग-पत्रसे पता चलता है कि श्रीशिशिरकुमार घोष अपनी "श्रीविष्णुप्रिया" पाक्षिक

पत्रिकामें समय-समयपर श्रीविष्णुप्रिया देवीके सम्बन्धमें कुछ लिखते रहते थे । इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने "अमिय निमाइ चरित" ग्रन्थमें और "निमाइ संन्यास नाटक" में किसी-किसी प्रकरणमें प्रसङ्गके अनुसार श्रीविष्णुप्रिया देवीके सम्बन्धमें यत्किञ्चित चर्चा की है ।

शिशिरबाबू श्रीविष्णुप्रिया देवीका विस्तृत चरित्र नहीं लिख पाये । शरीर-जर्जर-शिशिरबाबूने "श्रीअमियनिमाइ चरित" श्रीग्रन्थका छः खण्डोंमें रात-दिनके कठिन परिश्रमसे प्रणयन पूरा किया और मुद्रण-कार्यका अन्तिम प्रूफ संशोधन करनेके दिन ही उन्होंने अपनी इहलोक लीला समाप्त कर ली । ऐसा अनुमान है कि उन्होंने अपने अवशिष्टकार्यके लिए श्रीहरिदासजी गोस्वामीके मुखर पांडित्य एवं सहृदय दैन्यको चुना तथा इनके शरीरमें संभवतः प्रवेशकरके ही इस सारे साहित्यको पूरा करवाया इस अनुमानकी सत्यतापर निम्नलिखित घटनाओंसे पर्याप्त अनुकूल प्रकाश पड़ता है ।

श्रीशिशिरकुमार घोषने अपनी इहलोक लीला २६वीं तारीख पौष मङ्गलवार बङ्गाब्द १३१७ गौराब्द ४२४, (दिनाङ्क १० जनवरी सन् १६११ ई०) को समाप्त की थी । 'श्रीविष्णुप्रिया चरित' की रचना ४२७ गौराब्दमें हुई है जो लगभग १६१६-२० बङ्गाब्द होता है । गोस्वामी श्रीहरिदासजीने अपने जबलपुरके प्रवास-कालमें जब वे डाक-विभागमें डिप्टी पोष्ट माष्टर थे इस महान् ग्रन्थकी रचना की । प्रथम संस्करणकी मुद्रित प्रतिसे भी स्पष्ट है कि इस ग्रन्थका प्रकाशन बङ्गाब्द १३२० सालमें हुआ है । इसके पश्चात् दो वर्षकी अवधिमें ही 'श्रीविष्णुप्रिया-मङ्गल' काव्यकी रचना हुई और उसी वर्ष श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' लघुकाव्यकी रचना पूरी हुई । इसके कुछ समय पश्चात् 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' नामक गद्यकाव्य भी प्रकाशमें आया ।

× × ×

इन्हीं दिनोंमें त्रिपुरा जिलेके त्रिश नगरमें परम वैष्णव भक्त श्रीयुत् बसन्त-कुमार दे निवास करते थे जो वसन्त साधु और बसन्त दादाके नामसे प्रसिद्ध थे । इनका जब महात्मा श्रीशिशिरकुमार घोषके साथ प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं हुआ था तब भी भाव समाधिमें उनसे साक्षात्कार प्राप्त कर वे उनको अपना भाव-गुरु मानते थे । एक स्वप्नकी घटनाके अनुसार उनका विश्वास था कि शिशिर बाबूने इहलोक छोड़नेके उपरान्त श्रीहरिदासजीके शरीरमें प्रवेश किया है और अब शिशिर बाबूके न रहने पर श्रीहरिदासजी उनके गुरु स्थानमें हैं । श्रीहरिदासजीसे भी बसन्त साधुका कोई प्रत्यक्ष परिचय नहीं था लेकिन शिशिर बाबूके संरक्षणमें प्रकाशित 'श्रीविष्णुप्रिया' पत्रिकामें श्रीहरिदासजीके लेख पढ़कर वे उनको जान पाये थे । प्रत्यक्ष परिचय और मिलन न होने पर भी श्रीबसन्त साधुने श्रीहरिदासजीको उनके भोपाल निवासकालमें जो प्रथम पत्र लिखा था उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है ।

बसन्त साधुके उस पत्रका सम्बन्धित अंश निम्न है:—

"आप प्रियाजीकी शक्तिसे चालित हैं यह मैं अच्छी प्रकार समझ गया हूँ। आप प्रियाजीकी अन्तरङ्गा दासी हैं। ऐसा हुए बिना उनकी इतनी मर्मकथा कैसे जानी जा सकती है।"

× × ×

एक दूसरे पत्रमें बसन्त साधुने और लिखा था—"मैंने एक मधुर स्वप्न देखा, प्रभु प्रियाजी शयनमें हैं, रात्रिका समय है, तुम और मैं शयनगृहके गवाक्षद्वारसे उचक-उचककर देख रहे हैं। हम लोगोंका स्त्रीवेश है, तुम्हारी नीलवर्णकी साड़ी है और मेरी लालवर्णकी, हम लोगोंके शरीर पर नाना प्रकारके अलङ्कार हैं, मानो हम लोग नवयुवती हैं। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे हूँ। इसी समय अचानक प्रियाजी शयनगृहका द्वार खोलकर बाहर आईं। तुमने उनके साथ जो-जो रङ्ग आरम्भ किया, उसको कहनेकी मुझमें सामर्थ नहीं है। मैं तो लज्जासे भाग गया। बताओ न दादा! तुम कौन हो?"

× × ×

प्रभुपाद गोस्वामी श्रीहरिदासजीकी एक मात्र कन्या सन्तान श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीका विवाह १० वर्षकी अवस्थामें उनके भागलपुरकालीन निवासके समय १३वीं फाल्गुन १३१२ बङ्गाब्द, २८ फरवरी सन् १९०६ ई० को हुआ था। विवाहके चौथे वर्ष अर्थात् सन् १९१० ई० में जामाताका स्वर्गवास हुआ था। कन्याके विवाहके वर्णनमें उन्होंने आत्मकथामें लिखा है कि इस दुःखद घटनाका यथास्थान वर्णन होगा, लेकिन उस समयका कहीं वर्णन नहीं मिलता। उस समय वे जबलपुरमें ही थे। अपनी कन्याको १४ वर्षकी अवस्थामें ही पतिविहीन देखकर तथा इसी आयुमें श्रीविष्णुप्रियाजीको प्राप्त (श्रीमहाप्रभुजीके संन्यासजनित) असह्य वियोग दुःख दावानलके स्मरणसे (इस घटना सामञ्जस्यसे) उनका हृदय विदीर्ण हो उठा। व्याध द्वारा तीक्ष्णवाणसे क्रौञ्च-मिथुनमेंसे नर क्रौञ्चके मार दिये जानेपर मादा क्रौञ्चके विरह करुण रवसे द्रवित होनेपर जिस प्रकार आदि कवि वाल्मीकिके मुँहसे बरबस—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अनुष्टुप छन्द निकल पड़ा था और करुण-रस-प्रधान रामायण महाकाव्यकी रचना संभव हुई थी उसी प्रकार श्रीहरिदासजीके द्रवित हृदयसे विशुद्ध करुण रसकी मन्दाकिनी बह चली। इनका प्रत्येक ग्रन्थ विशुद्ध करुण रस और वैष्णवी दैन्यकी अनुपम छटासे ओतप्रोत है।

× × ×

सन् १६०५ ई० के आरम्भकालमें सरकारी नौकरी करते समय तीन महीनेकी छुट्टी लेकर जब श्रीहरिदासजी गोस्वामी मोतीहारीमें अपने कनिष्ट भ्राता श्रीगुरुदासके पास जाकर रहे थे तब उन्हें सर्वप्रथम शिशिरबाबूके "अमिय निमाई चरित" के उस समय तक प्रकाशित अंशको पढ़नेका सुअवसर मिला था। अपनी आत्मकथामें उन्होंने लिखा है कि उस समय उन्हें इसमें कोई विशेष आनन्दका अनुभव नहीं हुआ। लेकिन बादमें दूसरी बार जब उन्होंने उसे पढ़ा तब जो अनुभूति उन्हें हुई उसका वृत्तान्त पीछे लिखनेका उल्लेख है। इसके बाद द्विज बलरामदास ठाकुरकी जीवनीका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है कि इनके सम्बन्धमें बहुतसी प्राचीन अप्रकाशित सामग्री संग्रहीत हुई है जो यथास्थान मेरी धर्म-जीवन कथामें व्यक्त होंगी। दुःख है कि यह सारा वृत्तान्त कहीं नहीं मिल सका। अनुमान होता है कि जबलपुर निवासके समयमें ही उन्हें सम्पूर्ण "अमिय निमाई चरित" पढ़नेका फिर अवसर मिला जिससे वे बहुत प्रभावित हुए। उसके बाद उनसे रहा नहीं गया और बरबस किसीने उनके द्वारा रात-रात भर जागकर यह कार्य सम्पादन कराया।

× × ×

अपनी सर्वप्रथम पुस्तक 'गौर गीतिका (जो उनके जबलपुर निवासकालमें प्रकाशित हुई थी और जिसकी प्रकाशन तिथि गौर पूर्णिमा गौराब्द ४२७ बङ्गाब्द १३१६ साल है) के सूचना प्रसङ्गमें उन्होंने लिखा है—

निमाई चरित पड़िते पड़िते,
मत्त हल मम प्राण।
प्रेमेर तूफान, उठिल हृदये,
सदा मुखे गौर गान॥

....

शयने भोजने, आफिसेर काजे,
देखि से सुन्दर मूर्ति।
हाड़ भाङ्गा श्रमे आयास ना माने,
गान गेये कत स्फूर्ति॥

....

कान्दि आर लिखि, आखिनीरे भासि,
कबे प्रभु पद पाव।
शिशिर घोषेर निमाइ चरिते,
ह'ल मने नव भाव॥

× × ×

स्वनाम धन्य श्रीरामदास बाबाजीके शिष्य श्रीजितेन्द्रनाथ घोषाल महाशयने (सूदूर ब्रह्मदेश रंगूनमें केलनेर कम्पनीके रेलवे होटलमें मैनेजरके पदपर काम करते हुए) अपने ६वीं तारीख कार्तिक बङ्गाब्द १३२८ के पत्रमें विष्णुप्रिया-विलाप-गीति और विष्णुप्रिया चरित्र पढ़नेपर उनका और उनकी धर्मपत्नीका जो हाल हुआ उसको वर्णन करते हुए श्रीहरिदासजी गोस्वामी को लिखते हैं कि मुझे ऐसा लगता है कि नरहरि ठाकुर जो बता गये थे कि—

प्रभुर लीला लिखिबे जे, अनेक परे जन्मिबे से ।

"उनकी यह आश्वासन वाणी इतने दिनोंके बाद अब पूर्ण हुई है । जो विष्णु-प्रिया चरित 'अमिय निमाई चरित' एवं 'अनुरागवल्ली' ग्रन्थों द्वारा किञ्चित प्रकाशमें आया उसीका प्राक्ट्य अब इस ग्रन्थ द्वारा सम्भव हुआ है । कभी-कभी मुझे ऐसा बोध होता है कि आप ही प्रियाजीकी सखी काञ्चना थे, नहीं तो उनके अन्तरकी इतनी कथाओंकी जानकारी और तो किसीको हो नहीं सकती। कभी ऐसा भी लगता है कि आप केवल देवीकी ही अन्तरङ्ग कथा जानते हों, इतना ही नहीं है, आप उस समय श्रीगौराङ्ग लीलामें भी सहायक थे । आप हमारे गौराङ्गके गण हो, या देवीके-जो कोई भी हो आपके श्रीचरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम है । मैं यह निश्चयपूर्वक बता सकता हूँ कि आप साधारण मानव नहीं हैं । यदि आप हम लोगोंकी तरहसे साधारण मानव हो तो कहना ही होगा कि—

'देवतार उर्द्धे तबे मानवेर स्थान' ।

एक बार आपके दर्शनोंकी—केवल एक बार दर्शनोंकी तथा आपकी चरण-धूलि लेकर मस्तक एवं सर्वाङ्गमें लगाकर, जन्मजन्मार्जित पापोंसे निवृत्त होने की बड़ी इच्छा है–और कुछ नहीं ।"

× × ×

श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-भजन-निष्ठ श्रीश्रीविष्णुप्रिया परिवारके श्रीमान् नृत्यगोपाल गोस्वामीने श्रीविष्णुप्रिया-चरितका पाठकरके श्रीहरिदासजीको लिखा था—

"तुमने यह क्या किया ? यही क्या तुम्हारा विष्णुप्रिया-चरित है ? नहीं, नहीं, तुम भूलते हो । यह तो भक्तप्राणके लिये कालाग्नि है—क्या इसे पढ़ा भी जा सकता है ? इसके पढ़ने पर क्या प्राण ठहर भी सकते हैं ? ऐसा ग्रन्थ तुम्हारे द्वारा कैसे लिखा जा सकता है ? मैं तुमको बाल्य-कालसे ही जानता हूँ, तुम्हारी तो सर्वदा ही कुसुमके समान कोमल प्रकृति रही है । तुम्हारे कुसुम-कोमल हृदयसे इस प्रकारकी हृदय-विदारक ज्वालामयी भाषाका उदय कभी भी सम्भव नहीं । कुसुममें बज्रता, जलमें दाहिका शक्ति, भक्तमें क्षमाहीनता यदि सम्भव हो, तो शायद यह मान सकता हूँ कि यह श्रीविष्णुप्रिया-चरित भी तुम्हारा ही लिखा हुआ होगा । यह श्रीग्रन्थ भक्तोंके लिए है ही नहीं, भक्त इसे कभी पढ़ नहीं सकेंगे ।

पढ़ने पर उनके प्राण ठहर नहीं पायेंगे। तुम्हारे इस ग्रन्थमें लेखनीकी भाषा और भावके समन्वय गुणसे विषयकी पंक्ति-पंक्ति और अक्षर-अक्षरमें एक कैसी अद्‌भुत उन्मादिनी शक्तिका समावेश हुआ है जिसके पठन व श्रवण मात्रसे पाषाण-प्राण भी पिघल जाते हैं। तुम्हारे द्वारा जो असम्भव है, वही सम्भव हो गया है। जो असंभवको सम्भव कर सकेते हैं, वे ही इसके कर्त्ता हैं। तुम तो केवल निमित्त-मात्र हो। तुमको हिप्नोटाइज (Hypnotise) अर्थात् चेतनाहीन करके यह कार्य कराया गया है। मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूँ कि चेतनावस्थामें यह लिखते तो तुम कभी भी बच नहीं सकते थे,—तुम्हारे कोमल प्राण भस्म हो जाते। जो भी हो, मुझ जैसे पाखण्डीके पाषाण-हृदयको द्रवित करने वाली औषधिका सृजन तो हो गया।

× × ×

श्रीयुत विधुभूषण शास्त्री वेदान्त भूषण, भक्तिरज्जन महोदयने ग्रन्थकारको लिखा था :—

"देव ! आपकी श्रीमूर्त्ति तो बड़ी सुन्दर है, किन्तु हृदय इतना कठोर क्यों ? कवियोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि उन्हें स्त्रियोंको कष्ट देना अच्छा लगता है। प्रमाणमें—आदि कवि वाल्मीकिने सीतादेवीको, व्यासदेवने द्रोपदी व उत्तराको कितने कष्ट दिये हैं ? हमारे देशमें ही ऐसा हो—यह बात नहीं है, पाश्चात्य कवियोंका भी ऐसा स्वभाव है। शैक्सपियरने जुलियटको और इसके भी पूर्व होमरने हेलेनको दुःख दिया था। आपने श्रीमती विष्णुप्रिया देवीको कितना अपार कष्ट दिया है ? मैं आपके सम्पूर्ण ग्रन्थको पढ़ भी नहीं सका, अश्रुजलसे वक्ष तक भीग गया। आपके कुसुम-कोमल हृदयमें ऐसे हृदय-विदारक भाव आ ही नहीं सकते। **निश्चय ही यह उन्हीं निज-जन-निठुर महाप्रभुजीका काम है। उन्होंने आपके द्वारा ऐसा ग्रन्थ लिखवाया है। उन्होंने निश्चय ही आपका ज्ञान हर लिया था। आपकी सूक्ष्म देह उस समय वहाँ नहीं थी। धन्य है आपकी लेखन शैली ! इस शैलीके सामने तो रवीबावूकी लेखन-कला भी फीकी सी लगती है।"**

× × ×

उपरोक्त वर्णित इन घटनाओंसे 'श्रीविष्णुप्रिया-चरित' प्रकट होनेके अनुमानित कारण, निमित्त और माध्यम पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। वैसे महात्माओं, गुरुजनों, वैष्णव-सन्तोंके क्रिया-कलाप स्वयं प्रेरित कम ही होते हैं। उनकी वाणी, उनका कार्य और उनकी प्रत्येक चेष्टा भगवद् प्रेरित ही होती है। अतएव श्रीविष्णुप्रिया-चरितके लिखे जानेकी पृष्ठ-भूमिमें इसी सत्यको सर्वोपरि मानना चाहिए।

समाज-सेवाएं

•

सरकारी नौकरी कालके आरम्भसे ही पत्रोंमें अपने लेखों और टिप्पणियों द्वारा समाजमें व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियोंकी ओर सबोंका ध्यान आकर्षित कर तथा स्वयं भी सेवाकार्यमें रत रहकर जो अनुकरणीय सेवा-आदर्श इन्होंने स्थापित किया है उसका आत्म-कथामें जहाँ-तहाँ वर्णन आ चुका है। आत्म-कथाके कालके बादके मुख्य कामोंका वर्णन इस प्रकरणमें किया जा रहा है।

श्रीविष्णुप्रिया दातव्य औषधालय

श्रीधामके निवासी तथा दर्शनार्थ बाहरसे आने वाले अकिञ्चन लोगोंके रोगाक्रान्त होनेपर उनकी दुर्दशासे द्रवित होकर श्रीपाद गोस्वामी प्रभुने बङ्गाब्द १३३३, गौराब्द ४४० की झूलन पूर्णिमाके दिन "श्रीश्रीविष्णुप्रिया दातव्य औषधालय" की स्थापना की जिसमें सर्व-साधारणकी निःशुल्क चिकित्साका समुचित प्रबन्ध था। अपनी व्यक्तिगत आर्थिक कठिनाइयोंके बावजूद इसके आरम्भिक-व्ययका भार स्वयं गोस्वामी प्रभुने अपने ऊपर ही लिया। प्रारम्भमें गौरभक्तवर डाक्टर श्रीमान् हरेन्द्रनाथ घोष एम० बी० ने होमियोपैथिक पद्धतिसे चिकित्सा आरम्भकी। १४ रु० मासिक घरका भाड़ा देना पड़ता था। तीन महीनेमें ही प्रतिदिन आने वाले रोगियोंकी संख्या सातसौसे ऊपर पहुँच गई। बाहरसे केवल नाममात्रकी अर्थ-सहायता आती थी। अधिकतर व्यय-भार गोस्वामी प्रभुपर ही था। अर्थाभावके कारण कुछ वर्ष सेवा करने बाद यह संस्था उनके जीवनकालमें ही बन्द कर देनी पड़ी थी।

धार्मिक पाखण्डियोंका भण्डा फोड़

भारतके प्रायः सभी सन्त महात्माओंने हिन्दू समाजकी कुरीतियोंके विरुद्ध आवाज उठायी है, और कुरीतियोंको दूर करने तथा समाजमें सुधार करनेका उपदेश दिया है। श्रीहरिदास गोस्वामीने भी सामाजिक कुरीतियोंके विरुद्ध कलम-कुठार

चलाया है, और स्वयं विशुद्ध आचारका अवलम्बन करके स्वजातिके लोगोंको विरोधी बनाया है।

कालक्रमसे वैष्णव-आचारमें पाखण्डी लोगोंका प्रभाव बढ़ते देखकर श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग पत्रिकाके स्तम्भोंमें उनकी पर्याप्त भर्त्सना करनेके लिए लेखकोंको अवसर देकर तथा स्वयं टिप्पणियाँ लिखकर श्रीगोस्वामीजीने समाजको विशुद्ध चेतना प्रदान की है। वेषधारी, दुवृत वैष्णवनामधारी पाखण्डियोंको लक्ष्यमें रखकर वे श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग पत्रिकाके सप्तम वर्षके १०-११ संख्याके पृष्ठ ४०६ में लिखते हैं—

"अवैध स्त्री-सङ्गी वैरागी और गृही एवं तथाकथित गौरभक्त वैष्णवाभिमानी लोगोंके कपट-वैष्णव-धर्मानुष्ठान और आचरणके विषयमें जो पहले कह चुका हूँ उतना ही यथेष्ट है। बहुतेरे शिक्षित और सभ्रान्त वैष्णव सज्जन अब उनसे सतर्क हो गए हैं। वे अब अनुभव कर रहे हैं कि जिन साधुवेशी पाखण्डी हाथोंसे अमृत समझकर उन्होंने विष ग्रहण किया है, उसके परिणामस्वरूप वे श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा परिवर्तित विशुद्ध वैष्णवधर्मके चिर-विकसित प्रोज्ज्वल-सत्पथसे बहुत दूर चले गए हैं। अवैध स्त्री-सङ्गी लोगोंके सङ्गसे उनकी जो अधोगति हुई है इसके लिए वे अत्यन्त दुःखित और लज्जित हैं। कितने ही शिष्य व्यवसायी, गृही-गुरु-गोसाईं, तथा विग्रह व्यवसायी धर्मध्वजी-प्रबन्धक, धूर्त्त और प्रवन्धक तथाकथित वैष्णवनामधारी निर्लज्ज लोगोंने महाप्रभुके इतने साधके वैष्णव धर्मको पूर्ण व्यवसायके रूपमें परिणत कर रक्खा है। वे अवैध स्त्री-सङ्गी वैरागी-वैष्णवोंके संसर्गको पूर्णतः त्याग न सकेंगे, क्योंकि उनकी धर्म-व्यवसाय वृत्ति तथा तद्द्वारा अवैध उपायसे अर्थोपार्जन इसमें बाधक है।"

इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रीहरिदासजी गोस्वामीने धूर्त पाखण्डियोंके कुकृत्योंसे भावुक धार्मिक जन-मानसको बचानेके लिए अपनी लेखनीका खुला प्रयोग किया था। बौद्ध तान्त्रिक "सहजिया" सम्प्रदायके वामाचारके विरुद्ध भी उन्होंने अपनी पत्रिकामें आन्दोलन चलाया। विशुद्ध वैष्णवधर्मकी सेवाके लिए ऐसा करना उनके लिये स्वाभाविक भी था, क्योंकि समाज-गत कुप्रथाओंका निराकरण किए विना सत्पथका प्रसार होना कठिन था।

मत्स्य भक्षणका विरोध

इसके अतिरिक्त स्वयं गोस्वामी उपाधिधारी वैदिक ब्राह्मणोंमें भी अनेक कुप्रथाएँ विद्यमान थीं, जिनके विरुद्ध उनको खड़ा होना पड़ा। जिन गोस्वामी लोगोंमें मत्स्य-माँस भोजनकी प्रवृत्ति थी, वे इनके विशुद्ध वैष्णवी शाकाहारके प्रचारके विरोधी थे। गोस्वामी लोगोंमें विवाह-शादीमें मछलीसे सगुन होता था; श्रीहरिदासजीने इस

प्रथाको हटाकर इसके स्थानमें दहीसे सगुन करना प्रारम्भ किया। अपने भाईके लड़कोंके विवाहमें स्वयं उन्होंने दहीसे सगुन किया। इस पर अन्य गोस्वामी लोगोंमें खलबली मची। सनातन धर्मके नाम पर बहुतसे लोग इस कुरीतिसे सटे रहना चाहते थे, परन्तु अधिकांश पर वैष्णव धर्मका प्रभाव पड़ा और उन्होंने श्रीहरिदासजीके पक्षका ही समर्थन किया। इस प्रकार गोस्वामीजी जहाँ रहे, शुद्धता पर विशेष ध्यान देते रहे, और स्वयं शुद्ध-आचरण-पद्धति पर आरूढ़ रहे।

अन्य सेवाएं

श्रीहरिदासजी गोस्वामी बहुमुखी प्रतिभा वाले महापुरुष थे। वे जहाँ कहीं रहते थे, जनताकी सेवामें योग देते थे। वृन्दावनमें रहते समय केशीघाट और प्रेम महाविद्यालयके बीच एक पक्के नालेका अभाव देखकर उन्होंने लिखा पढ़ी करके म्यूनिसिपेलिटीके द्वारा उसे बनवाया, जिससे वहाँके नागरिक और साधु-सन्त परम सन्तुष्ट हुए।

अजमेरमें रहते समय उन्होंने स्वयं रुपये खर्च करके तथा दूसरे लोगोंसे चन्दा एकत्रित करके बङ्गालसे आने वाले यात्रियोंके निमित्त पुष्कर तीर्थमें एक धर्मशाला बनवाई।

उन्होंने श्रीनवद्वीपधाममें रामसीता पाड़ा मोहल्लेमें अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नीके नामपर १३५० बङ्गाब्दमें "श्रीलीलावती भक्ति शास्त्र पीठ" की स्थापना की, जिसमें अन्यान्य शास्त्रोंके अतिरिक्त विशेषरूपसे भक्ति-शास्त्रकी शिक्षा दी जाती है। यह संस्था अभी चल रही है।

इसके अतिरिक्त श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-कुञ्जमें एक सुन्दर ठाकुरबाड़ी बनवायी, जो श्रीनवद्वीपधामकी यात्रा करने वाले तीर्थयात्रियों के लिए एक दर्शनीय तीर्थ है।



प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती देवीके साथ



श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी

श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी

बालपन

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामीकी एकमात्र सन्तान श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी हैं। वे पुत्रीको पुत्रवत् मानते थे। एक मात्र सन्तान में माता-पिताका असीम स्नेह होता है। अतएव श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी बचपनमें बड़े ही लाड़-प्यारसे पाली गई थीं। भागलपुर निवासकालमें उनको केवल ४ महीने पाठशालामें पढ़ने भेजा गया था। इसके अतिरिक्त उन्हें कभी किसी विद्यालयमें नहीं पढ़ाया गया। इन सबका वर्णन आत्मकथामें आ चुका है।

शास्त्र-वाक्य है—**"आत्मा वे जायते पुत्रो"**। अर्थात् पुरुष की आत्मा स्वयं पुत्र रूप में उत्पन्न होती है। पुरुष बीजरूपमें है और सन्तान फल स्वरूप। अतः देखा जाता है कि सन्तान बहुधा रूप-रङ्ग आकृति तथा गुणमें पिताके अनुरूप होती है। विना पाठशालाके विद्याभ्यासके ही श्रीसुशीला सुन्दरी देवी पिताके सदृश्य विदुषी हो गईं। बंगला और संस्कृत भाषा में इनका अच्छा अधिकार है। दोनों भाषाओंमें ही ये काव्य रचना करती हैं। इनकी रचनाएँ 'श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग' पत्रिकामें प्रायः प्रकाशित होती थीं। इनकी बंगलाकी कुछ कविताओं का संग्रह ('चतुःसम' नामसे) प्रकाशित हो चुका है जिसमें सभी पद्य बड़े भावपूर्ण हैं। यह पुस्तक 'श्रीगौरविष्णुप्रिया कुञ्ज' बुड़ा शिवतला श्रीनवद्वीप धामसे उपलब्ध है। इनकी एक ब्रजलीला काव्य-रचना अभी अप्रकाशित ही पड़ी है।

विवाहके बाद

आत्मकथामें वर्णन आ चुका है कि इनका विवाह लगभग १० वर्षकी अवस्थामें भागलपुरमें १३ वीं फाल्गुन, बङ्गाब्द १३१२, गौराब्द ४१९, २८ फरवरी सन् १९०६ को सम्पन्न हुआ था। बन्धु-वियोग प्रकरणमें वर्णन आ चुका है कि आश्विन मास बङ्गाब्द १३१६ में विवाहके चार वर्षके भीतर-भीतर ही इन्हें वैधव्य दुःख भोगना

पड़ा। पतिके श्राद्ध-कर्म समाप्त होनेके एक सप्ताहके भीतर ही इनपरसे पितृ स्थानीय श्वसुरदेवकी छत्रछाया भी उठ गई। उस समय विचित्र स्थिति पैदा हो गई। इनके पिता श्रीहरिदासजी गोस्वामी प्रभु इन्हें साथ ले जाना चाहते थे और ये सासको उस अवस्थामें छोड़ना नहीं चाहती थीं। लगभग २-३ वर्ष तक ये कभी पितृगृहमें और कभी सासकी सेवामें रहीं।

पितृगृहमें रहनेके समय श्रीहरिदासजी गोस्वामी डाक-विभागकी अपनी नौकरीसे छुट्टी लेकर इन्हें तीर्थ यात्रामें ले गये और दीर्घकाल तक इन्हें साथ लेकर वृन्दावन भी रहे। पति-वियोग और श्वसुर-वियोगकी दावाग्निसे दग्ध पुत्रीके सुकोमल हृदयको शान्ति प्राप्त हो इस विचारसे श्रीहरिदासजी गोस्वामी प्रभु सुशीला सुन्दरी देवीको साथ बैठाकर एक साथ मिलकर ठाकुर-पूजा किया करते थे। कन्याके जीवनको आराधनामय बनाना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था।

आराधनामय जीवन

पति वियोगके दो-तीन वर्षके उपरान्त श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी स्थायीरूपसे अपने पिताके पास रहने लगीं। भोपाल निवासकालमें एक बार पिताके साथ वृन्दावनकी यात्रा की तब वहाँसे लौटते समय श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी वृन्दावनसे श्रीमदनगोपालकी और श्रीगौरविष्णुप्रियाकी मूर्ति लेती आयीं। पहले जो आराधना चित्रपटमें होती थी अब वह श्रीविग्रहमें होने लगी।

भोपाल रहते समय सुशीला सुन्दरी देवीने श्रीधर स्वामी और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीकी संस्कृत टीकाके साथ श्रीमद्‌भागवत्‌का अध्ययन और मनन किया। श्रीमद्‌भागवत्‌के बङ्गानुवादसे भी सहायता ली गयी। इस प्रकार इन्हें श्रीमद्‌भागवत्‌की अच्छी जानकारी हो गयी।

इसके पश्चात् अपने स्वाध्यायके बलपर भक्ति-शास्त्रकी परीक्षामें सफल होकर श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीने उपाधि और पदक प्राप्त किए।

श्रीगोस्वामीजीके गौरधाम-गमनके बाद श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्जमें (श्रीधाम नवद्वीपमें) श्रीविग्रहकी अष्टयाम पूजा सेवा प्रारम्भ हुई जो अब भी अबाध गतिसे चल रही है। अस्वस्थ होनेपर असमर्थताकी हालतमें ही ठाकुर सेवा कार्यमें उन्हें विलग होना पड़ता है जैसे ही शरीरमें सामर्थ्य आती है वैसे ही फिर ठाकुरसेवामें जुट जाती हैं।

समाज-सेवामें योग

श्वसुरालयसे मिली हुई सम्पत्तिसे श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवीको जो आय होती है उसका व्यय भगवदर्थ ही होता है। दो शिक्षा संस्थाओंको योग्य और दीन बालकोंको छात्रवृत्ति देनेके लिए उन्होंने उस आयमेंसे दो-दो हजार रुपये दान किये

हैं। "लीलावती भक्तिशास्त्र पीठ" को भी छात्रवृत्ति देनेके निमित्त चार हजार रुपये इन्होंने दिये हैं।

वैष्णवी दैन्य

श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी योग्य पिताकी योग्य सन्तान हैं। उनके पिताके शिष्यगण उन्हें माताजी कहकर सम्बोधन करते हैं और देवतुल्य सम्मान प्रदान करते हैं। श्रीहरिदासजीके गौरधाम गमनके पश्चात उनके भक्तोंने आग्रह पूर्वक इनसे प्रार्थना की कि अब ये शिष्योंको मन्त्र-दीक्षा देनेका कार्य अपने हाथमें लें परन्तु इन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया और अपने चचेरे भाई सुरेन्द्रनाथ गोस्वामीको यह कार्य सौंपा।

श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी वैष्णवोचित दैन्यसे युक्त निष्ठामयी देवी हैं। इस समय उसकी अवस्था ६५ वर्षके लगभग हो गयी है। शरीरसे अस्वस्थ रहती हैं। फिरभी अपने भजन-पूजन का नित्य नैमित्तिक कार्य अपने पिताके आश्रम श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग कुञ्जमें चला रही हैं। श्रीहरिदासजी गोस्वामीके ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपि, उनका पुनः प्रकाशन, 'श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग' पत्रिकाके पुराने अङ्क आदिकी देखभाल और व्यवस्था इन्हींके हाथोंमें हैं।

साहित्य सेवा

श्रीमती सुशीला सुन्दरी देवी स्वाभाविक कवियित्री हैं। इनके मनमें जबभी कोई भाव उठता है, कविताके रूपमें सामने आ जाता है। इनकी रचनाएं श्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग पत्रिकामें अक्सर प्रकाशित होती रहती थीं, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर भावकी कविताओंका संग्रह 'चतुःसम' नामकी पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है जिसमें ६७ बड़ी बड़ी कविताएँ हैं। इनकी अप्रकाशित कविताएँ भी लिखी पड़ी है।

उपसंहार

•

प्रभुपाद गोस्वामीजी अपने काममें कितने परिश्रमी और दक्ष थे यह इससे सुस्पट है कि उन्होंने डाकघरमें अवैतनिक शिक्षानवीसके रूपमें कार्य आरम्भ कर कर लगभग पाँच सौ रुपये महीनेकी नौकरी तकका पद प्राप्त किया। अवकाश प्राप्त करनेके समय वे वरिष्ठ पदाधिकारीके रूपमें सम्मानित हो चुके थे।

इनका सांसारिक-जीवन प्रायः सदा ही अर्थ संकोच और कठिनाइयोंमें व्यतीत हुआ। फिर भी अपने दुःखपूर्ण और कष्टमय जीवनको इन्होंने आभूषणके रूपमें स्वीकार किया। इतना ही नहीं निम्न प्रार्थनाके स्वरोंमें अपने प्राणप्रियसे दुःखकी सदैव याचना ही करते रहे।

गौर हे !

दुःखेर आशाय रयेछि बसिये
दाओ दुःख प्रभु आरो।
सुख पेये तोमा गिये छिनु भूले
दाओ दुःख जत पारो।
बुझेछि एखन, सुख - दुखमय
दुखइ सुखेर मूल।
दुखेर जीवन बड़ सुखमय
साधनार अनुकूल ॥
साधनार पथे दुख तव दया
ताइ चाइ दुख राशि।
दुखेर साधने पाय तोमा जीवे
ताइ दुख भाल बासि।
दिछि माथा पेते, चरण कमले
चाइ भिक्षा कर जोड़े।
दाओ आरो दुख, ओहे दयामय,
डाकि तोमा प्राण भरे ॥

एकबार ये तीन महीनेकी छुट्टी लेकर अपने अनुज श्रीगुरुदासके पास जाकर मोतीहारीमें रहे थे। वहाँ उन्हें सर्व प्रथम महात्मा श्रीशिशिरकुमार रचित श्रीअमिय निमाई चरित पढ़नेका अवसर मिला था। उन्होंने लिखा है कि उस समय उन्हें उसमें विशेष आनन्द और रसानुभूति नहीं हुई लेकिन बादमें दुबारा जब उस ग्रन्थको पढ़नेका अवसर मिला तब उसमें विशेष आनन्द आया। डाक-विभागकी सरकारी नौकरीपर बदली होकर नागपुर जाने तकका वृत्तान्त आत्मकथामें है। इसके बाद इनकी बदली जबलपुर हुई, वहाँसे भोपाल, भोपालसे अजमेर और फिर अजमेरसे कलकत्ता आये लेकिन उस कालकी जीवन घटनाका कोई वृत्तान्त नहीं मिला। अनुमान है कि उनको "श्रीअमिय निमाई चरित" पढ़नेका दुबारा अवसर जबलपुरमें ही मिला, जहाँसे उनकी जीवनधाराका प्रवाह एकदम बदल गया जो उनके स्वरचित ग्रन्थोंसे प्रतीत होता है।

अनुमानतः सरकारी नौकरीसे बङ्गाब्द १३३०, गौराब्द ४३७ में या उसके कुछ बाद पूर्ण अवकाश ग्रहणकर गोस्वामीजी श्रीधाम नवद्वीपमें स्थायी रूपसे बस गये थे।

श्रीहरिदासजी गोस्वामीका जीवन एक सन्त और साधु पुरुषका जीवन था। भ्रातृ-वियोगके बादसे ही सांसारिक जीवनसे उनकी विरक्ति हो गयी और वे हरिभक्तिकी ओर झुके। कन्याके वैधव्यके बाद तो वे पूर्ण वैष्णव साधक बन गये। ठाकुर सेवा, नाम स्मरण और सङ्कीर्तन उनका नित्यकर्म बन गया। यह साधना वे बड़ी निष्ठा और भावसे करने लगे। उनकी तन्मयता बढ़ती गयी और नौकरीके समयमें ही वे एक साधु पुरुषके रूपमें प्रसिद्ध हो गये।

वे जब नौकरी करते समय छुट्टी लेकर तीर्थ करने या कहीं उत्सव आदि प्रचार कार्यमें जाते तो ठाकुर-पूजा साथ-साथ चलती। यदि कहीं स्टेशनपर ठहरना पड़ता तो वहाँ ही जब लोग सोये रहते तभी तड़के स्नानादिसे निवृत होकर ठाकुरजीका सिंहासन सजाकर पूजा आरती शुरू हो जाती, घड़ी-घण्टा बजने लगते और नाम-सङ्कीर्तन प्रारम्भ हो जाता। लोग नींदसे जागकर चकित होकर देखने लगते। प्रायः बालक लोग आकर नाम-सङ्कीर्तनमें शामिल हो जाते थे, कहीं-कहीं दूसरे सरल हृदयके लोग भी नाम सङ्कीर्तनमें सम्मिलित हो जाते थे।

श्रीहरिदासजी गोस्वामी भगवत्साक्षात्कार करने वाले सिद्ध पुरुष थे। त्रिशके महात्मा बसन्त साधुके सङ्कीर्तन उत्सवमें जब गये तो उनकी पूजा-आराधना साथ-साथ गयी जिससे लोग बड़े प्रभावित हुए और मन्त्रदीक्षा लेने लगे। वे–

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

इस सोलह नाम, बत्तीस अक्षरोंके मन्त्रकी दीक्षा देते थे। फिर तो इनका प्रभाव बढ़ता गया और धीरे-धीरे पूर्व बङ्गालके कई जिलोंमें हजारोंकी संख्यामें लोग शिष्य बन

गये तथा जो साधना ये स्वयं करते थे उसी साधनाके पथपर अपने शिष्योंको चलाया। आज भी सहस्त्रों गृहस्थ और साधु उनके दिखाये हुए मार्गपर चलते हुए भगवद्‌भजनमें निरत हैं। समाजको गोस्वामीजीकी यह बहुत बड़ी दैन है और वैष्णव धर्मकी बहुत बड़ी सेवा है।

मध्य भारतके निवासकालमें अनुमानतः बङ्गाब्द १३२०-२१ में लम्बी छुट्टी लेकर अधिक समय तक गोस्वामी प्रभु सपरिवार वृन्दावनमें प्रेम महाविद्यालयके निकट केशीघाट पर किरायेका मकान लेकर श्रीकृष्णपददास बाबाजीके समीप रहते थे। बाबाजीके स्वधामगम होनेके बाद गोस्वामी प्रभुने उनके विषय में लिखा था:—

"श्रीवृन्दावनवासी अस्सी वर्षके वृद्ध-भजनविज्ञ श्रीकृष्णपददास पण्डित बाबाजी महाराजको व्रज-प्राप्ति हो गयी, यह शोक संवाद पाकर गौड़ीय वैष्णवमात्रको मर्मान्तक व्यथा हुई है। वे हमारे एक विशेष परमार्थिक बन्धु थे। उनकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा थी। एक वर्षसे अधिक समय तक श्रीवृन्दावन-वासके समय वे हमारी पारिवारिक इष्टगोष्ठीमें प्रायः साथ देते रहे। मेरी स्त्री और कन्या पर वे विशेष स्नेह-दृष्टि रखते थे। केशीघाट पर हमारे निवास स्थानके उपरकी छत पर एकान्तमें बैठकर सुमधुर गौरकथामें बहुत रात तक प्रेमानन्दमें जागते रहते थे। कितनी ही हार्दिक बातें मैंने निष्कपट भावसे उनसे कही थीं और उन्होंने भी अपने हृदयकी बातें मुझे सुनायी थीं।......इत्यादि।"

केशीघाट पर एक दूसरे महात्मा श्रीगौर गोविन्द भागवत स्वामी थे। वे बाल-ब्रह्मचारी और उदासीन थे। गोस्वामी प्रभुके बड़े प्रेमी थे। उनकी श्रीधाम नवद्वीपमें रामसीता पाड़ामें श्वेत प्रस्तरकी मूर्ति स्थापित है, और एक आश्रम है। आश्रमकी भूमि श्रीहरिदास गोस्वामी प्रभुने उपर्युक्त महात्माके शिष्यके नामसे दानमें दी थी। इन महात्माका गोस्वामी प्रभु और उनके परिवारके प्रति बड़ाही स्नेह भाव था।

इन महात्माओंके सम्पर्क-कालमें श्रीवृन्दावन धाममें विष्णुप्रिया साहित्यकी कुछ रचनाएँ हुई थीं।

उन दिनों श्रीवृन्दावनमें श्रीगौर-गदाधारकी उपासनाकी प्रथा प्रचलित थी। गोस्वामी प्रभु श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रियाके उपासक थे, और इस उपासनाके प्रचारक थे। श्रीविष्णुप्रिया पत्रिकामें इसके सम्बन्धमें उनके लेख भी निकलते थे। इससे श्रीवृन्दावनके गौड़ीय वैष्णवोंमें तहलका मच गया, और उन्होंने इनका यत्र-तत्र विरोध करना आरम्भ किया। परन्तु सार्वभौम गोस्वामी श्रीमधुसूदन शास्त्री जैसे विद्वान इनके समर्थक थे। अतएव इनका पक्ष जोर पकड़ता गया।

अजमेरके प्रवासकालमें जब इनके निवास स्थान पर पूजाके घण्टा-घड़ियाल बजते और नाम सङ्कीर्तन होने लगता तो स्थानीय जनता बड़े उत्साहसे उसमें भाग

लेती। लोग बड़े प्रभावित होते । ऐसा प्रतीत होता है कि अजमेरमें उनकी साधना परकाष्टाको पहुँच गयी थी। केवल बङ्गाली समाज ही नहीं, वरन् वहाँके अन्य निवासी भी उनको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे। गोस्वामीजी जब अजमेरसे कलकत्ता बदली होकर गये तब वहाँकी जनताने उनको बड़े सम्मान तथा समारोहके साथ विदाई दी थी। सुना गया है कि अजमेरमें रहते समय गोस्वामी प्रभुको श्रीश्रीगौराङ्ग महाप्रभुके साक्षात्कारका लाभ भी हुआ था। श्रीपाट एकचक्रामें श्रीश्रीनित्यानन्द महाप्रभुका भी दर्शन उनको प्राप्त हुआ था, जिसका विवरण श्रीपाट एकचक्रातीर्थ-दर्शनके वर्णनमें अन्यत्र दिया गया है। सम्भवतः इसी प्रकारका दर्शन अजमेरमें भी इन्हें हुआ होगा।

गौराब्द ४३७, बङ्गाब्द १३२६ गौर पूर्णिमासे उनने "श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग" मासिक पत्रिकाका सम्पादन और प्रकाशन आरम्भ किया था । जो कुछ पेंशनकी आय थी उसीमेंसे साधु-वैष्णव-सेवा, कुटुम्ब-पोषण और इस पत्रिकाके खर्चे हानिको संभालना पड़ रहा था। लेखन, सम्पादन, प्रूफ संशोधन ग्राहकोंसे पत्र-व्यवहार, ग्राहकोंको पत्रिका भेजनेका प्रवन्ध आदि सब कार्य अकेलेही उन्हें करने पड़ते थे। उनकी कन्या सुशीला सुन्दरी देवी, जिसका उनकी आत्म-कथामें कई जगह प्रसङ्ग आया है विवाहके बाद चौथे वर्षमें पति-वियोगके कारण गौरचरणाश्रित होकर इन्हींके पास रहा करती । सुशीलाजी स्वयं एक सुयोग्य कवियित्री हैं । अतः अपनी सुन्दर भावपूर्ण रचनाओंसे पिताकी पत्रिका की यत्किञ्चित सेवा किया करती थी। आगे जाकर श्रीअमृतलाल दत्त नामके एक भक्तने कार्याध्यक्षका पद स्वीकारकर व्यवस्था कार्यमें सहयोग दिया था। यह पत्रिका दश वर्ष तक चलनेके पश्चात् श्रीगोस्वामीप्रभुकी अस्वस्थताके एवं अर्थाभावके कारण बन्द हो गयी।

पेंशनकी आय समय-समय पर एक मुस्त नकद रूपमें लेनेसे बहुत कम हो गई थी। साहित्य प्रकाशनके खर्च निमित्त उन्हें नकद रुपये लेनेकी आवश्यकता पड़ती थी। इस तरह पेंशनकी नियमित मासिक आय बहुत घट जानेसे खर्च चलानेमें बहुत कठिनाई होती थी । यह कठिनाई यहाँ तक बढ़ गई थी कि पत्र-व्यवहारके खर्चका भार भी बहन करनेकी सामर्थ्य नहीं रही जिससे बाध्य होकर श्रीश्रीविष्णुप्रिया गौराङ्ग पत्रिकाके नवें वर्षके नवें अंक में सूचना प्रकाशित कर-कर निवेदन करना पड़ा कि पत्र-लेखक महोदय किसी विशेष विषय पर पत्रोत्तर चाहें तो उसके लिए आवश्यकीय डाक टिकट भेजने की कृपा करें। श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्जमें जो सामयिक उत्सव महोत्सव आदि होते थे, उनके खर्चमें नाना स्थानोंसे आये हुए शिष्य वर्ग सम्मिलित हो जाया करते थे।

बङ्गाब्द १३५० की पौष शुक्ला चतुर्दशीके दिन उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती देवीका देहान्त हो गया, जिनके नामपर उनके जीवन कालमें ही "लीलावती भक्ति शास्त्र-पीठ" की स्थापना श्रीगोस्वामी प्रभु द्वारा हुई।

श्रीनवद्वीप धाममें सिद्ध-महात्माके रूपमें लोग श्रीगोस्वामीप्रभुका आदर करते थे और वहाँके सिद्ध-साधु सन्तोंमें इनकी गणना थी। अन्तिम समयमें आपको रक्तचाप और फील पांवकी बीमारीसे शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा। उस समय इनकी शारीरिक सेवा उनके सबसे छोटे भतीजे श्रीसुरेन्द्रनाथ गोस्वामी किया करते। मल-मूत्र त्याग करवानेका सेवाकार्य भी श्रीसुरेन्द्रनाथजी ही किया करते। देहावसानके एक महीना पहलेसे ही श्रीगोस्वामी प्रभु मौन हो गये थे और किसी भी कुशल प्रश्न आदिका कोई उत्तर नहीं देते थे, केवल,

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

तथा "जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदिया बिहारी॥"

मन्त्रोंका स्मरण करते रहते और कानके पास सुनानेपर बोलकर दोहराते भी। उनके मुख-मण्डलपर उज्ज्वल कान्ति बराबर बनी रही, परन्तु आहार बन्द हो गया था। इसकालमें तन्द्राकी तरह दिन-रात ध्यानस्थ रहा करते थे। अन्तमें अठहत्तर वर्षकी अवस्था पूर्ण करके पौष शुक्ल १, वङ्गाब्द १३५२ सालके दिन रात्रिको दस बजेके अनुमान वे इस संसारको छोड़कर गौर-धाम चले गये। प्राणान्त होजानेके बाद भी उनके मुखकी कान्ति और छटा वैसी ही बनी रही। डाक्टरोंके प्राणान्त होनेकी घोषणा करते ही श्रीनवद्वीपधाममें यह समाचार विजलीकी तरह क्षण-भरमें व्याप्त हो गया और चारों ओर विषाद छा गया।

दूसरे दिन सवेरे श्रीहरिदासजी गोस्वामी प्रभुकी शव-यात्रा ससमारोह निकाली गयी। श्रीधामके बहुतसे कीर्त्तन दल श्रीहरिनामकी तुमुल कीर्त्तन-ध्वनि करते हुए यात्रामें साथ-साथ चल रहे थे। सबोंके चेहरों पर विषादकी रेखाएँ स्पष्ट थीं। शव-यात्राका जुलूस श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग कुञ्जसे आरम्भ होकर श्रीमन्महाप्रभुजीके धामेश्वर मन्दिर, श्रीनित्यानन्द प्रभुके श्रीमन्दिर, पुरामातला शक्तिपीठ, श्रीवास-आङ्गण, श्रीरामदास बाबाजी (ललिता सखी) आदि स्थानों पर ठहरता हुआ गया, प्रत्येक जगह पुष्प मालाओं द्वारा श्रीगोस्वामीप्रभुके प्रति सम्मान-सत्कार प्रकट किया गया। जबतक चिता-कार्य चलता रहा, सब लोग :—

"जय शचिनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रियार प्राणनाथ नदिया बिहारी॥"

मन्त्रका अविराम कीर्त्तन करते रहे।

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्जके श्रीमन्दिरमें द्विज श्रीवलरामदास ठाकुर द्वारा आनीत बालगोपाल श्रीविग्रह, श्रीबलरामदासजीके पिता श्रीसत्यभानु उपाध्यायके

द्वारा सेवित लड्डू गोपाल श्रीविग्रह, श्रीहरिदास गोस्वामीप्रभुके श्रीगौर-विष्णुप्रिया श्रीविग्रह तथा श्रीसुशीला सुन्दरी देवीके श्रीमदनगोपाल श्रीविग्रहकी अद्यावधि विधिपूर्वक अष्टयाम पूजा-सेवाका प्रबन्ध है। अर्थ-प्रबन्धके लिए ३० बीघा जमीन बर्धवान जिलेमें आश्रमके नाम पर ली गई है। कोई-कोई शिष्य भी आर्थिक सहायता करते हैं।

श्रीगोस्वामी प्रभुका तिरोधाम दिवस बसन्त पञ्चमीके ३५ दिन पूर्व, पौष शुक्ल प्रतिपदाको मनाया जाता है। उस दिन अनेक स्थानोंसे शिष्यवर्ग समवेत होकर ३ दिन तक अखण्ड कीर्त्तन करते हैं, तथा दरिद्रनारायण प्रसाद पाते हैं। श्रीगोस्वामी प्रभुकी पुत्री श्रीसुशीला सुन्दरी देवी अब वृद्ध हो गई हैं, उनके सबसे छोटे चचेरे भाई श्रीसुरेन्द्रनाथजी गोस्वामी भी साथ ही रहते हैं। आश्रममें दो-तीन सेविकाएँ हैं, जो सेवा कार्यमें रत रहती हैं। श्रीनवद्वीप धाममें श्रीश्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्ग-कुञ्ज स्वयं एक तीर्थस्थली है, तथा श्रीगोस्वामी प्रभुका एक पावन स्मृति-चिह्न है।

"जय श्रीविष्णुप्रिया-गौराङ्गकी जय"

'प्रभुपाद श्रीहरिदासजी' गोस्वामी पुस्तकके

प्रथम हिन्दी संस्करणका शुद्धि पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्धि	शुद्धि
२०	१०	भोजनोपयोगी	भजनोपयोगी
२२	७-८	श्रीपाद घनश्याम गोस्वामी प्रभु	श्रीपाद घनश्याम सार्वभौम गोस्वामी प्रभु
२३	१०	मेरी दयामयी पिमामही देवी	मेरी पितामही दयामयीदेवी
२६	२१	नाक खूब चपटी थी	नाम खूब तीखी थी
७५	२३	जुआ	शतरञ्ज
१६०	२७	भट्ठा	मठ्ठा
१६६	८	शिशर	शिशिर
१७२	२०	ह'लान	ह'लाम
१७२	अन्तिम	कृतज्ञ	अकृतज्ञ
१७५	७	दादाका	दादा
१७६	२०	देते	देरी
१८८	२४	परिलुप्त	परिप्लुप्त
२०५	१५	अन्वेरे	अन्येरे
२०६	१२	कञ्चना	काञ्चना
२०६	१५	अतितप्रभा	अमितप्रभा
२३६	२४	नाम शुद्ध	शुद्ध नाम
२४०	४	बनाया	बताया
२५६	२०	मोट	भोट
२६७	११	वहिर्ववस्त्र	बहिर्वस्त्र
२७३	५	वाणीसे	बाणोसे
२७५	६	नानीर	नारीर
२७५	१४	भजाल	मजाल
२७६	१८	वहाँ	वह
२८४	२०	श्रीपार	श्रीपाट
२१६	३	लोभ	लाभ
२६०	२६	सेकाल	से काल
२६२	२८	महाराज महाराज	महाराज
२६७	५	सेवा-प्रतिष्ठित	सेवा
२६७	६	हुई	प्रतिष्ठित हुई
२६६	१२	उत्तर, देना	उत्तर देना,
२६६	२७	मित्रके	मित्रसे
३५८	७	प्रतिमा	प्रतिभा

पदकर्त्ता द्विज बलरामदास ठाकुरकी वंशावली

श्रीपाट दोगाछिया (जिला नदिया)

तालिका १

(१) ठाकुर सत्यभानु उपाध्याय

(२) (१) ठाकुर बलरामदास — (२) जनार्द्धन — (३) मुरारि

(३) रामचन्द्र

(४) गोपीजनवल्लभ

(५) (१) कृष्णवल्लभ — (२) गोपालवल्लभ — (३) श्रीवल्लभ — (४) जानकीवल्लभ — (५) मथुरावल्लभ

(६) (१) रमाकान्त — (२) पार्वतीनाथ — मधुसूदन — श्रीहरि — मणिराम — दुर्ल्लभ

(७) जयहरि — जनार्द्दन — (१) रामनारायण — (२) रामजीवन — पुरुषोत्तम — शुकदेव — हरिकृष्ण

(८) (१) आनन्दीराम — (२) रामकान्त — नन्दराम — (१) पीताम्बर — (२) राधाकृष्ण — रामकृष्ण — (१) रामानन्द — (२) कृष्णराम — रामदुलाल — (१) रामलोचन — (२) कृष्णप्रसाद — (३) देवप्रसाद

(९) भारतचन्द्र — निमाईचाँद — १ ब्रजेन्द्रनाथ, २ कृष्णचन्द्र, ३ नीलमणि — गौरचाँद (पोष्यपुत्र) — श्यामचन्द्र — नृसिंह — १ कृष्णकान्त, २ रामसुन्दर — १ अयोध्याराम, २ आत्माराम — कालीप्रसाद — १ चंडीचरण, २ रामरतन — गोपाल — १ रामनाथ, २ रामयदु

भारतचन्द्र, निमाईचाँद: आगेकी वंशावली तालिका २ में देखिये

ब्रजेन्द्रनाथ, कृष्णचन्द्र, नीलमणि: आगेकी वंशावली तालिका ३ में देखिये

गौरचाँद, श्यामचन्द्र, नृसिंह, कृष्णकान्त, रामसुन्दर: आगेकी वंशावली तालिका ४ में देखिये

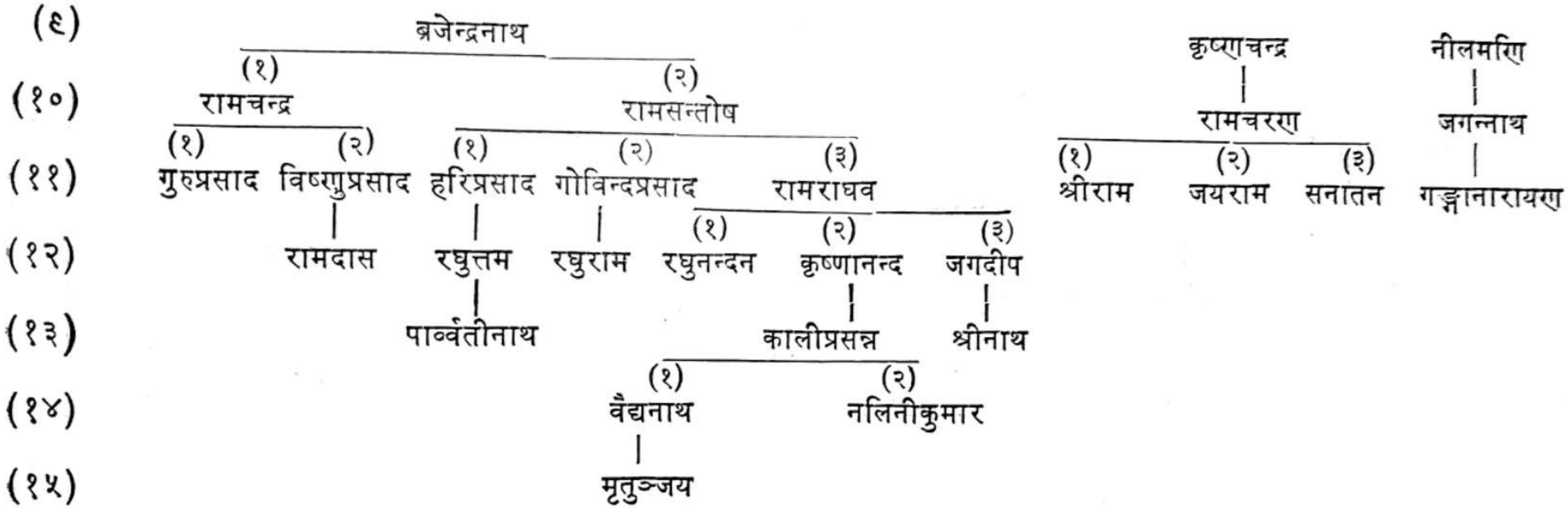
अयोध्याराम, आत्माराम, कालीप्रसाद: आगेकी वंशावली तालिका ५ में देखिये

चंडीचरण, रामरतन, गोपाल, रामनाथ, रामयदु: आगेकी वंशावली तालिका ६ में देखिये

तालिका २

- (९) भारतचन्द्र
  - (१०) (१) राधामोहन
  - (१०) (२) भोलानाथ
    - (११) जगतपति (पोष्यपुत्र)
      - (१२) गोपीवल्लभ
        - (१३) १ गंगाधर
        - (१३) २ शरच्चन्द्र
  - (१०) (३) गौरहरि
    - (११) सीतानाथ
      - (१२) (१) अच्युतानन्द
      - (१२) (२) **हरिदास**
        - (१३) सुशीला (कन्या)
      - (१२) (३) गुरुदास
        - (१३) १ ज्ञानेन्द्र
        - (१३) २ निशानाथ
        - (१३) ३ जीतेन्द्र
        - (१३) ४ धीरेन्द्र
        - (१३) ५ सुरेन्द्र
        - (१३) ६ हेमेन्द्र
  - (१०) (४) घनश्याम
  - (१०) (५) सार्व्वभौम
  - (१०) (६) रामकेशव
    - (११) (१) श्रीकृष्ण
      - (१२) (१) व्रजेन्द्र
      - (१२) (२) उपेन्द्र
        - (१३) १ आशुतोष
        - (१३) २ भवतोष
        - (१३) ३ महीतोष
        - (१३) ४ देवतोष
    - (११) (२) नवकृष्ण
      - (१२) रेवतीरमण
- (९) निमाईचाँद
  - (१०) (१) विश्वम्भर
    - (११) (१) मधुसूदन
      - (१२) वैणीमाधव
        - (१३) १ रासबिहारी
        - (१३) २ शचीन्द्र
    - (११) (२) द्वारकानाथ
  - (१०) (२) वल्लभ

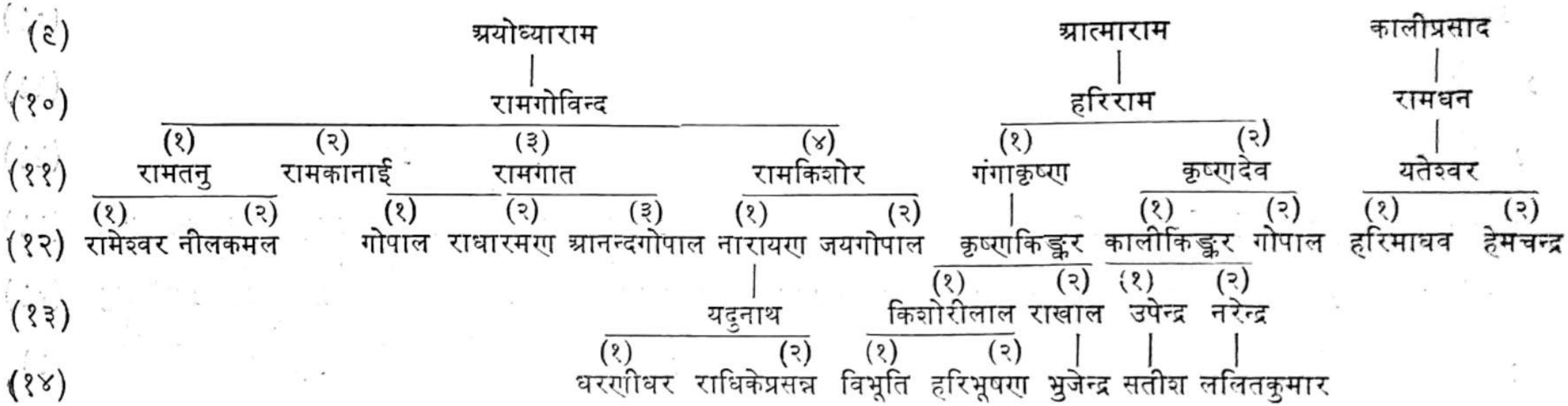
तालिका ३


(९)
(१०)
(११)
(१२)
(१३)
(१४)
(१५)
ब्रजेन्द्रनाथ
(१) रामचन्द्र
(२) रामसन्तोष
(१) गुरुप्रसाद
(२) विष्णुप्रसाद
रामदास
(१) हरिप्रसाद
रघुत्तम
पार्व्वतीनाथ
(२) गोविन्दप्रसाद
रघुराम
(३) रामराघव
(१) रघुनन्दन
(२) कृष्णानन्द
कालीप्रसन्न
(१) वैद्यनाथ
मृतुञ्जय
(२) नलिनीकुमार
(३) जगदीप
श्रीनाथ
कृष्णचन्द्र
रामचरण
(१) श्रीराम
(२) जयराम
(३) सनातन
नीलमणि
जगन्नाथ
गङ्गानारायण

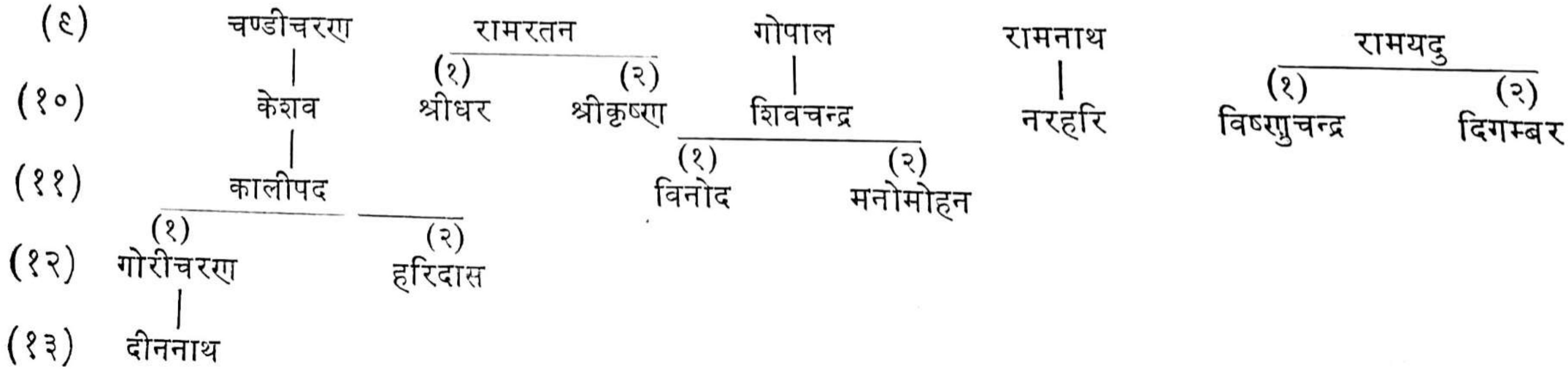
तालिका ४

(९)	गौराचाँद	श्यामचन्द्र	नृसिंह	कृष्णकान्त	रामसुन्दर
(१०)	(१) विष्णुराम, (२) जगतराम, (३) रामप्रसाद	शिवचन्द्र	(१) राजीवलोचन, (२) कमललोचन, (३) नवकृष्ण	(१) रामकुमार, (२) रामराम	कृष्णप्राण
(११)	रामकमल (विष्णुराम के); (१) माधव, (२) मंगल (जगतराम के); (१) देवनाथ, (२) कालीनाथ, (३) मथुरानाथ (रामप्रसाद के)			कृष्णराम (रामकुमार के); (१) नृसिंह, (२) काली, (२) ईश्वर (रामराम के)	रामकृष्ण
(१२)	राम (देवनाथ के); हाराधन (कालीनाथ के)				केदारनाथ
(१३)					गिरिजालाल
(१४)					श्रीगोपाल

तालिका ५


(९) अयोध्याराम
आत्माराम
कालीप्रसाद
(१०) रामगोविन्द
हरिराम
रामधन
(११) (१) रामतनु (२) रामकानाई (३) रामगात (४) रामकिशोर
(१) गंगाकृष्ण (२) कृष्णदेव
यतेश्वर
(१२) (१) रामेश्वर (२) नीलकमल
(१) गोपाल (२) राधारमण (३) आनन्दगोपाल
(१) नारायण (२) जयगोपाल
कृष्णकिङ्कर
(१) कालीकिङ्कर (२) गोपाल
(१) हरिमाधव (२) हेमचन्द्र
(१३) यदुनाथ
(१) किशोरीलाल (२) राखाल
(१) उपेन्द्र (२) नरेन्द्र
(१४) (१) धरणीधर (२) राधिकेप्रसन्न
(१) विभूति (२) हरिभूषण
भुजेन्द्र
सतीश
ललितकुमार

तालिका ६


(९) चण्डीचरण
रामरतन
गोपाल
रामनाथ
रामयदु
(१०) केशव
(१) श्रीधर
(२) श्रीकृष्ण
शिवचन्द्र
नरहरि
(१) विष्णुचन्द्र
(२) दिगम्बर
(११) कालीपद
(१) विनोद
(२) मनोमोहन
(१२) (१) गोरीचरण
(२) हरिदास
(१३) दीननाथ